संस्कृत नाटिका साहित्य का ऐतिहासिक अध्ययन



डॉ० चन्द्रशेखर द्विवेदी

सस्कृत नाट्यसाहित्य विश्वरगमचीय साहित्य मे सर्वोपरि है। अभिनय, सगीत और रस की दृष्टि मे तथा प्रेक्षागृह निर्माण एव सज्ञा का जितना सूक्ष्म, वैज्ञानिक एव व्यावहारिक वर्णन नाठ्यशास्त्र मे उपलब्ध होता हे वैसा विश्वसाहित्य मे अन्यत्र दुर्लभ है। वस्तु, नेता और रस के आधार पर रूपको का दस भागो म बॉटा गया तथा १८ उपरूपको के रूप मे जनसामान्य तक उन्हे पहुॅचाने का सार्थक प्रयत्न किया गया है। 'नाटिका' उपरूपको मे प्रथम है। रूपको के दो भेद नाटक और उपरूपक के मिश्रण से उत्पन्न नाटिका राजकीय विलासिता की अन्त पुरीय घटनाओ एव शृगारिक चेष्टाओ की उन्मुक्त अभिव्यक्ति है। इन नाटिकाओ के माध्यम से उन बुराइयो को भी उजागर किया गया है जो राजमहल और अन्त पुरीय उद्यानो की चारदीवारी मे सत्ता के मद एव धनवैभव के दुरुपयोग से जन्म लेती रही है।

ईसा की सातवी शती से २०`वी शती तक की प्रतिनिधि नाटिकाओ का, उनके कवियो का तथा साहित्यकि सौन्दर्य का समीक्षण तो किया ही गया है अनुपलब्ध या अर्धोपलब्ध नाटिकाओ का परिचय भी दिया गया है। सर्वत्र इस बात का ध्यान रखा गया है कि समस्त विश्लेषण वैज्ञानिक एव शोधपरक हो। इसलिये यह ग्रन्थ सस्कृत नाट्य साहित्य के अध्येताओ एव शोधार्थियो दोनो के लिये ही अति उपयोगी सिद्ध होगा।

मूल्य 450.00

संस्कृत नाटिका साहित्य
का
ऐतिहासिक अध्ययन

लेखक
डॉ० चन्द्र शेखर द्विवेदी

परिमल पब्लिकेशन्स
दिल्ली

प्रकाशक–
बाँके विहारी प्रकाशन
वजीरपुरा रोड
आगरा—3 (उ०प्र०)

वितरक
परिमल पब्लिकेशन्स
27/28, शक्ति नगर
दिल्ली—110007
Ph 7445456

प्रथम संस्करण— 2003

मूल्य— 450,00 रुपये मात्र

मुद्रक
हिमांशु प्रिन्टर्स, गली नं० १४, मौजपुर
दिल्ली ११००५३

दो शब्द

जयन्ति ते सुकृतिन रस-सिद्धा. कवीश्वरा
नास्ति येषा यश काये जरा-मरणज भयम्।।

सस्कृत वाङ्मय के विशाल सागर मे समाहित होने वाली असख्य ज्ञान धाराओ मे नाट्य एक ऐसा स्रोतस्विनी है जिसमे जीवन के व्यापक अनुभवो के साथ ज्ञान, शिल्प, कला विद्या, योग, कर्म और तन्त्रादि के अनेकानेक प्रवाह आकर मिलते है। इसीलिए आचार्य भरतमुनि ने 'नाट्य' को पचम वेद की मान्यता प्रदान की हे।

सर्वशास्त्रार्थसम्पन्न सर्वशिल्पप्रवर्तकम्।
नाट्याख्य पचम वेद ऐतिहास करोम्यहम्।। ना० शा० 1/15

नाट्य का प्रसिद्ध नाम 'रूपक' है क्योकि इसमे अभिनेता अभिनेय के रूप का स्वय पर आरोप करता है—'रूपोरोपात्तु रूपकम्' (दशरूपक) कथावस्तु पात्र और रस की भिन्नता के आधार पर रूपको के मुख्यत १० भेद किये गये है— नाटक, प्रकरण, भाण व्यायोग, समवकार, डिम्, ईहामृग, अक, वीथी और प्रहसन। आचार्य भरतमुनि ने नाटक और प्रकरण के मिश्रण से 'नाटी' नामक सकीर्ण रूपक का उल्लेख किया है—"**अनयोश्च बन्धयोगादेको भेद प्रयोक्तृभिर्ज्ञेय प्रख्यातस्त्वितरो वा नाटी सज्ञाश्रिते काव्ये।।**" यही 'नाटी' दशरूपक आदि ग्रन्थो मे 'नाटिका' नाम से प्रसिद्ध हुई जिसकी विश्वनाथ आदि काव्य शास्त्रियो ने उपरूपको के मध्य गणना की है। वस्तुत कवि अनुरागमयी कोमल अनुभूतियो को ललित भाषा मे पिरोकर शृगारबहुल कैशिकी वृत्ति के धरातल पर जब कल्पनाशील होता है तभी नाटिका का जन्म होता है। अभिनेता अपने कुशल अभिनय से विद्वान्, अविद्वान्, स्त्री, पुरुष सभी को आनन्द विभोर कर उसके लालित्यपूर्ण कथानक को साफल्य प्रदान करता है। अत सस्कृत नाटिकाएँ रूपकवद् दृश्य होकर आस्वादव्यजक होने के कारण महत्त्वपूर्ण है।

सस्कृत नाटिकाओ की रचनाधारा अति प्राचीन काल से २० वी शती तक अविच्छिन्न रूप से प्रवाहमान है। कालिदास के 'मालविकाग्निमित्रम्' मे नाटिका का शिल्प और

कथावस्तु का प्रतिबिम्ब स्पष्ट झलकता है। उपलब्ध नाटिकाओ मे हर्षदेव की रत्नावली नाटिका ही सबसे प्राचीन है। नाटिकाओ की रचना का उद्देश्य अल्प समय मे जन मनोरजन के साथ ही सामन्त युगीन भोग विलासिता का यथार्थ चित्रण करते हुए समाज को इन दुष्प्रवृत्तियो से सावधान करना प्रतीत होता है। नाटिकाओ मे नाटक— प्रकरण के अनुसार कथावस्तु पात्र, सन्धि, सन्ध्यग, आदि नाट्य रूढियो का अधिकाशत पालन किया गया है और रूपक वर्ग के भाण व्यायोम, समवकार आदि भेदो की अपेक्षा अधिक सवेदना मनोरजन एव प्रभावकारिता होने के कारण ही नाटक-लक्षण-रत्न कोशकार सागर नन्दी जैसे आचार्य ने नाटिका की गणना रूपक वर्ग मे करना ही अधिक उचित समझा। देवयात्राओ एव धार्मिक उत्सवो पर इनके अभिनय का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

नाटिका के सम्बन्ध मे समालोचको ने अधिक अपलाप-प्रलाप नही किया है। पूज्य गुरुवर प० द्विजेन्द्र नाथ मिश्र ''निर्गुण'', जी ने सरस्वती सुषमा मे नाटिकाओ की वैधता पर यद्यपि कुछ आपत्ति की है किन्तु अन्त मे यह कहते हुए कि ''इन नाटिकाओ के प्रणयन का मूल उद्देश्य राज समाज मे व्याप्त भोगलिप्सा की अत्यासक्ति का प्रतीकात्मक प्रदर्शन है'' नाटिका रचना के औचित्य की स्वयमेव स्थापना कर दी है। सस्कृत नाटिका साहित्य की एक समृद्ध परम्परा है किन्तु इस विधा की कालानुक्रम से साहित्यिक एव समीक्षात्मक विवेचना उपलब्ध न होने से विद्वानो की उपेक्षा प्रत्यक्ष है। इसी का परिणाम है कि इस विधा के अध्ययन के प्रति सस्कृतज्ञ विद्वज्जन भी अधिक उत्साही नही है। इसीलिए मैने इस ग्रन्थ मे ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

अन्त मे उस परमात्मा को जिसकी कृपा के बिना कुछ भी सम्भव नही अभिवन्दन करते हुए विद्वानो के हाथो मे इस ग्रन्थ को इस आशा के साथ समर्पित कर रहा हूँ कि—

''क्षमिहहि सज्जन मोरि ढिठाई''

विद्वदाश्रव·

डॉ० चन्द्र शेखर द्विवेदी

अनुक्रमणिका

संकेतिका

अभि द	—	अभिनय दर्पण
अभि भा	—	अभिनव भारती
अभि शा	—	अभिज्ञान शाकुन्तल
अभि ना शा	—	अभिनव नाट्यशास्त्र
अष्टा	—	अष्टाध्यायी
आधु स सा	—	आधुनिक सस्कृत साहित्य
उत्तर	—	उत्तररामचरित
उषा	—	उषारागोदया
औ वि च	—	औचित्य विचार चर्चा
कथा स सा	—	कथासरित् सागर
कम कल	—	कमलिनी कलहस
कर्ण	—	कर्णसुन्दरी
का प्र	—	काव्यप्रकाश
का मी	—	काव्यमीमासा
गोपथ	—	गोपथ ब्राह्मण
चन्द्र	—	चन्द्रकला
ड्रामा स लिट	—	ड्रामा इन सस्कृत लिटरेचर
ते सा इति	—	तेलुगु साहित्य का इतिहास
ते आर	—	तैत्तिरीय आरण्यक
दश	—	दशरूपक
नवमा	—	नवमालिका
ना क	—	नाट्यकला
ना. क मी	—	नाट्य कला मीमासा
ना च	—	नाटक चन्द्रिका
ना द	—	नाट्यदर्पण
ना ल र	—	नाटक लक्षण रत्नकोष
ना शा	—	नाट्यशास्त्र

ना स	—	नाट्य समीक्षा
ना सा	—	नाट्य साहित्य
परि	—	परिशिष्ट
पारि	—	पारिजात मजरी
प्रा भा इति	—	प्राचीन भारत का इतिहास
प्रिय	—	प्रियदर्शिका
बा रा	—	बाल्मीकि रामायण
भ ना शा ना शाला रूप	—	भरतनाट्य शास्त्र मे नाट्यशालाओ के रूप
भा प्र	—	भाव प्रकाशन
भा ना सा	—	भारतीय नाट्य साहित्य
भा ना पर अभि	—	भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण
भा पा रग	—	भारतीय तथा पाश्चात्य रगमच
भा स इति	—	भारतीय सगीत का इतिहास
मनु	—	मनुस्मृति
मल क	—	मलयजा कल्याणम्
माल	—	मालविकाग्निमित्रम्
मृगा	—	मृगाकलेखा
मृच्छ	—	मृच्छकटिकम्
मेघ	—	मेघदूत
रत्ना	—	रत्नावली
रसगगा	—	रसगगाधर
रग ना भूमि	—	रगमच और नाटक की भूमिका
राम च	—	रामचरितमानस
विद्ध	—	विद्धशालभंजिका
वृत्त	—	वृत्तरत्नाकर

वृष	—	वृंषभानुजा
वै स वि	—	वैदिक सस्कृति का विकास
वै सा स	—	वैदिक साहित्य और सस्कृति
शु यजु वाज	—	शुक्ल यजुर्वेद वाजसनेय सहिता
स ड्रा	—	सस्कृत ड्रामा
स ना क	—	सस्कृत नाट्यकला
स सा इति	—	सस्कृत साहित्य का इतिहास
स सा समी इति	—	सस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास
स सा स इति	—	सस्कृत साहित्य का सक्षिप्त इतिहास
स हि कोष	—	सस्कृत हिन्दी कोष
सा द	—	साहित्य दर्पण
सा सि	—	साहित्य सिद्धान्त
वै सि कौ	—	वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी
हि ना शा	—	हिन्दी नाट्यशास्त्र
हि इनडि लिट	—	ए हिस्ट्री आफ इन्डियन लिटरेचर
हि क्लासि स लिट	—	हिस्ट्री आफ क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर
हि स लिट	—	हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर

प्रथम अध्याय

संस्कृत-साहित्य और दृश्यकाव्य

प्राचीनतम भारतीय वाड्मय का जो कुछ भी स्वरूप आज उपलब्ध है वह सभी सस्कृत-साहित्य है—क्योकि भारतीय ऋषियो का उदात्त चिन्तन, समग्र सस्कृति, सभ्यता और जीवनयापन पद्धति के समस्त नियमोपनियमो का ग्रथन सस्कृत भाषा मे ही हुआ हे। प्रसिद्ध विद्वान् दासगुप्ता और एस के. डे महोदय के कथन से इस बात की पुष्टि होती है।[१] भाषा और साहित्य का आधार-आधेय भाव सम्बन्ध होता है। सस्कृत साहित्य की आधारभूत भाषा सस्कृत है, अत सस्कृत भाषा के माध्यम से समुल्लिखित यत्किंचित् सस्कृत-साहित्य कहलाने का अधिकारी हे।

सस्कृत भाषा का स्वरूप

सस्कृत भाषा जिसे विश्व की प्राचीनतम भाषा होने का गौरव प्राप्त है, आपातत किसी असस्कृत भाषा के शुद्ध सस्कृत स्वरूप की ओर इगित करती है।[२] भारत की प्राचीनतम भाषा सस्कृत ही थी जो सभवत व्याकरण के नियमो से रहित होने के कारण अव्याकृत रूप मे कुछ शिथिल रही होगी। बाद मे उसको विशृखलता और विनाश से बचाने के लिए व्याकरण के नियमो मे आबद्ध कर इसका सस्कार किया गया होगा, इसीलिए इसका नाम सस्कृत पड़ा। सस्कृत भाषा के दो रूप आज उपलब्ध है—

(क) वैदिक सस्कृत,

(ख) लौकिक सस्कृत।

१ "द— "सस्कृत वाज इन्डीड दि लैंग्वेज नाट वनली आव काव्य आर लिटरेचर बट आव आल दि इण्डिएन साइसेज एण्ड इक्सेप्टिग दि पालि आव हीनयान बुद्धिस्ट्स एण्ड दि प्राकृत आव दि जेन्स इट वाज दि वनली लैंग्वेज इन ह्विच दि होल आव इण्डिया एक्प्रेस्ड आल हर बेस्ट थाट्स फार दि लास्ट 2 आर 3 थाउजेण्ड यियर्स एण्ड इट हेज यूनाइटेड दि कलचर आव इण्डिया-अण्डर दि शैडो आव वन वैदिक रिलीजन देयर हेड इन्डीड डेवलप्ड मैनी सब्सीडिएरी रिलीजन्स।"

(दास गुप्ता) हि. स. लिट. प्रथम भाग, भूमिका, पृष्ठ ७

२ "दि वर्ड सस्कृत मीन्स प्योरीफाइड एण्ड वेल आर्डर्ड' ।"

(एस. के. डे.) । हि. स लिट., भूमिका, पृष्ठ ६

(क) वैदिक सस्कृत—विश्व मे सर्व प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ वेद है, जिनकी सख्या ४ है—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इनमे ऋग्वेद सर्वाधिक पुरातन है। इन वेदो की भाषा वैदिक भाषा कहलाती है जो आज से लगभग ८ हजार वर्ष पूर्व पश्चिमोत्तर भारत मे[१] प्रचलित थी। बालगगाधर तिलक ने गणित के प्रमाणो के आधार पर ऋग्वेद के अनेक सूक्तो का रचनाकाल विक्रम से ६ हजार वर्ष पूर्व माना है।[२] वेद, ब्राह्मण, आरण्यक ओर उपनिषदो का प्रणयन इसी वैदिक भाषा मे होने के कारण यह स्पष्ट है कि यह सहस्रो वर्षो तक भारत की साहित्यिक भाषा रहा है। इस भाषा मे व्याकरण के नियम लौकिक व्याकरण (पाणिनि व्याकरण) से सर्वथा भिन्न थे।[३]

वैदिक सस्कृत को लोकभाषा का पद सभवत प्राप्त नही हो सका था क्योंकि यह केवल शिक्षित व्यक्तियो की ही भाषा थी।[४] दूसरा कारण यह भी था कि वैदिक सस्कृत मे अध्यात्म, धर्म, दर्शन और कर्मकाण्ड सम्बन्धी रचनाएँ ही उपलब्ध है इसलिए जनसामान्य की आनन्दात्मक अनुभूति को पूर्ण न कर सकने के कारण वैदिक सस्कृत को साहित्य की पूर्ण मान्यता प्राप्त नही हो सकी थी परन्तु यह नही कहा जा सकता कि वैदिक वाड्मय में साहित्य का रूप बिलकुल ही नही है। ऋग्वेद मे उषा की स्तुति पूर्णत काव्यात्मक है, जिसमे उषा की उपमा जाया से दी गई है।[५] इसी प्रकार सम्बाद सूक्तो—जिनकी सख्या लगभग १५ या २० है—मे काव्यात्मक कथोपकथन है।[६] कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने तो इन सूक्तो मे अभिनय का तत्व भी ढूढने का प्रयास किया है।[७] अग्रेजो के लिटरेचर शब्द को ध्यान मे रखकर जो लोग वैदिक वाड्मय को साहित्य की श्रेणी से पृथक् मानते है वह उनकी सकुचित विचारधारा है। क्योंकि साहित्य मानव ज्ञान का वह अभिव्यक्तीकरण है जो सृष्टि के चेतन और अचेतन जगत से तादात्म्य रखता है। वैदिक वाडमय मे हमे अनेक प्राकृतिक शक्तियो का

---

१ 'इन दि मोर इण्डिएन पार्ट्स आव दि ऋग्वेद सहिता, वी फाइन्ड दि इण्डिएन रेस, सेटेल्ड आन दि नार्थ वेस्टर्न बार्डर्स आव इण्डिया, इन दि पजाब एण्ड इवेन वियाण्ड दि पजाब।' (वेवर) हि स. लिट., पृष्ठ 3।

२ दे (बलदेव) स सा. इति., पृष्ठ ११।

३ दे यास्ककृत निरुक्त व अष्टाध्यायी की स्वर प्रक्रिया।

४ दे—'फार दि इण्डो आर्यन लैंग्वेज इज नाट इन इट्स फर्स्ट पीरिएड सस्कृत दि लैंग्वेज आव एजूकेटेड बट इज स्टिल ए पापुलर डाइलेक्ट।' (वेवर) हि इण्डिएन लिट., पृष्ठ १.

५ दे—जायेव पत्ये उशसी प्रभाते—ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त ७१ मन्त्र ४

६ दे वैदिक सा और स, पृष्ठ १३६ (बलदेव)।

७ डा सिलवान्लेवी, डा श्रोदर और डा हर्टल आदि विद्वानो की दृष्टि मे ये वस्तुतः नाटक के अवशिष्ट अंश है, जिनका सगीत तथा पात्र के उचित सन्निवेश कर देने पर यज्ञ के अवसरो पर वस्तुत अभिनय होता था। वै. सा. स., पृष्ठ १३६

मानवीकृत रूप मिलता है।[१] इसीलिए आद्य रगाचार्य ने वैदिक ऋचाओ को सस्कृत साहित्य का सर्वप्रथम रूप माना है।[२] अथर्ववेद मे ही वेदो को देवताओ का अजर अमर काव्य कहा गया है।[३] परन्तु वैदिक वाड्मय के विशाल स्वरूप को सस्कृत-साहित्य का पद प्राप्त नही हो सका। इसका प्रथम कारण तो यह है कि सस्कृत शब्द केवल पाणिनीय व्याकरण के लिये ही प्रचलित था, क्योकि अव्याकृत सस्कृत भाषा के सुसस्कारित रूप का ही नाम सस्कृत है और यह सस्कार पाणिनि, पतजलि और कात्यायन नामक त्रिमुनि के द्वारा नियम निर्धारण से हुआ।[४] इसलिए पाणिनि व्याकरण के नियमो का पालन करते हुए सस्कृत भाषा के माध्यम से लिखित साहित्य ही सस्कृत साहित्य की पदवी पा सका। वेदो की व वैदिक वाड्मय की भाषा पाणिनि नियमो से रहित है। दूसरा कारण यह भी है कि वेदो का सकलन ऋषियो के द्वारा किया गया जिससे वे लौकिक विश्वास और मान्यताओ से ऊपर उठ कर अलौकिक कोटि मे पहुँच गये। अत वैदिक वाड्मय को अलौकिक सस्कृत साहित्य की पदवी तो दी जा सकती है पर सस्कृत-साहित्य का नाम नही। यही कारण है कि विद्वानो ने सस्कृत-साहित्य का इतिहास लिखते समय वैदिक अश को छोड दिया है।

(ख) लौकिक संस्कृत—पाणिनि व्याकरण पर आधारित सस्कृत का दूसरा रूप जिसका नाम लौकिक सस्कृत है ई पू ५वी या छठी शती से प्रकाश मे आता है। लौकिक और वैदिक सस्कृत के बीच मे एक मध्यकालीन सस्कृत का भी प्रयोग मिलता है जो महाकाव्य युग के पूर्व की भाषा थी।[५] इस मध्यकालीन सस्कृत भाषा मे वैदिक प्रयोगो का प्रचलन कम तथा पाणिनि व्याकरण से मिलती-जुलती धातुओ का प्रयोग भूयसा किया जाने लगा। इस भाषा मे कुछ पौराणिक साहित्य ओर रामायण, महाभारत काव्य भी आ जाते है। यद्यपि इनमे मूलत पाणिनि व्याकरण का ही अवलम्बन है फिर भी यत्र तत्र वैदिक, आर्ष प्रयोग मिलते है।

---

१ दे—(वेबर) हि इण्डिएन लिट., पृष्ठ ४१।

२ दे—'दि वैदिक हायमन्स आर दि अर्लिएस्ट नोन (सस्कृत) लिटरेचर, देयर इन डू आब्जरवेशन, सिम्पेथी एण्ड सरप्राइज प्ले दि मोस्ट इम्पोटेण्ट पार्ट' (आद्य रगाचार्य) ड्रामा इन स. लिट्., पृष्ठ १-२

३ दे—'देवस्य पश्य काव्य न ममार न जीर्यति' अथर्व १०/८/३२

४ दे.—'बाई १५० बी सी. बाई दि ज्वाइण्ट वर्क्स आव दि ३ ग्रामेरियस पाणिनि, कात्यायन एण्ड पतजलि, दि लैंग्वेज अटेण्ड ए स्टेरियोटाइप्ड फार्म ह्विच रिमेण्ड दि सेम थ्रोआउट दि सेन्चुरीज' (एस के डे) हि. स. लिट., प्रथम भाग (भूमिका), पृष्ठ ६

५ दे—'डा भण्डारकर हैज डिवाइडेड दि पोस्टवैदिक लिटरेरी पीरिएड इन टु मिडिल सस्कृत एण्ड क्लासिकल सस्कृत, बाई दि फारमर ही मीन्स दि पीरिएड बिटवीन दि ब्राह्मन्स एण्ड दि एपिक्स, आव ह्विच दि चीफ ग्रामेरिएन इज पाणिनि'—शार्ट हि. स. लिट., पृष्ठ ८

सस्कृत का लोक भाषात्व

रामायण, महाभारतकाल मे सस्कृत लोकभाषा भी थी इसके अनेक प्रमाण है—वाल्मीकि रामायण मे अशोक बाटिका मे सीता-दर्शन के पश्चात् हनुमान उनसे वार्ता करने हेतु मानुषी सस्कृत भाषा का प्रयोग करते है।[१]

वाल्मीकि रामायण मे ही सर्वप्रथम भाषा के अर्थ मे सस्कृत शब्द का प्रयोग मिलता है। यह अवितथतया सिद्ध है कि व्यवहार भाषा और साहित्यिक भाषा मे मूलत भिन्नता न होते हुए भी आकारगत भिन्नता अवश्य होती है। आज हिन्दी भाषा के जिस साहित्यिक 'खडीबोली' के रूप को हम काव्य और इतिहास मे देखते है, हिन्दी भाषी लोगो के प्रयोग से वह पर्याप्त भिन्न है। भाषा मे भिन्नता का दूसरा कारण भौगोलिक प्रभाव भी है।[२] मानव शरीर की रचना पर इनका स्पष्ट प्रभाव पडता है। यही कारण है कि पर्वतीय प्रदेशो के निवासी स, श, ष मे केवल 'श' वर्ण का ही उच्चारण कर पाते है। साहित्य प्रणेता इस भिन्नता को स्वीकार नही कर सकता क्योंकि वह प्रसन्न के स्थान पर प्रशन्न का प्रयोग अप्रशस्त मानता है। यही स्थिति उस समय साहित्यिक सस्कृत और बोलचाल की सस्कृत मे थी। इसीलिए निरुक्त,[३] अष्टाध्यायी[४] आदि ग्रन्थो मे सस्कृत को 'भाषा' नाम से कहा गया है। सभवत व्यवहार सस्कृत को ही 'भाषा' की सज्ञा मिली थी। सस्कृत साहित्यिक भाषा का नाम था जो विद्वानो मे प्रचलित थी। इस बात की सपुष्टि वाल्मीकि रामायण मे सीतादर्शन के अवसर पर हनुमान के द्वारा किये गये विचार विमर्श से होती है जब वे यह सोचते है कि यदि द्विजाति के समान मै सस्कृत मे भाषण करूगा तो सीता मुझे रावण समझ कर भयभीत हो जायेगी।[५] इसके अतिरिक्त पाणिनि ने अनेक सूत्रो मे व्यावहारिक प्रयोगो का भी वर्णन किया है जो सस्कृत के लोकभाषा रूप को भी पुष्ट करते है।[६] यास्क का सस्कृत धातुओ का पृथक्-पृथक् प्रान्तो मे पृथक्-पृथक् अर्थ मे प्रयोग का उल्लेख[७] भी सस्कृत के लोकभाषा रुप को प्रकट करता है। कालान्तर मे जब व्यवहार सस्कृत (भाषा) मे शैथिल्य आया और धीरे-धीरे पालि तथा प्राकृत ने जनभाषा का स्थान ग्रहण करना प्रारम्भ कर दिया तब सस्कृत के शुद्ध रूप को सस्कृत नाम से अभिहित किया गया।

१ वाच चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह सस्कृताम्।—वाल्मीकि रामायण—५/३०/७०
२ दे (भोलानाथ ति.) भाषा वि., पृष्ठ ५८-५९।
३ (क) भाषायामन्वध्याश्च—निरुक्त १/४ (ख) भाषिकेभ्यो धातुभ्यो नैगमा कृतो भाष्यन्ते—निरुक्त २/२,
४ भाषाया सदवसस्रुव—अष्टा ३/२/१०८.
५ यदि वाच प्रदास्यामि द्विजातिरिव सस्कृताम् रावण मन्यमाना मा सीता भीता भविष्यति।—वा. रामा, सुन्दरकाण्ड ५/१४.
६ (क) दूराद्धूते च—अष्टा ८/२/८४
(ख) प्रत्यभिवादेऽशूद्रे—वही ८/२/८३
७ शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाष्यते, विकारमस्यार्थेषु भाषन्ते शव इति। दातिर्लवनार्थे प्राच्येषु दात्रमुदीच्येषु—निरुक्त २/२

महाकवि दण्डी के कथन से स्पष्टत यह ज्ञात होता है कि सस्कृत देववाणी थी और ऋषियो के द्वारा उसका व्याख्यान किया गया था।[१] पालि भाषा केवल बौद्ध धर्मानुयायियो मे ही आश्रय पा सकी इसलिए वह लोकभाषा नही बन सकी किन्तु प्राकृत जनभाषा के रूप मे उभरी और निम्नश्रेणी के लोगो तथा अनपढ (असभ्य) लोगो की व्यवहार भाषा बन गई। सभ्य (सुशिक्षित) लोगो की भाषा उस समय भी सस्कृत ही रही। सर्वप्रथम भास (ई पू 2 शती) के नाटको मे सस्कृत और प्राकृत का एक साथ प्रयोग मिलता है। इन नाटको मे तथा परवर्ती नाटको मे भी प्राकृत का निम्न पात्रो मे प्रयोग इस बात का द्योतक है कि सस्कृत प्रबुद्ध एव उच्च वर्ग की व्यवहार भाषा तथा साहित्यिक भाषा थी जबकि प्राकृत ग्रामीण एव निम्नवर्ग की तथा स्त्रीवर्ग की व्यवहार भाषा थी।

साहित्य

वैदिक और लौकिक सस्कृत के भिन्न होने के कारण साहित्य का भी दो रूपो मे विभाग हो जाता है—प्रथम वेदिक साहित्य और द्वितीय लौकिक सस्कृत साहित्य या सस्कृत साहित्य।[२]

वैदिक साहित्य

वेद भारतीय सस्कृति, सभ्यता और उपासनाविधि के आदि कोशग्रन्थ है। डा विण्टरनिट्ज भारोपीय परिवार की सस्कृति का उद्गम जानने के लिए वैदिक साहित्य के अध्ययन को आवश्यक मानते है।[३] इससे वेदो की प्राचीनता स्पष्ट है।

वेद शब्द ज्ञानार्थक विद् धातु से घञ् प्रत्यय या अच् प्रत्यय[४] करने पर निष्पन्न हुआ है। किन्तु वेद शब्द से ज्ञान के उस व्यापक अर्थ को गृहीत नही किया जा सकता जो समस्त वस्तु या ज्ञातव्य विषयो का समाहार करता है, अपितु यहाँ वेद शब्द केवल आध्यात्मिक ज्ञान के उस भाग का ही प्रतिपादक है जो आद्य ऋषियो ने अपने प्रज्ञाचक्षुओ से साक्षात्कृत करके सहिता रूप मे सकलित किया था।[५] स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेद शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया है—'विदन्ति जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति, विन्दन्ति अथवा विन्दन्ते लभन्ते, विन्दन्ति विचारयन्ति सर्वे मनुष्या सत्यविद्या यैर्येषु वा तथा विद्वासश्च भवन्ति ते वेदा।'

---

१ सस्कृत नाम देवी वागन्वाख्याता महर्षिभि—काव्यादर्श १/३३

२ 'इण्डियन लिटरेचर डिवाइड्स इट्सेल्फ इन टु टू ग्रेट पीरिएड्स, दि वैदिक एण्ड दि सस्कृत'—(वेवर) हि इण्डियन लिट., पृष्ठ ७

३ दे—'इफ वी विश टु लर्न टु अण्डरस्टैण्ड दि बिगनिंग्स आफ अवर ओन कलचर, इफ वी विश टु अण्डरस्टैण्ड दि ओल्डेस्ट इण्डो यूरोपियन कलचर, वी मस्ट गो टु इण्डिया, ह्वेयर दि ओल्डेस्ट लिटरेचर आफ एन इण्डो यूरोपियन प्यूपल इज प्रिजर्व्ड।'—'ए शार्ट हि स लिट., पृष्ठ ३ पर उद्धृत

४ (आप्टे) स. हि. कोष, पृष्ठ ९७५।

५ (गैरोला) स सा इति., पृष्ठ ३९।

यास्क ने निरुक्त मे 'मन्त्रा मननात् छन्दा: सिछादनात् तथा ऋषि दर्शनात् स्तोमान् ददर्श' लिखकर ऋषियो द्वारा मनन किये गये मन्त्र ही वेद हैं यह स्वीकार किया है।[१]

वेदो की सख्या और वैदिक साहित्य के स्वरूप मे मतभेद का कारण प्राचीन भारत मे इतिहास लिखने की परम्परा का न होना ही है। प्राचीन इतिहास और प्राचीन ग्रन्थो मे वेदो की सख्या केवल ३ ही मानी गई है। कौटिल्य ने "आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्च" आदि लिखकर त्रयी नाम से ऋक्, यजुष और सामवेद का निर्देश किया है।[२] ऋग्वेद के दशम मण्डल, जो वेदोत्तरकाल का या अपेक्षाकृत अर्वाचीन माना जाता है[३] के पुरुष सूक्त मे यज्ञ से केवल ३ वेदो की उत्पत्ति का विवरण है।[४]

मनुस्मृति मे ऋक्, यजु और सामवेद की ही ब्रह्मा के द्वारा अग्नि, वायु और सूर्य से क्रमश उत्पत्ति का निर्देश है।[५] परन्तु विष्णु पुराण मे वेदो के आरम्भत चतुष्पाद होने का उल्लेख है और प्रति द्वापर के अन्त मे चतुष्पाद (ऋक्, यजु, साम, अथर्व) वेद का पुनश्चतुर्धा विभाग भी किया गया है।[६] इससे वेदो की सख्या चार थी ऐसा प्रतीत होता है। वैदिक मन्त्रो की विषय, सरचना की दृष्टि से यदि समीक्षा की जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि वेद तो वस्तुत एक ऋक् ही था।[७] गेयता को ध्यान मे रखकर सामवेद नाम से उन्ही मन्त्रो मे से सकलन कर दिया गया और कुछ गद्यात्मक मन्त्रो के साथ उन्ही मन्त्रो को यज्ञविधि के लिए यजुर्वेद मे सकलित कर दिया गया। इन मन्त्रो के साथ ही कुछ तन्त्रात्मक और लौकिक जीवन से सम्बन्धित मन्त्रो का भी स्वरूप मिलता है वे निश्चय ही अथर्ववेद नाम से सकलित किये गये होगे। यह भी स्वीकार्य है कि मन्त्रो का सहिताओ मे सकलन ऋत्विजो की आवश्यकता के अनुसार किया गया। ऋत्विज चार प्रकार के होते है—होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा। यज्ञो मे ब्रह्मा को अध्यक्ष माना जाता है परन्तु उसकी कोई सहिता नही निश्चित हो पाती यदि अथर्ववेद को न माने।

यह सभव है कि लौकिक विश्वास और मान्यताओ का अधिक विश्लेपण होने के कारण ऋषियो ने अथर्व को वेद की मान्यता न प्रदान की हो परन्तु पुराणो की इस मान्यता को कि वेद आरम्भत चार थे, पूर्णत असत्य और कल्पित नही कहा जा सकता।

---

१ दे—दैवत काण्ड, अध्याय ७ पृष्ठ १३८।

२ दे—अर्थशा, अध्याय १, पृष्ठ १०।

३ दे—(बलदेव) वेदि सा सस्कृति, पृष्ठ ११९।

४ दे—तस्माद्यज्ञात सर्वहुत ऋच सामानि जज्ञिरे।
छदासि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत् ॥

५ दे—अग्निवायु रविभ्यस्तु त्रय ब्रह्मा सनातनम्।
दुदोह यज्ञ सिध्यर्थमृग्यजु साम लक्षणम्॥ —मनु १/२३.

६ दे.—विष्णु पु—३य अश, अध्या ४।

७ दे—(बलदेव) वे सा स. पृष्ठ ११९।

वेद का दूसरा अग ब्राह्मण भी है। आपस्तम्ब ने यज्ञ परिभाषा मे 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'[1], लिखकर ब्राह्मणो को भी वेद शब्द से अभिहित किया है। इसी प्रकार आपस्तम्ब परिशिष्ट 1/33 मे 'मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदराशि' तथा बोधायन गृह्यसूत्र मे 'मन्त्र ब्राह्मण वेद इत्याचक्षते' उल्लेख मिलता है जिसके आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि वेदो के अध्ययन को तब तक पूर्ण नही माना जा सकता जब तक कि उसके अग ब्राह्मणो का भी अध्ययन न कर लिया जाय।

ब्राह्मणो का तीन प्रकार का विभाजन है—ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। इनके साथ ही वैदिक साहित्य के अन्तर्गत सूत्र साहित्य तथा ६ वेदागो का भी समावेश हो जाता है परन्तु जैसा पूर्वत उल्लेख किया जा चुका है सम्पूर्ण वैदिक साहित्य का विस्तृत विवरण प्रस्तुत प्रबन्ध मे अलक्ष्य भेदी हो जायेगा, अत यहाँ हम उसका परिचय साथ के चित्रक मे सक्षिप्तत प्रस्तुत कर रहे है। विस्तार भय और प्रकृत मे अधिक उपादेयता न होने के कारण प्रत्येक का सविस्तार वर्णन नही किया गया है। (चित्रक अगले पृष्ठ पर देखिए)

सस्कृत साहित्य

महर्षि पाणिनि, कात्यायन और पतजलि कृत नियमो का अनुसरण कर सस्कृत भाषा माध्यम से लिखा गया साहित्य सस्कृत-साहित्य कहलाने का अधिकारी है परन्तु 'साहित्य' शब्द का प्रयोग आज वाड्मय के अर्थ मे न होकर शब्द और अर्थ के ऐसे समन्वित रूप के लिए होता है जो सौन्दर्याधायक होकर कल्याणकर हो। अर्थात् जब शब्दो का प्रयोग अर्थ गौरव के अनुरूप हो, न घटकर और न बढकर तथा अर्थ शब्द सौन्दर्य के अनुरूप हो न कम न अधिक, तो उस शब्द और अर्थ के समन्वय (सहस्थिति) को साहित्य कहा जाता है। आचार्य कुन्तक ने इस प्रकार के शब्दार्थ समन्वय को 'अन्यूनानतिरिक्तत्व मनोहारिण्यवस्थिति' कहा है।[2]

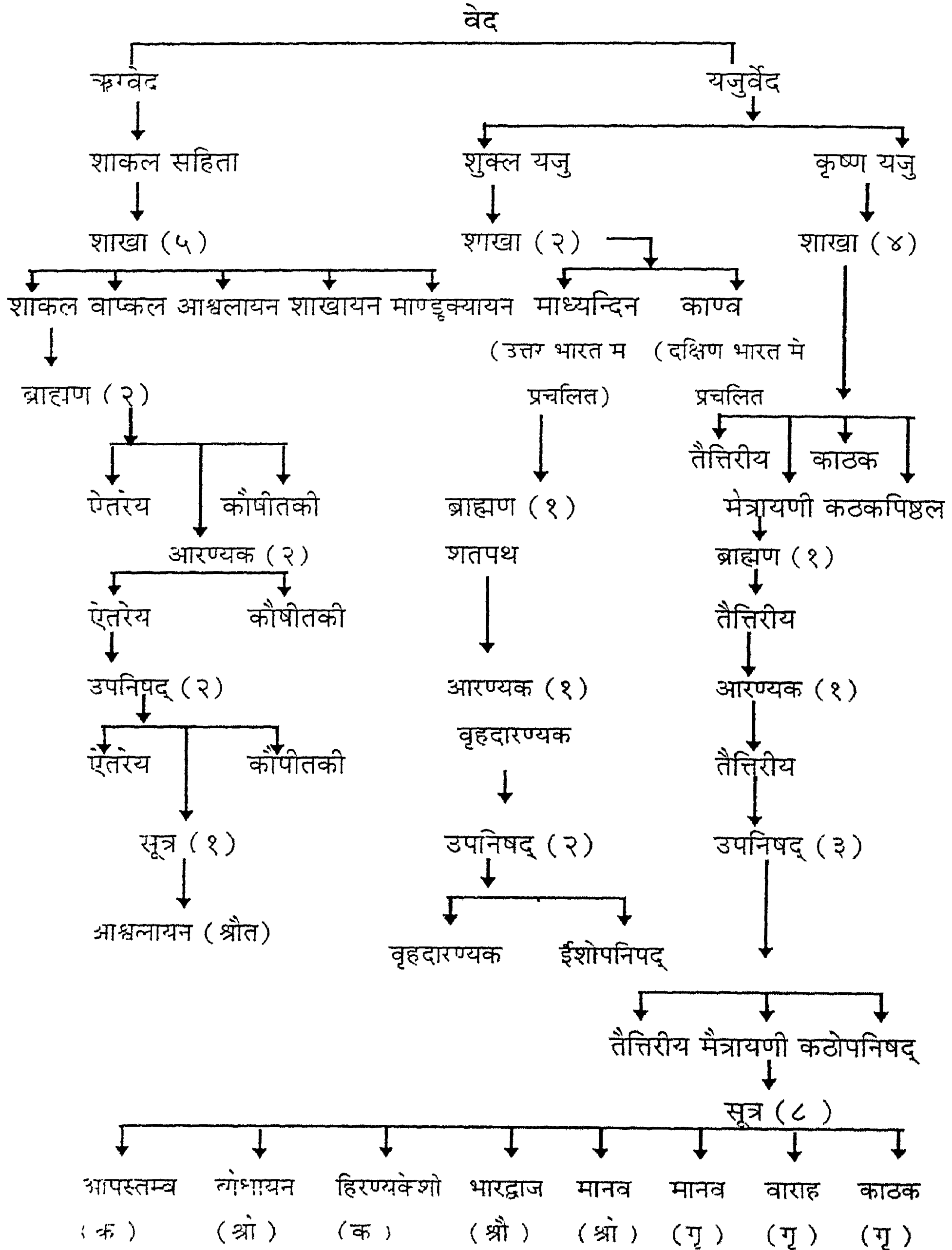
इसलिए सस्कृत भाषा-माध्यम से लिखे गये सगीत, आयुर्वेद, धनुर्वेद, विज्ञान, ज्योतिष, स्थापत्य, कलाकौशल, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और पशु-पक्षियो के लाक्षणिक ग्रन्थ साहित्य की श्रेणी से पृथक् कर दिये गये, क्योंकि इनमे श्रेय का ही मुख्यत विवेचन किया गया, प्रेय का ध्यान नही रखा गया। अत सस्कृत-साहित्य मुख्य रूप से काव्य विधा के सीमित क्षेत्र का वाचक रहा। 'काव्य' साहित्य समन्वित शब्दार्थ समूह के उस रूप को कहते है जिसमे रस, गुण और अलकारो का उचित निर्वाह किया गया हो।[3] इस विवेचन से स्पष्ट है कि काव्य मे श्रेय (कल्याणप्रद) एव प्रेय (आनन्दप्रद) दोनो तत्वो के उचित सन्निवेश के प्रति अधिक ध्यान दिया जाता है। इसलिये काव्य से जहाँ इष्टानिष्ट की शिक्षा मिलती है

१ दे—आपस्तम्ब परि ३१।

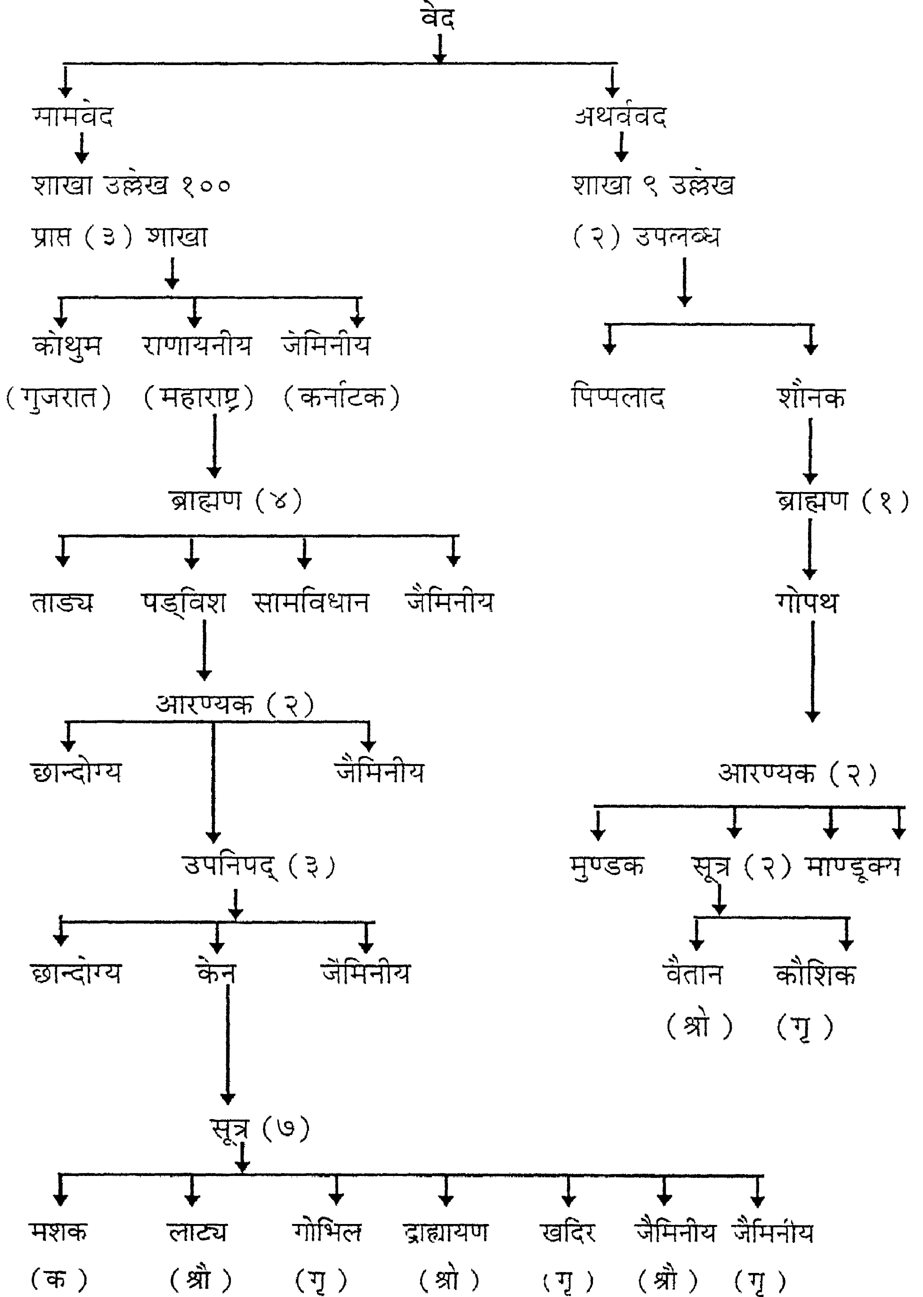
२ दे वक्रोक्ति. १/१७

३ (क) तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलकृती पुन क्वापि-का प्र १/१ (ख) वाक्य रसात्मक काव्यम्—सा द १/३ (ग) रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द काव्यम -रसगगा १/

वैदिक-साहित्य-सूचक-'चित्रक'



वैदिक-साहित्य-सूचक- 'चित्रक'



वही उससे आनन्दानुभूति और अलौकिक रसास्वाद भी होता है।[१] आचार्य मम्मट ने तो रसास्वाद को काव्य प्रयोजनो मे सर्वश्रेष्ठ मानकर वेदशास्त्र, इतिहास, पुराण आदि से काव्य की उत्कृष्टता स्पष्टत. सिद्ध की है।[२]

काव्य मे श्रवणेन्द्रिय एव नेत्रेन्द्रिय व्यापारो की प्रमुख उपयोगिता को ध्यान मे रखकर काव्य साहित्य का दो वर्गो मे विभाजन किया जा सकता है— 1 श्रव्य-काव्य, 2 दृश्य-काव्य।[३]

श्रव्य-काव्य—मानव ज्ञान के उस शब्द भण्डार को श्रव्य काव्य की सज्ञा दी गई जिसे श्रवणेन्द्रिय से सुनकर ही इष्टानिष्ट का ज्ञान तथा रसानुभूति हो सके। इस विधा मे श्रवणेन्द्रिय की प्रमुखता होने के कारण इसे श्रव्य काव्य कहा गया। श्रव्य काव्यसाहित्य **को भी**—(१) महाकाव्य, (२) गीति या खण्डकाव्य, (३) ऐतिहासिक काव्य, (४) गद्यकाव्य, (५) चम्पूकाव्य और (६) कथा-साहित्य अथवा आख्यान काव्य भेद से छ उपभेदो मे विभक्त किया जा सकता है।

दृश्य-काव्य—नेत्रेन्द्रिय के द्वारा अर्थ को प्रत्यक्ष (अभिनीत होता हुआ) देखकर रसानुभूति करते हुए इष्टानिष्ट, कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान जिस काव्य से होता है उसे दृश्य-काव्य की सज्ञा दी जा सकती है। श्रव्य-काव्य की अपेक्षा दृश्य-काव्य मे कला की उत्कृष्टता होती है, क्योकि इसमे काव्यत्व के साथ-साथ गीत, वाद्य, नृत्य, अभिनय, वेश विन्यास आदि विभिन्न कलाओ का मिश्रण होता है और दर्शक का भावुक चित्त उन सभी कलाओ से अभिभूत होकर तदाकाराकारित हो शीघ्र ही पूर्ण रसानुभूति करता है। इसीलिए आदि नाट्याचार्य भरतमुनि ने नाटक (दृश्य-काव्य) मे समस्त ज्ञान, शिल्प और कलाओ की विद्यमानता स्वीकार की थी।[४]

दृश्य-काव्य की दूसरी विशेषता यह भी है कि इसमे अनेक कलाओ का मिश्रण होने से भिन्न-भिन्न रुचि वाले अनेक व्यक्तियो को एक साथ ही रसानुभूति होती है। इसीलिए अतीत अनागत के मधुर भावोपन्यासक महाकवि कालिदास की लेखनी से ये शब्द निसृत हुए थे—

'नाट्य भिन्नरुचेर्जनस्यबहुधाप्येक समाराधनम्।'[५]

मानव एक मननशील सचेतन प्राणी है, आनन्दानुभूति उसका पदे पदे प्राप्तव्य है। आनन्दानुभूति के विभिन्न रूप है। जन्म लेते ही मा का स्तनपान करते समय बालक उसके दूसरे स्तन पर हाथ रख लेता है, यह क्रिया उसकी आनन्दानुभूति की परिचायिका है। पाश्चात्य विचारक फ्रायड बालक की इस क्रिया

---

१ **धर्मार्थ काम मोक्षेषु वैचक्षण्य कलासु च करोति कीर्ति प्रीतिं च साधु काव्य निषेवणम्।—काव्यालकार—**

२ **सकल प्रयोजन मौलिभूतम . . . . . यतनीयम। — काव्य प्र कारि २ की वृत्ति।**

३ **दृश्य श्रव्यत्व भेदेन पुन काव्य द्विधामतम्।—सा द ६/१**

४ **द न तज्ज्ञान न तच्छिल्प न सा विद्या न सा कला। न स योगो न तत्कर्म नाटयेऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।—हिं ना. शा १/११७**

मे कामुकता (सैक्स) को बीज मानते है परन्तु निश्चय ही इस क्रिया मे बालक को एक सन्तोषजनक आनन्दानुभव होता है, कामुकतापूर्ण नही, क्योकि आनन्दानुभूति मे कामुकता को स्वीकार नही किया जा सकता। अन्यथा गीत, वाद्य, द्यूत, कन्दुक क्रीडा, पशु-चारण, विद्याध्ययन आदि क्रियाओ मे भी कामुकता का अकुर मानना पडेगा जो अनर्गल प्रलाप के अतिरिक्त अन्य कुछ न होगा। फ्रायड के सिद्धान्त से यह अवश्य स्वीकार किया जा सकता है कि मानव (स्वभाव से ही या) जन्म से ही आनन्दप्रिय प्राणी होता है। इसीलिए ललित कलाओ के प्रति उसकी विशेष अभिरुचि होती है।

आनन्द प्राप्ति के विविध उपायो मे एक उपाय अनुकरण भी है। पाश्चात्य विचारक अरस्तू ने कला को अनुकरण बताते हुए 'आर्ट इज इमिटेशन' लिखा। वस्तुत मानव मस्तिष्क की मूल प्रवृत्तियो मे अनुकरण प्रधानतम है। मानव जब पैदा होता है तो स्वय कुछ नही जानता, वह बोलना, चलना, फिरना, खाना-पीना सब कुछ दूसरो का अनुकरण करके सीखता है। अनेक ऐसे उदाहरण मिले है कि पुत्र अपने पिता को जीजा और मा को जीजी या भाभी कहते है। उनका यह कथन स्पष्टत परिवार के अन्य व्यक्तियो द्वारा किये गये सम्बोधनो का अनुकरण है। इस अनुकरण के आधार पर मानव को अनुकरणशील प्राणी कहा जा सकता है। इस स्वाभाविक अनुकरण से ही कलात्मक अनुकरण का जन्म होता है।

विचारशील प्राणी होने के कारण मानव औचित्य अनौचित्य की मीमासा कर कलात्मक (आनन्दोत्पादक) अनुकरण को ही आनन्द प्राप्ति के लिए अपनाता है। दृश्यकाव्य मे अनुकरण की अत्यपेक्षा होती है अतएव दशरुपककार ने नायक आदि के अनुकरण को नाट्य की सज्ञा दी है।[1] अभिनव गुप्त ने भी अनुकरण को नाट्य का आधार मानते हुए वर्तमान चरित्र के अनुकरण का नाटक मे निषेध किया है।[2] नाट्य दर्पणकार वर्तमान चरित के अनुकरण निषेध के साथ साथ भविष्यत्-कालीन महापुरुषो के चरित्रो के अनुकरण का भी निषेध करते है।[3]

यह अनुकरण प्रधान दृश्य-काव्य विधा केवल द्रष्टव्य ही नही होती अपितु श्रव्य भी होती है।[4] परन्तु इसमे अभिनय की प्रधानता होने के कारण दृश्यत्व प्रधान होकर ही सहृदय हृदयाह्लादक हो सकती है। साहित्यदर्पणकार ने भी दृश्यकाव्य मे अभिनय को प्रधान माना है।[5]

१ अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्। दश १/७.

२ न च वर्तमान चरितानुकारो युक्तो, विनेयाना तत्र रागद्वेष मध्यस्थतादिना तन्मयीभावाभावेप्रीतेरभावेन व्युत्पत्तेरप्यभावात्। वर्तमान चरिते च कर्मफल सम्बन्धस्य प्रत्यक्षत्वे प्रयोगवैयर्थ्यम्। अभि भा १ अध्याय, पृष्ठ १४६

३ वर्तमाने च नेतरितत्काल प्रसिद्धिबाधया रस हानि· स्यात्।————भविष्यतस्तु वृत्त चरितमपि न भवति। चर्यते स्म चरितमित्यतीत निर्देशात्।—ना द. पृष्ठ १९ (का. ५ सू. ४ की वृत्ति)

४ क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्य श्रव्य च यद्भवेत्।—ना शा. १/११.

५ दृश्य तत्राभिनेयम।—सा द ६/१

आधुनिक विद्वान् डा सुरेन्द्रनाथ शास्त्री ने लिखा है कि अभिनय के माध्यम से रगमच पर उपस्थापित करने योग्य लिखी गई साहित्यिक कृति ही रूपक है।[१] इसीलिए वेणीसहार जैसे नाटको को जो प्राय समस्त नाटकीय नियमो का अनुसरण करते है अधिक लोकप्रियता प्राप्त न हो सकी। वस्तुत नाटक का दृश्य होना ही उसका सबसे बडा आकर्षण है क्योंकि उसमे केवल इतिवृत्त से ही आनन्द प्राप्ति नही होती अपितु पात्रो की वेशभूषा व अभिनय के द्वारा कथा भी प्रत्यक्ष हो जाती है। दशरूपककार धनजय ने अपने ग्रन्थ मे उन व्यक्तियो की अच्छी चुटकी ली है तो दृश्यकाव्य को केवल उपदेश का साधन मानते है—

आनन्द निष्यन्दिषु रूपकेषुव्युत्पत्तिमात्र फलमल्पबुद्धि
योऽपीतिहासादिवदाह साधुस्तस्मै नम स्वादुपराङ्मुखाय।[२]

आचार्य भरत ने दृश्य-काव्य को विनोद का जनक मानते हुए ही उपदेशात्मक माना है, केवल उपदेशात्मक या केवल आनन्दात्मक नही।[३]

इस प्रकार दृश्य-काव्य मे न केवल किसी चरित मात्र की अवस्था का अनुकरण होता है अपितु उसमे जीवन के हरक्षेत्र, हर वर्ग एव प्रत्येक क्रिया व भावना का सफल चित्रण होता है।[४]

दृश्य काव्यो को देखने योग्य बनाने के लिए ही नाट्यशालाओ अथवा रगशालाओ की व्यवस्था की जाती थी। दृश्य काव्यो मे अभिनय की प्रधानता होती है इसका निर्देश किया जा चुका है। यह अभिनय आगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक भेद से चार प्रकार का होता है।[५]

चार प्रकार के अभिनया (अनुकरणो) के द्वारा नट अभिनेय चरित के रूप-क्रिया आदि का अनुकरण करता है और उसके रूप का आरोप करता है। इसीलिए दृश्यकाव्य को रूपक की सज्ञा दी गई।[६] वस्तुत रूप का अनुकरण ही रूपक है। दृश्य-काव्य मे अनुकरण की आवश्यकता का विवेचन किया जा चुका है। न केवल भारत मे ही पाश्चात्य विचारधारा मे भी अनुकरण की प्रवृत्ति ही नाटक का मूल मानी गई है। मदिरा के देवता डायनिसस के उन्मत्त उपासक नवीन प्रकार का वस्त्र धारण कर तथा कालिख एव मदिरा की तलछट अपने

---

१ ड्रामा इज ए लिटरेरी पीस रिटेन फार रिप्रेजेनटेशन आन दि स्टेज.— लाज एण्ड प्रेक्टिस आफ सस्कृत ड्रामा, पृष्ठ १.

२ २. दे दश १/६

३ दुःखार्ताना श्रमार्ताना शोकार्ताना तपस्विनाम् विश्रान्ति जनन काले नाट्यमेतद् भविष्यति। धर्म्यं यशस्यमायुष्य हित बुद्धिविवर्धनम् लोकोपदेश जनन नाट्यमेतद्भविष्यति॥—ना.शा. १/११४,११५.

४ (क) त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यभावानुकीर्तनम्।—ना. शा. १/१०७
(ख) द्र ना शा १/१०८-११३

५ ना शा. ८/९

६ अवस्थानूकृति नटिय, रूप दृश्यतयोच्यते। रूपक तत्समारोपात्।—दश १/७.

मुख पर पोत कर नृत्य करते हुए अपने उपास्यदेव फान, सैटिर, पान आदि का अनुकरण या नकल करते थे। [1] वस्तुत यह अनुकरण मानव जीवन के सभी पक्षों और सभी अगो का भली प्रकार अनुभव प्राप्त कर लेने पर ही हो सकता है, क्योकि रूपक मानव जीवन की छिपी अन्तर्वृत्तियो और सुखदु खात्मक भावनाओ को प्रकट करता है। [2] पाश्चात्य विद्वान् सिसरो ने उक्त विचार के अनुसार ही नाटक को जीवन की अनुकृति और रीतिरिवाजो का दर्पण माना है। [3]

इस अभिनय प्रधान रूपक की विस्तृत विवेचना इसी अध्याय मे रूपक और उपरूपक प्रकरण मे की जायेगी। यहाँ यह जान लेना नितान्त आवश्यक है कि सस्कृत रूपको की रचना कब हुई और उनका बीज रूप क्या है ?

सस्कृत रूपको की प्राचीनता—सस्कृत साहित्य का तिथिपरक इतिहास लिखने की परम्परा का अभाव होने से यह निश्चय नही किया जा सकता कि सस्कृत रूपको का जन्म कब हुआ ? पर अनेक प्रमाणो से अब यह तथ्य सिद्ध हो चुका है कि सस्कृत रूपको का बीज वेदो मे विद्यमान है। इस सम्बन्ध मे सर्वप्रथम नाट्य विवेचना सम्बन्धो सर्वप्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थ नाट्यशास्त्र की मान्यताओ पर दृष्टिपात करना नितान्त आवश्यक है।

नाट्यशास्त्र के अनुसार सतयुग की समाप्ति और त्रेतायुग के प्रारम्भ मे देवताओ ने ब्रह्माजी से मनोरजन का साधन उत्पन्न करने की प्रार्थना की। [4] क्योकि उस समय जम्बूद्वीप (भारतवर्ष) मे ईर्ष्याद्वेष मे देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष आदि फस गये थे अत ब्रह्मा जी से इन्द्रादि ने दृश्य और श्रव्य क्रीडनीयक (मनोविनोद का साधन) पूछा। [5]

इस पर ब्रह्मा जी ने चारो वेदो का स्मरण कर समस्त कर्मो को प्रदर्शित करने वाले, सकल कलाप्रवर्तक, इतिहासयुक्त, चारो वेदो के आधार पर नाट्य नामक पचम वेद की रचना की। [6]

किस वेद से क्या सहायता ली इसका विवरण उन्होने स्वय दिया है कि ऋग्वेद से सम्वाद या इतिवृत्त, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस गृहीत किया। [7]

इस कथन से यद्यपि यह ज्ञात होता है कि स्वय ब्रह्माजी ने चारो वेदो की सहायता लेकर नाट्य की रचना की थी अर्थात् नाट्य का जन्म वेदोत्तरकाल

१ सा सि पृष्ठ ८५।
२ **यो य स्वभावो लोकस्य सुख दु ख समन्वित सोऽङ्गाद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते। ना शा १/११९**
३ **'ड्रामा इज ए कापी आव लाइफ, ए मिरर आव कस्टम ए रिफलेक्शन आव ट्रूथ'—सा सि पृष्ठ ८७ में उद्धृत**
४ **ना शा १/८**
५ **वही १/९-११**
६ **ना शा १/१४-१६.**
७ **वही १/१७ (जग्राह पाठय ऋग्वेदात्)**

मे हुआ परन्तु वैदिक साहित्य का अध्ययन करने से यह निश्चय सा हो जाता है कि वैदिक काल मे नाट्यकला न केवल विद्यमान थी अपितु उसका भूरिश प्रचार भी था। यजुर्वेद की वाजसनेयि सहिता के तीसवे अध्याय की छठी कण्डिका मे स्पष्टत यज्ञ के समय नृत्त (ताल लयाश्रित नृत्य) के लिए सूत को और गीत के लिए शैलूष (नट) को, धार्मिक वार्तालाप के लिए सभाचतुर को नियुक्त करने की बात कही गई है।[१] इससे स्पष्ट है कि आज से हजारो वर्ष पूर्व मे भी भारत मे नाट्य का प्रचलन था।

परन्तु पाणिनि से पूर्व नट् धातु का नाट्य अर्थ मे प्रामाणिक प्रयोग प्राप्त नही होता। ऋग्वेद के एक मत्र मे 'नट्' का प्रयोग है पर सायण ने उसका 'व्याप्ति' अर्थ देकर नाट्य से भिन्नता प्रतिपादित की है।[२] इसके विपरीत नृत् धातु का प्रयोग भूरिश हुआ है और उससे निष्पन्न शब्दो का प्रयोग भावाभिनयात्मक नृत्य के लिए किया गया है।

अथर्ववेद में नृत्यन्ति,[३] अनर्तिषु,[४] नृत,[५] नृत्ताय[६] का प्रयोग इसका प्रमाण है। इसके अतिरिक्त शतपथ ब्राह्मण मे नृत्यति[७] गोपथ ब्राह्मण मे अनृत्यत्[८] तथा तैत्तिरीय आरण्यक मे नृत्ये[९] का प्रयोग भी नट धातु के प्रयोगाभाव का सूचक है।

इसलिए पूर्व पाणिनि या वैदिक काल मे नृत् का ही प्रयोग है नट् का नही सभवत पाणिनि ने ही सर्वप्रथम नट् धातु का नाट्य अर्थ मे प्रयोग किया।

हरिवश पुराण के विष्णुपर्व ९३/२८ मे 'नाटक ननृतु' के उल्लेख से स्पष्ट है कि उस समय नृत्य शब्द अभिनय का भी वाचक था।

नाट्य शास्त्रिय क्षेत्र मे नाट्य शब्द को रूप या रूपक शब्द से अभिहित किया गया है। प्राचीन साहित्य मे तो केवल रूप शब्द ही प्राप्त होता है। स्टेन कोनो के अनुसार रुप शब्द का सर्वप्रथम उपयोग अशोक के चतुर्थ शिलालेख मे हुआ है,[१०] नाट्यशास्त्र मे भी 'दशरूप' शब्द मे रूप का प्रयोग है।[११] जो नाट्य अर्थ को व्यक्त करता है। इसके पूर्व थेरीगाथा ५/३९४ मे 'रुप्य रुपकम्'

१ नृत्ताय सूत गीताय शैलूष धर्माय सभाचार नरिष्ठायै भीमल नर्माय रेभ हसाय कारिमानन्दाय स्त्रीषख प्रमदे कुमारी पुत्र मेधायै रथकार धैर्याय तक्षाणम्॥ शु यजु बाज, अध्या ३० क ६

२ ऋग्वेद ७/१०४/२३

३ अथर्व १२/१/४१

४ वही ६/४९/३.,

५ वही १०/६४/६

६ यजु. ३०/६/२०

७ शत ३/२/४६

८ गोप १/२/२१.

९ ते आर ६/१०/२

१० (कीथ) स ड्रामा, पृष्ठ ५४।

११ ना शा १७/१३७, १८/४

पद उपलब्ध होता है।[१] भरत शिष्य कोहल ने 'रूपक' शब्द का प्रयोग नाटक के अर्थ मे किया है।[२] जो सम्भवत सर्वप्राचीन है। वस्तुत. रूपक शब्द नाट्य के अर्थ मे दशरूपक के पश्चात अधिक प्रचलित व प्रसिद्ध हुआ है।[३] नाट्य, नृत्य और नृत्त शब्दो के पर्यालोचन से दो तत्व मुख्यत प्रतीत होते है—प्रथमत रस और द्वितीय भाव। रस का अनुभव दर्शन और श्रवण दोनो से होने के कारण नाट्य को रसाश्रय माना जाता हे, अतएव भावाश्रय नृत्य और ताल-लयात्मक नृत्त भिन्न हो जाते है। नृत्य की निष्पत्ति नृती (गात्र विक्षेपे) धातु से हुई अत नृत्य केवल प्रेक्षणीय हैं श्रवणीय नही जबकि नाट्य दर्शनीय और श्रवणीय दोनो ही हे। अत इसी रसाश्रय और भावाश्रय रुप—प्रमुख भेदक तत्व के आधार पर नाट्य या रूपक के दशभेद (रसाश्रित) माने गये।[४]

(ब) **रूपक और उपरूपक**

रूपक—नेत्रेन्द्रिय के द्वारा अर्थ का प्रत्यक्षीकरण करने के कारण दृश्य-काव्य को रूपक की सज्ञा दी गई। रूपक शब्द 'रूप' धातु से ण्वुल् (अक्) अथवा कन् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है जिसके अनुसार रूप को करने वाला अर्थात् 'अनुकर्ता पर अनुकार्य का आरोप' यह अर्थ होता हे। इसके आधार पर रूपक की व्याख्या इस प्रकार से की जा सकती है—कि ' रूपक वह नाट्य कृति है जो अभिनेय होकर अनुकर्ता पर अनुकार्य की प्रतीति के द्वारा रसास्वाद करा सके।' स्पष्ट है कि रूपक मे अभिनय की प्रधानता होती है। आचार्य भरत ने इसी अभिनय तत्व को मुख्यता प्रदान कर नटो के द्वारा कथावस्तु के प्रस्तुतीकरण का निर्देश किया है।[५] परन्तु इस उल्लेख से रूपक, रूप और नाट्य शब्दो की स्पष्टार्थ प्रतीति नही हो पाती। सर्वप्रथम धनञ्जय ने इनकी पृथक्-पृथक् परिभाषा करते हुए लिखा कि दृश्य होने के कारण नाट्य को रूप कहा जाता है[६] तथा उसका (अनुकार्य के रूप का अनुकर्ता पर) आरोप होने के कारण रूपक कहा जाता है[७] और 'अवस्था' अर्थात् अनुकार्य चरित का अनुकरण (अभिनयात्मक आरोप) नाट्य कहलाता है।[८]

आचार्य विश्वनाथ ने दृश्य का ही पर्यायवाची शब्द रुपक मानकर लिखा कि 'दृश्य अभिनेय होता है और उस दृश्य के रूप का आरोप करने के कारण ही उसे रुपक कहा जाता हे।'[९] वस्तुत दशरूपक और साहित्यदर्पण की व्याख्या मे केवल

१ (क्रीथ) स. ड्रामा, पृष्ठ ५८।
२ (कृष्णमाचारी) हि. क्लासि स. लिट., पृष्ठ ४४।
३ (मनकड) टाइप्स आव स ड्रामा, पृष्ठ ३०।
४ दशधेव रसाश्रयम्—दश १/७
५ दशरूप विधाने तु पाठ्य योज्य प्रयोक्तृभि। ना. शा. १७/१३७
६ रूप दृश्य तयोच्यते। —दश १/७
७ रूपक तत्समारोपात। —दश १/७.
८ अवस्थानुकृतिनट्यिम्। —दश १/७.
९ दश्य तत्राभिनेय तद्रपारोपात्त रुपकम। —सा द ६/१

शाब्दिक हेरफेर ही है कोई तात्विक अन्तर नही। दोनो का मुख्य प्रतिपाद्य अभिनेता पर अभिनेय के रूप का आरोप ही है। नाट्य दर्पणकार ने भी साहित्य दर्पणकार के अनुसार ही रूप को अभिनय का पर्यायवाची माना है।[१]

रूपक जिसका आज प्रचलित नाम नाटक है प्राचीन काल से नाट्य का वाचक रहा। समय-समय पर विभिन्न आचार्यो ने इसे रूप, रुपक आदि सज्ञाएँ प्रदान की। आचार्य भरत ने स्वयमेव नाटक के लिए रूप शब्द का प्रयोग किया था।[२] यद्यपि आचार्य भरत और दशरुपक के मध्य के साहित्य मे रूप या रूपक शब्द का प्रयोग प्राप्त नही होता फिर भी रूपक की प्राचीनता मे सन्देह नही किया जा सकता, क्योकि रूपक की प्रसिद्धि नाट्य नाम से ही थी, इसका अनुमान विभिन्न विद्वानो के उल्लेखो से लग जाता है। आचार्य पाणिनि ने (चुरादि गण मे) नट् धातु का अवस्पन्दन अर्थ मे और नृती धातु (दिवादिगण) का गात्रविक्षेप अर्थ मे प्रयोग का उल्लेख किया जिसकी स्पष्ट व्याख्या करते हुए भट्टोजी दीक्षित ने लिखा कि—अवस्पन्दनार्थक नट् धातु से नाट्य बना, वाक्यार्थ का अभिनय ही नाट्य हे। इसी नट् धातु से नट शब्द बना जो अभिनेता का पर्यायवाची है। णट् धातु से नृत्त शब्द बना जिससे नृत्य शब्द विकसित हुआ।[३]

डा दशरथ ओझा ने सिद्धान्त कौमुदी के इस व्याख्यान से यह निष्कर्ष निकाला कि—'नट् धातु का अर्थ गात्र विक्षेपण एव अभिनय दोनो ही था किन्तु कालान्तर मे नृत् (नृती) धातु का प्रयोग गात्र विक्षेपण के अर्थ मे होने लगा और नट् का प्रयोग अभिनय के अर्थ मे।'[४] नट्, नृत् और णट् धातुओ के अर्थो मे पर्याप्त मतभेद हे। यही कारण है कि नाट्य के रूप निर्धारण मे भी विभिन्नता है। डा ओझा ने नट् और नृत् धातुओ को पृथक् मान कर उनसे भिन्न-भिन्न अर्थो की प्रतीति का कथन किया है जो समीचीन प्रतीत नही होता क्योकि 'नृत् धातु नट् धातु से ही उत्पन्न हुई है।' मोनियरविलियम्स के 'सस्कृत इगलिश' शब्द कोष से इसकी पुष्टि होती है।[५]

नाट्य दर्पणकार ने अभिनव गुप्त के मत की समीक्षा करते हुए लिखा 'अभिनवगुप्त नट् धातु का नमन अर्थ मानकर उससे नाटक शब्द की व्युत्पत्ति स्वीकार करते है जो स्वीकार्य नही क्योकि घटादिगण मे पठित होने के कारण

१ रूप्यन्ते अभिनीयन्ते इति रूपाणि नाटकादीनि। अनभिनेयाना रुप शब्दाप्रतीते सामान्य निर्देशेऽपि वाचोऽभिनेयत्व लभ्यते। ना द. १/१ (पृ. १२) की वृत्ति।

२ दशरुप विधाने तु पाठ्य योज्य प्रयोक्तृभि.। ना. शा १७/१३7.

३ नट् अवस्पन्दने (चुरादि धातु स. 1545) णट् नृत्तो (म्वादि 781) तत्राय विवेक पूर्व पठितस्य नाट्यमर्थ यत्कारिषु नट व्यपदेशः। वाक्यार्थाभिनयो नाट्यम्। घटादौ तु नृत्त नृत्य चार्थ, यत्कारिषु नर्तक व्यपदेश। पदार्थाभिनयो नृत्यम्। गात्रविक्षेपमात्र नृत्तम्। सि कौ पृष्ठ ३७४

४ ना समी., पृष्ठ ७।

५ मोनियर विलियम्स कृत—सस्कृत इगलिश कोश, पृष्ठ ५२२।

ह्रस्व हो जाने से 'घटक' के समान 'नटक' शब्द ही बनेगा नाटक नही।[१] डा रमाकान्त त्रिपाठी ने अभिनवगुप्त के इस मत की समीक्षा करते हुए कहा कि 'अभिनवगुप्त केवल नमनार्थक ही नही नर्तनार्थक नट् धातु से भी नाटक की उत्पत्ति मानते है जो उनके इस कथन से स्पष्ट है—'नाटक नाम तच्चेष्टित प्रह्वीभावदायक भवति तथा हृदयानुप्रवेशरजनोल्लासनया हृदय शरीर च..................नर्तयति नाटकम्।[२] नाट्यदर्पणकार ने भी नर्तनार्थक नट् धातु से नाटक शब्द की सिद्धि स्वीकार की है।[३]

इस समस्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि दृश्यकाव्य को ही रूप, रूपक, नाट्य, नाटक इन ४ शब्दो से समय-समय पर अभिहित किया गया। यद्यपि इनमे परस्पर सूक्ष्म अन्तर भी है। नाट्य शब्द की व्याख्या दशरूपककार ने 'अवस्था की अनुकृति' की।[४] १/७ की धनिककृत वृत्ति। उसमे आंशिक अभिनय के साथ सात्विक अभिनय भी होता है। उसका विषय रस है इसीलिए वह रसाश्रित कहलाता है तथा भावाश्रित नृत्य से उसकी (नाट्य की)' सत्ता भिन्न होती है, क्योकि रसाश्रित होने से ही नाट्य के दश भेद होते है[५] और नृत्य प्रधान डोम्बी श्री गदित, भाण आदि ७ भेद रुपक के भेदो से पृथक् होते है।[६] दोनो मे विषय सम्बन्धी अन्तर है। नृत्य मे काव्यत्व न होने के कारण सुनने की बात भी उसमे नही होती, इसीलिए नृत्य केवल देखने की वस्तु है। नाट्य तो दृश्य एव श्रव्य दोनो ही होता है।[७]

इसी प्रकार नृत्त और नृत्य मे भी सूक्ष्म अन्तर है। नृत्य का आधार भाव है तो नृत्त का आधार ताल और लय ।[८] अत· तीनो का तुलनात्मक अध्ययन करने से यद्यपि नृत्य, नृत्त और नाट्य मे सूक्ष्म अन्तर है परन्तु यह भी स्पष्ट है कि नृत्त और नाट्य की ही दो प्रथम भूमिकाएं है[९] और अधिक विस्तार के

---

१ अभिनव गुप्तस्तु नमनार्थस्यापि नटेर्नाटक शब्द व्युत्पादयति, तत्र तु घटादित्वेन ह्रस्वाभावश्चिन्तनीयः। —ना द. १/५ की वृत्ति (पृष्ठ २३)

२ ना सि पृष्ठ ६ पर उद्धृत।

३ 'नाटकमिति नाटयति विचित्र रजना प्रवेशेन सम्याना हृदय नर्तयति इति नाटकम्।'—ना द. १ अ., पृष्ठ २३

४ अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्

५ दशधैव रसाश्रयम्।—दश १/७

६ 'रसाश्रयान् नाट्याद् भावाश्रयं नृत्यमन्यदेव। तत्र भावाश्रयमिति विषय भैदान् नृत्यमिति नृतेर्गात्र विक्षेपार्थत्वेनाऽऽङ्गिकबाहुल्यात् तत्कारिषु च नर्तक व्यपदेशाल्लोकेऽपि चात्र प्रेक्षणीयकमिति व्यवहारान्नाटकादेरन्यननृत्यम्। तद्भेदत्वात् श्रीगदितावेरवधारणोपपत्ति.। दश १/९ की वृत्ति

७ 'क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्य श्रव्यं च यद्भवेत्।'—ना. शा. १/११.

८ दश. 1/9.

९ मा. ना. सा., पृष्ठ २३।

साथ यदि विचार किया जाये तो रूपक के ये नृत्त, नृत्य और और नाट्य तीनो अग या प्रारम्भिक रूप है।[१] रूपक तो अभिनय कला का पूर्ण विकसित रूप है।

इस समस्त ऊहापोह से रूपक मे आवश्यक रूप से निम्नलिखित तत्वो का ज्ञान होता है—

१ पाठ्य (सवाद)

२ गीत, नृत्य

३ अभिनय

४ रस।

आचार्य भरत ने इन्ही ४ अगो को चारो वेदो से गृहीत कर ब्रह्मा के द्वारा नाट्य की रचना करने का उल्लेख किया है।[२]

इन चारो अगो की प्राचीनता का इतिहास खोजने पर नाट्य या रुपक की प्राचीनता भी स्वत सिद्ध हो जोयगी।

वैदिक वाड्मय मे सर्वतो प्राचीन ऋग्वेद मे धार्मिक अवसरो पर जो कथोपकथन मिलता है वह नाटकीय है। वैदिक यज्ञो मे सगीत, गायन और नृत्य को आवश्यक अग माना गया था।[३] नाट्य मे भी ये तीनो आवश्यक अग होते है।[४] इस कथोपकथन को सम्वाद सूक्त की सज्ञा प्राचीन भारतीय विद्वान् यास्क, दुर्गाचार्य[५] और सायण[६] ने दी है। ये सम्वाद सूक्त लगभग 15 है, जिनमे—अगस्त्य लोपामुद्रा,[७] विश्वामित्र—विपाशा—शतद्रु,[८] इन्द्र—अदिति और वामदेव,[९] इन्द्र—वरुण,[१०] वशिष्ठ—सुदास,[११] यमयमी[१२] इन्द्र—इन्द्राणी[१३] वृषाकपि, और पुरुरवा—उर्वशी[१४] तथा सरमापणि[१५] अधिक प्रसिद्ध है।

इन सम्वाद सूक्तो को किस लिए लिखा गया था, यद्यपि यह बात स्पष्ट नही है, क्योकि जिस धार्मिक भावना और यज्ञविधि का वेदो मे पल्लवन हुआ

---

१ वही

२ ना. शा १/१७.

३ (विण्टरनित्ज) ए हि. इडियन लिट., प्रथम भाग, पृष्ठ ७३।

४ वृहद्देवता ७/१५.

५ निरुक्त १०/१०८ व्याख्या भाग।

६ (कीथ) जे. आर. ए एस ९८१ (जर्नल्स आफ एसियाटिक सोसायटीज)

७ ऋग्वेद १/१७९.

८ वही ३/३३

९ वही ४/१८.

१० वही ४/४२.

११ वही ८/८३

१२ वही १०/१०

१३ वही १०/८६

१४ ऋग्वेद १०/९५

१५ ही १०/१०८

हैं, उससे ये सूक्त पर्याप्त भिन्न है। **डा. ए. बी. कीथ** महोदय ने अपने ग्रन्थ 'सस्कृत ड्रामा' मे मेक्समूलर के मत को उद्धृत करते हुए लिखा कि—'सन् १८६९ ई मे मैक्समूलर ने ऋग्वेद १/१६५ के विवरण के प्रसग मे एक बहुत ही रोचक सुझाव प्रस्तुत किया था। उनका अनुमान है कि मरुतो की आराधना मे किये गये यज्ञो के अवसर पर इस सवाद का पाठ होता था अथवा सभवत दो दलो द्वारा इसका अभिनय किया जाता था, एक दल इन्द्र का प्रतिरूपण करता था और दूसरा मरुतो एव उसके अनुयायियो का।'[१] इस व्याख्यान से वैदिक काल मे अभिनय तत्वो की स्थिति का परिज्ञान होता है। १८९० मे प्रो लेवी ने सामवेद मे सगीत कला के विकसित रूप का उल्लेख किया है।[२] डा हर्टेल, श्रोएडर, मेकडानल ने भिन्न भिन्न व्याख्याये प्रस्तुत कर इन सूक्तो को अभिनयात्मक माना है। परन्तु किसी भी रुप मे वैदिक काल मे रूपको की स्थिति का निश्चय नही हो पाता। **डा. एस. के. डे** और **एस. एन. दासगुप्ता** ने इन वैदिक सम्वादसूक्तो पर टिप्पणी करते हुए लिखा—कि यद्यपि वैदिक काल मे नाटक के तत्व विद्यमान थे पर नाटको की सत्ता का कोई प्रमाण नही। यज्ञ के पवित्र धार्मिक नृत्यो व गीतो मे नाटकीय तत्वो का अनुमान लगाया जा सकता है।[३]

श्री के पी. कुलकर्णी महोदय ने इन पाश्चात्य विद्वानो के विचारो की तथा वैदिक साहित्य की मीमासा कर यह मत व्यक्त किया है कि वैदिककाल मे निश्चय ही नाटकीय तत्व—अभिनय, नृत्य, सगीत और गीतो का विकास हो चुका था।[४] वैदिक साहित्य मे जहाँ ये नाटकीय तत्व उपलब्ध है वहाँ कही भी नाट्य नाटक अथवा रूपक आदि शब्दो का प्रयोग नही मिलता अत. नृत्त और नृत्य को अधिक प्राचीन तथा नाट्य को अर्वाचीन माना जा सकता है।

आचार्य भरत ने तो नाटक का काल त्रेता युग स्वीकार किया है।[५] ज्योतिष गणना के अनुसार से लगभग २१६५०७३ वर्ष पूर्व त्रेता युग का आरम्भ हुआ था।

आचार्य पाणिनि ने यद्यपि सर्वप्रथम नट् और नृत् धातुओ का पृथक् उल्लेख कर दोनो के निष्पन्न अर्थो मे भिन्नता का सकेत किया है, फिर भी नट् धातु का अधिक प्रयोग प्रचलित नही हो सका और नृत्य तथा नाट्य मे विशेष भेद भी नही था। कालिदास के मालविकाग्निमित्र मे नाट्याचार्य गणदास ने नृत्यशाला से आते हुए, नाट्य को शकर के द्वारा ताण्डव एव लास्य रूप दो भागो मे विभक्त, नानारस तथा लोकचरित सम्पन्न कहा है।[६]

---

१ (कीथ) स ड्रामा—हिन्दी अनु स. ना., पृष्ठ ४।

२ वही।

३ हि. सं. लिट., पृष्ठ ४६-४७

४ स. ड्रामा एण्ड ड्रामेटिस्ट, पृष्ठ ४-५।

५ ना. शा १/९

६ देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं क्रतु चाक्षुषम् रुद्रेणेदमुमाकृत व्यति करे स्वागे विभक्त द्विधा। त्रैगुण्यांद्भवमत्र लोक चरित नानारस दृश्यते नाट्य भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येक समाराधनम्। —मालविका १/४

इससे ज्ञात होता है, कि कालिदास के समय तक नृत्य और नाट्य मे भेद नही किया गया था तथा नृत्य को रसान्वित एव लोकचरितमय भी माना गया था। क्योकि लास्य और ताण्डव नृत्य के ही भेद है। छलित नृत्य को भी कालिदास ने नाट्य की सज्ञा दी है[१] पाणिनि कात्यायन और पतजलि के नाट्य सम्बन्धी उल्लेखो से उस समय नाट्य की सत्ता सिद्ध हो जाती है तथा यह भी प्राय: सिद्ध हो जाता है कि नाट्य का पूर्वरूप नृत्य ही था।

गीत, वाद्य और नृत्य समन्वित रूपक का जो स्वरूप आज उपलब्ध है वह आरम्भिक काल मे केवल अभिनयात्मक रहा होगा, कालान्तर मे उसमे गीत और वाद्य का सन्निवेश कर रगमच पर मनोरजकता का सृजन कर सके। अत रूपक की अपेक्षा नाट्य सकीर्ण और लघु माना जा सकता है। दशरूपक मे इन तीनो नाट्य, नृत्त और नृत्य की स्पष्ट व्याख्या की गई है तथा सूक्ष्म अन्तर का प्रतिपादन किया गया है।[२]

वाल्मीकि रामायण मे नट, नर्तक, रग कुशीलव आदि शब्दो का प्रयोग है।[३] इसी प्रकार महाभारत मे भी कुशीलव, नट, रगशाला आदि का उल्लेख है। जो नाट्य की सत्ता सिद्ध करते है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि नाट्य ई पू ६०० से अधिक प्राचीन नही है। नाट्य के अधिष्ठातृ देवता ब्रह्मा और नृत्य के अधिष्ठातृ देवता शकर हैं।[४]

शिव का वर्णन सिन्धु घाटी के निवासियो के प्रधान देवता के रूप मे किया गया है। हडप्पा मे एक मुद्रा पर पशुपति (शकर) का चित्र मिला है क्योंकि इसके शिर पर सीग और चारो और पशु खडे है। अत. नृत्य की उत्पत्ति सिन्धु सभ्यता काल मे मानी जा सकती है।[५] सिन्धु सभ्यता काल मे भारत मे आर्यो की स्थिति नही थी अत· यह नृत्य कला का विकास द्रविडो मे हुआ था। इसका समर्थन आचार्य भरत ने भी अपने ग्रन्थ मे किया है।[६]

यह सम्भव है कि नृत्य धीरे-धीरे विकसित होता हुआ नाट्यरूप मे परिणत हो गया हो, जिसका सकेत पीछे किया जा चुका है। इसकेप्रमाण आदि नाटककार

१ 'अचिरप्रवृतोपदेश छलिक नाम नाट्यमन्तरेण कीदृशी मालविकेति नाट्याचार्यमार्य गणदास प्रष्टुम्।'—माल., पृष्ठ ९

२ दश. १/७

३ नटनर्तक सघाना गायकाना च गायताम्
यत कर्णसुखा वाच. सुश्राव जनता ततः।

वा रामा., पृष्ठ २।

४ ना. शा १/१७.

५ 'दि हिस्ट्री आव दिस आर्ट ओपेन्स इन दि इन्डस वेले इन दि २८०० बी सी.'—इन्डियन आर्ट थ्रो दि एजेज, पृष्ठ ३
(के. के त्रिपाठी) स. सा में उपरुपक एक अध्ययन, पृष्ठ ३१ पर उद्धृत।

६ 'तत्र दाक्षिणात्यास्तावद् बहु नृत्त गीत वाद्याः, कैशिकी प्रायाः चतुरमधुरललितागणाभिनयाश्च।'

—ना शा. अध्याय १३ (पृष्ठ २१६)

भास के बालचरित नाटक मे उपलब्ध है जहॉ हल्लीसक को नृत्य कहा गया है।[१] सा दर्पणकार ने हल्लीसक को उपरूपको के अन्तर्गत माना है।

चाणक्य के काल मे नट् और नृत् धातुओ की सत्ता स्थिर हो चुकी थी।[२] नृत्य तथा नाट्य मे स्वभाव की दृष्टि से कोई अन्तर नही है क्योकि आगिक, वाचिक और आहार्य अभिनय तथा रस एव भावो की अभिव्यक्ति दोनो मे ही होती है। अन्तर केवल मात्रा मे होता है। एक ही कला के लिए तीन सोपान के रूप मे नृत्त—नृत्य—नाट्य की स्थिति मानकर ऐक्य स्थापना करनी चाहिए।

इस प्रकार इस सम्पूर्ण विवेचन पर विहगम दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि विक्षेपणात्मक नृत्य का प्रचलन, वैदिक काल मे अवश्य था किन्तु रस और अवस्थानुकरणात्मक अभिनय प्रधान नाट्य का प्रचलन वेदो एव वैदिक साहित्य काल मे नही रहा, यहॉ तक कि वेदोत्तरकाल मे पाणिनि से पूर्व तक भी नाट्य के प्रयोग का प्रमाण नही मिलता, यत्र तत्र उसके अगो का भले ही किचित उल्लेख हुआ है।

डा. ए बी. कीथ ने महाकाव्य काल के पश्चात् द्वितीय शती ई पू मे स नाटक की उत्पत्ति स्वीकार करते हुए लिखा है कि—'दि वैलेन्स आव प्रोबेबिलिटी, देअरफोर इज दैट सस्कृत ड्रामा केम इन टु बीइग शार्टली आफ्टर इफ नाट विफोर दि मिडिल आफ दि सैकेण्ड सेचुरी बी सी ।'[३]

नाट्य का प्राणतत्व अभिनय है। अभिनय अवस्थानुकरण है जिसमे फल के प्रति उत्सुकता एव कुतूहल बना रहता है। डा रामअवध द्विवेदी ने नाटक मे आश्चर्य और सशय को विशेष पोषक तत्व के रूप मे स्वीकार किया है[४] यह विचार पाश्चात्य नाट्यशास्त्रियो के सिद्धान्तो से मेल खा सकता है पर सस्कृत नाट्य सिद्धान्त से इसमे पर्याप्त अन्तर है। अवस्था का अनुकरण ही यहॉ अभिनय बताया गया है। अवस्था चरित्र की प्रतिपादिका होने के कारण चारित्रिक विशेषताओ का अनुकरण ही अभिनय है यह भारतीय नाट्यशास्त्रियो का मानदण्ड है। इस सम्बन्ध मे डा हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह सिद्धान्त स्वीकरणीय है कि 'नाटक की उत्पत्ति मानव की सहज प्रवृत्तियो से होती है।'[५]

आद्यरगाचार्य महोदय ने नाटको को महाकाव्यो से भिन्न नही माना है, केवल उनकी शैली मे कलात्मक अन्तर स्वीकार किया है।[६]

निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि रूपक वह काव्यविधा है जो अभिनेय होकर दर्शको को रसानुभूति कराने मे सक्षम हो और साथ ही उन्हे कर्तव्याकर्तव्य की शिक्षा भी दे सके।

---

१ बालचरित, पृष्ठ ४४-४८।

२ 'एते नट नर्तक गायक वादक—व्याख्याता।'
अर्थशा अध्यक्ष-प्रचार अध्याय २७/३८.

३ (क्रीथ) स ड्रामा।

४ सा सि, पृष्ठ ८४।

५ वही।

६ ड्रामा इन सस्कृत लिट., पृष्ठ १२।

रूपकों के भेद

संस्कृत रूपको के भेदो की सख्या मे पर्याप्त मतभेद है। भरत रूपको के १० प्रकार मानते है[१] किन्तु नाटक और प्रकरण के मिश्रण से 'नाटी' मिश्र नाट्यभेद भी स्वीकार करते है।[२] धनजय भी उसी प्रकार १० रूपक मानने के पक्ष मे है, [३] इसीलिए उन्होने अपने ग्रन्थ का नाम ही 'दशरूपक' रखा। भरत निर्दिष्ट नाटी जिसका नाम नाटिका निर्धारित किया, भी स्वीकार करते है।[४] इस प्रकार धनजय भी रूपक के ११ भेद मानते है। कुछ विद्वान भरत के "अनयोश्च" श्लोक से प्रकरणी नामक भेद स्वीकार करते है।

धनिक ने प्रकरणी नामक मिश्ररूपक के सम्बन्ध मे स्पष्ट कहा कि 'वस्तु, रस, नेता यदि प्रकरण के समान होते है तो प्रकरण से उसकी भिन्नता नही रह जाती। अत प्रकरिणका नामक भेद नही मानना चाहिए।'[५]

अग्निपुराण ने रूपको के 27 भेद दिये।[६] काव्यानुशासनकार ने सट्टक को भी रूपको मे जोड कर १२ भेद माने।[७] नाट्यदर्पणकार ने नाटी और प्रकरणी दोनो को स्वीकार कर रूपको के १२ भेद स्वीकार किये।[८] भावप्रकाश में १० रूपको के साथ नाटिका का योग किया गया इस प्रकार रूपक के ११ भेदो का उल्लेख है।[९] रसार्णव सुधाकर ने केवल १० रुपक माने तथा नाटक को अन्य रूपक भेदो का आधार माना।[१०] प्रतापरुद्रीयम् मे नाटिका का उल्लेख नही है।

साहित्य दर्पणकार ने सर्वप्रथम रूपक और उपरूपक नाम से विभाजन कर १० रुपक और १८ उपरूपको का विवेचन स्पष्टत किया।[११]

---

१ ना शा १८/१-३

२ 'अनयोश्च बन्धयोगादेको भेद. प्रयोक्तृभिर्ज्ञेय
प्रख्यातस्त्वितरो वा नाटी मज्ञाश्रिते काव्ये
ना. शा १८/१०९

३ "दशधैव रसाश्रयम्"—दश १/७

४ 'लक्ष्यते नाटिकाऽप्यत्र सकीर्णान्यनिवृत्तये।'—दश ३/४३

५ 'अत्र केचित्— अनयोश्च बन्ध—काव्ये।' इत्यमु भारतीय श्लोक एको भेद. प्रख्यातो नाटिकाख्य इतरस्त्वप्रख्यात प्रकरिणका सज्ञो नाटी सज्ञया द्वे काव्य आश्रिते इति व्याचक्षाणा प्रकरणिकामपि मन्यन्ते। तदसत्—उद्देशलक्षणयोरनभिधानात्। समान लक्षणत्वे वा भेदाभवात्। वस्तु रस नायकाना प्रकरण भेदात् प्रकरणिकाया।
दश ३/४३ की वृत्ति

६ अग्नि पृ ३३८/१-४

७ काव्यानुशासन, पृष्ठ ३१७।

८ ना द., सू ३

९ भावप्रकाश, पृष्ठ २२१।

१० आहु. प्रकरणादीना नाटक प्रकृति बुधा।
अतिदेश बल प्राप्त नाटकागोपजीवनात्
अन्यानि रूपकाणि स्युर्विकारा नाटक प्रति।

११ सा द ६/३-६

रूपक विभाजन की इस विविधता को परीक्षित करने के लिए निमित्तभूत रुपक के प्रमुख मानदण्डो की समीक्षा अपेक्षित है।

रूपक जिसे दृश्य काव्य कहा जाता है, अभिनय के द्वारा भिन्न-भिन्न रुचि वाले लोगो को एक साथ ही रसानुभूति करा देने वाली काव्यविधा है, यह कालिदास के उल्लेख से निर्दिष्ट किया जा चुका है।[१] रूपको के प्रमुख ३ तत्व होते है—वस्तु, नेता व रस।[२] रस ही वह तत्व है जिसकी अनुभूति के लिए रूपको का आयोजन किया जाता है। इस रस को सहृदय हृदयो तक ले जाने के कारण ही अभिनेता को नायक या नेता कहा जाता है।

कथावस्तु जो रूपको का प्रथम तत्व है, तीन प्रकार की होती है। प्रथम प्रख्यात अर्थात् इतिहास प्रसिद्ध या पौराणिक, द्वितीय कविकल्पना प्रसूत या उत्पाद्य और तीसरी मिश्र अर्थात् प्रख्यात और उत्पाद्य का मिला जुला रूप। इसे दूसरे रूप से केवल दो भागो मे ही विभक्त किया जा सकता है, १ आदर्शवादी, एव २ यथार्थवादी। कथास्तु की दृष्टि से यदि रूपको का विभाजन किया जाय तो उनके तीन या दो ही भेद हो सकते है।

नेता का विश्लेषण करते समय नाट्य शास्त्रियो ने स्पष्ट रूप से तीन प्रकार के नायको की कल्पना की है—उत्तम, मध्यम और अधम। नायको की चार प्रकार की प्रकृतियॉ होने के कारण मुख्य रूप से नायक 4 प्रकार के होते है—धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित, धीरप्रशान्त।[३]

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण के सप्तम परिच्छेद मे प्रकृति-विपर्यय नामक रसदोष का वर्णन करते समय प्रकृतियो के दिव्य, अदिव्य और दिव्यादिव्य तीन प्रकार माने है। वही तीन प्रकार की प्रकृति वाले नायक धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीरप्रशान्त भेद से चार प्रकार के होते है तथा इन चारो प्रकार के नायको को उत्तम, मध्यम, अधम भेद से पुन त्रिधा स्वीकार किया जाता है।[४] नायको के ४ प्रकार के विभाजन से रूपको के ४ भेद हो सकते है। अब यदि ४ प्रकार के नायको का तीन प्रकार की कथावस्तु मे प्रत्येक का पृथक्-पृथक् भेद माने तो 4×3 = १२ भेद हो जाते है।

रसो की सख्या साहित्यशास्त्र मे 9 मानी गई है परन्तु आचार्य भरत और प्राय सभी सस्कृत नाट्यशास्त्रियो ने शान्त रस को रूपको मे नही माना है।

१ नाट्य भिन्न रुचेर्जनस्य बहुधाप्येक समाराधनम्। माल० १/१४

२ वस्तुनेतारसस्तेषा भदेक । दश. 1/11.

३ (क) मेघाश्वचतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्धतैयम्। —दश २/३

(ख) धीरोदात्तो धीरोद्धतस्तथा धीरललितश्च।
धीरप्रशान्त इत्ययमुक्त प्रथमश्चतुर्भेद ॥ —सा द ३/३१

४ प्रकृत्या दिव्या, अदिव्या दिव्यादिव्याश्चेति। तेषा धीरोदात्तादिना। तेषामप्युत्तममध्यमाधमत्वम् ॥

—सा द ७ परि, पृष्ठ २५०

इस प्रकार श्रृगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत ये ८ रस ही सस्कृत रूपको मे स्वीकार किए गये है।[१]

दशरूपककार ने शान्तरस के विषय मे स्थायि भावो की चर्चा करते समय लिखाकि नाटक मे रति, हास, जुगुप्सा, क्रोध, उत्साह, गर्व, भय और शोक ये आठ स्थायी भाव ही रसत्व को प्राप्त होते है, कुछ लोगो ने शम स्थायी-भाव को भी माना है परन्तु उसकी नाट्य मे पुष्टि नहीं होती।[२]

इस प्रकार नाटको मे ८ रसो की स्थिति स्वीकार करने से रसो की दृष्टि से रुपक आठ प्रकार के हो सकते है। अब यदि पूर्वकथित 12 प्रकार के रुपको को इन रसो के प्रत्येक भाग मे जोड कर पृथक् विधा मानने लगे तो 12 × ८ = ९६ भेद रूपको के मानने पड जायेगे।

दशरूपक मे, वस्तु नेता, और रस के भेद से रूपको के दश भेद होते है ।[३] यह बात कुछ वदतोव्याघात सी प्रतीत होती है। इसलिए रूपको के भेदो की यथार्थ सख्या निर्धारित करने के लिए कुछ अन्य परिपुष्ट तथ्यो को प्रकाश मे लाना अत्यावश्यक है। सस्कृत नाट्य का प्रादुर्भाव दुःख शोक श्रम आदि मन स्थितियो को दूर कर आह्लाद की सृष्टि के लिए हुआ यह आचार्य भरत के कथन से स्पष्ट है।[४] आह्लाद, आनन्दाभूति और रसास्वाद ये शब्द प्राय एक ही अर्थ के द्योतक है क्योकि जब तक चित्त वृत्ति सब ओर से हटकर एक ओर लग कर तन्मयीभाव को प्राप्त न होगी और उसमे सुखानुभूति न होगी तब तक 'आ = समन्तात् ह्लादयति आनन्दयतीति आह्लाद' इस व्युत्पत्ति युक्त आह्लाद की पूर्ण स्थिति न हो सकेगी और यह स्थिति रसास्वाद काल मे ही होती है। साहित्यदर्पणकार ने स्पष्टतया लिखा कि—रसानुभूति काल मे यह मेरे यह तेरे, यह दूसरे के यह तटस्थ के इत्यादि रूपो मे विभावादिक का कुछ भी ज्ञान नही रहता।"[५]

इसके साथ ही प्रत्येक रस म दर्शक को या पाठक को सुख ही होता है, दुःख नही। इसकी पुष्टि भी **साहित्यदर्पणकार** के इन कथनो से होती है

१ श्रृगार हास्य करुण रौद्र वीर भयानका
वीभत्साद्भुत सज्ञौ चेत्यष्टौनाट्ये रसा स्मृता

—काव्यप्रकाश ४/२९

२ रत्युत्साह जुगुप्सा क्रोधो हास स्मयो भय शोक
शममपि केचित्प्राहु पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य।

—दश ४/३५

३ दश १/११

४ दुःखार्ताना श्रमार्ताना शोकार्ताना तपस्विनाम्
विश्रान्ति जनन काले नाट्यमेतन्मया कृतम्। —ना. शा १/११४.

५ परस्य न परस्येति ममेति न ममेति च
तदास्वादे विभावादे परिच्छेदो न विद्यते

सा द ३/१२,१३

कि—'करुणादि रसो मे भी परम सुख मिलता है, उसका प्रमाण केवल सहृदयो का अनुभव ही है[१] और काव्य मे अलौकिक विभाव आदि की श्रेणी को प्राप्त सभी स्थायीभावो से सुख ही होता है—इसे मानने मे क्या क्षति है।[२]

इस रस व्याख्यान से इतना स्पष्ट हो जाता है कि इसी रसास्वाद को प्राप्त करने[३] के लिए ही भिन्न-भिन्न स्थानो से भिन्न-भिन्न रुचि वाले लोग एक साथ ही नाटक देखने आते है। अत नाटको का मुख्य प्रतिपाद्य या साध्य रस ही है, वही नाटको का जीवन और सर्वस्व है। कथावस्तु और नेता क्रमश· आधार और साधन है।

अब विचारणीय है रसो की उत्कृष्टताऽपकर्षता । मानव स्वभाव से ही चचल और चित्रल अनुभूतियो के प्रति आग्रही रहा करता है। अधिक देर तक वह किसी भी एक ही भाव की भावना नही कर सकता, उसे समय-समय पर विभिन्न भावभूमियो के अनुभव की इच्छा होती है। फिर भी एक भाव ऐसा अवश्य रहता है जिसका सूत्र कभी भी उसके हृदय से विच्छिन्न नही होता। वह कुछ देर के लिए अन्य भाव से आकर्षित होता है किन्तु फिर वही पूर्वभाव पर उसी प्रकार लौट आता है जैसे एक गृहस्थ उपकरण जुटाने के लिये बाजार के दश चक्कर लगाकर पुन अपने घर वापस आ जाता है।

रूपको मे भी कुछ इसी प्रकार का विधान होता है जिसमे एक रस आदि से अन्त तक अगी बनकर रहता है और शेष या कुछ रस अगरूप मे यथावसर आते है। जब हम आठो रसो की मीमासा करते है तो यह ज्ञात होता है कि सभी रसो के स्थायीभाव चिरकाल तक मनुष्य की चित्तवृत्ति को प्रभावित नही रख सकते, जैसे—हास, क्रोध, भय, जुगुप्सा, और विस्मय ऐसे स्थायी भाव है जो विभावानुभाव और व्यभिचार के सयोग से किचित् काल के लिए ही आह्लाद जनक होते है अन्तत उनसे उसे रुचि या तोष प्राप्त नही होता। इसीलिए नाटको मे इन रसो के आश्रय प्राय प्रतिनायक या खलनायक, निम्न पात्र और दिव्य पात्र ही हुआ करते है क्योकि चित्तवृत्ति का विकास या विस्तार होने पर साधारणीकृत स्थिति मे ही रसानुभूति होती है और उसका प्रभाव चिरकाल तक रहता है। परन्तु हास्य, रौद्र, भयानक, वीभत्स और अद्भुत आदि रसो मे चित्त एकाएक प्रभावित होकर क्षणभर के लिए तन्मयीभाव को प्राप्त होता है परन्तु शीघ्र ही उस प्रभाव से वैसे ही मुक्त हो जाता है जैसे विद्युत्प्रकाश से क्षणभर चमकने के बाद कोई वस्तु पुन अन्धकार मे विलीन हो जाती है।

---

१ **करुणादावपि रसे जायते परम सुखम्।**

—सा द. ३/४,५

२ **अलौकिक विभावत्व प्राप्तेभ्य: काव्यसश्रयात्**
सुख सजायते तेभ्य सर्वेभ्योऽपीति का क्षति।

सा. द ३/७८

३ माल १/४

निष्कर्षत इन ८ रसो मे केवल श्रृगार और वीर दो रस ही रूपको के अगी रस हो सकते है यही सभी नाट्य शास्त्रियो का प्राय अभिमत है।

आचार्य भवभूति ने उत्तर रामचरित मे न केवल करुण रस की अगिता का आख्यान किया अपितु उन्होने 'एको रस करुण एव निमित्त भेदात्' इत्यादि लिखकर एकमात्र करूण को ही रसत्व स्थिति तक पहुँचाया, शेष सभी उसी के विकारमात्र निर्दिष्ट किये। किन्तु सहृदय समाज मे यह मत अत्यन्त समादृत नही हुआ, कारण स्पष्ट है कि करुण का स्थायीभाव शोक है। शोक की जागृति पर अनुभूयमान करुण पार्यन्तिक रूप मे चित्तपटल पर जो छाप छोडेगा वह दयाभाव रूप होकर भी आनन्ददायक नही हो सकता।

पाश्चात्य साहित्य की त्रासदी (ट्रेजेडी) क्षणिक तीव्र भावो की जागृति के बाद समाप्त हो जाती है, अत अधूरे सुख की ही पूर्ति करने के कारण भारतीयो को अतिस्पृहणीय नही बन सकी, क्योकि दर्शक रगशाला से एक मानसिक उत्तेजना लेकर ही बाहर आता है। स्पष्ट है कि सयोगात्मकता की अनुभूति अधिक सुखद होने के कारण करुण रौद्रादि रसो को अगीरस नही माना जा सकता।

उत्तर रामचरित मे 'अपिग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्' के द्वारा जहॉ करुण का चरमोत्कर्ष व्यक्त किया गया है वहॉ भी विप्रलम्भ श्रृगार ही मूलावस्थित है। मूर्च्छित राम को चेतनात्मक आनन्द की प्राप्ति अदृश्य सीता के स्पर्शात्मक सयोग से ही होती है। नाटक के अन्त मे भी गगा की गोद से सीता को प्रकट कर राम से मिलाने की अभिनव कल्पना मे श्रृगार रस ही मुख्यत पार्यन्तिक रस स्थिति को प्राप्त हो सका। अत उत्तर रामचरित का अगी रस भी श्रृगार ही है, यही मानना अधिक तर्कसगत है। अत सस्कृत रूपको मे केवल श्रृगार और वीर ही अगी रस के रूप मे चित्रित हुए है।

सभवत रस की उपर्युक्त मीमासा के आधार पर ही सस्कृत मनीषियो ने सर्वाधिक सख्या मे रूपक के प्रथम भेद 'नाटक' की ही रचना की/समकार, डिम, ईहामृग आदि को तो लक्षण के उदाहरण रूप मे ही प्रस्तुत किया गया।

अत रूढिवादिता का परित्याग कर यदि विचार किया जाये तो कथावस्तु व रसस्थिति के अनुसार नाटक और प्रकरण ये दो भेद ही वास्तविक रूपक की सज्ञा प्राप्त करते है।

उपरुपक :

सस्कृत दृश्य काव्यो की प्रसिद्धि रूपक और 'उपरूपक' इन द्विविध प्रकारो मे हुई। आपातत अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि 'उपरूपक' रूपक का ही सक्षिप्त या लघु रूप है। यद्यपि प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि ने 'उप' उपसर्ग की 'हीन' और 'अधिक' दोनो अर्थो मे कर्म प्रवचनीय सज्ञा का विधान कर उप के दो अर्थो का स्पष्टोल्लेख किया है।[१] परन्तु उप शब्द का अधिक अर्थ मे

---

१ अष्टा. १/४/८६-८७

प्रयोग धीरे-धीरे लुप्त हो गया और अब केवल हीन अर्थ मे ही प्रयोग होता है। अत उपरूपक शब्द रूपक के लघु रूप की ओर इगित अवश्य करता है, परन्तु यह ध्यातव्य है कि विशाल सस्कृत साहित्य की किसी भी अन्य विधा के साथ 'उप' शब्द का प्रयोग नही किया गया है। जैसे महाकाव्य के लघु रूप को खण्डकाव्य कहा गया, पर उपमहाकाव्य नही। इसी प्रकार आख्यायिका और कथा में भी उप का प्रयोग नही है। अस्तु यह निर्विवाद है कि उपरूपक रूपको के लघु रूप का वर्गीकरण नही है।

रूपको की साहित्यिक मान्यताओ और उद्देश्यो पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो गया था कि रूपको के विविध भेदो का कारण वस्तु, नेता और रस की भिन्नता है। यदि उपरूपको मे कोई ऐसी भिन्नता होती तो उन्हे भी रूपक का ही भेद मान कर रूपको की सख्या १० से अधिक हो जाती पर प्राय विद्वानो ने रूपको के १० भेद ही स्वीकार किये है। अत वस्तु, नेता और रस की भिन्नता के कारण ही उपरूपको की पृथक् सत्ता स्वीकार नही की जा सकती। इसलिए उपरूपको के वर्गीकरण के मूल कारण को जानने हेतु रूपको के उद्देश्यो का पुनर्निरीक्षण परमावश्यक है। **आचार्य भरत** ने नाट्यरचना के सम्बन्ध मे लिखा था कि "मैने जिस नाट्य की रचना की है वह दुखी, श्रमी, शोकाकुल और तपस्वी लोगो को विश्रान्ति देने वाला है।[१] विश्रान्ति आनन्द प्राप्ति से सम्भव है, अतएव धनजय ने रूपक का मूल उद्देश्य आनन्द माना और इतिहास आदि के समान केवल उपदेशात्मक ही नाटक मानने वालो को स्वादुपराडमुख कहकर बडी चतुरता से उपहास किया है।[२]

रूपक के प्रत्येक भेद का यही भरत निर्दिष्ट लक्ष्य होना चाहिए क्योकि वह सर्वजनहितकारी होकर भी आनन्दोपलब्धि कराता है। केवल आनन्दोपलब्धि को भी रूपक का प्रयोजन स्वीकार नही किया जा सकता। अन्यथा भारत के कुछ ग्रामीण अचलो एव पिछडे वर्ग मे प्रचलित भाड मण्डलियो के अश्लील प्रदर्शन भी, जो आनन्द सृजन तो करते है पर शिक्षा नही दे पाते, रूपक की कोटि मे आ जायेगे। इसीलिये आचार्य भरत ने धर्म, यश, ज्ञान और लोकोपदेश को भी रूपको का प्रयोजन स्वीकार किया।[३] परन्तु समय की परिवर्तनशील परिस्थितियो मे सस्कृत नाटक भरत की मान्यताओ को लेकर नही चल सके। इसका कारण यह था कि राजाश्रय मे निवास करने वाले विद्वान् कवियो ने ऐसे नाटको का प्रणयन प्रारम्भ किया जिनमे राजप्रशसा होती थी, अभिनय की उपेक्षा के साथ ही साथ धर्म, ज्ञान और लोकोपदेश की भावना पर भी ध्यान नही दिया गया, परिणामत सस्कृत नाटक भरत की दृश्यत्व कोटि का परित्याग कर

१ ना शा १/१४४

२ दश १/६

३ धर्म्यं यशस्यमायुष्य हित बुद्धि विवर्धनम्।
लोकोपदेश जनन नाट्यमेतद्भविष्यति॥

—ना शा ४/१२

केवल श्रव्य कोटि मे पहुँच गये। इससे यद्यपि का व्यपक्ष का प्रसार तो हुआ पर अभिनय तत्व का सहार भी हुआ। ये नाटक केवल उच्च वर्ग के घेरे तक सीमित होकर जनसामान्य की अनुभूतियो से शून्य होते चले गये।[१]

दूसरी ओर सस्कृत नाटको के अभिनय के लिए विशाल आयोजन और समृद्ध रगशालाओ की आवश्यकता के कारण सर्वसाधारण इनसे अधिक लाभान्वित न हो सके और उनकी मनोरजनार्थ किसी अन्य उपाय प्रकार की आवश्यकता प्रतीत हुई।

इन दोनो कारणो के अतिरिक्त एक और भी कारण है कि सस्कृत नाटको को ५ से १० अक तक का विस्तार दिया गया।[२] यह तथ्य है कि सामाजिक सद्य रसानुभूति चाहता है, वह दीर्घकाल तक एक आसन पर बैठकर अपने चित्त को एकाग्र नही रख पाता। सस्कृत नाटको के विस्तृत कथानक को सम्पूर्णत देख कर उनसे रसानुभूति और विश्रान्ति प्राप्त करने के स्थान पर थकान और अरुचि होने लगी, जिससे उसके मन मे नाटक के किसी दूसरे रूप की अन्वेषणात्मक प्रवृत्ति जाग्रत हुई।

उपरिनिर्दिष्ट कारणो के फलस्वरूप ही सस्कृत रूपको की एक नवीन परम्परा का जन्म हुआ जिसे उपरूपक नाम दिया गया। वस्तुत इन उपरूपको को मुख्यत मनोरजन का साधन माना गया। इसीलिए रूपको की अपेक्षा इसमे लघु कथानक, श्रृगाररस प्रधानता, स्त्रीपात्र बहुलता तथा अभिनय के साथ नृत्य के विविध स्वरूपा का प्रदर्शन भी आवश्यक माना गया और भरत के 'धर्म्यं यशस्य चायुष्य' सिद्धान्त की उपेक्षा कर दी गई। मनोरजन का प्रमुख साधन नृत्य प्राचीनकाल से ही रहा है।

नृत्य की प्राचीनता

'नृत्य' प्राचीनकाल से ही भारतीयो के मनोविनोद का साधन रहा है। मोहन-जोदडो और हड़प्पा के उत्खनन से प्राप्त नर्तकी और पशुपति की मूर्तिया इस तथ्य के प्रमाण है।[३] **बासम** महोदय इस नर्तकी पर टिप्पणी करते हुये लिखते है कि 'मोहनजोदडो से प्राप्त नर्तकी की मूर्ति से ज्ञात होता है कि वह भावाभिनय कर नाचने वाली वेश्याओ के वर्ग की है।'[४] इसके अतिरिक्त हड़प्पा से प्राप्त एक मुद्रा पर ऐसे देवता का स्वरूप अकित है जो वन्य पशुओ से घिरा तथा शृग युक्त है।[५] भगवान् शिव का ताण्डव नृत्य प्रसिद्ध है इसीलिए उन्हे नटराज कहा गया है। नाट्यशास्त्र मे ब्रह्मा के निवेदन पर भगवान् शिव

---

१ ना समी., पृष्ठ ३०।

२ पचादिकादशपरास्तत्राका परिकीर्तिता —सा. दर्प ६/८.

३ प्राचीन भारत, पृष्ठ १२।

४ दि वण्डर दैट वाज इण्डिया, पृष्ठ १६ (के के. त्रिपाठी) स सा. मे उपरुपक एक अध्ययन, पृष्ठ ३१ पर उद्धृत।

५ वही, पृष्ठ २२।

ने अपने गण तण्डु से करण, रेचक और अगहारो की शिक्षा भरत को दिलवाई थी, ऐसा वर्णन है।[१]

भगवान् शिव द्रविडो के देवता थे अत आर्यो की सत्ता भारत मे प्रकाशित होने के पूर्व से ही यहाँ नृत्य का प्रचलन था। सिन्धु सभ्यता मे नृत्य आदि कलाओ का विकास इसके प्रमाण है।[२]

डा. उमेश जोशी अपने ग्रन्थ 'भारतीय सगीत का इतिहास' मे **याल्डी रसेल** ओर '**डास्की मोलो**' के मत को उद्धृत करते हुये लिखते है कि द्रविड लोगो के उच्च सगीत से आर्यो ने अलभ्य थाती प्राप्त की हे। भारतीय नृत्य की नीव द्रविड नृत्य पर आधारित है।[३] आचार्य भरत ने भी द्रविणो की इस कलाभिज्ञता का समर्थन किया है।[४]

वैदिक साहित्य मे भी नृत्य परम्परा उपलब्ध है—ऋग्वेद के १०/९४/४-५ मे 'अनर्तिषु', १/५१/३ मे 'नर्तयन्' १०/६२/६ मे 'नृत्याम्' शब्दो का प्रयोग अथर्ववेद के ६/४९/३ मे अनर्तिषु, शतपथ ब्राह्मण के ३/२/४६ मे 'नृत्यति' गोपथ ब्रा १/८/८१ मे 'अनृत्यते' शब्दो का प्रयोग किया गया है जो इसका प्रमाण हे। कात्यायन श्रौत सूत्र ३०/३/११ मे पितृमेध यज्ञ पर नृत्य, गीत और वाद्य को प्रस्तुत किये जाने का उल्लेख है। इसी सूत्र के १८/३/२१ मे गवामयम यज्ञ के अवसर पर छठे दिन महाव्रत समारोह मे यजमान पत्नियो के बीन बजा कर नृत्य गीत का भी उल्लेख है।

नृत्य मे अभिनय का योग

डा वासुदेव शरण अग्रवाल ने अपने ग्रन्थ "खन्तिवादी जातक" मे नृत्य, गीत, वादित्र और अभिनय के परस्पर सम्बन्ध के वर्णन का उल्लेख किया है।[५] राजप्रश्नीय प्राकृत ग्रन्थ मे ३५ प्रकार की सामूहिक नृत्य विधियो का उल्लेख है।[६] इनमे एक ईहामृग भी है।

भास के बालचरित नाटक के एक प्रवेशक मे हल्लीसक नृत्य का विवेचन,[७] मालविकाग्निमित्र मे चलित छलित नृत्य का वर्णन[८] इस बात को पुष्ट करते है कि प्राचीन काल से जिन नृत्यो का प्रचलन था बाद मे उनमे कलात्मक सम्वाद

---

१ ना शा अध्या १३।

२ 'द हिस्ट्री आव दिस आर्ट ओपेन्स इन दि इण्डसवेले इन दि २८०० बी सी' इण्डिन आर्ट थ्रो दि एजेज, पृष्ठ ३ (त्रिपाठी) स सा उपरुपक मे उद्धृत)

३ भा० इति, पृष्ठ ५९ (डॉ. उमेश जोशी)

४ 'तत्र' दाक्षिणात्यास्तावद् बहु नृत्यगीतवाद्या कैशिकी प्राया चतुरमधुर ललितागाभियाश्च
—ना शा १३, पृष्ठ २१६ (निर्णय सा, बम्बई)

५ पाणिनि कालीन भारतवर्ष, पृष्ठ १७०।

६ प्राचीन भारतीय मनोविज्ञान, पृष्ठ ११०।

७ बालचरित ३ अक प्रवेशक पृष्ठ ४४-४८।

८ मालविका २/४

और अभिनय का मिश्रण हुआ और वे नृत्य विकसित होकर नृत्यनाट्य या उपरूपक कहलाये।

उपरुपको की सत्ता

इस विषय मे डा विन्टरनित्ज के इस मत को भुलाया नही जा सकता कि 'भारतीय नृत्य नाट्य मार्ग पर आधारित थे तथा उनमें नाट्य कला की जडे विद्यमान थी।'[१] भारतीय नृत्य की प्राचीनता के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि उपरूपको की सत्ता भी अति प्राचीन है। यदि भरत ने नाट्यशास्त्र मे उनका उल्लेख नही किया तो इसका अर्थ यह नही कि उस काल म या उसके पूर्व तक उपरूपको की सत्ता नही थी।

शास्त्रीय दृष्टि से प्राप्त प्रमाणो के आधार पर यह ज्ञात होता है कि कोहल के समय नृत्त से अभिनय का सयोग हुआ और एक नूतन कला विकसित हुई। तदुक्त कोहलेन—

सन्ध्याया नृत्यत शम्भोर्भक्त्यार्द्रो नारद पुरा
गीतवास्त्रिपुरोन्माथ तच्चित्तस्त्वथ गीतके।
चकाराभिनय प्रीतस्ततस्तण्डुश्च सोऽब्रवीत्
नाट्योक्त्याभिनेयेद वत्स योजय ताण्डवम्॥

यह विकसित कला नृत्य थी जिसमे नृत्त और अभिनय दोनो सम्पृक्त थे। यह उल्लेखनीय है कि कोहल ने ही सर्वप्रथम उपरूपको की सत्ता स्वीकार की। भरत ने कोहल के मत को मान्यता नही दी, यही कारण है कि उपरूपको का अस्तित्व दशरूपको के बहुत बाद प्रकाश मे आया।

यह निर्विवाद सत्य है कि प्राचीन युग मे भारतीय समाज दो वर्गों मे विभक्त था—राजदरबार और जनसाधारण। राजदरबारो मे विद्वानो, पुरोहितो और कवियों ने कलापूर्ण, उदात्त भाषा और सगठित सम्विधानात्मक नाटको का प्रणयन व प्रसार किया। प्राय इनमें धार्मिक विश्वासो को प्रमुखता दी गई है। इसके विपरीत जनसाधारण की लौकिक मान्यताओ के आधार पर नृत्य प्रधान उपरूपको का प्रचलन जनसामान्य समाज मे हुआ और वही उनके आनन्द विधान के साधन थे। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रूपक उच्च वर्ग मे और उपरूपक जनसामान्य मे विकसित हुए।

नाट्य समीक्षा क्षेत्र के विद्वान स्वतन्त्र विचार की अपेक्षा पूर्वाचार्यो और धार्मिक मान्यताओ पर अधिक बल देते थे। यही कारण है कि भरत के बहुत बाद तक भी उपरूपको का विवरण प्रकाश मे नही आया। भिन्न-भिन्न आचार्यो ने उपलब्ध उपरूपको की भिन्न-भिन्न व्याख्या कर या तो उन्हे रूपको मे अन्तर्भावित करने का प्रयास किया या फिर नृत्य भेद मानकर रूपको से पृथक् स्वीकार किया।

१ ए हि इण्डि लिट., पृष्ठ १८२।

उपरूपकों का व्याख्यान

सर्वप्रथम कोहल ने उपरूपको पर विचार किया है। नाट्यशास्त्र के व्याख्याता अभिनव गुप्त ने अपने ग्रन्थ अभिनव भारती मे कोहल के मत को उद्धृत करते हुये इसकी सूचना दी है—

'प्रयोगाय प्रयोगत' इति व्याख्याने प्रयोगत इति विफलमेव। उक्त व्याख्याने तु कोहलादि लक्षित तोटक सट्टक रासकादि सग्रह फलम्। [1]

परन्तु कोहल का आज कोई ग्रन्थ उपलब्ध नही है, जिसमे इन्हे उपरूपक की सज्ञा दी गई हो। **श्री कृष्णमाचारी महोदय** ने कोहल के विषय मे विवरण देते हुये लिखा है कि कोहल ने 'मार्ग देशीति नाट्यस्य भेदद्वयमुदाहृतम्' कहकर रूपको का मार्ग और देशी, दो प्रकार का वर्गीकरण किया है। इनमे नाटकादि 20 भेद मार्ग के अन्तर्गत और डोम्बिकादि १० भेद देशी के अन्तर्गत स्वीकार किये है। सम्भव है कि देशी भेद ही कोहल के मत मे उपरूपक रहे हो, परन्तु उन्होने स्वय कही भी उपरूपक शब्द का उल्लेख नही किया है। [2]

अग्नि पुराण मे २७ प्रकार के रूपको का उल्लेख किया गयापरन्तु [3] उसमे रूपक और उपरूपक का वर्गीकरण उपलब्ध नही होता। यद्यपि साहित्यदर्पणकार आदि आचार्यो ने जिन नाट्यभेदो को उपरूपक की सज्ञा दी है, प्राय वे सभी अग्नि पुराण मे नाम्ना निर्दिष्ट है और उन्हे त्रिवर्ग साधन नाट्य कहा गया है, किन्तु किसी का भी लक्षण पृथक् न लिखने के कारण उनकी विवेचना उपरूपक सम्मत नही मानी जा सकती।

आचार्य भरत और अभिनव गुप्त ने भी उपरूपको का कोई उल्लेख नही किया। सर्वप्रथम धनजय ने नृत्य, नृत्त और नाट्य की तथा रूप व रूपक की स्पष्ट व्याख्या की है। परन्तु पूर्वाचार्यो के समान वे भी उपरूपको को मान्यता प्रदान नही करते। आचार्य भरत ने दशरूपको के अतिरिक्त नाटिका (और प्रकरणी) रूप जिन दो भेदो को सकीर्ण रूपक की मान्यता दी थी वे रूपक की श्रेणी से पृथक् माने जा सकते है। नाटिका मे जिन मान्यताओ को स्वीकार किया गया है, उसके आधार पर वह एक उपरूपक है, यदि हम उसे भरत निर्दिष्ट नाटिका की कोटि मे ले जाये तो निश्चय ही भरत भी उपरूपक नाम से न सही आकृति से उपरूपक को स्वीकार करते है।

धनजय ने भी आचार्य भरत के अनुसार ही १० रूपको को शुद्ध रूपको की सज्ञा दी और धनिक ने नाटिका को सकीर्ण रूपक की सज्ञा प्रदान कर प्रकरणी को सकीर्ण रूपक की मान्यता नही दी, यहाँ तक कि उसकी स्थिति ही प्रकरण से पृथक् स्वीकार नही की। उन्होने (धनिक ने) वाक्यार्थाभिनय के रसाश्रित

---

१ **ना शा 18 अध्याय, पृष्ठ 407 (अभि भा., भाग 2)**

२ **हि. क्लासि. स. लिट., पृष्ठ ५४४।**

३ **अग्नि पु., अध्याय ३३८, श्लोक १-४।**

होने के कारण १० रूपको को नाट्य भेद के अन्तर्गत स्वीकार किया तथा डोम्बी, श्री गदित, भाण, भाणी, प्रस्थान रासक और काव्य को पदार्थाभिनयात्मक होने के कारण नृत्य का भेद माना है।[१]

इस प्रकार धनिक ने पदार्थाभिनय शब्द के द्वारा नृत्य मे अभिनय की स्थिति स्वीकार करते हुए रूपको की एक पृथक् विधा मानी है, जिसे बाद मे उपरूपक कहा गया। अस्तु धनिक भी उपरूपक नाम से न सही आकृति से उपरूपको से परिचित है। नाट्य दर्पणकार रूपको की सख्या १२ मानते है जिनमे आचार्य भरत के अनुसार १० रूपक और नाटिका तथा प्रकरणी दो सकीर्ण रूपक मानते है। यद्यपि धनिक ने बड़ी स्पष्टता से प्रकरणी का खण्डन किया है,[२] फिर भी रामचन्द्र गुणचन्द्र उसे स्वीकार करते है, इसका कारण यही प्रतीत होता है कि वे जनाचार्य थे और जिनवाणी मे १२ अगो की स्थिति के कारण १२ रूपको का सम्बन्ध उनसे जोडना चाहते थे।[३]

आचार्य हेमचन्द्र ने प्रेक्ष्यकाव्य के गेय और पाठ्य दो वर्ग बनाकर १० रूपक तथा नाटिका और सट्टक को मिलाकर १२ भेदो को पाठ्य तथा ११ (उपरूपक) भेदो को गेय माना है।[४] इस विभाजन के कारण उन्होने वाक्यार्थाभिनय और पदार्थाभिनय को स्वीकार किया है। इस प्रकार शब्द भेद से दशरूपक के मत को स्वीकार करते हुए हेमचन्द्र ने गेय-प्रेक्ष्य काव्यो को दशरूपको से भिन्न पदार्थाभिनयात्मक मानकर उपरूपक की सत्ता स्वीकार की है।

भाव प्रकाशन नामक अपने ग्रन्थ मे शारदातनय नाट्य के विभिन्न अग और रूपको के वर्णन के समय यद्यपि उपरूपक नाम से कोई विभाजन न करके ३० प्रकार के रूपको की सत्ता स्वीकार करते है,[५] परन्तु उनमे १० भेदो को जिन्हे सभी लाक्षणिको ने रूपक की मान्यता दी है, रसात्मक और २० भेदो को भावात्मक स्वीकार किया।[६] ये २० भेद उपरूपक ही है जिनमे भाव की प्रधानता है। भाव प्रकाश मे इन २० भेदो के नाम ये है—तोटक, नाटिका, गोष्ठी, सलाप, शिल्पक, डोम्बी, श्री गदित, भाणी, प्रस्थान, काव्य, प्रेक्षणक, सट्टक, नाट्यरासक, लासक (रासक) उल्लाप्यक, हल्लीश, दुर्मल्लिका, कल्पवल्ली, पारिजातक।

उत्तरवर्ती प्राय: सभी आचार्यो ने भरत और दशरूपककार के मतो को आप्त मानकर रूपको की सख्या केवल 10 ही मानी है, शेष सभी प्रकार के नाट्य ग्रन्थो को उपरूपक की सज्ञा प्रदान की । इसका कारण केवल एक ही प्रतीत होता है कि उन्होने भरत को नाट्यविद्या का आधिकारिक व्याख्याता मानकर उन्ही के मार्ग का अनुसरण किया है।

---

१ दश. १/८ की वृत्ति।
२ दश. ३/४३ की वृत्ति।
३ ना. द. १/१.
४ काव्यानुशासन, अ. ८, पृष्ठ ४३२।
५ भाव प्रकाशन, अ. ८, पृष्ठ २२१।
६ भाव प्रकाश, अध्याय ८, पृष्ठ १८१।

निष्कर्ष—

रूपक के क्षेत्र मे प्राय सभी आचार्यो ने दो मूलभूत सिद्धान्तो को स्वीकार किया है। प्रथम तो उन्होंने अभिनय को वाक्यार्थ और पदार्थ नाम से दो भागो मे विभक्त किया। दूसरे—**वाक्यार्थ अभिनय मे रस** और **पदार्थ अभिनय मे भाव या नृत्य की प्रधानता** स्वीकार की है इसका अधिक स्पष्ट वर्णन धनिक की वृत्ति मे है जहॉ उन्होने स्पष्टत लिखा है कि 'रसाश्रित नाटक आदि से भावाश्रित नृत्य पृथक् है क्योकि वह विषय भेद से नृत्य ही है।' 'नृती' धातु गात्रविक्षेपार्थक होने से आगिक क्रिया की बहुलता के कारण ही नर्तक का व्यपदेश होता है।[1] अत धनजय आदि सभी प्राचीन लक्षणकारो ने रूपको से पृथक् जिन नाट्य भेदो की चर्चा या उल्लेख किया है वह सभी भावाश्रित होने के कारण नृत्य नाट्य है जिन्हे परवर्ती काल मे उपरूपक कहकर पृथक् नाट्य विधा के रूप मे स्वीकार कर लिया गया। इस प्रकार नृत्य की प्रधानता होने के कारण उपरूपको का प्रचलन और प्रणयन रूपको से भी प्राचीन है यह कहना अनुचित न होगा। यह बात अवश्य है कि वे प्रकाश मे रूपको के बहुत बाद आये।

सर्वप्रथम आचार्य विश्वनाथ ने उपरूपको का स्पष्टोल्लेख करते हुये उनके १८ भेद प्रदर्शित करने का श्रेय प्राप्त किया परन्तु विश्वनाथ ने भी उपरूपक शब्द की कोई व्याख्या और परिभाषा न देकर विषय को पूर्णत स्पष्ट नही किया जिससे कि रूपक से उपरूपक की भिन्नता का सही आधार निश्चित किया जा सकता।

आचार्य विश्वनाथ द्वारा निर्दिष्ट १८ उपरूपक निम्नलिखित है—

१ नाटिका	१० रासक
२ त्रोटक	११ सलापक
३ गोष्ठी	१२ श्रीगदित
४ सट्टक	१३ शिल्पक
५. नाट्यरासक	१४ बिलासिका
६ प्रस्थान	१५ दुर्मल्लिका
७ उल्लाप्य	१६ प्रकरणी
८ काव्य	१७ हल्लीश
९ प्रेखण	१८ भाणिका[2]

विश्वनाथ ने इन १८ उपरूपको का चुनाव शारदातनय के २० भावात्मक नाट्य भेदो से किया होगा ऐसा अनुमान है क्योकि भावप्रकाशन मे ही इन सभी का एक स्थान पर उल्लेख है।[3] भोजराज ने श्रृगारप्रकाश मे केवल १४ प्रकार

१ **दश १/९ की वृत्ति।**
२ **सा द ६/४-६**
३ **भा प्र ८/१८१**

के उपरूपको का वर्णन किया है। अग्निपुराण मे रूपक के जो 27 भेद है उनमे से ११ उपरूपक के भेद है परन्तु उन्हे वहाँ उपरूपक की सज्ञा प्रदान नही की गई हे। और न ही किसी का लक्षण ही दिया गया है। आचार्य अभिनव गुप्त ने डोम्बिका, भाव, प्रस्थान, भाणिका, प्रेक्षणक, रामाक्रीड, हल्लीसक और रासक नामक ८ उपरूपको का नामोल्लेख किया है।[१]

सम्पूर्ण नाट्य विषयक ग्रन्थो पर दृष्टिपात करने से यह प्रतीत होता है कि उपरूपको की सत्ता से परिचय तो प्राय. सभी आचार्यो का रहा है परन्तु स्पष्टोल्लेख सभी आचार्य नही कर सके। किसी ने भावात्मक नाट्य, किसी ने सकीर्ण नाट्य, किसी ने गीति नाट्य और किसी ने नृत्य नाट्य या पदार्थाभिनयात्मक नाट्य की सज्ञाओ से अभिधान किया।

उपरूपको की कुल सख्या २६ के लगभग प्राप्त होती है किन्तु किसी भी एक ग्रन्थ मे नही, अपितु भिन्न-भिन्न ग्रन्थो मे भिन्न-भिन्न रूप मे है—जेसे, भावप्रकाश मे सर्वाधिक सख्या २० है, उसमे अग्निपुराण का कर्ण, नाट्यदर्पण का नर्तनक, साहित्यदर्पण का विलासिका तथा अभिनवगुप्त के भाण, भाणिका, रामाक्रीड उपरूपको को और सम्मिलित कर लिया जाये तो कुल २६ प्रकार के उपरूपक हो जाते है।

यह लिखा जा चुका है कि उपरूपको का प्रचलन भी रूपको के समान ही प्राचीन काल से रहा है, परन्तु उनका स्पष्टोल्लेख करने का श्रेय आचार्य विश्वनाथ को मिला। अत यह नही कहा जा सकता कि विश्वनाथ के पूर्व तक उपरुपको का प्रचलन था ही नही क्योकि धनजय से पूर्व रूपक शब्द का भी प्रयोग प्राप्त नही होता परन्तु रूपको का प्रचलन और उनकी व्याख्या नाट्य शब्द के द्वारा नाट्यशास्त्र मे विस्तार से की गई है। अत जिस प्रकार रूपक की सत्ता आचार्य भरत के काल के पूर्व से रहते हुए भी रूपक शब्द के प्रयोग का श्रेय दशरूपककार धनजय को मिला, उसी प्रकार उपरूपक शब्द के प्रयोग का श्रेय विश्वनाथ को मिला।

उपरूपक की सक्षिप्त परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है—**"उपरूपक से कहते है जो नृत्यबहुल अभिनय के द्वारा किसी भाव विशेष का अनुभव क्षक को अल्प समय मे करा सके।"**

आचार्य अभिनवगुप्त के निम्नलिखित वाक्य की सगति इस परिभाषा मे हो जाती है—'एते प्रबन्धा नृत्यात्मका न नाट्यात्मका· नाटकादि विलक्षणा'[२] अत· नृत्य से विकसित होकर नाटक की श्रेणी को प्राप्त करने वाले उपरूपको मे मनोऽनुरजन और सामाजिक को मुग्ध करने की क्षमता तो होती है पर सभी सन्धि, सध्यग कार्यावस्था और अर्थप्रकृतियाँ पूर्णत उपरुपकों मे उपलब्ध नही हो

१ अभि भा., पृष्ठ ४०७ (१८वा अध्याय)
२ ना. स पृष्ठ 28 पर उदाहत।

सकती। इसीलिए रूपको की अपेक्षा लघु और एकागी दृश्य उपस्थित करने के कारण ही तो इन्हे उपरूपक (हीन या लघुरूपक) कहा गया। लक्ष्यभेद लक्षणभेद का भी परिचायक होता है।

(स) नाटिकाओं की विशेषता

सस्कृत साहित्य मे नाटको की जैसे अपनी रूढियॉ एव मर्यादाएँ है उसी प्रकार नाटिकाओ की कथावस्तु, रचना शैली आर पात्रादिको की अपनी व्यवस्था है। आचार्य भरत ने सकीर्ण रूपक मान कर नाटी सज्ञा से तथा परवर्ती लक्षणकारो ने 'सकीर्ण रूपक', 'अन्य रूपक', 'रूपक' या 'उपरूपक' मानकर नाटिका की जिन विशेषताओ का उल्लेख अपने ग्रन्थो मे किया है, उन पर दृष्टिपात करने व नाटिकाओ के आकार प्रकार की समीक्षा से नाटिकाओ का स्वरूप व विशेषताओ का परिज्ञान हो सकेगा। एतदर्थ यहॉ सर्वप्रथम साहित्यदर्पण मे प्रतिपादित नाटिका लक्षण का उल्लेख अपेक्षित है।

नाटिका का लक्षण—

साहित्यदर्पणकार ने ही सर्वप्रथम उपरूपक के रूप मे नाटिका आदि १८ उपरूपको की परिभाषाएँ दी यद्यपि नाटी नाम से नाट्यशास्त्र मे उसकी परिभाषा की गई है। विश्वनाथ आदि के अनुसार नाटिका के मुख्य तत्व निम्नलिखित है—

१ इतिवृत कविकल्पित (उत्पाद्य) होता है।

२ स्त्री चरित की प्रधानता होती है।

३ चार अक होते है।

४ नायक प्रख्यात राजवश का धीरललित प्रकृति का कोई राजा होता है।

५ राजकुलोत्पन्ना, नवानुराग सम्पन्ना, अन्त पुर—सम्बद्धा, सगीतादिकला निपुणा, सुदर्शना कन्या इसकी नायिका होती है।

६. नायक, देवी (महारानी) के भय से सशकित रहता हुआ नायिका के प्रति अनुरागवान होता है।

७ देवी नायिका राजकुलोत्पन्ना, प्रगल्भा, पद पद पर मान करने वाली राजा की (विवाहिता) पत्नी होती है।

८ नायक-नायिका का मिलन (विवाह) इसी देवी नायिका की अनुकम्पा से होता है।

९ चारो अको मे कैशिकी वृत्ति के चारो अग रहते है।

१० विमर्श सन्धि अत्यल्प होती है, शेष चारो सधियॉ यथास्थान रहती है।

धनजय के अनुसार श्रृगाररस अगी होता है।

१ सा द ६/२९८-२७२, ना द., पृष्ठ २१३-२१६, भा प्र., पृष्ठ २४३-४४, ना. शा १८/५८-६०, ना ल र. ३५१ कारिका।

दशरूपककार ने विमर्श सन्धि के सम्बन्ध मे कुछ भी नही कहा और न ही चारो सन्धियो की नाटिका मे स्थिति का कोई विवरण दिया है।[१]

नाट्यदर्पणकार ने देवी और कन्या नायिकाओ को प्रसिद्ध व अप्रसिद्ध मान कर नाटिका के ४ भेद किये है[२] —

1 देवी प्रसिद्धा कन्या अप्रसिद्धा।

2 देवी अप्रसिद्धा कन्या प्रसिद्धा।

3 देवी प्रसिद्धा कन्या प्रसिद्धा।

4 देवी अप्रसिद्धा कन्या अप्रसिद्धा।

नाटिका की उपरिनिर्दिष्ट विशेषताओ से स्पष्ट है कि नाटिका एक स्वतन्त्र रूपक विधा है और उसका अन्तर्भाव रूपक के किसी भी भेद मे नही किया जा सकता।

आचार्य भरत ने अपने एक श्लोक मे नाटी नाम के सकीर्ण रूपक की चर्चा की है।[३] इसी श्लोक की व्याख्या मे कुछ विद्वानो ने सकीर्ण रूपक के दो भेद माने है एक प्रसिद्ध भेद 'नाटिका' और दूसरा अप्रसिद्ध 'प्रकरिणका'।

यह व्याख्या अनुमान पर आधारित है फिर भी परवर्ती विद्वानो ने प्रकरणिका नामक उपरूपक स्वीकार किया है, इस आधार पर इस व्याख्या को भी समीचीन माना जा सकता है। यद्यपि दशरूपककार धनजय और धनिक ने प्रकरणिका का पूर्णत निषेध किया है।[४]

दशरूपककार ने तो 'अन्य निवृत्तये' पद लिखकर नाटिका के लक्षण को प्रदर्शित करने का प्रयोजन प्रकरणिका का निराकरण करना ही स्वीकार किया है।[५]

यदि प्रकरणिका का निराकरण न करना होता तो सम्भवत वे नाटिका का लक्षण भी न देते। उन्होंने आगे की कारिका मे स्पष्ट किया है कि प्रकरणिका और प्रकरण मे कोई भी अन्तर नही है यदि स्त्रीप्रायता और चतुरकता आदि को भेदक धर्म मान लिया जाये तो फिर एक दो तीन अक आदि की भिन्नता से रुपको के अनन्त भेद हो जायेगे।[६]

दशरूपककार ने पहले ही रूपको मे भिन्नता का हेतु वस्तु, नेता और रस को माना है।[७] इसलिए अक आदि की भिन्नता को वे पृथक् रूपक विधा का हेतु नही मानते।

१ दश. ३/४३-४८

२ ना द., पृष्ठ १०६ (अख्याति ख्यातित कन्यादेव्योर्नाटी चतुर्विधा)

३ अनयोश्च बन्धयोगादेको भेदः प्रयोक्तृभिर्ज्ञेयः।
प्रख्यातस्त्वितरो वा नाटी सज्ञाश्रिते काव्ये॥

—ना शा १८/१०९

४ दश ३/४३ तथा धनिक कृत वृत्ति।

५ दश. ३/४३

६ दश. ३/४४-४५

७ वही १/११

आचार्य भरत के प्रति अति श्रद्धावान् होने के कारण धनजय ने नाटिका को सकीर्ण रूपक की मान्यता प्रदान करने के लिए लिखा—

'तत्र वस्तु प्रकरणान्नाटकान्नायको नृपः ।'[१]

इस लेख के अनुसार नाटिका का इतिवृत्त प्रकरण से और नायक नाटक से गृहीत होना चाहिए।

धनजय की यह परिभाषा बहुत स्पृहणीय नही मानी जा सकती है; क्योकि इसके अनुसार किसी भी नाटिका से सम्बद्ध एक नाटक और प्रकरण की स्थिति अनिवार्य हो जायेगी। जिस चरित्र या इतिवृत्त का वर्णन प्रकरण मे होगा उसी से नाटिका का इतिवृत्त गृहीत होगा, इसी प्रकार नाटक के नायक की स्थिति होगी।

जबकि वस्तुस्थिति यह है कि नाटिका मे इतिवृत्त प्रकरण के अनुसार कविकल्पित अर्थात् उत्पाद्य होता है। किसी प्रकरण से गृहीत हो यह नही स्वीकार किया जा सकता है। इसी प्रकार नायक, नाटक के अनुसार प्रख्यात राजवंश का हो यही अभीष्ट है न कि किसी नाटक से गृहीत किया गया हो। किन्तु दशरूपक की परिभाषा[२] मे पचमी विभक्ति के प्रयोग से यही अर्थ स्फुट है कि नाटिका का नायक नाटक से और इतिवृत्त प्रकरण से ग्रहीत होता है। अत स्पष्ट है कि दशरूपक का यह लक्षण आचार्य भरत के लक्षण का ही अनुकरण है क्योकि भरत ने लिखा है—

"'प्रकरण नाटक भेदादुत्पाद्य वस्तु विषया नायको यत्र नृपतिः।
अन्त पुर सगीतक कन्यामधिकृत्य कर्तव्या॥"
स्त्रीप्राया चतुरका ललिताभिनयात्मिका सुविहितांगी।
बहु गीत नृत्य वाद्य रति सम्भोगात्मिका चैव॥
राजोपचार युक्ता प्रसादन क्रोध (दम्भ) सयुक्ता
नायक दूती चापि देवी सम्बन्धी नाटिका ज्ञेया॥"[३]

द्वितीय विशेषता-नायक—

नाटिका का नायक नाटक के नायक से पूर्णत भिन्न होता है। केवल एक अश मे कुछ समानता है।

साहित्य दर्पणकार ने नाटक के नायक का लक्षण करते हुए लिखा—

'प्रख्यातवंशो राजर्षि. धीरोदात्तः प्रतापवान्।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायकोमत॥'[४]

इस लक्षण के अनुसार नाटक के नायक को प्रख्यात राजवश का **धीरोदात्त** प्रकृति वाला, प्रतापी, गुणी, दिव्य, अदिव्य या दिव्यादिव्य प्रकृति का राजर्षि होना चाहिये।[५]

१ दश ३/४३.
२ **'तत्र वस्तु प्रकरणान्नाटकान्नायको नृपः।—दश. ३/४३.**
३ ना शा. १८/११०-१११.
४ सा द. ६/९
५ वही ६/२६९.

इसके विपरीत नाटिका का नायक धीरललित प्रकृति वाला प्रख्यात वशोद्भूत राजा होता है।३ स्पष्ट है कि धीरललित होने के कारण नाटिका का नायक नाटक के धीरोदात्त नायक की अपेक्षा अल्प गुण वाला एव दिव्य, अदिव्य और दिव्यादिव्य प्रकृतियो मे केवल अदिव्य या दिव्यादिव्य प्रकृति का हो सकता है। दिव्य प्रकृति मे धीरललित भावो का प्रदर्शन उचित नही है। धीरललित का लक्षण करते हुये विद्वानो ने ललित शब्द से नृत्य आदि कलाओ मे व्यसनी होने का उल्लेख किया है।[1]

इस प्रकार नाटक और नाटिका के नायको मे प्रख्यात वशोद्भूत राजा मात्र की ही समानता है, जो आशिक है। सम्भवत इसी साम्य को ध्यान मे रखकर दशरूपककार ने 'नाटिका का नायक नाटक से गृहीत होता है' ऐसा उल्लेख किया। यद्यपि यह समीचीन नही है।

यहॉ यदि तात्विक दृष्टि से विचार किया जाये तो यह स्पष्ट हो जाता है कि जैसे रुपक के प्रसिद्ध १० भेदो मे कही वस्तु की, कही रस की और कही नायक की भिन्नता होती है परन्तु रूपक के सामान्य लक्षण सन्धि, सन्ध्यग नाट्यालकार आदि सभी समान रूप से विद्यमान रहते है, उसी प्रकार नाटिका मे भी सभी सामान्य लक्षणो के रहते हुये कुछ विशेषताऍ है, अत नाटिका भी रूपक की ही एक स्वतन्त्र विधा है, यह स्वीकार किया जा सकता है। आधुनिक सस्कृत विद्वान् **डा. वी राघवन** भरत प्रतिपादित १० रूपको को प्रमुख प्रकार और गौण प्रकार रूप दो वर्गो मे विभक्त मानते है, एक दूसरे दृष्टिकोण से वे इन १० रूपको को शौर्यपूर्ण तथा सामाजिक नामक दो वर्गो मे विभक्त कर इनकी व्याख्या करते हुये कहते है कि—

'इस समय १० मे से दो प्रकार निदर्शन मुख्य है—नाटक जिसमे शौर्य प्रवृत्ति अपनी पूर्णता को पहुँच जाती है और प्रकरण जिसमे सामाजिक प्रवृत्ति अपने विकास का पूर्ण क्षेत्र प्राप्त करती है। शौर्यपूर्ण नाटक के अपेक्षाकृत निम्नप्रकारो मे समवकार, डिम, व्यायोग, अक तथा ईहामृग और सामाजिक वर्ग के लघुतर प्रकारो मे प्रहसन, भाण तथा वीथी है।.............................सामाजिक वर्ग सामान्य मनुष्यो के जीवन तथा प्रेम कार्यो का चित्रण करता है।'[2]

इस कथन से नाटिका भी जिसका कथानक प्रकरण के अनुसार माना गया है, सामाजिक नाटक की श्रेणी मे प्रमुख है क्योकि इसमे भी तत्कालीन समाज व राजवर्ग की स्थिति का चित्रण होता है।

तृतीय विशेषता—नायिका

नाटिका मे नायिका की स्थिति स्पष्ट करते हुए साहित्यदर्पण, दशरूपक अथवा नाट्यदर्पण सभी ने दो नायिकाओ की अनिवार्यता बतलाई जिनमे कन्या

---

१ दश २/३ एव वृत्ति (धनिककृत)

२ ना. सि., पृष्ठ ४-५।

को प्रधान तथा देवी को पार्श्व नायिका माना है।[1] यह उचित ही है क्योकि फलप्राप्ति कन्या नायिका को ही होती है। अर्थात् कन्या नायिका और राजा का विवाह रूप फल होता है।

वस्तुत कन्या नायिका भी राजकुलोत्पन्ना मुग्धा, सगीत कुशला एव किसी न किसी रूप मे ज्येष्ठा नायिका (देवी) से या उसके परिवार से सम्बन्धित होती है। इससे उसकी भी प्रख्यातता सिद्ध हो जाती है, परन्तु यह आवश्यक नही कि वासवदत्ता के समान सभी ज्येष्ठा नायिकाएँ प्रख्यात राजवश से सम्वन्धित ही हो, फिर भी रामचन्द्र गुणचन्द्र ने कन्या और ज्येष्ठा नायिकाओ की द्विविधता (प्रसिद्धा और अप्रसिद्धा) स्वीकार कर नाटिकाओ के चार भेद माने है। इस चतुर्विध विभेद से यह तो निश्चय हो ही जाता है कि नाट्यदर्पणकार के समय मे नाटिकाएँ इन चारो रूपो मे विद्यमान थी जिनके आधार पर उन्हे यह विभाग नियमन करना पडा।

नाटिका की नायिका सम्बन्धी विशेषता पर दृष्टिपात करने से यह तथ्य उभर कर सामने आता है कि नाटिका मे ज्येष्ठा नायिका का महत्त्वपूर्ण स्थान है। राजा के हृदय मे भय, शका, कन्या नायिका से मिलने के लिए छुपछुप कर प्रयत्न करना, तद्विषयक प्रभूत चिन्तन, वर्णन आदि कोमल भावो की सूत्रधार ज्येष्ठा (देवी) नायिका ही होती है, वही राजा के प्रेममिलन मे बाधक बनकर राजा के प्रेमानुराग को और अधिक उद्दीप्त व मानसिक दृष्टि से व्यग्र भी बनाती है।

देवी नायिका से भयभीत राजा कभी-कभी तो उसके बन्धन मे भी बध जाता है। जो प्रत्यक्षत राजा के प्रणयी और ललित स्वरूप का परिचायक है। मानवती देवी का व्यक्तित्व राजा के ऊपर सदैव छाया रहता है। सस्कृत रूपको के किसी भी प्रकार मे इस प्रकार की नायिका की सत्ता न होने के कारण नाटिका नायिका की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखती है।

चतुर्थ विशेषता—स्त्री प्रायता—

नाटिकाओ की चतुर्थ विशेषता है स्त्री प्रायता। स्त्रीप्राय शब्द की व्याख्या दशरूपक के वृत्तिकार धनिक ने स्त्री प्रधानता की है।[2] इसके आधार पर नाटिकाओ मे स्त्रियो के आधिपत्य की सूचना मिलती हे जिसकी पुष्टि देवी नायिका के व्यक्तित्वपूर्ण चरित्र से होती है। 'प्राय' शब्द बहुल (आधिक्य) अर्थवाची भी है[3] इसके अनुसार 'स्त्रीप्राय' शब्द का अर्थ 'स्त्री पात्रो की अधिकता' होता है, और यह ज्ञात होता है कि नाटिका मे स्त्री पात्र पुरुष पात्रो की अपेक्षा अधिक सख्या मे होते है।

---

१ सा. द ६/२७०.

२ 'तत्र नाटिकेति स्त्रीसमाख्ययौचित्य प्राप्त स्त्री प्रधानत्वम्।'
दश वृत्ति, पृष्ठ १७२

३ स हि. कोश, पृष्ठ ६९१।

'स्त्री प्राय' शब्द के इन दोनो प्रधानता तथा अधिकता अर्थो की दृष्टि से यदि नाटिकाओ को देखे तो यह स्पष्ट है कि ये दोनो ही अर्थ नाटिकाओ मे घटित होते है। अतएव किसी भी लक्षणकार ने इसकी व्याख्या करना आवश्यक नही समझा, फिर भी नाटिका मे स्त्रीपात्राधिक्य की स्पष्ट सूचना आचार्य भरत कृत नाटिका लक्षण की अन्तिम पक्ति से मिल जाती है। जहाँ उन्होने लिखा है—

'नायक देवी दूती सपरिजना नाटिका ज्ञेया।'[१]

इससे स्पष्ट है कि भरत ने नाटिका मे नायक के अतिरिक्त देवी, दूती तथा अन्य स्त्री-परिजनो का उल्लेख कर यह सकेत किया कि नाटिका मे स्त्रीपात्रो की अधिकता होती है।

उपलब्ध नाटिकाओ के अध्ययन से भी यह ज्ञात होता है कि नाटिकाओ मे प्राय राजा और उसके नर्म सचिव (विदूषक) के अतिरिक्त कोई भी पुरुष पात्र प्रथम तीन अको तक दृष्टिगोचर नही होता, केवल चतुर्थ अक मे किसी आश्चर्यजनक घटना आदि के आयोजन मे एक, दो पुरुष पात्र क्षणभर के लिए आते है। इसलिये नाटिकाओ मे स्त्रीपात्रो की अधिकता एक विशिष्ट वैशिष्ट्य है।

पंचम विशेषता—चतुरकता—

नाटिका की पचम विशेषता है 'चतुरकता' अर्थात् केवल 4 अको का होना। नाटक और प्रकरण की अपेक्षा नाटिका का कथानक अत्यन्त छोटा, यहाँ तक कि केवल राजमहल की चहार दीवारी से घिरा होता है। यद्यपि किसी भी आचार्य ने इसका उल्लेख नही किया किन्तु यह रूढि के रूप मे प्राय एक दो नाटिकाओ को छोडकर[२] सभी नाटिकाओ मे एक-सा ही कथानक दृष्टिगत होता है।

यद्यपि रूपक के अन्य भेदो मे भी कथानक की लघुता और अको की सख्या न्यून होती है किन्तु स्पष्टत वे प्रकार घटनाप्रधान होने के कारण दर्शक या पाठक की मनोवृत्ति को क्षणिक कुतूहलाविष्ट तो करते है, पर पार्यन्तिक रसानुभूति कराने मे सक्षम न होने के कारण मूल उद्देश्य की पूर्ति नही कर पाते।

लक्षणकारो ने नाटिका के लक्षण मे ४ अको की अनिवार्यता का नियमन कर उसमे अधिक या कम अको की स्थिति समाप्त कर दी। इसका स्पष्ट तो कोई कारण नही दिया गया फिर भी इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित तीन विचार अवलोकनीय है—

प्रथम—नाटिका मे विमर्श सन्धि का निषेध किया गया।[३] सम्भव है केवल चार सन्धियो के कारण ही चार अको का नियमन किया गया हो।

१ ना. शा २०/६१
२ मलयजा कल्याणम् आदि।
३ सा द. 6/272.

द्वितीय—नाटक की अपेक्षा न्यून किन्तु प्रहसन आदि की अपेक्षा विस्तृत एव उदात्त बनाने के प्रयोजन से सामान्यत मध्यम रूप रखने के लिये ४ अको का नियमन किया गया हो।

तृतीय—नाटिका मे प्रतिपाद्य निम्नाकित ४ उद्देश्य बिन्दुओ को चार अको मे प्रतिपादित करने के लिए चतुरकता का नियम किया गया हो। ये चार प्रतिपाद्य है—

(१) नायक के द्वारा नायिका को मदन महोत्सव, उद्यान आदि मे देखकर या सुनकर उसके प्रति अनुरागवान होना।

(२) नायिका से मिलने के लिए प्रयत्न करना।

(३) नायिका से क्षणिक मिलन पुन विप्रलम्भ स्थिति मे चित्र रचना, रहस्योद्भेद से देवी द्वारा नायक नायिका को पकड लेना आदि।

(२) देवी द्वारा नायिका को अपना निकटतम सम्बन्धी जान लेने पर नायक के साथ उसका मिलन या विवाह करा देना।

षष्ठ विशेषता—श्रृङ्गाराङ्गिता

सभी लक्षणकारो ने नाटक व प्रकरण मे (जिनको नाटिका का उपजीव्य माना गया) श्रृगार एव वीर को अगीरस के रूप मे स्वीकार किया है। भवभूति ने नाटक मे करुण को भी अगीरस माना परन्तु नाटिका मे सभी आचार्यो ने केवल श्रृगार को अगी मानकर रस की परिधि भी सीमित कर दी। इसका स्पष्ट कारण नायक का धीर-ललित होना एव इतिवृत्त मे स्त्रीप्रायता होना है।

साहित्यदर्पणकार ने यद्यपि नाटिका मे स्पष्टत श्रृगार रस के अगी होने का कोई उल्लेख नही किया फिर भी वे कैशिकी वृत्ति की अनिवार्यता के माध्यम से श्रृगार को अगी रूप मे स्वीकार करते है क्योकि कैशिकी वृत्ति श्रृगाररस से निर्भरा होती है यह स्वय उनके व्याख्यान से स्पष्ट है।[१] इसकी और अधिक स्पष्टता सगीतरत्नाकरकार श्री शार्गदेव के इस कथन से भी होती है—

वागगाभरणाना या सौकुमार्येण निर्मिता उल्लसद्गीतनृत्ताढ्या श्रृगाररसनिर्भरा नि शक कैशिकी ब्रूते ता सौन्दर्यैक जीविताम्॥

साहित्यदर्पण के आधुनिक हिन्दी व्याख्याकार **डा. सत्यव्रत सिंह** ने 'कैशिकी' पद की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा—

'अतिशायिन केशा सन्त्यासामिति केशिका. स्त्रिय-स्तनकेशवतीत्व हि स्त्रीणा लक्षणमिति' तत्प्रधानत्वात् तासामिय कैशिकी।'[२]

१ **या श्लक्ष्ण नेपथ्यविशेष चित्रा**
स्त्री सकुलापुष्कलनृत्यगीता
कामोपमोग प्रभवोपचारा
सा कैशिकी चारु विलासयुक्ता। **सा द ६/१२४**

२ **सा द पृष्ठ ४५७।**

आगे उन्होने स्पष्ट करते हुए लिखा कि—'इस व्युत्पत्ति से यह सिद्ध है कि इस वृत्ति मे स्त्री बाहुल्य, नेपथ्य वैचित्र्य, काम व्यवहार तथा सगीत प्राचुर्य स्वभावत· रहा करते है। इस वृत्ति का सम्बन्ध श्रृगाररस से है और विलासमय हास परिहास से भी।'[1]

इस विवेचन से नाटिका के न केवल श्रृगार रस के अगी होने का ही पता चलता है अपितु नाटिका के इतिवृत्त व पात्रो के क्रिया कलाप व व्यवहार का भी अच्छा परिज्ञान हो जाता है।

सप्तम विशेषता—नायक की विशिष्ट प्रेमपद्धति

नाटिका का नायक कन्या नायिका से प्रेम करता है लेकिन वह प्रेम इतना गुप्त होता है कि केवल उसके मित्र विदूषक अथवा एकाध सहायक स्त्री पात्र को ज्ञात रहता है। यह गोपनीयता इसलिए नही कि नायक राजा है अत उसका एक परिजन के प्रति प्रेमासक्त होना अनुचित है अपितु इसलिए कि वह ज्येष्ठा नायिका देवी से डरता है क्योकि वह स्वय रानी के अधीन रहता है। प्रेमिका से मिलने के लिए कभी-कभी नायक हास्यास्पद आयोजन भी कर बैठता है। जैसे चन्द्रकला नाटिका मे विदूषक को तरक्षु बना कर उसे मारने के बहाने उद्यान मे चन्द्रकला से मिलने की योजना करना।[2]

धीरललित नायक की एक विशेष स्थिति नाटिका मे समाविष्ट कर अन्य श्रृगाररस प्रधान रूपको से इसे पृथक् कर दिया जाता है। अत यह नायक की प्रेमपद्धति नाटिका की विशेषता है।

आठवी विशेषता—विमर्श सन्धि की स्वल्पता

विमर्श सन्धि उसे कहते है जिसमे गर्भ सन्धि मे प्रकट हुआ प्रधान उपाय रूप बीज विविध प्रकार की विघ्न-बाधाओ से युक्त होकर उद्भिन्न सा प्रतीत हो और नायक बडे धैर्य व वीरता से उन बाधाओ का निराकरण कर निर्वहण सन्धि का मार्ग खोल दे।[3]

साहित्यदर्पणकार ने यद्यपि स्वल्प विमर्श लिख कर नाटिका मे विमर्श सन्धि का पूर्णत अभाव तो स्वीकार नही किया किन्तु तो भी वे विमर्श सन्धि को मानने के पक्ष मे नही है क्योकि शाप आदि जिन अन्तरायो को विमर्श सन्धि मे स्वीकार किया है वे अन्तराय नाटिका मे उस रूप मे सभव नही। सम्भवत इसीलिए दशरुपककार एव आचार्य भरत ने विमर्श सन्धि सम्बन्धी कोई उल्लेख नही किया।

निष्कर्ष—

इन समस्त विशेषताओ के परिप्रेक्ष्य मे जब नाटिका का मूल्याकन किया जाता है तो रूपको के दस भेदो मे यह एक कडी के रूप मे जुड जाता है जिससे रूपको

१ सा द. पृष्ठ ४५७।
२ चन्द्रकला, अक २, पृष्ठ ३२।
३ सा द. ६/७९.

की सख्या ११ हो जाती है परन्तु गणनाक्रम मे नाटिका को ११वा स्थान न देकर नाटक व प्रकरण के बाद तृतीय स्थान दिया जा सकता है। इसीलिए नाट्यदर्पणकार ने इसे उपरुपक जैसा वर्ग न मानकर रूपक के १२ भेद स्वीकार किये और उनमे, नाटिका को अन्यतम स्थान दिया।[१]

नाटिका को उपरूपक मानने वालो का यह तर्क है कि ये उपरूपक नृत्य प्रधान है, इनमे पदार्थाभिनय होता है इसका कारण यह है कि ये रसाश्रित न होकर भावाश्रित होते है।[२] नाटिका मे भी नृत्य गीत का बाहुल्य होने के कारण यह भी एक उपरूपक है। परन्तु इस विचार मे भी सकीर्णता प्रतीत होती है। वस्तुत रूपको मे सन्धि, सन्ध्यग, कार्यावस्था, अर्थप्रकृतियॉ, नाट्य-लक्षण आदि जिन प्रमुख लक्षणो की अनिवार्यता निश्चित की गई थी वे अन्य त्रोटक, गोष्ठी, नाट्यरासक आदि भेदो मे भले ही न हो पर नाटिका मे तो अवश्य ही रहते है इसलिए नाटिका को उपरूपक न मानकर रूपक मानना अधिक तर्कसगत है। प्रसिद्ध लक्षणकार सागरनन्दिन ने नाटिका को स्पष्टरूप से नाटक माना है क्योकि उनके अनुसार केवल चार अको का ही भेद है अन्य कोई भेद नाटक से नही है।[३]

दूसरा कारण यह भी है कि जिस प्रकार रूपको (नाट्य)[४] को धर्म्य, यशस्य, आयुष्य, हितकर, बुद्धिविवर्धक और लोकोपदेशात्मक माना गया, तदनुसार नाटिका मे ये सभी गुण भी रहते है। नाट्य के उद्देश्यभूत इन तथ्यो की स्थिति नाटिका मे होने से इसे रूपक की ही श्रेणी मे मानना उचित है।

श्रृगार बहुल होने के कारण यदि कोई नाटिका को लोकोपदेशात्मक मानने मे आपत्ति कर सकता है तो मेरी दृष्टि मे यह उसकी अतत्व दृष्टि है। जिस प्रकार प्रकरण मे समाज के यथार्थ स्वरूप का चित्रण होता है तद्वत् नाटिका मे भी राजाओ की विलासितापूर्ण जीवन पद्धति की एक सच्ची झाकी होती है। मध्यकालीन राजाओ के जीवन चरित्रो मे यह प्रत्यक्ष है।

इसलिए नाटिका एक यथार्थवादी रूपक है और तत्सदृश समाज से जनमानस की बुद्धि को निवृत्त करने का उपदेश करती है। यह अलग की बात है कि परवर्ती विद्वानो ने कुछ नाटिकाओ के अनुकरण पर अथवा लक्षणानुसारी प्रवृत्ति के व्यामोह मे नाटिका के विकास मे बाधा उत्पन्न कर दी हो। इस बात की पुष्टि **डा. कीथ** के इस कथन से होती है कि—

"नाटक का आदर्शवादी स्वरूप नाटिका तक भी व्याप्त है। नाटिका मे यथार्थवादी जीवन के प्रति अधिक सूक्ष्म दृष्टि की सम्भावना की जा सकती थी परन्तु नाटककारो ने यथार्थ चित्रण का कोई प्रयत्न नही किया है।"[५]

---

१ **ना. द. सू. ३।**

२ **भाव प्र अधि ७, पृष्ठ १८०-१८१ (गा ओ सी)।**

३ **सभेदा कैशिकी यत्र श्रृगारद्वयमुज्ज्वलम्।**
चतुरक सहासच नाटक नाटिका विदु ॥ **ना ल. र. कारिका ३५१.**

४ **ना शा. ४/१२.**

५ **कीथ सस्कृत ड्रामा (सस्कृतनाटक) (अनु. उदयभानुसिंह), पृष्ठ २९७।**

(द) कथावस्तु की दृष्टि से नाटिकाओ का वर्गीकरण

सस्कृत साहित्य मे नाटिकाओ की रचना नाटक की अपेक्षा अत्यल्प हुई है फिर भी उपलब्ध एव अनुपलब्ध नाटिकाओ के विवरण से यह ज्ञात होता है कि सस्कृत के परवर्ती काल मे नाटिकाओ की रचना अपेक्षाकृत अधिक हुई है और उनमे समसामयिक परिस्थितियो का तथा राजसिक भोगविलास का विशेष चित्रण किया गया है।

यद्यपि लक्षणकारो ने 'नाटिका का इतिवृत्त प्रकरण के अनुसार कवि कल्पित होता है' यह स्वीकार है, परन्तु उपलब्ध नाटिकाओ के इतिवृत्त प्राय एक जैसी घटनाओ की रूढियो पर विकसित हुए है, फलत उनमे कल्पना का उतना स्वातत्र्य नही है जितना कल्पित इतिवृत्त मे अपेक्षित था। कल्पित इतिवृत्त मे भी मूल स्रोत के आधार पर नाटिकाओ की कथावस्तु मे भिन्नता है। अनेक ऐसी भी नाटिकाएँ है जिनका इतिवृत्त या तो पौराणिक आख्यानो पर आधृत है या ऐतिहासिक तथ्यो का स्पर्श करता हुआ है। घटनाक्रम की दृष्टि से भी उनमे पर्याप्त मौलिक भिन्नताएँ है।

उपलब्ध नाटिकाओ के इतिवृत्त पर तात्विक दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो विभिन्न नाटिकाओ मे कुछ ऐसे तत्व उभर कर आते है जिनके आधार पर नाटिकाओ को विभिन्न वगो मे विभक्त किया जा सकता है। ये प्रमुख तत्व है इतिवृत्त के कल्पित, पौराणिक एव ऐतिहासिक स्वरूप। इन्ही तीनो के आधार पर सस्कृत नाटिकाओ का त्रिविध वर्गीकरण किया जा रहा है

(क) कल्पित इतिवृत्तात्मक नाटिकाएँ—

सस्कृत नाटिकाओ के जन्मदाता श्री हर्षदेव की रत्नावली और प्रियदर्शिका, राजशेखर की विद्धशालभजिका, विश्वनाथ की चन्द्रकला, आधुनिक कवि वीरराघव कृत मलयजा कल्याणम्, क्षेमेन्द्र कृत ललितरत्नमाला, राज चूडामणि की कमलिनी कलहस, विश्वनाथ की मृगाकलेखा, एव विश्वेश्वर की नवमालिका आदि नाटिकाओ का इतिवृत्त सर्वथा कवि कल्पित होने के कारण इन सभी नाटिकाओ को एक वर्ग मे रखा जा सकता है।

रत्नावली और प्रियदर्शिका

वत्सराज उदयन और वासवदत्ता के प्रसिद्ध चरित्र को नायक नायिका की भूमिका देकर कविवर श्री हर्षदेव ने सागरिका और प्रियदर्शिका नायिकाओ की नवीन कल्पना के साथ उनके विविध प्रणय प्रसगो का कलात्मक सयोजन कर कवि प्रतिभा को प्रकाशित किया है। भारतीय साहित्य का प्रसिद्ध चरितनायक वत्सराज उदयन इन दोनो नाटिकाओ का नायक है। उदयन का चरित्र कथासरित सागर के द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ लम्बको मे विस्तार से वर्णित है। हर्षदेव को इन नाटिकाओ की प्रेरणा इसी ग्रन्थ से मिली यह कहना अनुचित न होगा। अतएव नायक, नायिका अथवा इतिवृत्त की ऐतिहासिकता का कोई प्रमाण उपलब्ध

न होने के कारण ये दोनो ही नाटिकाएँ कल्पित इतिवृत्तात्मक है। उदयन चरित्र की प्रसिद्धि के कारण इन दोनो के इतिवृत्त को प्रख्यात भी माना जा सकता है।

विद्धशालभंजिका

१०वी शती के आरम्भ अथवा ९वी शती के अन्तिम भाग मे समुत्पन्न[१] कवि राजशेखर की इस नाटिका का नायक लाट देश का अधिपति नृपति श्रेष्ठ चन्द्र वर्मा है।[२] प्रसिद्ध आधुनिक विद्वान् वाचस्पति गैरोला ने इस नाटिका की नायिका लाट देश की राजकुमारी स्वीकार की है।[३] परन्तु उन्होने इसकी ऐतिहासिकता का कोई प्रमाण नही दिया है। अत केवल नायक की ऐतिहासिकता से अवशिष्ट पात्रो व घटनाओ की प्रामाणिकता स्वीकृत नही होती। काव्य मीमासा के—

'पठन्ति लाटभं लाटा. प्राकृतं सस्कृत द्विष ।
जिह्वया ललितोल्लाप लब्ध सौन्दर्य मुद्रया ॥'

श्लोक के आधार पर गैरोला महोदय का यह कथन है कि "राजशेखर लाट देश से सुपरिचित थे क्योकि उन्होने इस श्लोक मे लाटदेश मे प्रयुक्त होने वाली भाषा का परिचय दिया है।"[४] केवल कवि के निवास स्थान सम्बन्धी समस्या को सुलझाने मे सहायक है, नाटिका की ऐतिहासिकता मे नही।

मलयजा कल्याणम्

१८वी शती के दाक्षिणात्य कवि वीरराघव ने 'मलयाजकल्याणम्' नामक नाटिका की रचना की। इस नाटिका का नायक तोण्डीर देशाधीश देवराज है। आखेट मे गये हुए देवराज ने मलयराज पुत्री को देखा और उसके प्रति आसक्त हो गया। रीतिबद्ध घटनाओ के पश्चात् उन दोनो का विवाह हो जाता है।

मलयजा कल्याणम् का यह कथानक किसी भी रूप मे ऐतिहासिक नही है क्योकि आखेट मे देवराज का जाना व किसी कन्या के प्रति आकृष्ट होकर उससे विवाह करना यह इतिहास से प्रमाणित नही होता।

उपर्युक्त सभी नाटिकाएँ इतिवृत्त की दृष्टि से पूर्णत कवि की निजी कल्पना है। नाटिका के नायक के अनुसार क्षत्री राजा के रूप मे प्रदर्शित करने की अनिवार्यता[५] के कारण ही नाटिकाकारो ने नायको को किसी देश विशेष के

१ 'निर्भयराज महेन्द्रपाल (८५५-९१०) साहित्यकारो का सरक्षक था। उसके दरबार मे विद्वान्, साहित्यिक और कवि राजशेखर का निवास था।
—प्रा. भारत का इति., पृष्ठ ३१४.

२ विद्ध, १/९

३ स. सा. स. इति., पृष्ठ ६०७।

४ वही, पृष्ठ ६०७"६०८।

५ दश. ३/४३-४४

राजा के रूप मे चित्रित किया है। अत मात्र नायक (राजा) के आधार पर इन नाटिकाओ को ऐतिहासिक नही कहा जा सकता। इसी प्रकार क्षेमेन्द्र की ललित रत्नमाला, राज चूडामणि दीक्षित की कमलिनी कलहस, विश्वनाथ शर्मा की मृगाकलेखा एव विश्वेश्वर पाण्डेय की नवमालिका नाटिकाओ का इतिवृत्त भी कविकल्पित है।

(ख) पौराणिक इतिवृत्तात्मक नाटिकाएं

उषारागोदया, सुभद्रा, बनमाला, प्रभावती, वृषभानुजा एव चन्द्रप्रभा ऐसी नाटिकाएँ है जिनका इतिवृत्त पौराणिक आख्यानो पर आधृत है।

उषारागोदया—

१२वी शती के अन्तिम भाग मे दक्षिण भारत के प्रौल द्वितीय के पुत्र रुद्रचन्द्रदेव ने उषारागोदया नामक नाटिका की रचना की थी।

इस नाटिका का इतिवृत्त श्रीमद्‌भागवत महापुराण के १०म् स्कन्ध से ग्रहण किया गया है।[१] इसके प्रमुख पात्र अनिरुद्ध, श्रीकृष्ण, नारद, उद्धव, बाणासुर पुत्री उषा एव रुक्मवती है जो अनेक पुराणो मे भूरिश वर्णित है। श्रीमद्‌भागवत् के दशम स्कन्ध मे उषा और अनिरुद्ध का अन्योन्यानुराग एव उनका विवाह जो इस नाटिका की मूल कथा है, बडे विस्तार से वर्णित है। अत मूलकथा के पुराण पर आधृत होने के कारण ही इस नाटिका को पौराणिक नाटिका वर्ग मे स्वीकार किया है।

इस नाटिका की मूलकथा सस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध कथा ग्रन्थ 'कथा-सरित सागर' मे भी उपलब्ध है जहाँ उसे ३३ श्लोको का विस्तार दिया गया है।[२]

सुभद्रा—

१३वी शती के प्रसिद्ध सस्कृत साहित्यकार हस्तिमल्ल ने 'सुभद्रा' नामक एक नाटिका लिखी थी।[३] इस नाटिका का कथानक भी पौराणिक आख्यान पर आधृत है। यह प्रो बाबूलाल शुक्ल के उषारागोदया नाटिका के आमुख मे किए गए उल्लेख से स्पष्ट है।[४]

वनमाला—

११वी शती के नाट्यशास्त्री रामचन्द्र ने वनमाला नामक नाटिका की रचना की थी, यह उनके नाट्यदर्पण ग्रन्थ के इस उल्लेख से स्पष्ट है—'अस्मदुपज्ञाया वनमाला नाटिकायाम्'।[५] यह नाटिका आज उपलब्ध नही है इसलिए इसका विशेष विवरण तो नही दिया जा सकता किन्तु नाट्यदर्पण मे उदाहृत नाटिका के एक

१ श्रीमद्‌भाग. स्कन्ध १० अध्याय, ६२।
२ कथासरित लम्बक ६/११-३२.
३ स सा स इति., पृष्ठ ६२५।
४ उषा आमुख, पृष्ठ १।
५ ना द. पृष्ठ ३११।

पद्य और उसके पूर्वकथन[1] के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इसका कथानक महाभारत के प्रसिद्ध नलोपाख्यान से गृहीत किया गया है।[2] इसमे नल और दमयन्ती का प्रेम और उनका विवाह मुख्य कथा के रूप मे वर्णित है। अत नाटिका की पौराणिकता मे सन्देह की अपेक्षा नही।

प्रभावती नाटिका—

प्रसिद्ध नाट्य शास्त्रिय ग्रन्थ साहित्यदर्पण के रचयिता विश्वनाथ ने प्रभावती नामक नाटिका की रचना की थी।[3] यह नाटिका भी आज उपलब्ध नही है किन्तु इसके कुछ उद्धरण यत्र तत्र साहित्य दर्पण मे उपलब्ध है जिनके आधार पर उषारागोदया आदि कतिपय नाटिकाओ के सम्पादक प्रो बाबूलाल शुक्ल ने लिखा कि 'प्रभावती नाटिका पौराणिक आख्यान (प्रद्युम्न तथा प्रभावती की प्रणय तथा परिणय गाथा) को लेकर रची गई थी किन्तु आज केवल उसके उद्धरण ही उपलब्ध है।'[4]

श्रीमद्भागवत महापुराण मे प्रद्युम्न भगवान् श्रीकृष्ण का पुत्र (कामदेव का अवतार) माना गया है। उसकी पत्नी रति है जो शकर के द्वारा दग्ध अपने पति के पुनर्जन्म की अब तक प्रतीक्षा कर रही थी। 'प्रभावती' नाटिका मे प्रद्युम्न (नायक) आदि श्रीमद्भागवत का ही प्रद्युम्न है तो प्रभावती निश्चय ही रति है। दोनो का विवाह (मिलन) पुराण मे भी होता है।[5] अत इस दृष्टि से यह नाटिका भी पौराणिक इतिवृत्त पर आधारित होने के कारण पौराणिक इतिवृत्तात्मक नाटिकाओ के वर्ग मे सम्मिलित की जा सकती है। नाटिका का विस्तृत विवरण प्राप्त न होने के कारण अधिक कुछ नही कहा जा सकता।

वृषभानुजा—

१९वी शती मे कायस्थ कुलोत्पन्न श्री मथुरादास ने श्रीकृष्ण और राधा की प्रणय क्रीडाओ के आधार पर 'वृषभानुजा' नामक नाटिका की रचना की थी।[6] श्रीमद्भागवत पुराण के दशम स्कन्ध मे राधा कृष्ण के विभिन्न प्रणय प्रसगो का वर्णन किया गया है। कवि ने वही से नाटिका के नायक नायिका एव प्रेम पद्धति को ग्रहण कर नाटिका की सरचना की[7] अतएव यह नाटिका भी पौराणिक आख्यान पर आधृत है यह स्वत सिद्ध हो जाता है।

१ राजा—(दमयन्तीं प्रति) —
दृष्टि कथ जरठपाटल पाटलेय कम्प किमेष पदमोष्ठतले बबन्ध।
नारग रग हरण प्रवण प्रियेऽस्य वक्त्रस्य कुकुममृतेऽरुणिमा कुतोऽयम्॥
—ना द., पृष्ठ ३१९

२ महाभा वनपर्व, अध्याय ५३-७३.

३ उषा., आमुख, पृष्ठ १।

४ वही।

५ श्रीमद्भाग, स्कन्ध १०, अध्या. ५५।

६ स सा इति., पृष्ठ ६२८।
स ना. पृष्ठ २७१।

७ स सा इति (बल.) पृष्ठ ६२६।

चन्द्रप्रभा—

१९वीं शती के पूर्वार्द्ध मे गोपालकृष्ण नामक कवि द्वारा रचित चन्द्रप्रभा नाटिका भी पौराणिक इतिवृत्त पर आधारित है क्योकि इसमे शर्मिष्ठा और ययाति का प्रणय मुख्यत वर्णित है। देवयानी नारद आदि पात्र भी पौराणिक है। श्रीमद्भागवत् पुराण मे शर्मिष्ठा ययाति का विवाह प्रसंग वर्णित है।[1] चन्द्रप्रभा मे कवि ने स्पष्टत कहा है कि चन्द्रप्रभा शर्मिष्ठा का ही नाम है।[2]

पौराणिक आख्यानो को आदर्श मानकर लिखी गई इन नाटिकाओ मे यद्यपि नाटिका के लक्षण के अनुसार कल्पित इतिवृत्त का अभाव है फिर भी इन्हे नाटिका श्रेणी से पृथक् नही किया जा सकता क्योकि कवियो ने पौराणिक नायक, नायिका एव प्रमुख (पर्यवसानात्मक) घटना के अतिरिक्त शेष सभी आवश्यकताओ की स्वत: कल्पना की है जिसमे सहायक पात्र, प्रासगिक, इतिवृत्त, एव नवीन घटनाओ का रुचिर सन्निवेश है। अत. पौराणिक इतिवृत्त होते हुए भी इनमे नाटिका की रूढियो एव मान्यताओ का बडी तत्परता से पालन किया गया है।

(ग) ऐतिहासिक नाटिकाएँ

कल्पित इतिवृत्त की अनिवार्यता के कारण यद्यपि ऐतिहासिक नाटिकाओ की रचना का प्रश्न ही नही उठता फिर भी कवि अपनी इच्छा और कल्पना का धनी होता है। अतएव कुछ ऐसी भी नाटिकाओं की रचना हुई जिनके इतिवृत्त में ऐतिहासिक निर्देश विद्यमान है।

पारिजात मंजरी—

ऐतिहासिक नाटिकाओ मे मदन बाल सरस्वती[3] रचित 'पारिजात मजरी' नाटिका प्रमुख है। पाश्चात्य आलोचक कीथ ने इस नाटिका का दूसरा नाम विजयश्री भी दिया है।[4] चार अको वाली इस नाटिका के केवल दो अक ही उपलब्ध है जो धारा मे शिलालेख के रूप मे संरक्षित है।[5]

नाटिका का नायक अर्जुन वर्मा है जो दक्षिण भारत का शासक था। वह जब चालुक्यराज भीमदेव द्वितीय पर विजय प्राप्त कर लेता है तो उसके वक्षस्थल पर एक माला गिरती है और वह एक युवासुन्दरी के रूप मे परिवर्तित हो जाती है। वस्तुत. वह चालुक्य कन्या है,[6] उसे कचुकी के सरक्षण मे सौप दिया जाता

---

१ श्रीमद्भागवत्, स्कन्ध ९, अध्या. १८।

२ सूत्रधार—अथकिं नायिकाया: पितृकृत नाम शर्मिष्ठेति, मातृकृत चन्द्रप्रभेति अपि च—
पुत्रीयं वृषपर्वणोदनुजने ख्यातैव चन्द्रप्रभा
शर्मिष्ठेत्यपराभिधान विहिता भूयोगुणंगुम्फिता
याकस्मादवलोकितावनियतेश्चित्त जहाराजसा
मामाप्तु नहुषात्मज: कवि सुता शीलानुकुलोऽभवत्॥ —चन्द्र., पृष्ठ २-३.

३ आचार्य बलदेव उपाध्याय ने मदनपाल सरस्वती नाम लिखा है।
—सं. सा. इति. पृष्ठ ६२६.

४ सं. ना. पृष्ठ २७१।

५ वही, पृष्ठ २७१; सं. सा. सं. इति., पृष्ठ ६२५।

६ सं. सा. इति., पृष्ठ ६२६ (बलदेव)।

है। राजा अर्जुन वर्मा का उसके प्रति अनुराग बढता है और अन्त में अन्तःपुर की विभिन्न रूढिबद्ध घटनाओ के पश्चात् उस चालुक्यराज कन्या का अर्जुन वर्मा से विवाह हो जाता है।[१]

इस कथानक मे अर्जुन वर्मा की चालुक्यराज भीमदेव द्रितीय पर विजय, चालुक्य राज की कन्या से अर्जुन वर्मा का विवाह, ये दोनो घटनाएँ ऐतिहासिक है। अतएव इसका मूल कथानक ऐतिहासिक होने के कारण इस नाटिका को ऐतिहासिक माना जा सकता है।[२]

चालुक्यराज भीमदेव द्रितीय का काल श्रीभगवतशरण उपाध्याय ने १२वी शती का मध्य स्वीकार किया है[३]

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने इस नाटिका का काल १३वी शताब्दी का प्रारम्भ बतलाया है[४] जिससे यह निश्चित हो जाता है कि डा. भगवतशरण उपाध्याय के द्वारा 12वी शती के मध्य जिस भीमदेव द्रितीय का नामोल्लेख इतिहास मे किया गया है वही इस नाटिका मे निर्दिष्ट भीमदेव द्रितीय है जिसे चालुक्यराज कहा गया है। अतः इस नाटिका की ऐतिहासिकता पर सन्देह नही किया जा सकता है।

नाटिका की लाक्षणिक मान्यता (कल्पित इतिवृत्त) की पूर्ति न होने से यह नाटिका नही है ऐसा स्वीकार नही किया जा सकता, क्योकि कवि ने ऐतिहासिक इतिवृत्त ग्रहण करने के बाद भी उसमे आकाश से पुष्पमाला का गिरना, उसका सुन्दरी के रूप मे परिवर्तित होकर विविध प्रणय व्यापारो का उपक्रम करना आदि अनेक आधारभूत घटनाओ की नवीन कल्पना की है। साथ ही वे सभी रूढ़ियाँ जो नाटिका के लिए अनिवार्य थी इस नाटिका मे विद्यमान हैं। इसकी सूचना कीथ के उस कथन से प्राप्त हो जाती है—'रीतिबद्ध घटना क्रम के अनुसार राजा से उसका विवाह होता है।'[५]

कर्णसुन्दरी—

विक्रमाक देव चरित ऐतिहासिक महाकाव्य के प्रणेता बिल्हण की 'कर्णसुन्दरी' नाटिका भी ऐतिहासिक तत्वो के आधार पर रची गई ऐसा प्रतीत होता है। क्योकि बिल्हण ने अपने आश्रयदाता अणहिल्लपुर पाटन के चालुक्य नरेश कर्ण त्रिभुवन मल्ल (१०६३-१०९३ ई.)[६] की प्रशस्ति मे उन्ही को नायक बनाकर नाटिका की रचना की, ये कर्ण भीमदेव के पुत्र हैं।[७]

---

१ सं ना., पृष्ठ २७१। —सं. ना., पृष्ठ २७१.

२ असन्दिग्ध रूप से उसमें ऐतिहासिक निर्देश है, उसका रचनाकाल १३वीं शताब्दी का प्रथम चरण है।

३ प्राचीन भा. इति., पृष्ठ ३५०।

४ 'इस नाटिका का समय १३वी शती का प्रारम्भ है। अर्जुनवर्मा ही इसके नायक हैं।' —सं. सा. इति., पृष्ठ ६२६.

५ (कीथ) स. ड्रामा, हि. अनु उदयभानुसिंह, पृष्ठ २७१।

६ प्रा. भा. पृष्ठ ३४९।

७ कर्ण. १/१०.

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने न केवल नायक को ऐतिहासिक पुरुष माना है अपितु इस नाटिका की नायिका विद्याधर राजपुत्री को भी ऐतिहासिक मानकर लिखा कि—"विद्वानो की मान्यता है कि यह राजपुत्री दक्षिण कदम्बवश की राजपुत्री 'मयणल्ला' से भिन्न नही है, जिसका वर्णन हेमचन्द्र ने अपने द्वयाश्रय महाकाव्य के नवम सर्ग मे लगभग ८४ श्लोको मे किया है।[१]

डा दास गुप्ता भी इस मत से सहमत है कि कर्णसुन्दरी नाटिका की रचना राजा कर्णदेव के कर्णाटक राजा जयकेशी की पुत्री के साथ किये गए विवाह के वर्णनार्थ की गई है।[२]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नाटिका के प्रमुख पात्र नायक-नायिका एव मुख्य कथा—'उन दोनो का विवाह' ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य होने के कारण यह नाटिका भी ऐतिहासिक है। फिर भी घटनाओ की योजना, सहायक पात्रो की कल्पना एव नाटिका सम्बन्धी रूढियॉ कवि ने निजी कल्पना शक्ति के आधार पर सघटित कर नाटिका स्वरूप की रक्षा की है।

इस (कल्पित, पौराणिक और ऐतिहासिक) त्रिविध वर्ग की नाटिकाओ के अतिरिक्त कुछ ऐसी भी नाटिकाऍ है जिनका विविध ग्रन्थो मे यत्र तत्र नामोल्लेख तो है पर वे आज तक भी समुपलब्ध नही हो सकी है। फलत इनकी कथावस्तु आदि के आधार पर किसी भी प्रकार का वर्गीकरण असभव है। 'अनुपलब्ध नाटिकाऍ' नाम से इनका एक वर्ग बनाया जा सकता है। सक्षिप्तत यहॉ उनके लेखक व उल्लेख स्थल का विवरण दिया जा रहा है

अनुपलब्ध नाटिकाऍ—

नाटिका	**नाम लेखक**	**उल्लेख स्थल**
१ ग्रामेयी	अज्ञात	सागरनन्दी[३]
२ ललित	रत्नमाला	क्षेमेन्द्र दासगुप्ता[४]
३ वासन्तिका	अज्ञात	दासगुप्ता[५]
४ श्रृगार वाटिका	विश्वनाथ भट्ट	एम एम कृष्णमाचारी[६]
५ कोशलिका	भट्ट भवनुत चूडामणि	रामचन्द्र गुणचन्द्र[७]

१ स. सा इति., पृष्ठ ६२५-६२६।

२ 'एण्ड एपेरेण्टली रोट दिस वर्क ऐज ए काप्लीमेण्ट टु दि चालुक्य कर्णदेव त्रैलोक्यमल्ल आव अन्हिलवाड़ (१०६४-९४ ए डी) हूज एक्चुअल मेरिज टु ए प्रिंसेज इट सेलीब्रेट्स अण्डर दि गाइज आव ए रोमेण्टिक स्टोरी।'
(दास गुप्ता) हि. स लिट., पृष्ठ ४७१.

३ ना ल. र. को., पृष्ठ २६१।

४ हि. स. लिट., पृष्ठ ४७१।

५ हि. स लिट., पृष्ठ ४७३।

६ हि. क्लासि. स लिट., पृष्ठ ७४८, (दास गुप्ता) हि. स लिट., पृ.४७३।

७ ना द., पृष्ठ ३०।

६	इन्दुलेखा	अज्ञात	रामचन्द्र गुणचन्द्र[१]
७	अनगवती	,, ,,	रामचन्द्र गुणचन्द्र[२]
८	रामाक नाटिका	धर्मगुप्त	एमएम कृष्णमाचारी[३]
९	चन्द्रकला	नारायण	एम एम कृष्णमाचारी[४]
१०	पुष्पमाला	चन्द्रशेखर महापात्र	विश्वनाथ कविराज[५]
११	कनक लेखा कल्याण	वामनभट्ट बाण	डा कपिलदेव द्विवेदी[६]
१२	ललित नाटिका	अम्बिकादत्त व्यास	डा हीरालाल[७]
१३	मुक्तावली	सोठी भद्रादि रामशास्त्री	डा हीरालाल[८]
१४	चन्द्रप्रभा	मेघविजय	दासगुप्ता[९]
१५	इन्दुमती	अज्ञात	एम एम कृष्णमाचारी[१०]
१६	चित्रलेखा	, ,	एम एम कृष्णमाचारी[११]
१७	पद्मावती	, ,	एम एम कृष्णमाचारी[१२]
१८	कुवलयवती	कृष्णकवि शेखर	एम एम कृष्णमाचारी[१३]
१९	गृहवृत्त वाटिका	—	विश्वनाथ कविराज[१४]

निष्कर्ष—

इस प्रकार नाटिकाओ की इतिवृत्त सम्बन्धी विशेषताओ के आधार पर उनका काल्पनिक, पौराणिक और ऐतिहासिक त्रिविध वर्गीकरण किया गया है।

उन नाटिकाओ का एक पृथक् वर्ग बनाया गया है जो किसी भी रूप मे उपलब्ध नही है केवल यत्र तत्र शास्त्रीय ग्रन्थो मे ही जिनका नामोल्लेख किया गया है। इस वर्ग का नाम 'अनुपलब्ध नाटिकाएँ' दिया है।

---

१ वही, पृष्ठ १९४।
२ वही, पृष्ठ २८०।
३ हि क्लासि. स लिट., पृष्ठ ७४८।
४ हि० आव क्लासि स लिट. पृ ७४८
५ सा द., पृष्ठ १७३।
६ स सा समी. इति, पृष्ठ ४८५।
७ आधु. स सा पृष्ठ १२३।
८ आधु स सा., पृष्ठ १२३।
९ हि स लिट., पृष्ठ ३७५।
१० क्लासि. स लिट., पृष्ठ ७४८।
११ क्लासि. स. लिट., पृष्ठ ७४८।
१२ वही।
१३ वही।
१४ सा. द., पृष्ठ २०९।

द्वितीय अध्याय

ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक समीक्षा

(अ) कवि परिचय, काल एवं कृतित्व की प्रामाणिकता।
(ब) पात्र परिचय एवं प्रतीकात्मकता।
(स) कवि की नाट्य प्रतिभा।

कवि परिचय, काल एवं कृतित्व की प्रामाणिकता

संस्कृत साहित्य विश्व का ऐसा अप्रतिम विलक्षण साहित्य है जिसमे कवि अपनी रचनाओ मे अपने नाम, स्थान व काल आदि के उल्लेख मे सर्वथा निरपेक्ष रहे हैं। इसका कारण चाहे उनका महत्वाकाक्षी न होना हो या स्वय स्व प्रशसा का अभाव हो किन्तु इससे इतिहास लेखको, आलोचको एव समीक्षको को बडी असुविधा का सामना करना पड़ा है। इसी का दुष्परिणाम है कि देशी, विदेशी अनेक विद्वान् प्राचीन कवियो के विषय मे अनेक अविश्वसनीय भ्रान्तियॉ एव काल स्थान आदि के सम्बन्ध मे परस्पर विरोधी विचारो को प्रस्तुत करने मे सफल हुए हैं।

सौभाग्य का विषय है कि सस्कृत नाटिकाओ मे कवियो ने इस सम्बन्ध में अपेक्षाकृत उदारता बरती है एव अपना, अपने आश्रयदाता तथा स्थान आदि का यथासंभव उल्लेख किया है। इससे स्थान, काल और कृतित्व की प्रामाणिकता मे आधारभूत सफलता मिली है, किन्तु विशाल संस्कृत वाङ्मय के पाश्चात्य विवेचकों ने प्राय: अनेक अटकलें भी इस सम्बन्ध मे उपस्थित की—जिससे इस विषय की प्रामाणिकता प्रतिपादन में प्रभूत कठिनाई भी प्रादुर्भूत हुई। अत: अन्त साक्ष्य एवं बहि:साक्ष्य के आधार पर नाटिकाकारो का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

सम्प्रति संस्कृत नाटिकाओं की एक लम्बमाना सूची प्रकाश मे है किन्तु उसमें अनेक नाटिकाएँ उपलब्ध नहीं हैं; अनेको के रचयिताओ का नाम ज्ञात

नही, अनेको का केवल यत्र तत्र ग्रन्थो मे उल्लेख है और अनेको के कुछ पद्य ही उदाहरण रूप मे दिए गए है।

अत यहाँ मुख्यत उपलब्ध नाटिकाओ के रचयिताओ को ही प्रधानता देकर उनका सम्यक् किन्तु सारात्मक विवेचन किया जा रहा है। जो नाटिकाएँ उपलब्ध नही है किन्तु उनके रचयिता का काल एव नाम ज्ञात है उनका भी वर्णन यथास्थान करने का प्रयत्न किया गया है। इस प्रकरण के अन्त मे आनुषंगिक रूप से उन सभी कवियो का विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है जिनका कही किसी भी रूप मे नाटिकाकार के रूप मे उल्लेख हुआ है।

(१) श्री हर्षबर्धन

परिचय— समस्त उपलब्ध नाटिकाओ मे सबसे प्राचीन एवं परवर्ती सभी नाटिकाकारो के द्वारा अनुकूल रत्नावली नाटिका सस्कृत नाटिका साहित्य की प्रथम कृति है। इसके लेखक स्थाणेश्वर एवं कन्नौज के सम्राट हर्षवर्धन हैं। नाटिका मे कवि के नाम के साथ-साथ राजा होने का भी स्पष्टोल्लेख हैं;[१] किन्तु जन्म-स्थान, काल आदि का कोई विवरण नही।

काल—बहि: साक्ष्य के अनुसार महाकवि बाणभट्ट जो इनके आश्रित कवि थे, ने हर्षचरित लिखकर प्राय· इनके विषय मे स्पष्ट जानकारी दी है।[२] तदनुसार हर्ष का राज्यकाल ६०६ ई० से ६४८ ई० तक निश्चित होता है। चीनी यात्री ह्वेनत्साग, इत्सिग आदि के यात्रा सस्मरणो से भी हर्ष का उपरिलिखित काल ही निश्चित किया गया है।

८०० ई० के कश्मीरी राजा जयापीड के आश्रित कवि दामोदर गुप्त ने कुट्टनीमत मे रत्नावली के उदाहरण देकर उन्हे हर्षकृत बताया है। हर्ष के काल सम्बन्ध मे पर्याप्त खोज की जा चुकी है अत. उसका यहाँ पिष्टपेषण करना उचित प्रतीत नही होता। हर्ष एक ऐतिहासिक पुरुष हैं जो ७ वीं शती के सम्राट् महाराजा हर्षवर्धन, हर्षदेव या श्रीहर्ष के रूप मे काव्यजगत् मे जाने जाते हैं। इनके पिता प्रभाकरवर्धन, बडे भाई राज्यवर्धन और बहिन राज्यश्री थी। थानेश्वर इनकी पैतृक राजधानी थी जिसको बदलकर इन्होने (कान्यकुब्ज) कन्नौज को राजधानी बनाया था।[३] ये वीर पराक्रमी राजा तो थे ही अत्यन्त उदार और दानी भी थे।

---

१ 'राज्ञः श्रीहर्षदेवस्य पादपद्मोपजीविना राजसमूहेनोक्तो यथा-अस्मत्स्वामिना श्रीहर्षदेवेनापूर्ववस्तुरचनालकृता रत्नावली नाम नाटिका कृता।'
श्री हर्षो निपुणः कविः परिषदप्येषा गुणग्राहिणी
लोके हारि च वत्सराजचरितं नाट्ये च दक्षा वयम्।
—रत्ना०, पृष्ठ ६ (१/५)

२ हर्षचरित १/१८.

३ (बलदेव) सं० सा० इति०, पृष्ठ ५५३-५४।

कृतित्व—हर्ष की तीन कृतियॉ है—नागानन्द, रत्नावली और प्रियदर्शिका। किन्तु इनके सम्बन्ध मे पर्याप्त मतभेद है कि ये सभी रचनाएँ हर्ष की ही है या कुछ हर्ष की कुछ अन्य किसी लेखक की आदि।

इन मतो को ४ भागो मे वर्गीकृत किया जा सकता है—(१) लेखक धावक, (२) लेखक बाण, (३) विविध लेखक, और (४) लेखक श्रीहर्ष।[१]

प्रथम वर्ग के अन्तर्गत आचार्य मम्मट के काव्यप्रकाश की 'श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्'[२] यह पक्ति आधार है। इसे काव्य के प्रयोजन 'अर्थकृते' के उदाहरण रूप मे मम्मट ने इस उद्देश्य से लिखा था कि श्रीहर्ष आदि मे धावक आदि कवियो ने जैसे काव्यरचना कर प्रभूत धन प्राप्त किया। किन्तु कुछ टीकाकारो ने व्याख्या मे यह स्पष्ट किया कि धावक ने रत्नावली आदि ग्रन्थो की रचना कर इन्हे हर्ष की कृति घोषित कर दिया और इसके बदले हर्ष से प्रभूत धन लिया। यह सर्वथा असगत है। क्योकि धावक भी बाण के समान ही हर्ष की राजसभा का कवि था।

द्वितीय वर्ग—काव्यप्रकाश की निदर्शना टीका मे 'धावकादीनामिव के स्थान पर 'बाणादीनामिव' पाठ मिलता है, जिसे आधार मानकर पाश्चात्य आलोचक व्यूलर और डा0 हाल ने यह माना कि ये तीनो रचनाएँ बाण की है।[३] किन्तु बाण की अन्य रचनाओ से इनकी तुलना करने पर स्पष्टत शैली मे बहुत अधिक अन्तर है। साथ ही बाण नागानन्द जैसे बौद्ध ग्रन्थ का लेखक कभी नही हो सकता।

तृतीय वर्ग—श्री कावेल (Cowell) महोदय ने रत्नावली का लेखक बाण, नागानन्द का धावक और प्रियदर्शिका का लेखक अज्ञात कवि बतलाया है जो सर्वथा निर्मूल, निराधार है। तीनो नाट्य कृतियो मे एकता का विवेचन आगे किया जा रहा है। जहॉ यह स्पष्ट हो जायेगा कि तीनो का रचयिता एक ही कवि है।

डा० कीथ ने यद्यपि डा0 व्यूलर एव कावेल के मतो की आलोचना की और यह सिद्ध कर दिया कि ये तीनो कृतियॉ एक ही कवि की रचनाएँ है, किन्तु उनका यह मत कि—'अत हमे यह विश्वास करना पडता है कि हर्ष ने पण्डितो की सहायता से उन नाटको की रचना की, अथवा यह स्वीकार्य है कि वे किसी अज्ञात नाटककार की कृतियॉ है, जिसने राजा को उनका रचयिता होने का श्रेय प्रदान किया।'[४] सर्वथा अस्वीकार करने योग्य है, क्योकि भारत के

---

१ म० सा० समी० इति०, पृष्ठ ३६६।
२ का० प्र० १/२ की वृत्ति।
३ कीथ (स० ड्रामा) स० ना० हिन्दी अनु०, पृष्ठ १७३।
४ स० ना० (हि० अनु०), पृष्ठ १७३।

अनेक राजा जहाँ योग्य शासक हुए है वही परम विद्वान्, स्वय कवि और कवियो के आश्रयदाता रहे है। स्वय हर्ष की सभा मे बाण, मयूर आदि अनेक कवि रहते थे।

अत काव्यप्रकाश की एक पक्ति को जिसमे यह स्पष्ट है कि श्रीहर्ष से अनेक कवि अर्थलाभ करते रहे, विवाद का विषय बनाकर इन कृतियो को हर्षकृत न माना जाय, उचित नही। बाण ने स्वत हर्ष को सरस्वती का अवतार लिखकर उसके कवि होने का स्पष्ट सकेत किया है।[१]

चतुर्थ वर्ग—प्रियदर्शिका, रत्नावली और नागानन्द नाटको के हर्षकृत ही होने मे निम्नलिखित प्रमाण है—

(1) तीनो नाट्यकृतियो मे हर्ष का नाम नाटककार के रूप मे लगभग एक जैसी ही भाषा मे प्राप्त होता है।[२]

(2) बाणभट्ट ने हर्षचरित मे हर्ष को कवि, विद्वान्, शास्त्रज्ञ और काव्यामृतवर्षी सरस्वती का अवतार कहा है।[३]

(3) तीनो नाटिकाओ की भाषा, शैली एक जैसी ही है।

(4) 7वी शती के चीनी यात्री इत्सिग ने अपने सस्मरण मे हर्ष को जीमूतवाहन से सम्बद्ध रगमचीय कथा का प्रणेता कहा जिससे हर्ष का नागानन्द का लेखकत्व सिद्ध होता है।

(५) ११वी शती के कवि सोड्ढल ने उदयसुन्दरी कथा मे श्रीहर्ष को गीर्हर्ष, कवीन्द्र कहा।[४]

(६) मधुवन और बासखेडा के अभिलेख जो ६२८ ई० के है, स्वय श्रीहर्ष की कृति है और उन पर श्रीहर्ष के हस्ताक्षर भी है मे श्रीहर्ष का कविरूप स्पष्ट है।[५]

(७) मयूर शतक के सम्पादक मधुसूदन (१६५४ ई०) ने रत्नावली नाटिका का लेखक हर्ष को बतलाया।

(८) विक्रमादित्य, शूद्रक, भर्तृहरि और हाल आदि अन्य अनेक ऐसे राजा हुए जो स्वय कवि थे तथा कवियो को अपनी राज्यसभा मे आदर से रखते थे।

---

१ हर्ष० परि(), पृष्ठ 74।

२ रत्ना() 1/5; प्रिय() 1/3; नागा()—श्रीहर्षदेवेनापूर्वरचनालकृत विद्याधर जातक प्रतिनिबद्ध नागानन्दनाम नाटक कृतम —पृष्ठ 4-5.

३ 'काव्यकथास्वापीतममृतमुद्वमन्तम्'—हर्ष च०, पृष्ठ ७१, विग्रहिणीमिव मुख निवासिनी सरस्वतीम्। —हर्ष च०, पृष्ठ ७४।

४ बलदेव—स० सा० इति०, पृष्ठ ५५५ पर उल्लिखित।

५ स० सा० समी० इति०, पृष्ठ ३६८ पर उल्लिखित।

इन उपर्युक्त प्रमाणो के आधार पर श्रीहर्ष ही इन तीनो नाटको के प्रणेता थे यह प्रमाणित हो जाता है।

इन रचनाओ के अतिरिक्त भी श्रीहर्ष ने दो बौद्ध स्तोत्रों की रचना की थी, ऐसा डा० कपिलदेव द्विवेदी का उल्लेख है।[१] ये दोनो स्तोत्र है—सुप्रभात तथा अष्टमहाश्री चैत्यस्तोत्र। इस प्रकार श्रीहर्ष प्रणीत कुल ५ ग्रन्थ है—तीन नाट्य एव दो स्तोत्र।

(2) राजशेखर

परिचय—महाराष्ट्र के यायावर क्षत्रियवश मे उत्पन्न अमात्यदर्दुक या दुहिक तथा शीलवती के पुत्र[२] राजशेखर स्वय को बाल्मीकि, भर्तृमेण्ठ व भवभूति का अवतार मानते है।[३] इनके पितामह अकालजलद, सुरानन्द तरल और कविराज जैसे कवियो के वशज थे। 'शैवधर्मानुयायी राजशेखर का विवाह तत्कालीन प्रसिद्ध चौहान वशी विदुषी अवन्तिसुन्दरी के साथ हुआ था।[४]

प० बलदेव उपाध्याय ने लिखा है कि—'कुछ दिनो के लिए ये दूसरे नरेश के यहाँ चले गए थे, जिनकी अध्यक्षता मे विद्धशालभजिका का अभिनय किया गया था। यहाँ से लोटकर ये फिर कान्यकुब्ज आए'[५] किन्तु उन्होने एतत्सम्बन्धी कोई भी प्रमाण प्रस्तुत नही किया।

काल—राजशेखर १०वी शती के पूर्वार्द्ध मे हुए थे और प्रतिहारवशी कन्नोज के राजा निर्भयराज महेन्द्रपाल एव उनके पुत्र महीपाल के दरवारी कवि थे। यह स्वय उन्ही के उल्लेख से विदित होता है।[६] महेन्द्रपाल का काल ८७३ ई० से ९०७ ई० तक तथा उनके पुत्र का राज्य 914 ई0 तक रहा है।[७] अत राजशेखर इसी अवधि मे हुए यह सिद्ध है। बहि साक्ष्य के अनुसार भी यही काल सिद्ध होता है क्योकि 960 ई0 के 'यशस्तिलक चम्पू' और 1000 ई0 के पार्श्ववर्ती लिखित 'तिलक मजरी' मे राजशेखर की लोकप्रियता का उल्लेख है।

---

१ स० सा० समी० इति०, पृष्ठ ३६८।

२ 'यायावरेण दौहिकिना कविराजशेखरेण विरचिताया विद्धशालया' —विद्ध०, पृष्ठ ३

३ बभूव वल्मीकभव कवि पुरा तत प्रपेदे भुविभर्तृमेष्ठताम्।
स्थित पुनर्योभवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखर.॥ —बालरामायण १/१९

४ (गेरोला) स० सा० इति०, पृष्ठ ८०९।

५ (बलदेव) स० सा० इति०, पृष्ठ ६०१।

६ 'रघुकुलतिलको महेन्द्रपाल सकलकलानिलय स यस्य शिष्य।' —विद्ध० १/६
'देवा यस्य महेन्द्रपाल नृपति शिष्यो रघुग्रामणी' —बालरामायण १/८

७ (दासगुप्ता) हि0 स0 लि0, पृष्ठ 455।

कृतित्व—राजशेखर ने बालरामायण मे अपने द्वारा प्रणीत 6 प्रबन्धो का उल्लेख किया है।[१] ये है—(1) बालरामायण, (2) बालभारत, (3) विद्धशालभजिका, (4) कर्पूरमजरी, (5) काव्यमीमासा और (6) हरविलास।

इनमे बालभारत का दूसरा नाम प्रचण्ड पाण्डव भी है। हरविलास महाकाव्य था जो आज उपलब्ध नही है। काव्यानुशासन विवेक और श्रृगारप्रकाश मे इसके अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये गये है।[२] काव्यमीमासा लक्षणग्रन्थ है शेष चारो नाट्य है जिनमे कर्पूरमजरी प्राकृत भाषा मे 4 अको मे लिखा हुआ सट्टक एव बालरामायण 10 अको का महानाटक है तथा बालभारत के केवल दो अक ही उपलब्ध होते है। विद्धशालभजिका ही शास्त्रीय दृष्टि से नाटिका है।

(३) बिल्हण

परिचय—विक्रमाकदेव चरित जैसे ऐतिहासिक महाकाव्य के प्रणेता कश्मीरी कवि बिल्हण ने विक्रमाकदेव चरित महाकाव्य के १८वे सर्ग मे अपनी सक्षिप्त वशावली दी है तदनुसार इनके पूर्वज मध्यदेश के निवासी थे। कश्मीरी राजा गोपादित्य ने बिल्हण के प्रपितामह मुक्तिकलश को अपने राज्य मे सम्मान देकर खोनमुख (खुनमोह) नगर मे बसाया।[३] बिल्हण के पिता ज्येष्ठकलश और माता नाग देवी थी। ये अपने भाइयो मे मध्यम थे बडे का नाम इष्टराम और छोटे का आनन्द था।

कश्मीर मे जन्म लेने के कारण बिल्हण को कश्मीर और कविता के प्रति गर्व था इसीलिये उन्होने 'विक्रमाकदेव चरित' मे इसका वर्णन किया है। किन्तु इन्होने देश भ्रमण करते हुए गुजरात प्रान्त के अन्हिलपत्तन (अण्हिलवाड) नगर के महाराजा कर्णराज जो भीमदेव के पुत्र थे, 'त्रैलोक्यमल्लकर्णदेव' जिनका राजकीय नाम था की राज्यसभा को अपना आश्रय बनाया।

काल—बिल्हण ११वी शती मे त्रैलोक्यमल्ल कर्णदेव की राज्यसभा मे आए थे और वही रहकर ११वी शती के उत्तरार्द्ध मे कर्णदेव के ही राज्यकाल (१०७२ से १०९४) मे[४] विद्धशालभजिका नाटिका की रचना की ऐसा अनेको विद्वानो

---

१ विद्धि न षट् प्रबन्धान्। — बाल 1/12

२ (बलदेव) स() सा() इति(), पृष्ठ 602 टिप्पणी (फुटनोट)

३ 'अस्ति कश्मीरेष्वनेकगुणगुम्फित प्रवरपुर नाम नगरम्। वर्तते च तत क्रोशत्रयान्तरे तक्षकनागाधिष्ठितविमलसलिलभरितकुण्डमण्डितस्य जयवनाख्यस्थलस्य समीपे द्राक्षाकुकुमक्षेत्रसमुल्लसितोभयभाग परमरमणीय खोनमुख (ष) नामको ग्राम। निवसन्ति स्म तत्र गोपादित्यमहीभुजा मध्यदेशात्सादरमानीय समावासिता श्रोतस्मार्तधर्मानुष्ठाननिष्ठितचेतसो ब्रह्मचिन्तनेकतानवृत्तय कोशिकगोत्रोत्पन्ना केचन भूसुरसत्तमा। तेषु निखिलवेदवेदागवेत्ता मुक्तिकलशो नाम पण्डितरत्नमासीत्।
—(प० दुर्गादास) कर्ण० भूमिका, पृष्ठ १

४ 'कर्णराजस्य राज्यसमयस्तु १०७२ मितात्खिस्ताव्दादारभ्य १०९४ मितखिस्ताब्दपर्यन्तमासीत्।
—कर्ण० (भूमि०), पृष्ठ २ की टिप्पणी

का मत है।[1] प० बलदेव उपाध्याय ने त्रैलोक्यमल्ल कर्णदेव का काल १०६४ ई० से १०९४ तक माना है।[2] इस विवाद मे न पडकर कि किस दिन तारीख से उन्होने कहॉ निवास किया, यह असन्दिग्ध है कि कर्णदेव की राज्यसभा मे बिल्हण थे और उन्होने लगभग ११वी शती के अन्तिम भाग मे कर्णसुन्दरी नाटिका की रचना की थी।[3] ११वी शती के ख्याति प्राप्त कवियो मे बिल्हण का सम्मानित स्थान था।

कृतित्व—इनके तीन ग्रन्थ उपलब्ध होते है—(१) विक्रमाकदेव चरितम् (ऐतिहासिक महाकाव्य), (२) कर्णसुन्दरी (नाटिका) और (३) चौरपचासिका (गीतिकाव्य)।

बिल्हण ऐतिहासिक महाकाव्य के प्रणेता थे, इसका प्रभाव उनके जीवन पर अन्तकाल तक रहा। फलत कर्णसुन्दरी मे भी उन्होने अपने आश्रयदाता कर्णदेव के वृद्धावस्था मे कर्णाटकराज जयकेशी की पुत्री मयणल्ला के साथ किए गये विवाह को ही आधार बनाकर कर्णसुन्दरी नामक नाटिका की रचना की।[4] जिसमे कर्ण को ही नायक की भूमिका दी गई।[5]

प० दुर्गाप्रसाद जी ने कर्णसुन्दरी नाटिका को सम्पादित करते समय भूमिका मे इस बात को तो स्वीकार किया कि नाटिका के नायक भीमदेवात्मज कर्णदेव ही है, किन्तु अन्य सभी वृत्तान्त प्राय कविकल्पित है[6] यही स्वीकार किया यह नही कि अन्य वृत्त भी ऐतिहासिक वृत्त सवलित है।

आचार्य बलदेवोपाध्याय ने कर्णसुन्दरी की रचना विक्रमाकदेव महाकाव्य से पूर्व कवि ने की ऐसा उल्लेख किया है।[7]

(4) क्षेमेन्द्र

परिचय—सस्कृत साहित्यशास्त्र के आचार्यो मे औचित्य सम्प्रदाय के सस्थापक के रूप मे आचार्य क्षेमेन्द्र की प्रसिद्धि है। इनके पिता का नाम प्रकाशचन्द्र व

---

१ कीथ (स० ड्रामा) स० ना० हि० अनु०, पृष्ठ २७०,
(बलदेव) स० सा० इति०, पृष्ठ ६२५।

२ (बलदेव) स० सा० इति०, पृष्ठ ६२५।

३ (गैरोला) स० सा० इति०, पृष्ठ ८१२।

४ कीथ (स० ड्रामा) स० ना० हि० अनु०, पृष्ठ २७०,
(बलदेव) स० सा० इति०, पृष्ठ ६२५।

५ हहो भाग्यमहानिधिर्दयितया देवस्य दग्धु पुरा
पात्र पुत्र इव स्वय विरचित· सारस्वतीना गिराम्।
साहित्योपनिषन्निषण्णहृदय श्री बिह्लणोऽस्या कवि
किं चैतत्किल भीमदेवतनय· साक्षात्कथानायक.॥ —कर्ण० १/१०

६ कर्णसुन्दर्यां चास्या पूर्वोक्तश्चालुक्यवशोद्भवो भीमदेवात्मज. कर्णराज एव कथानायक। अन्यद्वृत्त तु प्राय: कविकल्पितमस्तीति भद्रम्।
—कर्ण० भूमि०, पृष्ठ ३

७ स० सा० इति०, पृष्ठ ६२६।

पितामह का सिन्धु था। ये पहले शैव मतानुयायी थे किन्तु बाद मे सोमाचार्य द्वारा वैष्णव सम्प्रदाय मे दीक्षित किए गए थे। दशावतारचरित के एक श्लोक से इनका दूसरा नाम 'व्यासदास' ज्ञात होता है।[१]

काल—क्षेमेन्द्र ने अपने अनेक ग्रन्थो मे अपने आश्रयदाता का नाम अनन्तराज लिखा है।[२] अनन्तराज जो एक कश्मीरी राजा थे का काल १०२८ ई० से १०६३ ई० है। क्षेमेन्द्र ने 'श्रुत्वाभिनयगुप्ताख्यात् साहित्य बोध वारिधे'[३] लिखकर साहित्यशास्त्र के परम आचार्य अभिनवगुप्तको अपना गुरु बताया है। अभिनवगुप्त का काल ईसा की १०वी शती का अन्त तथा ११वी शती का प्रथम भाग है।[४] अत क्षेमेन्द्र का काल ई० की ११वी शती अर्थात् वही १०२८ से १०६३ ई० मानना सर्वथा उचित ही है।

कृतित्व—क्षेमेन्द्र अत्यन्त प्रतिभाशाली एव परम विद्वान् थे। साहित्यशास्त्र, काव्य एव नाट्य से सबधित अनेकानेक ग्रन्थो की रचना इन्होंने की थी। विश्वेश्वर ने क्षेमेन्द्र की ४० रचनाओ का उल्लेख कर १८ ग्रन्थो का स्वय नामोल्लेख किया है।[५] नाटिका के लक्षणो के अनुसार इनकी ललितरत्नमाला सर्वथा उपयुक्त नाटिका है जिसमे वत्सराज उदयन का चरित्र है। इनके अत्यधिक प्रसिद्धि प्राप्त ग्रन्थो मे औचित्यविचार चर्चा, कविकण्ठाभरण, बृहत्कथामजरी प्रमुख है।

(5) रामचन्द्र

परिचय—नाट्यदर्पण ग्रन्थ के प्रणेता श्री रामचन्द्र प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य हेमचन्द्र के शिष्य थे। हेमचन्द्र का जन्म ई० सन् १०९० मे गुजरात मे हुआ था। ८ वर्ष की अवस्था मे इन्होने आचार्य देवचन्द्र सूरि से जैनधर्म की दीक्षा ग्रहण की थी। इस समय गुजरात का शासक जयसिह सिद्धराज था जिसने १०९३ से ११४३ तक राज्य किया और इसके बाद ११७३ ई० तक इसी अणहिलपट्टन की गद्दी पर कुमारपाल ने शासन किया।

काल—हेमचन्द्र के शिष्य होने के कारण रामचन्द्र का काल १२वी शती का पूर्वार्द्ध सिद्ध होता है। स्वय हेमचन्द्र ने राजा जयसिह सिद्धराज के पूँछने पर रामचन्द्र को अपना शिष्य बताया है।

---

१ 'इत्येषविष्णोरवतार मूर्ते काव्यामृतास्वादविशेषभक्त्या।
श्री व्यासदासान्यतमाभिधेन क्षेमेन्द्रनाम्ना विहित प्रयत्न ॥' —दशावतारचरित १०/४१.

२ 'तस्य श्रामदनन्त राजनृपते काले किलाय कृतः।'
'राज्ये श्री मदनन्तराजनृपते काव्योदयोऽय कृत ॥'

३ बृहत्कथामजरी।

४ का० प्र० (भूमिका) , पृष्ठ ५१ ।

५ अस्त्यमुष्यायाणे रामचन्द्राख्यः कृति शेखर।
प्राप्तरेख प्राप्तरुप सघे विश्व कलानिधि ॥ (प्रभावक चरित)
—ना० द० भूमिका, पृष्ठ ६

कृतित्व—रामचन्द्र कवि ने अपने अनेक ग्रन्थो मे अपने आपको १०० ग्रन्थो का प्रणेता (शतकर्ता) लिखा है। ये सभी ग्रन्थ यद्यपि आज उपलब्ध नही है किन्तु ३९ ग्रन्थो की उपलब्धि का उल्लेख नाट्यदर्पण की भूमिका मे सम्पादको ने किया है। उनमे २३ ग्रन्थो के नाम और उनमे कुछ के प्रकाशन-स्थल आदि का भी उल्लेख किया है।[१]

इससे स्पष्ट है कि नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र केवल शास्त्रीय ग्रन्थ प्रणेता ही न थे, काव्य और नाटक मे भी उनकी प्रतिभा का अच्छा विकास हुआ था। उनके द्वारा लिखित नाट्य ग्रन्थो मे 'वनमाला' नामक नाटिका भी है जिसका केवल एक पद्य उदाहरण रूप मे नाट्यदर्पण मे प्राप्त होता है[२] इसके अतिरिक्त इस नाटिका का कोई भी अन्य विवरण उपलब्ध नही होता, और न ही रामचन्द्र द्वारा प्रणीत किसी अन्य नाटिका का। डा० एस० एन० दासगुप्ता ने वासन्तिका नामक नाटिका का कर्ता रामचन्द्र को बतलाया है,[३] किन्तु उन्होने इस सम्बन्ध मे अन्य किसी प्रकार का कोई विवरण नही दिया है, अत यह निश्चित कर पाना अत्यन्त कठिन है कि ये रामचन्द्र कौन है तथा इस नाटिका की रचना कब की गई।

यदि नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र ही इसके भी कर्ता है तो सम्भव है यह नाटिका आज उपलब्ध न होने के कारण तथा उनके उपलब्ध ग्रन्थो मे उसका विवरण न होने के कारण इनके ग्रन्थो मे परिगणित नही की गई।

वस्तुत यह स्वीकार नही किया जा सकता कि यह नाटिका इन्ही रामचन्द्र की है। क्योकि इन्होने नाट्यदर्पण मे जब इन्दुलेखा, अनगवती, कोशलिका इन तीन नाटिकाओ के उदाहरण दिये जो अज्ञात कवियो की कृतियॉ है तो वे अपनी नाटिका का विवरण तो कही न कही अवश्य ही देते जैसे वनमालिका का दिया। अत वासन्तिका नाटिका का प्रणेता रामचन्द्र नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र से सर्वथा भिन्न है। यही स्वीकार किया जा सकता है किन्तु वह कब कहॉ हुए इस सम्बन्ध मे कुछ नही कहा जा सकता।

रामचन्द्र की वनमालिका नलदमयन्ती के प्रसिद्ध वृत्त पर आधारित प्रतीत होती है किन्तु इसकी और अधिक कोई विवेचना मूल की अनुपलब्धि के कारण कर पाना नितान्त असम्भव है।

---

१ ना० द० भूमि०, पृष्ठ १६।

२ यथा वाऽस्म दुपज्ञायावनमालाया नाटिकायाम्- राजा—(दमयन्तीं प्रति)
दृष्टि. कथ जरठ पाटलपाटलेय कम्पः किमेष पदमोष्ठदले बबन्ध।
नारग रगहरणप्रवण· प्रियेऽस्य वक्त्रस्य कुकुममृतेऽरुणिमा कुतोऽयम्॥
—ना० द०, पृष्ठ ३१९, सू० १७७ की व्याख्या

३ (दासगुप्ता) हि० स० लिट. ४७३

(6) रुद्रचन्द्रदेव

परिचय—दक्षिण भारत के वारगल प्रदेश मे एकशिला के काकतीय वशज प्रोल द्रितीय के ५ पुत्रो मे साहित्यिक प्रतिभा सम्पन्न दो पुत्र महादेव तथा रूद्रदेव हुए। रूद्रदेव का ही नाम रूद्रचन्द्रदेव है।[१] ये स्वय एकशिला के शासक बने थे।

काल—इनका काल ऐतिहासिको ने ११५० ई० से ११९५ ई० तक स्वीकार किया है।[२] श्री कृष्णमाचारी महोदय ने प्रतापरुद्रदेव या रुद्रदेव नामक एक एकशिला के राजा का उल्लेख करते हुए उसका काल १२६८ से १३१९ ई० स्वीकार किया है। इन्हे महान् कवियो का सरक्षक तथा स्वय कवि के रुप मे सस्थापित करते हुए 'ययाति-चरित' नाटक तथा 'उषारागोदया' नामक नाटिका का रचयिता भी कहा है।[३]

सम्भवत कपिलदेव द्विवेदी ने भी श्री कृष्णमाचारी महोदय के मत को आधार मानकर राजा रूद्रदेव का काल १३वी शती ही माना तथा उषर्गेदिय ओर ययातिचरित नामक दो नाटको का लेखक इन्हे बताया है।[४] श्री वाचस्पति गैरोला ने भी रुद्रदेव का शासनकाल १२६८ ई० से १३१९ तक माना है।[५]

श्री बाबूलाल जी शुक्ल ने कृष्णमाचारी महोदय के इस मत की ओर इगित करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि नाटिका मे स्पष्टत रूद्रचन्द्र देव का उल्लेख होने एव शैली मे पर्याप्त भिन्नता होने के कारण प्रताप रुद्रदेव रुद्रचन्द्र देव से सर्वथा भिन्न है।[६] वस्तुत श्री शुक्ल जी के द्वारा प्रतिपादित १२वी शती मे ही रुद्रचन्द्र देव को मानना अधिक उचित प्रतीत होता है क्योकि तेलगू साहित्य के इतिहास लेखक श्री बालशोरि रेड्डी ने लिखा कि—'ईसवी सन् १०५० मे प्रथम प्रोल राजा ने अपने स्वतन्त्र राज्य की नीव डाली। इस वश ने करीब ३०० वर्षो तक राज्य किया। इस वश के रूद्रदेव के काल मे काकतीय राज्य

---

१ **'अद्य खल्वशेष राजलोक मौलिमणि मजरी पुज किंजल्कित चरणारविन्देन श्रीमदुद्रदेवेन प्रणीता, इति अधिक 'ब' पुस्तके पाठ'**

—उषा० पृष्ठ १ की टिप्पणी मे पाठान्तर

२ **उषा० (भूमिका) , पृष्ठ १।**

३ **'प्रताप रुद्रदेव आर रुद्रदेव वाज दि किंग आव एकशिला (वारगल) एण्ड रूल्ड ओवर एन एक्सटेन्सिव कन्ट्री इन १२६८ टु १३१९ ए० डी०, ही वाज ए ग्रेट पैटर्न आव पोएट्स एण्ड ए पोएट हिमसेल्फ आव हाई आर्डर। ही रोट ययाति चरित एण्ड उषारागोदया टू प्लेज।'**

—हि० क्लासि० स० लिट०, पृष्ठ ६८४

४ **स० सा० समी० इति०, पृष्ठ ४४५।**

५ **(गैरोला) स० सा० इति०, पृष्ठ ८१३।**

६ **उषा भूमिका, पृष्ठ १-५**

ने बडी उन्नति की और राज्य का भी काफी विस्तार किया।—इन्ही रूद्रदेव (ईसवी सन् ११५८-११९५) के समय मे शैव साहित्य का विशेष रूप से सर्जन हुआ।[१]

उक्त कथन से स्पष्ट है कि रेड्डी महोदय द्वारा प्रतिपादित रूद्रदेव रूद्रचन्द्रदेव ही है। क्योकि उनके द्वारा प्रणीत नाटिका की नान्दी मे भगवान् शिव की स्तुति से रूद्रचन्द्रदेव के काल मे शैव धर्म की वृद्धि का स्पष्ट आभास होता है।

श्री बाबूलाल जी शुक्ल ने रूद्रचन्द्रदेव के सम्बन्ध मे कुछ ऐतिहासिक तत्व प्रस्तुत किये है।[२] जो इस प्रकार है—

(१) रूद्रदेव के आश्रित विद्वान् थे अचितेन्दु दीक्षित जो रामेश्वर के पुत्र तथा अद्वैत सन्यासी अद्वयमित्र के शिष्य थे। श्री अचितेन्दु दीक्षित ने अनेको प्रशस्तियाँ लिखी, जिनमे काकतीय रुद्रदेव का वर्णन है। इन प्रशस्तियो का विवरण आक्सफोर्ड से प्रकाशित याजदानी कृत दक्षिण भारत का प्राचीन इतिहास भाग ७-१० मे किया गया है।

(२) नामी रेड्डी के पिल्लमर्री शिलालेख मे स्पष्टोल्लेख है कि श्री रुद्रचन्द्रदेव सस्कृत भाषा के प्रतिष्ठित विद्वान् तथा स्वय ग्रन्थकार भी थे।

(३) दाक्षारामम् शिलालेख से इनकी विनूयभूषण उपाधि का भी पता चलता है।

(४) श्री चिल्लु कूरी वीरभद्रराव ने 'काकतीय भूपालो के स्थितिकाल और जीवन' नामक ग्रन्थ के पृष्ठ ३०५ पर रुद्रदेव की विद्याभूषण उपाधि का उल्लेख किया है।

इन उपर्युक्त विवेचनो के आधार पर श्री रुद्रचन्द्र देव का काल १२वी शती का उत्तरार्द्ध ही निश्चित होता है साथ ही इनका स्थान वारगल का एक शिला राज्य है।

कृतित्व—रुद्रचन्द्रदेव की दो रचनाएँ ही उपलब्ध होती है—'ययाति चरित नाटक' तथा 'उषारागोदया' नाटिका। बट्टेन विरचित नीतिशास्त्र मुक्तावली मे रुद्रदेव को नीतिसार नामक राजनीतिक ग्रन्थ का प्रणेता भी कहा गया है।[३]

श्रीमद्भागवत् पुराण के इतिवृत्त पर लिखित ययातिचरित नाटक को ही विश्वनाथ ने सभवत: शर्मिष्ठा ययाति के नाम से अभिहित किया है। 'उषारागोदया' को ही विद्वानो ने 'उषर्गेदिय' नाम भी दिया है, जो सभवत अशुद्ध पाठ है।

(7) मदनबाल सरस्वती

परिचय—ये गौड देश (बगाल) के निवासी थे।[४] इनके पिता का नाम गगाधर था।[५] अपने पाण्डित्य और प्रतिभा के बल से इन्होने धारा के परमारवशी

---

१ तेलुगु सा० इति० पृष्ठ १७.
२ उषा० (भूमिका) , पृष्ठ १-५।
३ उषा० (भूमिका) , पृष्ठ ४।
४ पारि० (भूमि०) , पृष्ठ ४।
५ पारि0, पृष्ठ 1-2।

सम्राट् अर्जुनवर्मा के 'राजगुरु' पद को अलकृत करने का सौभाग्य प्राप्त किया। इनका मूल नाम मदन था 'बाल सरस्वती' इनकी उपाधि थी।

काल—मदन बाल सरस्वती का काल विद्वानो ने 12वी का अन्तिम या 13वी शती पूर्वार्द्ध निर्धारित किया है।[१] श्री कृष्णमाचारी ने इनकी कृति 'पारिजातमजरी' का उत्कीर्णन काल 1213 ई0 निर्धारित कर कवि के 13वी शती के पूर्वार्द्ध मे होने की पुष्टि की है।[२] श्री दासगुप्ता और डे महोदय ने 1213 ई0 को नाटिका की रचना का समय माना है न कि शिला पर उत्कीर्णन का।[३] किन्तु इससे मदन बालसरस्वती के 13वी शती मे स्थित होने मे कोई व्याघात नही होता, अपितु पुष्टि ही होती है।

नाटिका के एक पद्य मे नायक के पिता का नाम 'सुभट' लिखा गया है[४] जबकि नाटिका के नायक कवि के आश्रयतादाता अर्जुनवर्मा के पिता का नाम सुभट वर्मन था। अत यह सन्देह हो सकता है कि सुभट का पुत्र अर्जुनवर्मा कोई अन्य राजा था जिसके राज्यकाल मे कवि हुआ होगा। इस सन्देह का निवारण नाटिका के सम्पादक ई० हुल्टल ने करते हुए निर्दिष्ट किया है कि सुभट वर्मा के ३ ताम्र पत्र १२११, १२१३ व १२१५ ई० के प्राप्त है जिनमे यह स्पष्ट लिखा है कि अर्जुनवर्मा सुभटवर्मा का पुत्र था इन्ही के आश्रित कवि राजगुरु मदन ने पारिजात मजरी नाटक की रचना की।[५]

इस उल्लेख से मदन बालसरस्वती का काल १३वी शती का आरम्भ निश्चित होता है। वाचस्पति गैरोला महोदय ने स्पष्टत मदन कवि का काल एक स्थान पर १२वी शती[६] और दूसरे स्थान पर १३वी शती[७] लिखकर स्वकथन मे ही विरोध स्थापित किया। किन्तु ई० हुल्टज और गैरोला महोदय तथा अन्य[८] इतिहासकारो के मतो के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि मदन कवि का जन्म १२वी शती के उत्तरार्द्ध मे हुआ था तथा उन्होने अर्जुनवर्मा के राज्याश्रय मे

---

१ (बलदेव) स0 सा0 इति0, पृ0 626।

२ (कृष्णभाचारी) हि० क्लासि० स० लि०, पृष्ठ ६४७।

३ 'दि प्ले कम्पोज्ड एट एबाउट १२१३ ए० डी०' —हि० स० लिट०, पृष्ठ ४७२

४ 'अन्तःपुर बनिताश्च द्विग्दघटाश्चाशु गूर्जर नरेन्द्रस्य
शृखलिता यदनीके. स एष सुभट क्षितीन्द्र सुतः।। —पारि० १/१०.

५ 'दि परमारकिंग अर्जुनवर्मा, हू वाज दि सन आव सुभटवर्मन एण्ड हूज कापर प्लेट् ग्राण्ट्स आर डेटेड इन ए० डी० १२११, १२१३ एण्ड १२१५. दि सेम श्री ग्राण्ट्स प्रूव दैट न्यू ड्रामा वाज कम्पोज्ड इन दि रेन आव दिस अर्जुनवर्मन; फार दे वेयर कम्पोज्ड बाई दि सेम राजगुरु मदन, हू वाज दि ओथर आव दि ड्रामा।'
—पारि० (भूमि०), पृष्ठ २।

६ (गैरोला) स० सा० इति०, पृष्ठ ६०२।

७ वही, पृष्ठ ८१२।

८ बलदेव उपाध्याय, कृष्णभाचारी, कीथ आदि।

इसी शती के अन्तिम वर्षो मे पारिजातमजरी की रचना की होगी जिसका उल्लेख सुभटवर्मा के १२११, १२१३ और १२१५ ई० के ताम्रपत्रो पर किया गया।

श्री वाचस्पति गैरोला ने स्पष्ट लिखा है कि श्री काशीनाथ लेले ने धारा मे उत्कीर्णित दो अको की प्रतिलिपि करवा कर जर्मन भेजी जिसका टिप्पणी सहित साराश १९०६ ई० के 'एपिग्राफिया इण्डिका' मे वहाँ के सस्कृतज्ञ हुल्टज ने प्रकाशित किया।[१]

कृतित्व—मदन कवि की केवल एक यही कृति पारिजातमजरी उपलब्ध है। इसके भी केवल दो अक धारा मे एक शिला पर उल्लिखित थे जो प्रकाशित भी किए जा चुके है। यह शिलाखण्ड भोजशाला मे सुरक्षित है।[२]

जैन विद्वान् आशाधर से मदन ने काव्यशास्त्र का अध्ययन किया था यह ज्ञात होता है[३] किन्तु इनके तद्विषयक किसी ग्रन्थ की उपलब्धि नही हुई है। फलत इनकी कीर्तिकौमुदी की प्रकाशिका मात्र पारिजातमजरी (विजयश्री) नाटिका ही है।

(8) हस्तिमल

परिचय—हस्तिमल के जीवन सम्बन्ध मे विशेष विवरण यद्यपि उपलब्ध नही होता, फिर भी ये प्रसिद्ध जैनधर्म के आचार्य थे। इनके पिता का नाम गोविन्द भट्ट तथा पुत्र का नाम पार्श्व था। यद्यपि ये गृहस्थ थे किन्तु अनेक साधु, मुनि इनके शिष्य थे। हस्तिमल्ल का मूल नाम ज्ञात नही है, हस्तिमल्ल तो इनका उपनाम है जो उन्मत्त हाथी को वश मे करने के कारण इनके आश्रयदाता पाण्ड्यराजा के द्वारा दिया गया था।

काल—हस्तिमल्ल कर्नाटक प्रदेशीय राजा पाण्ड्यराज के आश्रित थे। पाण्ड्यराज का काल १३४७ विक्रमी अर्थात् १२९० ई० निश्चित किया गया है।[४] श्री वाचस्पति गैरोला ने १३वी शती का सर्वश्रेष्ठ नाटककार लिखकर इनकी प्रशसा की है।[५]

कृतित्व—हस्तिमल्ल अनेक नाट्य ग्रन्थो के रचयिता थे। जिनमे—विक्रान्त कौरव, मैथिली कल्याण, अजना पवनजय और सुभद्रा (अर्जुन चरित) ये चार नाट्य ग्रन्थ उपलब्ध है। श्री गैरोला महोदय ने 'आफ्रेक्ट' के 'केटेलोगस कैटलागरम् (१८९१ लिपजिक) का सन्दर्भ देते हुए हस्तिमल्ल विरचित चार अन्य नाटको की सूचना दी है।[६] ये नाटक है—उदयनराज, भरतराज, अर्जुनराज और मेघेश्वर।

---

१ (गैरोला) स० सा० इति०, पृष्ठ ६०२।
२ वही, पृष्ठ ८१३।
३ वही, पृष्ठ ३५९।
४ जैन सा० इति०, पृष्ठ ३६८-३६९।
५ स० सा० इति०, पृष्ठ ८१३।
६ वही, पृष्ठ ३६०।

जैन साहित्य और इतिहास नामक पुस्तक मे श्री नाथूराम प्रेमी ने हस्तिमल्ल के नाम से तीन अन्य कृतियो का उल्लेख किया है। ये है—प्रतिष्ठातिलक तथा कन्नड भाषा मे लिखित आदि पुराण और श्रीपुराण।[१] इससे हस्तिमल्ल का कन्नड भाषाभिज्ञ होना भी प्रमाणित होता है।

नाटिका क्षेत्र मे इनकी केवल सुभद्रा नाटिका जिसका दूसरा नाम अर्जुन चरित भी है, प्राप्त है। इसका कथानक पौराणिक है जिसका नायक अर्जुन और नायिका सुभद्रा है।

(9) विश्वनाथ कविराज

परिचय—प्रसिद्ध लाक्षणिक एव नाट्यकार कविराज विश्वनाथ का जन्म उडीसा के प्रसिद्ध विद्वान् एव पण्डित परिवार मे हुआ था। इनके पिता का नाम चन्द्रशेखर तथा प्रपितामह का नारायणदास था।[२] इनके पिता १४ भाषाओ के मर्मज्ञ थे।[३] प्रपितामह उनसे भी महान् विद्वान् थे।[४] स्वय विश्वनाथ ने अपने पिता से साहित्य शास्त्र का अध्ययन किया था।[५]

विश्वनाथ कविराज का वश महापात्र था जो उडीसा का सम्मानपूर्ण वश माना जाता था। इनके पिता कलिगराज भानुदेव की सभा मे सन्धि विग्रहिक पद पर आसीन थे। इन भानुदेव की राजमहिषी का नाम उमा था।[६] यह राज्य गजपति साम्राज्य कहलाता था। अपने पिता से विरासत के रूप मे विश्वनाथ को यही सान्धिविग्रहिक पद प्राप्त हुआ और उन्होने त्रिकलिगाधीश्वर महाराज निशकभानुदेव की राज्यसभा को सुशोभित किया था।[७]

काल—विश्वनाथ के काल के सम्बन्ध मे विद्वानो मे पर्याप्त मतभेद है। उस सबका विवेचन अलक्ष्यभेदी मानकर यहाँ सक्षिप्तत कुछ सारभूत तत्वो के आधार पर विश्वनाथ का काल निर्धारण किया जा रहा है।

विश्वनाथ कविराज को कुछ विद्वान् १३वी का, कुछ १४वी शती का और कुछ १५वी शती का मानते है। चन्द्रकला नाटिका के सम्पादक श्री बाबूलाल

---

१ जैन सा० इति०, पृष्ठ ३६९-७०।

२ सा० द० १०/१००

३ 'चतुर्दशभाषाविलासिनीभुजगमहाकविनिखिलानवद्यविद्यामहोदधिराजहसमहापात्र श्रीचन्द्रशेखर-तनूजन्मन —।' —चन्द्र०, पृष्ठ २,३

४ 'तत्प्राणत्व चास्मद् वृद्धप्रपितामह सहृदयगोष्ठीगरिष्ठकविपण्डितमुख्यश्रीमन्नारायण पदैरुक्तम्।' —सा० द०, पृष्ठ ४९ (३/३ की विवृति)

५ 'निजजनकसमधिगतनिखिलसाहित्यतत्वस्य' —चन्द्र०, पृष्ठ ३.

६ 'यथा मम तातपादाना—दुर्गालघितविग्रहो०। अत्र प्रकरणेनाभिधेये मावल्लभ शब्दस्योमानाममहादेवी वल्लभभानुदेव नृपतिरुपेऽर्थे नियन्त्रिते व्यजनयैव गौरीवल्लभरूपोऽर्थो बोध्यते। —सा० द०, पृष्ठ ४३

७ चन्द्र०, पृष्ठ २-३।

शुक्ल ने इनका समय १४०० से १४४० ई० तक एक निश्चित तिथि के रूप में निर्धारित किया है।

अन्तरग एव बहिरग प्रमाणो के आधार पर इनका काल निर्धारण इस प्रकार किया जा सकता है—

(१) विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ साहित्य दर्पण मे गीतगोविन्दकार जयदेव का एक पद्य उदाहरण रूप मे दिया है।[१] जयदेव का काल विद्वानो ने १११६ ई० स्वीकार किया है। अत· विश्वनाथ इससे पहले के नही हो सकते।

(२) महाकवि श्रीहर्ष (११६७-११७४ ई०) के प्रसिद्ध पद्य 'धन्यासि वैदर्भि गुणैरुदारै.' इत्यादि को साहित्यदर्पण मे उदाहृत करने के कारण[२] विश्वनाथ को ११७४ ई० के बाद का ही माना जा सकता है।

(३) प्रसन्न राघव के रचयिता जयदेव (१२०० से १२५०) का भी एक पद्य साहित्य दर्पण मे उदाहृत होने से[३] विश्वनाथ १२५० ई० के पश्चाद्वर्ती ही हो सकते है।

(४) विश्वनाथ कविराज ने एक उदाहरण मे 'अल्लावदीन' शब्द का उल्लेख कर अलाउद्दीन खिलजी जो भारत का मुसलमान शासक था से परिचित होने का स्पष्ट प्रमाण दिया है।[४] अलाउद्दीन खिलजी का शासनकाल इतिहासकारो के अनुसार १२९६ से १३१६ ई० है। अत विश्वनाथ को इस तिथि से पूर्ववर्ती नही माना जा सकता।

(५) विश्वनाथ ने काव्यप्रकाश टीका मे स्पष्टत यह उल्लेख किया है कि—'यदाहु श्रीकलिगभूमण्डलाखण्डलमहाराजाधिराज श्री नरसिह देवसभाया धर्मदत्त स्थगयन्त अस्मत्पितामह श्री नारायणदासपादा ।'[५] इस उल्लेख के आधार पर श्री नारायणदास को कलिगराज नरसिहदेव की सभा मे विद्यमान तथा धर्मदत्त को शास्त्रार्थ मे पराजित करने का ज्ञान होता है।

यद्यपि उडीसा मे अनेको नरसिहदेव नामक राजा हुए है किन्तु धर्मदत्त का नारायण से शास्त्रार्थ १२७० ई० से १३०३ ई० के कलिग नरेश के काल

---

१ हृदि विसलताहारो नाय भुजगमनायक ।
कुवलयदल श्रेणी कण्ठे न सा गरलद्युति ।। —सा० द० ३१४

२ सा० द०, पृष्ठ ३२९।

३ सा० द०, पृष्ठ १३०।

४ सन्धो सर्वस्वहरणम् विग्रहे प्राण निग्रहः।
अल्लावदीन नृपतौ न सन्धिर्न च विग्रह.।
अत्राल्लावदीनाख्ये नृपतौ दान सामादि मन्तरेण नान्यः प्रशमोपाय ।
—सा० द०, पृष्ठ १५३

५ का० प्र० भूमिका, पृष्ठ ८७।

मे हुआ था। यह प्रसिद्धि है, तदनुसार १४वी शती के पूर्व कविराज की स्थिति स्वीकार नही की जा सकती है।

(६) श्री बाबूलाल जी शुक्ल ने बगदेशीय इतिहास के आधार पर लिखा कि १४१४ ई० से १४४६ ई० तक के काल मे बगाल मे हिन्दू राज्य था तथा गणेश इसका प्रथम शासक हुआ। गणेश के बाद उसके पुत्र ने जब बगाल का राज्य प्राप्त किया तो पुन मुस्लिमधर्म को अपना कर जलालुद्दीन बन गया। यह शासक १४१४ ई० मे गद्दी पर बैठा था, तभी समीपवर्ती उडीसा का राजा नि शकभानुदेव चतुर्थ उसे सहन न कर सका और मौका पाकर १४१४ ई० के आसपास उस राजा को मारकर गौडदेश पर विजय प्राप्त कर ली।[1] इस विजय के उपलक्ष मे ही चन्द्रकला नाटिका का अभिनय हुआ होगा। क्योकि नाटिका की प्रस्तावना मे कवि ने चोल, कौशल, बग, हावग, कोच, कांवी, गौड, डाहाल, मत्स्य, म्लेच्छ, लाट और कर्णाट राजाओ को जीतने का उल्लेख किया है।[2]

(७) मल्लिनाथ सूरि के पुत्र कुमार स्वामी ने विद्यानाथ के प्रताप रूद्रयशो भूषण की टीका रत्नापण मे साहित्यदर्पण का उल्लेख किया है। कुमार स्वामी प्रौढदेवराय द्वितीय के पुत्र मल्लिकार्जुन के दरबार मे थे। मल्लिकार्जुन का १४४७ ई० मे राज्यारोहण हुआ था। अत इस समय तक साहित्यदर्पण की रचना हो चुकी थी ऐसा स्वीकार करने पर विश्वनाथ का काल १५वी शती का प्रथम भाग या १४वी का अन्तिम भाग निश्चित होता है। अत श्री बाबूलाल जी शुक्ल ने साहित्यदर्पण की रचना ई० सन् १४३० के आसपास स्वीकार की।[3]

(८) १५वी शती के ही गोविन्द ठाकुर कृत प्रदीप नामक काव्यप्रकाश टीका मे साहित्यदर्पण सम्बन्धी काव्यलक्षण विवेचना है जिससे भी यह सिद्ध होता है कि विश्वनाथ का काल १४वी शती का अन्तिमाश है।

(९) महामहोपाध्याय पी० वी० काणे एव डा० स्टीन कोनो ने जम्मू कश्मीर के ऐतिहासिक हस्तलिखित पुस्तकालय मे विद्यमान साहित्यदर्पण की प्रति पर लिखे वर्ष १४४१ को विक्रमी सवत् की मान्यता देकर १३८४ ई० के पूर्व विश्वनाथ का काल निर्धारित किया, किन्तु शुक्ल जी ने उसे शाके १४४१ मान कर १५३९ ई० सन् मे उसका लेखन काल माना। इसमे उन्होने यह तर्क दिया है कि बगाल उडीसा आदि के ताम्रलेखो पर भी शकाब्द ही लिखा जाता था।[4] आज भी वहाँ शकाव्द ही प्रचलित है। अत शुक्ल जी के अनुसार विश्वनाथ

---

१ चन्द्र० भूमि०, पृष्ठ १२-१३।
२ चन्द्र०, पृष्ठ २।
३ चन्द्र०, भूमि०, पृष्ठ १५।
४ चन्द्र०, पृष्ठ १४।

का काल १५वी शती अर्थात् १४०० से १४४० ई० है। किन्तु विभिन्न ऊहापोहो के द्वारा श्री विश्वनाथ कवि राज का काल १४वी शती का उत्तरार्द्ध मानना ही अधिक तर्कसगत प्रतीत होता है। डा० गैरोला,[१] नगेन्द्र,[२] बलदेव उपाध्याय,[३] एस० एन० दासगुप्ता[४] एव आचार्य विश्वेश्वर[५] आदि सभी ऐतिहासिक विद्वानो ने विश्वनाथ का काल १४वी शती ही स्वीकार किया है।

कृतित्व—पूर्वत यह लिखा जा चुका है कि कविराज विश्वनाथ महान् साहित्य शास्त्री थे अत उन्होने लाक्षणिक ग्रन्थ तो लिखे ही थे अन्य अनेक काव्य व नाट्य ग्रन्थो की भी रचना की थी।[६] इनकी रचनाओ का विवरण इस प्रकार है—साहित्यदर्पण (प्रमुख साहित्यशास्त्रीय लाक्षणिक ग्रन्थ), राघवविलास (महाकाव्य), कुवलयाश्व चरित (प्राकृतकाव्य),[७] प्रभावती या प्रभावतीपरिणय (नाटिका), चन्द्रकला (नाटिका),[८] नरसिहविजय या विजयनरसिह (काव्य) एव प्रशस्ति रत्नावली (षोडशभाषामयी कृति)।[९]

विश्वनाथ कविराज ने काव्यप्रकाश पर दर्पण टीका भी लिखी थी जिसमे अनेक उडिया भाषा के शब्दो का प्रयोग है।[१०] चन्द्रकला नाटिका के सम्पादक प० बाबूलाल जी शुक्ल ने साहित्य-दर्पण से पूर्व ६ कृतियो की रचना का उल्लेख करते हुए कंसवध नामक एक अन्य काव्य की भी सूचना दी है।[११] इस प्रकार कुल मिलाकर विश्वनाथ की ९ रचनाओ का ज्ञान होता है। इनमे से अनेको का साहित्यदर्पण मे उल्लेख है।

(10) मथुरादास

परिचय—मध्यदेशवर्ती सुवर्ण शेखर नामक नगर के कायस्थ परिवार मे मथुरादास का जन्म हुआ था[१२] सुवर्णशेखर नगर यमुना नदी के तट पर था।

---

१ स० सा० इति०, पृष्ठ ९६२।
२ भा० का० शा० पर०, पृष्ठ ३३३।
३ स० सा० इति०, पृष्ठ ६३३।
४ हिस्ट्री आव सस्कृत लिट्०, पृष्ठ ५६४।
५ का० प्र० भूमि०, पृष्ठ ८७।
६ (दासगुप्ता) हि० स०, लिट०, पृष्ठ ५६४।
७ 'यथा मम कुवलयाश्च चरिते प्राकृतकाव्ये।' —सा० द० ३/१४८
८ सा० द० ६/१०५
९ 'यथा मम— षोडशभाषामयी प्रशस्तिरत्नावली।' —सा० द० ६/३३७
१० 'इन आल प्रोबेबिलिटी ही वाज एन इन हेवीटेण्ट आव उड़ीसा ऐज ही समटाइम्स गिव्ज उडिया इक्युवलेंट्स आव सस्कृत वर्डस इन हिज कामेट्री आव काव्य प्रकाश' —(दासगुप्ता) हि० स० लिट०, पृष्ठ ५६३
११ चन्द्र० (भूमि०), पृष्ठ १५-१६।
१२ 'भगवद्भक्तया कायस्थ कुलावतसतामुपगतेन जह्नु कन्या कालिन्दी तीरावलग्ने मध्यदेश शिर शेखर भूते सुवर्णशिखर नाम्निनगरे समवाप्त परार्ध्य जन्मना मथुरादासेन या विरचिता—।' —वृष० पृष्ठ २

यह स्वयकृत नाटिका की प्रस्तावना से विदित होता है किन्तु बलदेव उपाध्याय ने इस स्थान को गगातट पर[१] और कीथ ने गगायमुना तट पर[२] लिख कर एक सन्देह उत्पन्न कर दिया है। मध्यदेश का उल्लेख करने से और राधा-कृष्ण की कथा तथा यमुनातट की कृष्णलीलाओ का चित्रण करने के कारण कवि का स्थान सुवर्णशिखर यमुनातट पर ही मानना अधिक तर्कसगत है। नाटिका के सम्पादक प० शिवदत्त जी ने यद्यपि गगायमुनातीर पर ही स्वर्ण शेखर की प्राचीनकाल मे स्थिति मानी है।[३]

वृषभानुजा नाटिका के सम्पादक श्री प० शिवदत्त ने प्रथम अक के चतुर्थ पद्य मे कृष्ण शब्द को श्लिष्ट मानकर इनके गुरू का नाम कृष्णदास था ऐसा उल्लेख मथुरा से प्राप्त पुस्तक के आधार पर किया है।[४] इसकी पुष्टि कृष्णमाचारी महोदय ने भी की।[५]

काल—मथुरादास का काल पूर्णत. निश्चित नही हो सका है। श्री वाचस्पति गैरोला, कृष्णमाचारी, बलदेव उपाध्याय आदि ने अज्ञातकालीन शब्द का उल्लेख किया है। कपिलदेव द्विवेदी व कीथ ने अनिर्णीत शब्द लिखकर मौन धारण कर लिया । केवल एस० एन० दासगुप्ता ने अत्यन्त सक्षिप्त रूप मे मथुरादास का काल १५वी शती निर्धारित किया है।[६] किन्तु इस विषय मे कोई प्रमाण, आधार आदि का उल्लेख न करने के कारण इस विषय मे कुछ नही कहा जा सकता। परन्तु १५ से १७वी शती तक कृष्ण साहित्य का विशेष सृजन होने के कारण मथुरादास का काल इन्ही शताब्दियो के मध्य मानना अधिक उपयुक्त है।

कृतित्व—मथुरादास की केवल एक कृति वृषभानुजा नाटिका ही उपलब्ध है। इनकी अन्य किसी भी नाटिका का उल्लेख नही मिलता।

(11) राजचूड़ामणि दीक्षित

परिचय—कमलिनी कलहस नाटिका की प्रस्तावना व समाप्ति पर कविराज चूडामणि दीक्षित ने अपने आश्रयदाता का व अपने वश का सक्षिप्ततया उल्लेख किया है। तदनुसार इनके पिता का नाम सत्यमगल रत्नखेट श्री श्रीनिवास दीक्षित

---

१ (बलदेव) स० सा० इति०, पृष्ठ ६२६।

२ कीथ (स० ड्रामा) , स० नाट० (हि० अनु०) , पृष्ठ २७१।

३ 'अय च मथुरादासनामा कवि श्रीगगायमुनातीरवसतो सुवर्णशिखरनाम्नि नगरे प्रादुर्बभूवेति प्रारम्भ एव सूत्रधारवाक्येन प्रतीयते।' —वृष०, पृष्ठ १ (टिप्पणी)

४ 'अस्मिन् श्लोके श्रीकृष्णस्य, श्रीकृष्णदासाख्यस्य गुरोश्च श्लेषेण वर्णनम् इति क-पुस्तक टिप्पणी।' —वृष०, पृष्ठ २ (टिप्पणी)

५ 'मथुरादास वाज प्यूपिल आव कृष्णदास'। —हि० क्लासि० स० लिट०, पृष्ठ ६५८

६ 'दि आथर प्रोबेबली फ्लोरिश्ड इन दि फिफ्टीन्थ सेचुरी' —हि० स० लिट०, पृष्ठ ४६८, टिप्पणी (फुटनाट)

व माता का नाम कामाक्षी था। पितामह स्वामिभट्ट, पितामही लक्ष्मी तथा प्रपितामह श्री कृष्ण भट्ट थे।[१] इनका वश विश्वामित्र वश कहलाता था।

नाटिका के अनुसार अच्यतुराज के पुत्र रघुनाथ नायक जिनकी राजधानी पुण्डुरीकपुर थी, के आश्रय मे रहकर इन्होने इस नाटिका का प्रणयन किया था।[२] चोलमण्डल का नामोल्लेख कर इन्होने अपने आश्रयदाता को चोल प्रदेश का शासक बतलाया है।

काल—श्री एस० एन० दासगुप्ता महोदय ने रघुनाथ नायक की राजधानी तजोर तथा काल १७वी शती का प्रथम भाग निर्दिष्ट किया।[३] प्राय· गैरोला, कीथ, बलदेव उपाध्याय आदि सभी विद्वानो का भी यही मत है कि राजचूड़ामणि दीक्षित १७वी शती के प्रथम भाग मे रघुनाथ नायक की राज्यसभा के विद्वान् थे। नाटिका के सम्पादक ने नाटिका की भूमिका मे राजा रघुनाथ को नायकवशीय कह कर तजपुर (तजौर) का शासन १६१४ ई० मे अपने पिता द्वारा दिये जाने पर सम्हाला। तथा इन्ही के राज्य मे रहकर उन्होने कमलिनी कलहस तथा आनन्द राघव नामक नाटको की रचना की, ऐसा उल्लेख किया।[४] इस तिथि के अनुसार भी राजचूडामणि का काल १७वी शती का प्रथम भाग ही निश्चित होता है।

कृतित्व—इनके द्वारा रचित सम्पूर्ण ग्रन्थो की यद्यपि निश्चित सख्या ज्ञात नही है, किन्तु उन्होने अपने काव्यदर्पण नामक ग्रन्थ के अन्त मे २४ ग्रन्थो का उल्लेख किया है। श्री टी० एस० कुप्पू स्वामी ने इन ग्रन्थो मे ८ ग्रन्थ वेद, शास्त्र व कर्मकाण्ड विषयक तथा शेष काव्य व साहित्य विषयक माने है। उन्होने सरस ग्रन्थो मे उनके—भारतचम्पू, कसवध, रुक्मिणी परिणय, आनन्दराघव, कमलिनीकलहस, श्रृगार-सर्वस्व व काव्यदर्पण का उल्लेख किया है।[५]

रुक्मिणी परिणय के व्याख्याकार श्री बालयज्ञ वेदेश्वर द्वारा निर्दिष्ट ३ अन्य काव्यग्रन्थो—रघुनाथ भूप-विजय, कान्तिमती परिणय व साहित्य साम्राज्य को विशेष

---

१ 'ज्ञायते खलु दन्तिद्योति दिवाप्रदीपविरूदस्य विश्वामित्र वश मुक्तामणेरद्वैत विद्याचार्यस्य सर्वतन्त्र स्वतन्त्र श्रीकृष्णभट्ट पौत्रस्य, लक्ष्मीभव स्वामिभट्ट सुकृत परिपाकस्य साग्निचित्यविश्वजिदति रात्र याजिनः सत्यमगलरत्नखेट श्री निवास दीक्षितस्य तनय कामाक्षीगर्भ सभव श्रीमदर्धनारीश्वरदीक्षित गुरुचरण सहजाल्लब्ध विद्या वैशद्य श्री राजचूड़ामणिर्नाम विद्वत्कविराज चूड़ामणिः' । —कम०, पृष्ठ ३, पृ० ८३

२ 'विनत विवुधसम्राजो विराजो हृदय पुण्डरीकाकारे पुण्डरीकपुरे सतत कृत सन्निधान मनन्यसामान्यानुभावतया स्वात्मानमेव गोविन्दराज वपुषा—चार्मणलोचनगोचरी भावमुपेयिवास महीयास पुमासमभिवन्दितुमागतमच्युत नरपाल सुकृत परिपाक रघुनाथ जनाधिनाथ भुजपरिपालित चोलमण्डल मण्डनायमानया निखिलकलाकलापकनकनिकष दृषदा परिषदा।' —कम०, पृष्ठ २, ८३

३ हि० स० लिट०, पृष्ठ ४७२।

४ कम० भूमि, पृष्ठ ८।

५ कम() भूमिका।

प्रामाणिक नही माना जा सकता, क्योकि स्वय कवि ने 'आनन्द राघव' मे रघुनाथ भूपविजय का रचयिता गोविन्द दीक्षित का प्रथम पुत्र बतलाया है।[१] डा० वाचस्पति गैरोला ने इस पुत्र का नाम यज्ञनारायण दीक्षित लिखा है जो रघुनाथ नायक का मन्त्री भी था।[२] उन्होने वही रघुनाथ भूपविजय काव्य का दूसरा नाम साहित्य रत्नाकर बतलाया।

पण्डित बलदेव उपाध्याय के अनुसार राजचूडामणिकृत 'रुक्मिणीकल्याण' काव्य पाण्डित्य प्रदर्शनात्मक है।[३] सभव है टी० एस० कुप्पूस्वामी ने जिसे रुक्मिणी परिणय नाम दिया है वही रुक्मिणीकल्याण नाम से भी विख्यात हुई हो। इस सब विवेचन से इतना स्पष्ट होता है कि श्री राजचूडामणि अप्रतिम विद्वान् एव अनेक ग्रन्थो के प्रणेता थे। इनमे कुछ ललित, कुछ शास्त्रीय और कुछ पाण्डित्यपूर्ण थे। इनके राघवयादव पाण्डवीय काव्य मे ही एक-एक पद्य के तीन-तीन अर्थ निकलते है।[४]

(12) वीरराघव

परिचय—दक्षिणभारतीय कवियो मे वीरराघव का प्रमुख स्थान है। यद्यपि प्राय इतिहासकारो ने इनका नामोल्लेख तक नही किया है किन्तु श्री कृष्णमाचारी महोदय ने इनके विषय मे पर्याप्त जानकारी दी है। तदनुसार इनका जन्म मद्रास के चिगलेपुट जिले के भूसुरपुर (तिरुमलासाई) गॉव मे सन् १७७० ई० मे हुआ था। बाघूल गोत्रीय दाशरथी वश के श्री नृसिह इनके पिता थे। वीर राघव की प्रसिद्धि अन्नावाप्पगर के नाम से थी। अपने ४८ वर्ष के जीवनकाल मे आपने मद्रास, मैसूर आदि अनेको प्रान्तो मे अत्यधिक सम्मान व प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी।[५] नाटिका की प्रस्तावना से भी उनके गोत्र व पिता का उपरिलिखित नाम ही ज्ञात होता है।[६]

श्री वीरराघव के परिवार के सम्बन्ध मे कृष्णमाचारी ने सूचना दी है कि इनके कोई पुत्र न था। इनकी पुत्री का पौत्र आर० अलसिगराचारी अब भी भुसुरपुर मे निवास करते है।[७]

---

१ कम० क० (भूमि०) टी० एस० कुप्पूस्वामीकृत।

२ (गैरोला) स० सा० इति०, पृष्ठ ८७०।

३ (बलदेव) स० सा० इति०, पृष्ठ ३२५।

४ (बलदेव) स० सा० इति०, पृष्ठ १७५।

५ 'वीरराघव पापुलर्ली' नोन ऐज अन्नावाप्पगर वाज दि सन आव नृसिंह एण्ड डिसेन्डेण्ट आव दासरथी आव बाघूलगोत्र, ही वाज बोर्न एट तिरुमलासाई (भूसुरपुर) इन सिंगलेपुट डिस्ट्रिक्ट मद्रास एबाउट १९७० ए० डी० एण्ड लिव्ड फार ४८ यियर्स। ही वाज मच रेस्पेक्टेड मैसूर एण्ड अदर प्राविंसेज।' —हि० क्लासि० स० लिट०, पृष्ठ ६२४.

६ मल० क०, पृष्ठ २-३।

७ 'ही हैज नो सन, एण्ड हिज डाटर्स ग्राण्डसन आर० अलसिंगराचारी (Alsıngarachari) नाउ लिव्ज इन दि सेम टाउन।' —हि० क्लासि० स० लिट०, पृष्ठ ६२४.

काल—वीर राघव का काल १७७० ई० निश्चित रुप मे कृष्णमाचारी ने लिखा है जिसकी सम्पुष्टि मे नाटिका के सम्पादक बाबूलाल शुक्ल ने भी वीरराघव को १८वी शती के अन्तिम भाग मे स्वीकार किया है।[१] इस काल के विषय मे किसी ने कोई प्रतिवाद नही किया।

कृतित्व—वीरराघव ने मलयजा कल्याणम् नामक नाटिका के अतिरिक्त भवभूति के महावीर चरित नाटक की टीका लिखी थी। भक्ति रसोदय काव्य व अनेक दार्शनिक ग्रन्थो का प्रणेता भी वीरराघव को माना जाता है।

श्री कृष्णमाचारी महोदय ने 'मलयजा कल्याणम्' के स्थान पर 'मलयजा परिणय' नामक नाटिका का उल्लेख किया है।[२] वस्तुत यह एक ही नाटिका है जिसके दो नाम है। नाटिका रूढि के अनुसार मलयजा परिणय नाम ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है क्योकि नायिका मलयजा का अन्त मे नायक से विवाह हो जाता है। अत कल्याण शब्द का नायिका के नाम के साथ सयोजन उचित प्रतीत नही होता। कल्याण शब्द नायक की भी प्रतीति नही कराता। कमलिनी कलहस नाटिका मे कलहस शब्द नायक के अर्थ को अभिव्यंजित करता है। उपलब्ध नाटिका का नाम मलयजा कल्याणम् ही है जिसका सम्पादन जबलपुर से श्री बाबू लाल जी शुक्ल के द्वारा किया गया।

(13) विश्वनाथ देव

परिचय—दक्षिण भारत के कवि श्री विश्वनाथ देव ने अपना परिचय नाटिका के आरम्भ मे इस प्रकार दिया है—कि ये गोदावरी तटवर्ती पवित्र धारासुर नगर के मूलत निवासी थे किन्तु इन्होने वहॉ से अपना विच्छेद कर लिया तथा वाराणसी मे ही बस गये। इनके पिता का नाम त्रिमल्ल देव था। वाराणसी में रहकर इन्होने मृगाकलेखा नामक नाटिका की रचना की थी,[३] जिसका अभिनय भगवान् विश्वेश्वर के यात्रा महोत्सव मे किया गया था।[४]

काल—विश्वनाथ ने नाटिका के नायक कर्पूरतिलक जो कलिग का शासक था, का उल्लेख किया है,[५] जिसके अनुसार विद्वानो ने इनका काल १८वी शती का अन्तिम भाग निर्धारित किया है।[६]

---

१ मल० क० भूमिका।
२ हि० क्लासि० स० लिट०, पृष्ठ ६२४।
३ 'वाराणसीपतेर्विश्वेश्वरस्य यात्राया मिलिता एव पार्षदा' —मृगा०, पृष्ठ २
'तदत्र गत्वा निजगुणकणिकाकौतूहल प्रदर्शनाय सकलमेव विदग्ध जन प्रार्थयानि' —मृगा०, पृष्ठ २
४ 'नन्विमामेव गोदावरी तीर पवित्रधारासुर नगर निवासिनः साम्प्रत विरचित वाराणसी वसतेस्त्रिमल्लदेव तनूजस्य शर्मणः कृतिं मृगाकलेखाभिधाना नाटिकामभिनेतुमुद्युक्त एवास्मि।' —मृगा०, पृष्ठ ५
५ मृगा०, पृष्ठ ६, (गैरोला) हिस्ट्री आफ स० लिट०, पृष्ठ ४७३।
६ ए हिस्ट्री आफ क्लासिकल स० लिट०, पृष्ठ ६६२।

विश्वनाथ कवि के सम्बन्ध मे और अधिक विवेचन उपलब्ध नही होता न ही उनकी अन्य रचनाओ का ही, किन्तु उनके द्वारा निर्दिष्ट स्वनाम विश्वनाथ शर्मा व नायक के अमात्य का रत्नचूड शर्मा[1] यह स्पष्ट करता है ये दोनो नाम उत्तर भारतीय एव अर्वाचीन है अत कवि उत्तरभारत का ही निवासी है किन्तु विश्वेश्वर की यात्रा महोत्सव का उल्लेख कवि के मूलत दक्षिण भारतीय होने का परिचायक है क्योकि वाराणसी मे विश्वेश्वर का यात्रामहोत्सव जैसा आयोजन नही होता था। यह यात्रा महोत्सव दक्षिणभारत की परम्परा प्रतीत होती है।

विश्वनाथ शर्मा ने पूर्वी एव उत्तरी भारत का भ्रमण किया था इसका ज्ञान उनके यात्रा मे सम्मिलित लोगो के वर्णन से होता है। जहाँ उन्होने 'भोट' शब्द का प्रयोग कर तिब्बत व सिक्किम आदि के लोगो का भी उल्लेख किया है।[2]

कृतित्व—विश्वनाथ शर्मा की केवल एक कृति मृगाक लेखा नाटिका का ही विवरण प्राप्त होता है तदतिरिक्त कोई भी अन्य ग्रन्थ उपलब्ध न होने के कारण या उल्लेख न होने के कारण इनकी कीर्ति कौमुदी की प्रकाशिका एकमात्र यही नाटिका मृगाकलेखा है।

(१४) विश्वेश्वर पाण्डेय

परिचय—आधुनिक नाटिकाकारो मे प० विश्वेश्वर पाण्डेय का स्थान पाण्डित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इनका जन्म अल्मोडा जिले के पाटिया नामक गॉव मे हुआ था। पिता श्री लक्ष्मीधर पाण्डेय ने वृद्धावस्था मे भगवान् विश्वनाथ की आराधना कर इन्हे प्राप्त किया था अतएव इनका नाम विश्वेश्वर रखा गया।[3]

काल—डा० हीरालाल ने इनका काल १७०८ ई० से १७८८ ई० तक निर्धारित किया है। सभी इतिहासकारो ने इनका काल १८वी शती ही माना है।

कृतित्व—विश्वेश्वर पाण्डेय इस शती के महान पण्डितो मे से है। इन्होने दार्शनिक, शास्त्रिय, काव्य, नाटक और टीका आदि के रूप मे अनेको ग्रन्थो की रचना की। डा० हीरालाल जी ने इनकी २३ रचनाओ का इस प्रकार विवरण दिया है—१. लक्ष्मीविलासकाव्यम् (महाकाव्य), २ रोमावली शतकम्, ३ वक्षोज शतकम्, ४ होलिका शतकम्, ५ ऋतुवर्णनम् (खण्डकाव्य), ६ नवमालिका (नाटिका), ७ श्रृगारमजरी (सट्टक), ८ सिद्धान्त सुधानिधि (दर्शन), ९ काव्यरत्नम् (काव्यशास्त्र), १० दीधिति प्रवेश, ११ तर्ककुतूहलम्, १२ आर्यासप्तशती, १३ कवीन्द्र कर्णाभरणम्,

---

१ 'एष देवस्य कर्पूरतिलकस्य प्रधान सर्वस्व रत्नचूड शर्मा साधुवाद पुरःसरमित एवाभिवर्तते।'
—मृगा०, पृष्ठ ६।

२ अन्ये लाटवराट भोटतटगा. कर्णाट चेद्युद्भव।
केऽप्यन्ये कविवाक्य कौशलकला विज्ञा महाराष्ट्रजा ॥
—मृगा० १/४

३ आधु० स० सा०, पृष्ठ १६६-६७।

१४ काकतिलकम्, १५ नैषधकाव्य दीपिका, १६ मन्दारमजरी टीका, १७ रसचन्द्रिका टीका, १८ रसमजरी टीका, १९ अलकार मुक्तावली, २० अलकार कोस्तुभ, २१ आर्याशतकम्, २२ रुक्मिणी परिणय, २३ मन्दारमजरी।[1]

श्री एस० एन० दासगुप्ता महोदय ने डा० हीरालाल द्वारा निर्दिष्ट 'ऋतुवर्णनम्' के स्थान पर काव्य का नाम 'षड्ऋतुवर्णनम्' लिखा, साथ ही यह भी निर्दिष्ट किया कि यह काव्य कालिदास के ऋतुसहार काव्य का अनुकरण है।[2]

श्री गैरोला ने डा० हीरालाल द्वारा निर्दिष्ट कवीन्द्र कर्णाभरणम् को ही सभवत कवीन्द्र कण्ठाभरण नाम दिया किन्तु 'अलकार प्रदीप' नामक एक ऐसी कृति का उल्लेख किया जिसे डा० हीरालाल ने नही लिखा।[3] इससे यह प्रतीत होता है कि श्री विश्वेश्वर पाण्डेय ने केवल २३ ही नही इससे भी अधिक ग्रन्थो की रचना की थी जो या तो डा० हीरालाल को उपलब्ध नही हो सके या वे नष्ट हो गये।

(१५) अम्बिकादत्त व्यास

परिचय—प्रसिद्ध गद्य काव्यकार, घटिकाशतक, भारतरत्न आदि उपाधिधारी प० अम्बिकादत्त जी का जन्म जयपुर के समीप मानपुर ग्राम मे हुआ था। इनके पिता गौड ब्राह्मण प० दुर्गादत्त जी थे,[4] जो स्वय पण्डित थे। इन्होने बिहार और वाराणसी मे रहकर अध्ययन, अध्यापन करते हुए अपने प्रातिभ वैभव का प्रकाश किया था।

काल—पण्डित अम्बिकादत्त व्यास के काल-सम्बन्ध मे किसी प्रकार की विभिन्नता या सन्देह नही है। विक्रमी सवत् १९१५ मे जन्म होने के कारण आप का काल १८वी शती का अन्तिम व १९वी का आरम्भिक काल है।

कृतित्व—अम्बिकादत्त जी ने लगभग १७ ग्रन्थ लिखे। १९वीं शती के श्रेष्ठ नाटक सामवतम् के अतिरिक्त 'ललिता' नामिका नाटिका भी लिखी थी जिसका उल्लेख डा० हीरालाल ने किया है।[5] दुर्भाग्य से यह नाटिका आज उपलब्ध नही है।

डा० कृष्णकुमार ने अम्बिकादत्त व्यास—एक अध्ययन नामक शोधग्रन्थ मे भी इसका उल्लेख नही किया है। शिवराज विजय ललित गद्य मे लिखा हुआ

१ आधुनिक स. सा० पृष्ठ १६७

२ 'विश्वेश्वर, हाउएवर इन हिज षड्ऋतुवर्णनम् रिटेन इन दि एट्टीन्थ सेंचुरी इमिटेटेड वर्सेज फ्राम दि ऋतुसहार'

—(दासगुप्ता) हि० स० लिट०, पृष्ठ ७५२ (टिप्पणी)

३ (गैरोला) स० सा० इति०, पृष्ठ ९६६।

४ (हीरालाल) आधु० स० सा०, पृष्ठ २८५।

५ स. सा इति. पृष्ठ ९६६

सस्कृत साहित्य का प्रथम उपन्यास शैली का ग्रन्थ इन्ही की कृति है। अनेक इतिहासकारो ने आपके ग्रन्थो का नामोल्लेख कर परिचय दिया है।

(१६) गोपालकृष्ण

परिचय—सरस्वती भवन पुस्तकालय वाराणसी मे एक हस्तलिखित नाटिका विद्यमान है जिसका नाम चन्द्रप्रभा है।[१] पुस्तकालय के कैटालाग मे इसके लेखक के स्थान पर अज्ञात लिखा गया है। किन्तु नाटिका के आरम्भिक पृष्ठो को पढने पर अन्य नाटिकाकारो की भॉति कवि ने अपना नाम भी लिखा है। यह लेखक है गोपालकृष्ण।[२]

अभी तक इस कवि के सम्बन्ध मे किसी ने कुछ नही लिखा। अत इनके समय, स्थान, वश आदि के सम्बन्ध मे पर्याप्त अन्धकार है।

काल—उपलब्ध हस्तलिखित नाटिका के अन्त मे सशोधन कर्ता का यह वाक्य 'स० १९२७ ज्येष्ठ शुक्ल ५ शनौ तृतीय प्रहरे रामचन्द्र व्यासोपनामकेन शोधितम्' लिखा मिलता है। इससे इतना तो स्पष्ट ही है कि यह नाटिका आज से जब १०४ वर्ष पूर्व सशोधित की गई थी तो इसकी रचना इससे भी पूर्व की गयी होगी। अनुमानत गोपाल कृष्ण कवि १९वी शती के पूर्वार्द्ध मे किसी समय हुए होगे।

नाटिका का इतिवृत्त ययातिराज और शर्मिष्ठा के प्रणय से सम्बन्धित है।[३] पौराणिक पात्रो पर आधारित अन्य अनेक उषारागोदया, सुभद्रा, प्रभावती परिणय एव वृषभानुजा आदि नाटिकाएँ उपलब्ध है। उसी श्रेणी मे यह भी एक प्रयास है किन्तु यहॉ कवि ने सर्वथा नूतनता का समावेश किया है, क्योकि अन्य सभी नाटिकाओ का आरम्भ लोकानुरजनार्थ किया गया है परन्तु यहॉ के कवि को तो स्वय भगवान् कृष्ण ने ययाति चरित से सम्बन्धित नाट्य प्रस्तुत करने का निर्देश दिया है।[४] इससे यह भी अनुमान होता है कि १२वी शती के कवि रुद्रचन्द्रदेव

---

१ **हस्तलिखित ग्रन्थ स० ४२९१५ सरस्वती भवन वा० स० वि० वि० वाराणसी।**

२ **'प्रिये त्वमपि विक्षिप्त हृदयासि यत्कालिन्दी परिणयनाख्य महानाटककर्तुर्नाम विस्मृतवती कथ न वा स्मरसि नाटिकानिर्मातुरभिधान गोपालकृष्ण इति। इहहि—**
रुपक येन निर्माय सादर महमर्पित
विस्मर्तव्य कथ नाम तस्य कृष्णाङ्घ्रि सेविन.॥ —चन्द्रप्रभा, पृष्ठ ३.

३ **'यदु जन्महेतोर्धर्ममूर्तेर्ययाति महाराजस्य किमप्यपूर्व-मानन्द जनक चरित नाट्येन प्रदर्शनीयमिति।'**
—चन्द्रप्रभा, पृष्ठ २.

'अथकिं नायिकायाः पितृ कृत नाम शर्मिष्ठेति मातृकृत चन्द्रप्रभेति।
—चन्द्रप्रभा, पृष्ठ २.

४ **'अलमति विस्तरेण। सम्प्रति हि समादिष्टोऽस्मि यदुवशावतसेन भगवता रुक्मिणी रमणेन—**
—चन्द्रप्रभा, पृष्ठ १.

के ययाति चरित नाटक से कवि ने प्रेरणा ली हो। किंतु गोपालकृष्ण कवि को उनके समकालीन या कुछ परवर्ती नही माना जा सकता। पौराणिक ग्रन्थो भागवत आदि मे ययाति शर्मिष्ठा का प्रेम चित्रित किया गया है।

इस नाटिका मे नायक श्येन बाज पक्षी को पाल रहा है। बाज पालने की प्रथा शिवाजी के समय थी। शिवाजी १७वीं शती मे हुए थे अत नाटिका का काल १७वी शती का पश्चाद्वर्ती ही माना जा सकता है।

कृतित्व—श्रीगोपालकृष्ण कवि की चन्द्र-प्रभा नाट्य कृति के अतिरिक्त 'कालिन्दी परिणयन' नामक महानाटक का ज्ञान प्राप्त होता है जिसका स्वय लेखक ने चन्द्रप्रभा नाटिका की प्रस्तावना मे उल्लेख किया है।[१] किन्तु यह महानाटक आज उपलब्ध नही है। चन्द्रप्रभा नाटिका भी अभी तक अप्रकाशित रूप मे सरस्वतीभवन पुस्तकालय वाराणसी मे सुरक्षित है।

(17) सोठी भद्रादि रामशास्त्री

परिचय एवं काल—डा० हीरालाल ने आधुनिक सस्कृत साहित्य नामक अपने ग्रन्थ मे सोठी भद्रादि रामशास्त्री का जो परिचय दिया है तदनुसार इनका जन्म पूर्वी गोदावरी जिला के पीठरपुरम् नगर मे १८५६ ई० मे हुआ था। इनके पिता गौतम गोत्रीय वैदिक ब्राह्मण गगा रमय्या थे। सोठी जी १९१५ ई० तक इस ससार मे रहे।

कृतित्व—इनकी कुल चार रचनाये है—१ श्रीरामविजयम् (महाकाव्य), २ शम्बरासुरविजयचम्पू, ३ मुक्ताफलम् (नाटक) और, ४ मुक्तावली (नाटिका)।[२]

डा० गैरोला ने इनके 'मुक्तावल' नाटक का उल्लेख किया है।[३] सम्भव है जिसे डा० हीरालाल ने मुक्ताफल लिखा है वही भूल से मुक्तावल लिख गया हो। डा० गैरोला ने केवल रामशास्त्री ही लिखा है, 'सोठी भद्रादि' यह विशेषण केवल डा० हीरालाल ने लगाया। सम्भव है कि यह वहाँ के किसी अन्य उल्लेख या परम्परा पर उन्होने यह विन्यास किया हो। गैरोला ने एक स्थान पर रामशास्त्री के एक अन्य ग्रन्थ 'मेघ प्रति सन्देश' का भी उल्लेख किया है। जो सन्देश काव्य परम्परा का प्रमुख ग्रन्थ था, ऐसा उनका विचार है।[४]

इन नाटिकाकारो के अतिरिक्त जिनके नाम नाटिकाकार के रूप मे कही लिखे गये है उनका जीवन परिचय आदि उपलब्ध न होने के कारण विवरण नही दिया जा सका। ये प्रमुख कवि है—

---

१ 'प्रिय त्वमपि विक्षिप्तहृदयासि यत्कालिन्दीपरिणयनाख्य महानाटक कर्तुर्नाम विस्मृतवती कथंवा न स्मरसि नाटिका निर्मातुरभिधान गोपालकृष्ण इति।' —चन्द्रप्रभा, पृष्ठ ३

२ आधु० स० सा० पृष्ठ २८५।

३ (गैरोला) स० सा० इति०, पृष्ठ ८१७।

४ (गैरोला) स० सा० इति० पृष्ठ ९०२।

(1) **विश्वनाथ भट्ट**—श्री एम० कृष्णमाचारी महोदय ने विश्वनाथ भट्ट नामक कवि के द्वारा 'श्रृगार वाटिका' नाटिका की रचना का उल्लेख किया।[१]

श्री एस० एन० दासगुप्ता ने अपने ग्रन्थ 'हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर' के पृष्ठ ४७३ की टिप्पणी मे इस नाटिका का एक दूसरा नाम श्रृगार वापिका भी निर्दिष्ट किया, तथा लेखक के परिचय मे केवल इतना ही कहा कि श्री विश्वनाथ भट्ट चित्तपावन परिवार के माधव भट्ट के पुत्र थे।[२]

इनके सम्बन्ध मे और कोई जानकारी उपलब्ध नही है और न ही इस नाटिका के सम्बन्ध मे।

(2) **भट्टभवनुत चूड़ामणि**—नाट्यदर्पण मे 'कोशलिका' नामक नाटिका के प्रणेता के रुप मे इनका उल्लेख किया गया है[३] इसके अतिरिक्त कही किसी भी ग्रन्थ मे कोई उल्लेख प्राप्त नही होता। वत्सराज का उल्लेख करने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि नाटिका का नायक उदयन एव नायिका कोशलिका है। कथा पूर्णत काल्पनिक है। चूँकि रामचन्द्र (नाट्य दर्पणकार) का समय १२वी शती है अत वही इसका उल्लेख किया गया है।

(3) **धर्मगुप्त**—श्री एम0 कृष्णमाचारी महोदय ने धर्मगुप्त कृत 'रामाक नाटिका' का उल्लेख किया है तथा धर्मगुप्त का काल 1310 ई0 बतलाया है।[४] इस प्रकार ये 14वी शती के कवि माने जा सकते है। अन्य कही कोई उल्लेख नही।

(4) **नारायण**—श्री कृष्णमाचारी महोदय ने ही विश्वनाथ कविराज के पितामह या प्रपितामह नारायण के द्वारा चन्द्रकला नाटिका की रचना का उल्लेख किया है।[५]

(5) **चन्द्रशेखर**—श्री विश्वनाथ कविराज ने अपने पिता चन्द्रशेखर की एक नाटिका पुष्पमाला का उल्लेख किया है।[६] विश्वनाथ का समय १४वी का उत्तरार्द्ध विद्वानो ने निश्चित किया है तदनुसार इनका काल १४वी शती का मध्य या आरम्भ स्वीकार किया जा सकता है। ये एक प्रसिद्ध पण्डित परिवार के परम विद्वान् थे। यह भी विश्वनाथ कविराज के वर्णन मे स्पष्ट किया जा चुका है।

---

१ हि० क्लासि० सं० लिट०, पृष्ठ ७४८।

२ 'ऐनादर नाटिका इन फोर ऐक्ट्स नेम्ड श्रृगारवाटिका (आर वापिका) बाई विश्वनाथ भट्ट सन आव माधवभट्ट आव चित्तपावन फेमिली नं० ४१९६, पी० १९१५ एफ०।'
—हि० स० लिट०, पृष्ठ ४७३।

३ 'यथा भट्ट श्री भवनुत चूड़ामणि विरचितायां कोशलिकाया नाटिकाया कोशलिका प्राप्तिमधिकृत्य प्रवृत्तस्य वत्सराजस्य न प्रासगिकम्। —ना० द०, पृष्ठ ३०.

४ हिस्ट्री क्लासि० स० लिट०, पृष्ठ ७४८।

५ वही।

६ सा० द०, पृष्ठ १७३।

(6) **बामनभट्ट बाण**—श्री कपिलदेव द्विवेदी ने 'कनकलेखा कल्याण' नामक नाटिका का रचयिता श्री बामन भट्ट बाण को बताकर उनका काल 15वी शती पूर्वार्द्ध निश्चित किया है।[१]

यद्यपि इस कवि का श्री एस0 एन0 दासगुप्ता महोदय ने भी उल्लेख कर 14वी शती के अन्त व 15वी के आरम्भ मे इनका काल स्थिर किया है[२] किन्तु उन्होने कही भी इस नाटिका का उल्लेख नही किया।

श्री दासगुप्ता महोदय ने इनके 4 ग्रन्थो का उल्लेख किया है, वे है—1 श्रृगारभूषण (भाण),[३] 2 नलाभ्युदय (महाकाव्य),[४] 3 वेमभूपाल चरित,[५] गद्यकाव्य (आख्यायिका), 4 पार्वती परिणय (नाटक)।[६]

इनमे इतिहास लेखक ने वेमभूपाल राजा अर्थात् कोण्डाविदु के वीरनारायण रेड्डी की प्रशसा की है यह राजा 1403 से 1420 तक रहा। किन्तु कवि ने इसमे हर्षचरित का अनुकरण किया है।

डा0 कपिलदेव द्विवेदी द्वारा निर्दिष्ट नाटिका का प्रणेता यद्यपि यह कवि यहाँ निर्दिष्ट नही किया गया किन्तु दासगुप्ता महोदय के 'कोर्ट पोएट' (Court Poet) कथन करने से यह सकेत मिलता है कि कवि ने Court Commedy नाम से प्रसिद्ध नाटिका की रचना की होगी। दासगुप्ता ने यही यह भी निर्दिष्ट किया है कि यह बामन भट्ट बाण ही अभिनव बाण नाम से भी पुकारे जाते थे।[७]

(7) **कृष्णाकवि शेखर**—श्री एम0 कृष्णमाचारी महोदय ने इस कवि को नाटिका कुवलयवती का कर्ता बताया।[८] यह केवल एक सूचनामात्र है अन्यत्र या उस ग्रन्थ मे भी और कोई उल्लेख नही।

(8) **मेघ विजय**—मेघ विजय के सम्बन्ध मे एस0 एन0 दास गुप्ता ने केवल दो ग्रन्थो का परिचय देते हुए इन्हे जैन कवि कहा है। तथा इनका काल 17वी शती का अन्तिम भाग माना। इनके ये दो ग्रन्थ है—प्रथम-मेघदूत समस्या लेख[९]

---

१ **स0 सा0 समी0, पृष्ठ 445।**

२ **हि0 स0 लिट्0, पृष्ठ 489।**

३ **वही, पृष्ठ 299।**

४ **वही, पृष्ठ 331।**

५ **वही, पृष्ठ 433।**

६ **वही, पृष्ठ 298-99।**

७ **'बट इट इज रियली दि वर्क आव ए कम्परेटिवली माडर्न अभिनव बाण, नेम्ड बामन भट्ट बाण, हू वाज ए कोर्ट पोएट आव दि रेड्डी प्रिंस वेम आव कोण्डविदु ऐट दि एण्ड आव दि फोर्टीन्थ एण्ड दि बेगिनिंग आव दि फिफ्टीन्थ सेचुरी।'**

—हि० स० लिट० पृष्ठ २९९.

८ **हि0 क्लासि0 स0 लिट0, 748।**

९ **'आव दि सेम टाइप इज दि मेघदूत समस्या लेख आव मेघविजय (एण्ड आव दि सेविंटीथ सेचुरी) इन ह्विच दि क्लाउड इज सेंट ऐज ए मैनेजर टु दि आथर्स प्रिसेप्टर विजय प्रभा सूरी।'** **—हि० स० लिट०, पृष्ठ ३७५ (टिप्पणी)**

तथा द्रितीय-पचाख्यानोद्धार, जिसका रचनाकाल 1659-60 ई0 माना गया। इन्ही की एक नाटिका 'चन्द्रप्रभा' भी है जो मानिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला बम्बई से प्रकाशित हो चुकी है।

इन कवियो की नाटिकाओ के अतिरिक्त विभिन्न इतिहासकारो एव ग्रन्थकारो ने अन्य अनेक ऐसी नाटिकाओ का उल्लेख किया है जिनका न तो काल ही ज्ञात है और न ही उनके रचयिता का नाम। ये नाटिकाएँ निम्नलिखित है—

1 ग्रामेयी
2 इन्दुलेखा
3 अनगवती
4 इन्दुमती
5 चित्रलेखा
6 पद्मावती
7 गृहवृक्षवाटिका

(ब) पात्र परिचय एवं प्रतीकात्मकता

परम्परा प्रथित-प्रधान नाटिकाओ के पात्र प्राय सर्वत्र एक जैसी भाषा का प्रयोग करते है व आचरण तथा व्यवहार मे समान होने के कारण पर नाटिका के पात्र पूर्वनाटिका की अनुकृति प्रतीत होते है।[१] आरम्भिक कवि हर्ष, राजशेखर आदि के पात्रो मे नवीनता का किचिदुन्मेष है किन्तु चारित्रिक विकास की अपेक्षा ह्रास होने के कारण वे युगीन परिस्थितियो के सही प्रतीक नही बन सके। उच्चवर्ग की विलासी प्रवृत्तियो को रुपायित करने मे उनका 'स्व' दब गया। भारतीय सस्कृति और साधना का शरीर क्षत विक्षत हो गया। साहित्य समाज का दर्पण न रहकर भोग और विलासिता का बिम्ब बन गया।

नाटिकाओ की इन प्रवृत्तियो का परिणाम यह हुआ कि उनके पात्र किसी आदर्श को उपस्थापित करने मे सर्वथा असमर्थ रहे। किन्तु पात्र, इतिवृत्तानुकूलता को ही अभिनय का आधार मानता है, तदनुसार ललित, श्रृगाररस बहुल नाटिकाओ के पात्र भले ही युगीन नेता का सही चित्र प्रस्तुत न कर सके हो पर ललित प्रणयी, व कामी राजसमाज की कलई खोलने मे वे सर्वथा सक्षम है। इस दृष्टि से इनके पात्रो पर विचार करना अपेक्षित है।

समस्त नाटिकाओ के पात्रो को सामान्यत. तीन श्रेणियो मे विभक्त किया जाता है—उत्तम श्रेणी, मध्यम श्रेणी एव अधम श्रेणी के पात्र।

---

१ **'दि नाटिका ह्विच जनरली डील्स विद स्टोरीज आफ कोर्ट लाइफ आफ ए लिजेण्ड्री आर फिक्टीशिएस करेक्टर, ऐपियर्स टु हेव इन्ड्यूस्ड इवेन ए स्मालर नम्बर आफ इमिटेशन्स ऐण्ड दि टाइप इज फाउण्ड इवेन मोर रिजिडली फिक्स्ड बाई दि वर्क्स आव हर्ष एण्ड राजशेखर।' —(दासगुप्ता) हि० स० लिट०, पृष्ठ ४७१.**

नाटिकाओ मे नायक, नायिका उत्तम श्रेणी के, मत्री, पुरोहित, सेनापति मध्यम श्रेणी के और विदूषक, सेवक सेविकाएँ आदि अधम श्रेणी के पात्र होते है।

नायक—शास्त्रकारो ने 4 प्रकार के नायको धीरोदात्त, धीरललित, धीरोद्धत और धीरप्रशान्त का विभेद किया है।[१] नाटिका का नायक प्रख्यात किन्तु धीरललित होना चाहिए।[२] जिससे कि वह श्रृगाररस बहुल कैशिकी वृत्ति का निर्वाह कर सके।

धीर ललित नायक निश्चिन्त अर्थात् राजकार्यादि चिन्तामुक्त, कोमल स्वभावी, नृत्य गीतादि कलाओ मे आसक्त और सुखी होता है।[३]

सस्कृत नाटिकाओ मे इस लक्षण की अपेक्षा नायक के चरित्र मे एक और विशेषता का समावेश किया गया, वह है देवी नायिका से भयभीत रहना।[४]

धीरललित नायक के इन लक्षणो के परिप्रेक्ष्य मे जब नाटिकाओ के नायको पर दृष्टिपात करते है तो स्पष्टत यह ज्ञात होता है कि प्राय सभी नाटिकाओ के नायक इन लक्षणो से सम्यक् समन्वित है।

प्रियदर्शिका और रत्नावली का नायक वत्सराज धीरललित नायक की भूमिका का सफलता से निर्वाह करता है। महाकवि हर्ष जो स्वय राजा थे, नायक के रुप को भी वे दरबार से पृथक् नही ले जा सकते थे, अतएव उदयन स्वत अपने राज्यभार को मत्री पर समर्पित करना नही भूलता। उसका अपने मित्र विदूषक से स्पष्ट कथन है कि यह वसन्तोत्सव वस्तुत मेरा ही है।[५]

यहाँ यद्यपि नायक वसन्त के समय मे प्रद्योत पुत्री के साथ प्रणय क्रीड़ा के लिये प्रस्तुत हो रहा है किन्तु वह मत्री को राज्यभार समर्पित कर, प्रजा की सुख सुविधा आदि की सम्यक् समीक्षा करके ही इस ललित भूमिका मे आता हैं। अत जिन व्यक्तियो का यह आक्षेप है कि वत्सराज भास के वत्सराज की अपेक्षा घटिया किस्म का है।[६] सर्वथा अविचारणीय है। नाटक और नाटिका के साम्बिधानिक स्वरुप मे यदि अन्तर माना जाता है तो नायको की प्रकृति मे भी परिवर्तन मानना ही पडेगा। पूर्वत यह कथन किया जा चुका है कि पात्र के आचरण व अभिनय का आधार इतिवृत्त होता है।

शास्त्रकारो ने धीरललित नायक के भी दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल और शठ रुप चार भेद किये है।[७] इनके अनुसार वत्सराज उदयन कही दक्षिण तो कही धृष्ट और कही शठरुपता को प्राप्त होता है।

---

१ दश० २/३, सा० द० ३/३१
२ दश० ३/४४.
३ सा० द० ३/३४, दश० २/३
४ नेता तत्र प्रवर्तेत देवी त्रासेन शकितः। —दश० ३/४८
५ राज्य निर्जितशत्रु—मम पुनर्मन्ये महानुत्सवः। —रत्ना० १/९.
६ (कीथ) स० ना०, पृष्ठ १७९ (हिन्दी अनुवाद)
७ सा० द० ३/३५.

आरम्भ मे वासवदत्ता के प्रति अनुरागवान् होकर समान रुप से सागरिका के प्रति भी उसका वैसा ही अनुराग होने के कारण जहॉ दाक्षिण्य भाव स्पष्ट है[१] वही वासवदत्ता वेष मे आत्महत्या के लिये समुत्सुक सागरिका को जब राजा लतापाश से मुक्त कर लाता है तो सागरिका के द्वारा राजा को अलोक प्रेम प्रदर्शन का आक्षेप लगाने पर राजा सागरिका को वासवदता की अपेक्षा अधिक प्रेम करने का विश्वास दिलाता है[२] किन्तु वासवदता के द्वारा यह प्रत्यक्ष सुन लेने पर भी राजा उसकी प्रसन्नता के लिये असत्य बोलता है 'कि मैने तो इसे तुम्हारे वेश के कारण तुम्हे (वासवदता) ही समझ कर ऐसा कहा था।'[३] अतः यहॉ उसका धृष्ट नायकत्व स्पष्ट हुआ है, किन्तु प्रेम मे इस प्रकार का छल प्रपच दोष नही माना जाता।

प्रियदर्शिका मे नायक का स्त्रैण भाव अधिक स्पष्ट है। भ्रमरबाधा पर राजा सागरिका की रक्षा करता है किन्तु विदूषक के एक सकेत पर कि देवी की दासी इन्दीवरिका आ रही है, डरकर कदलीगृह मे छिप जाता है। राजा के पास इतना भी साहस नही है कि वह देवी नायिका की चेटी का भी सामना कर सके।[४]

इससे यद्यपि नायक का हीन भाव व्यक्त होता है किन्तु देवी नायिका से भयभीत रहकर प्रणय-व्यापार मे प्रवृत्त होने की नाटिका रुढि का परिपालन भी हो रहा है।

धीरललित नायक प्रेम के लिये साहस का भी प्रदर्शनकर सकता है, प्रेम के लिये अपने प्राणो की बाजी भी लगा सकता है, रत्नावली मे ऐन्द्रजालिक प्रदर्शन मे अन्तपुर की आग मे सागरिका के फस जाने पर जब राजा उसे बचाने के लिये उद्यत होता है किन्तु विदूषक उसे मना करता हुआ कहता है—'वअस्स मा क्खु एव्व साहस करेहि' फिर भी राजा उसका निषेध कर कहता है—'धिडमूर्ख, सागरिका विपद्यते। किमद्यापि प्राणा धार्यन्ते।'[५]

स्पष्ट है कि यहॉ उदयन का धीरललित नायकत्व औचित्य की पराकाष्ठा पर पहुॅच गया है। प्रेमी प्रेम के लिये अपने प्राणो के समर्पण से अधिक और क्या कर सकता है। प्रियदर्शिका मे राजा की सगीतकला प्रियता का भी परिचय प्राप्त होता है।

ललित नायक, प्रकृति की रागात्मक वृत्ति का उपासक होता है, वत्सराज उदयन के जीवन मे वह इस तरह व्याप्त है कि सागरिका और आरण्यका के वियोग मे

---

१ रत्ना० १/२३, २५, २/९,१०.
२ रत्ना० ३/१८.
३ 'सत्य त्वामेव मत्वा वेषसादृश्याद्विप्रलब्धा वयमिहागता।' —रत्ना०, पृष्ठ १२४.
४ प्रिय०, पृष्ठ ३०।
५ रत्ना०, पृष्ठ १५८।

उसके जीवन का आलम्बन भी प्रकृति है, उसके काम भावो की उद्दीपिका भी वही है। वह कभी बसन्त को, कभी चन्द्र को, और कभी लता-वृक्षो को उपालम्भ देकर मनोविनोद करता है जो धीरललित नायक का विलास और कर्म है।

कर्णसुन्दरी का नायक चालुक्य वशी राजा कर्ण निश्चय ही वत्सराज की अनुकृति का प्रयास है किन्तु उसमे वह लालित्यभाव नही उभर सका जो वत्सराज मे है। विदूषक मुख से ही नायिका मिलन की सूचना पाकर वह इतना सन्तुष्ट हो जाता है कि रात्रि को शतयामा होने की कामना करता है।[१]

यहाँ नायक मे दक्षिण धृष्ट और शठभावो का एकत्र सम्मिश्रण है। देवी नायिका के रुष्ट होने पर उसे पादपतन मे भी सकोच नही होता।[२] होना भी नही चाहिए। प्रेम मे यह सब कुछ उचित होता है। नायक इसीलिये तो लज्जा की स्तुति करता है—'तद्वैलक्ष्य वय स्तुम'।[३]

धीरललित होने के कारण नायक चित्र, काव्य और सगीतादि कलाओ मे कुशल है। महाराजा कर्णदेव ने वृद्धावस्था मे विवाह किया था, वह उनकी उत्कण्ठा और अतिशय आसक्ति का परिणाम था। इसीलिये आरम्भ मे वह नायिका राजा को स्वप्नगत प्रतीत होती है किन्तु बाद मे उपलब्ध हो जाने पर प्रत्यक्ष हो जाती है। स्पष्ट है कि स्वप्न मे उसे देखकर आकृष्ट हो जाना, राजा के इसी अत्यासक्ति का प्रतिफलन है अतएव नाटिका का नायक साक्षात् त्रैलोक्यमल्ल कर्णदेव ही है। उसका यह कथन—

जनिमुपगता विश्वप्रख्यातनाम्नि कुले पुन·
प्रणयविशदा देवी भोक्तुं मया न हि पार्यते।
कथमवितथश्लाघ्यैरंगैरसावपि मुच्यतां
रचितकवचः पक्षे यस्या स्थित कुसुमायुध.॥[४]

इस तथ्य की पुष्टि करता है।

सच्चे प्रेमी की भूमिका मे नायक का चरित्र अनेकश उभरा है। वह नायिका को प्राप्त करने के लिये क्या क्या कर सकता है, यह अग्रिम पद्याश मे स्पष्ट है—

स्थातुं सुशक्यमनले पतितुं कृपाण-
धारासु वा न तु जनं दयितं विमोक्तुम्॥'[५]

---

१ कर्ण0, 3/9.
२ वही, पृष्ठ 46।
३ वही, 3/31.
४ वही, 2/8.
५ कर्ण० २/९

इसी प्रकार नायिका की मोहावस्था मे उसका स्पर्श करने पर वह सम्पूर्ण सुखो की अनुभूति का स्वत कथन करता है[१] जो भावुक के चित्त मे किसी अश तक अरुचिकर भी हो जाता है किन्तु नाट्यशास्त्र की यह पक्ति पढकर कि—'देवा धीरोद्धता ज्ञेया ललितास्तु नृपा स्मृता'[२] ऐसा प्रतीत होता है कि राजा का चरित्र ही धीरललित होता है, अत वह थोड़े आनन्द मे अधिक आनन्द और थोडे दु ख मे अधिक दु ख की अनुभूति करने लगता है, किन्तु विद्धशालभंजिका का नायक इन दोनो नायको की अपेक्षा अधिक दक्षिण है। नायिका के प्रति प्रेमभाव होने पर भी वह देवी के विषय मे कहता है—'आ शैशवात् प्ररुढप्रणया देवी कथ विस्मर्यते'[३] इतना ही नही वह देवी नायिका से प्रेम का विच्छेदन अनुचित मानता है क्योकि उसके विचार मे—

नो मालतीदामविमर्दयोग्य
न प्रेम नव्य सहतेऽन्तरायम्।
म्लानापि मोच्या न हि केसरस्त्रग्
देवी न खण्डा प्रणया कथंचित्॥[४]

इससे जहॉ नायक का देवी नायिका के प्रति आदरपूर्ण भाव व्यक्त होता है वही उसकी विलासी प्रवृत्ति का भी तब पता चलता है जबकि वह विभिन्न देशो की स्त्रियो के रग, आभूषण प्रियता और अलकार विधि का स्वयं उल्लेख करता है। चूँकि नायक का चित्त लाट प्रदेश के राजा की कन्या मे आसक्त है अत वह उसे ही सर्वाधिक सौन्दर्यपूर्ण व कलात्मक बतलाता है।[५]

मनोविनोदी नायक अपने नर्मसखा विदूषक को अलीक विवाह विधि से विडम्बित करने की देवी नायिका की योजना का भी निषेध नही करता और स्पष्ट करता है कि 'तज्जोषमास्महे। वर्धता परिहास-लता'[६] इससे नायक का चारित्रिक पतन नही अपितु ललित भाव ही अभिव्यक्त होता है। कर्णसुन्दरी की अपेक्षा इसमे नायक की प्रस्तुति अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर है।

---

१ मग्न मृगाकसरसीव सुधानिधाने गर्भे निषण्णमिव पकजकैरवाणाम्।
अप्यत्र यन्त्रविनिपीडितपारिजात निस्यन्दधौतमिव निर्वृतिमेति चेत.॥ —कर्ण० २/३८.

२ ना० शा० ३४/३८

३ विद्ध०, पृष्ठ ६६।

४ विद्ध०, ३/५.

५ लाटीचम्पकपिंजरेरवयवेर्दूर्वा-निभै..कुन्तलौ
पूर्वा रत्नमयी बिभर्ति रचनामन्त्या तु मुक्तामयीम्।
इत्थ द्वे अपि ते विलास-सदने देवस्य चेतोभुव
प्राच्याः किन्तु नितान्तनिर्जितजगवल्लावण्यलाभोदय॥ —विद्ध० ४/१४.

६ विद्ध०, पृष्ठ ३८।

उषारागोदया नाटिका मे नायक कुमार शठ[१] कोटि का धीरललित नायक है, वह न केवल उषा (नायिका) की याद मे विह्वल है अपितु उसे देवी नायिका के साथ दोलारोहण आदि क्रियाये भी अच्छी नही लगती और वह प्रकारान्तर से देवी के मन मे अरुचि उत्पन्न करता है, परिणामत वह क्रुद्ध हो जाती है।[२] किन्तु इसका अर्थ यह नही कि नायक नाटिकारुढि के विपरीत देवी से भयातुर नही है। कामपूजन के समय देवी के द्वारा कुमार की हृद्गत विकलता का आभास कर चली जाने पर विदूषक जब यह कहता है कि 'उपकृत खलु देव्या' तो कुमार अपने हृदय की भीति भावना का सम्यक् प्रकाशन करता हुआ कहता है उसकी क्रोधपूर्ण आकृति की भावना करने पर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है।[३]

प्रसिद्ध पौराणिक पात्र होने के कारण यद्यपि कुमार (अनिरुद्ध) नाटिका के नायक रुप मे किसी मानदण्ड की स्थापना मे समर्थ नही होता है। किन्तु एक प्रेमी व सरल भावुक चित्त नायक के रुप मे वह सफल रहा है।

अभी तक वर्णित समस्त नायको की अपेक्षा चन्द्रकला का नायक चन्द्रवशीय सम्राट् चित्ररथदेव अपेक्षाकृत अधिक गम्भीर, व कुलीन पुरुष की मर्यादा की रक्षा करता है। नायिका के प्रति आसक्त होकर भी महारानी के प्रति सम्मान, नम्रता और स्नेही व्यवहार मे त्रुटि नही करता। यद्यपि बघेरे की उपस्थिति से वे अपने वीरभाव के प्रदर्शन हेतु देवी के मना करने पर भी उसे मारने जाते है किन्तु आगे उनका यह आदेश कि 'एक मृत बघेरे के शरीर मे बाण बीध कर यह घोषणा कर दी कि राजा ने व्याघ्र को मार दिया' निश्चय ही उसके पराक्रम का उपहासक बन जाता है।[४] यद्यपि प्रेम मे छल प्रपच, झूठ आदि सभी की उपयुक्तता स्वीकार्य है फिर भी यह कथन स्वय राजा के मुख से कराकर कवि ने नायक की प्रतिष्ठा पर आघात किया है।

देवी नायिका के द्वारा उसके चन्द्रकला के मिलन मे बाधा डालने से जहॉ अनुराग और दृढ हुआ है वही उसके हृदय में क्रोध का आविर्भाव भी स्वाभाविक था, पर नायक ने ऐसा नही किया। निरन्तर उसे समझाने, रिझाने और मनाने में ही अपना कल्याण मानता रहा, यह उसका देवी नायिका के प्रति भयभीत रहने का परिचायक है। अत इनको वत्सराज या कालिदास के अग्निमित्र के समान दक्षिण ललित नायक की श्रेणी मे रखा जा सकता है।

---

१ सा० द०, ३/२७

२ 'अतोऽस्या दोलाधिरुढाशय प्रकारान्तरेण शिथिलयामि मा भूत्कालातिपातेन ममाति पात' —उषा०, पृष्ठ १६.

३ स्फुरदधरोष्ठ पुटान्त कुचित पद्मेक्षित देव्या।
रोषारुणित कपोल भावयतो मे विदीर्यते हृदयम्॥ —उषा०, २/२२.

४ 'वनपाल, तदिदानी भवतातरक्षुमेक मानीय इहैव विशिरवजाल निभिन्न स्था पितवता घुष्यतामभितो महाराजेन निहत स्तरक्षुरिति।' —चन्द्र० पृष्ठ ३२

सस्कृत नाटिकाओ मे मृगाकलेखा नाटिका का नायक मृगाक लेखा के वियोग मे जहॉ सब कुछ छोड कर अपने अद्‌भुत प्रेम का परिचय प्रस्तुत करता है, वही वह नायिका के वियोग मे श्मशानघाट पर शखपाल दानव से प्रिया को बचाने मे धीरोदात्त नायक की भूमिका अदा करना भी जानता है। क्योकि निहत्थे पर अस्त्र प्रहार नीति विरोधी होने के कारण पहले वह दानव को तलवार देता है और तब उससे युद्ध करता है।[१]

इस कर्म के कारण इसका नायक दुष्यन्त के समान धीरललित होकर भी धीरोदात्तता, प्राप्त करता है। छिपकर नायिका का विस्त्रम्भालाप श्रवण, चित्र से मनोविनोद, मदनलेख पढकर एव प्राकृतिक उपादानो से मन को बहलाने की नायक क्रियाओ के जो आरम्भ श्रीहर्ष के वत्सराज या उससे भी पूर्व कालिदासादि के दुष्यन्तादि के समय से प्रचलित हुए थे, सस्कृत नाटिकाओ मे वे यथावत्‌ २०वी शती तक भी विद्यमान है। पात्र चाहे कल्पित हो या पौराणिक सर्वत्र एक जैसी रुढियो का प्रदर्शन किया गया और इसीलिये आधुनिक काल के प्रसिद्ध कवि मथुरादास ने भी कृष्ण को राधा के इगित पर नृत्य करने वाला ही चित्रित किया।

पाश्चात्य समीक्षको ने इसीलिये इन पात्रो को टाइप (Type) की सज्ञा दी। परम्परा प्रथित नाटिकाओ मे मनगढन्त के सिवा कुछ नवीन नही होता। यही कारण है कि उनके पात्र किसी स्थान का निर्धारण कर पाने मे सर्वथा असमर्थ रहते है। इसीलिये तो एस0 एन0 दास गुप्ता ने लिखा—'दे आल स्पीक दि सेम लेग्वेज एण्ड हैव दि सेम सेट आव सिचुएशन्स फीलिग्स एण्ड आइडिआज।'[२]

नायिका—नाटिकाओ मे दो नायिकाएँ होती है। गौण नायिका नायक की विवाहिता राजमहिषी और द्वितीय कन्या नायिका मुख्य होती है जिसकी प्राप्ति का उद्योग नायक का प्रमुख व्यापार होता है।

नायिकाओ के विभाजन सम्बन्धी अनेक विचार, प्रकार शास्त्रकारो की लेखनी से उद्‌भूत हुए है। साहित्यदर्पणकार ने नायिकाओ के 384 भेद किये है।[३] किन्तु यहॉ जिन नायिकाओ की सस्थिति है तदनुसार नायिका के तीन भेद स्वीया, अन्या और साधारण स्त्री ही ग्राह्य है।[४] नाट्‌यशास्त्र और नाट्‌यदर्पण मे जो चतुर्थ भेद दिव्या नायिका का है,[५] वह यहॉ नाटिका प्रकृति मे सर्वथा त्याज्य है।

---

१ 'तदगीकुरु कृपाणम्‌, नायमशस्त्रे पतति मद्‌भुजा परिघप्रहार.।'
—मृगा० पृष्ठ ४५.

२ हि० स० लिट०, पृष्ठ ४७१।

३ इति साष्टाविंशतिशतमुत्तममध्याधमस्वरुपेण।
चतुरधिकाशीतियुत शतत्रय नायिकाभेदाः॥ —सा० द० ३/८७.

४ सा० द० ३/५६.

५ ना० द०, सू० २५५।

उपर्युक्त तीनो प्रकार की नायिकाएँ, मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा भेद से तीन प्रकार की हो सकती है[१] किन्तु प्राय. लक्षणकारो ने स्वीया को ही प्रधानता देकर उसी का बहुविध विवेचन किया है। दर्पणकार[२] ने स्वीया के 13 भेद और अन्या के केवल दो भेद किये—परोढा और कन्या।

चूँकि नाटिका मे स्वीया और कन्या (परकीया) दो नायिकाएँ होती है अत सक्षिप्तत· उनकी प्रकृति पर विचार अपेक्षित है।

स्वीया के मुग्धा मध्या और प्रगल्भा जो तीन भेद किये गये, उनके अनुसार नाटिकाओ मे देवी मध्या कोटि की होती है क्योकि मध्या को 'ईषत् प्रगल्भ वचना'[३] कहा गया है जो नाटिकाओ मे दृष्टिगोचर होता ही है। इस मध्या को भी स्वभावानुसार धीरा, अधीरा और धीराधीरा भेद से त्रिविध बताया गया है।[४]

धीरा मध्या नायिका अपराधी प्रियतम को सपरिहास व्यग्य वचनो से आहत करती है, अधीरा परुष-भाषण से और धीराधीरा रोदन से खिन्न करती है।[५] स्पष्ट है कि नाटिकाओ मे प्राय धीरा मध्या स्वीया नायिका ही देवी के रुप मे चित्रित की गई है।

द्वितीय नायिका कन्या (परकीया) है। इसे अनूढा शब्द से भी अभिहित किया गया है। कन्या नायिका नवयौवना और सलज्जा होती है।[६]

नाट्यदर्पणकार ने इन नायिकाओ मे[७] युवावस्था के आगिक व क्रियारूप धर्मो को अलकारवद् उपकारक माना है। इनमे तीन भाव, हाव, हेला, अगज अलकार युवावस्था मे स्वत. प्रादुर्भूत हो जाते है और वृद्धावस्था मे स्वत ही समाप्त हो जाते है। इनके अतिरिक्त विभ्रम, विलास, विच्छित्ति आदि दस स्वाभाविक तथा शोभा, कान्ति आदि 7 अयत्नज अलकार किन्तु पुरुषोपभोग के पश्चात् उत्पन्न होते है, इस प्रकार कुल 20 अलकार स्त्रियो मे होते है।

वस्तुत· ये सभी अलकार मुख्य होते हुए भी वयोऽनुकूल केवल हाव, भाव, हेला ही है जो युवावस्था मे स्वत उद्भूत होते है और वृद्धावस्था मे स्वत ही समाप्त हो जाते है।

पूर्वत यह स्पष्ट किया जा चुका है कि सस्कृत-नाटिकाओ मे जिन दो प्रकार की नायिकाओ की सस्थिति होती है, उनमे प्रथम किन्तु गौण नायिका 'देवी' जो

---

१ वही, सू0 258।

२ सा० द०, ३/६६

३ मध्या विचित्रसुरता प्ररुढस्मरयौवना।
ईषत्प्रगल्भवचना मध्यमव्रीडिता मता।। —सा० द० ३/५९.

४ सा० द०, ३/६१

५ वही, ३/६१-६२

६ कन्या त्वजातोपयमा सलज्जा नवयौवना। —सा० द० ३/६७.

७ ना० द०, सू० २६९।

राजा की विवाहिता पत्नी, महारानी पद पर अभिषिक्त होने के कारण पदे पदे मानवती, मध्या प्रकृति की धीरा नायिका होती है तथा दूसरी नायिका मुग्धा प्रकृति की कन्या।

रत्नावली और प्रियदर्शिका मे रानी वासवदता राजा की पूर्ण हितचिन्तक, प्रेमातुर व दयालु होते हुए भी प्रभुत्व सम्पन्ना, स्वाभिमानिनी और कठोर भी है। उच्च कुलीन होने के कारण क्रुद्ध होने पर भी वह शीघ्र ही अपनी मुखमुद्रा मे विकृति नही लाती जिससे सामान्यत उसका क्रोध भाव स्पष्ट नही होता। क्रोधातुर देवी के चले जाने पर विदूषक के इस कथन कि 'अकाल की ऑधी बीत गई' का प्रतिरोध करता हुआ राजा कहता है 'धिडमूर्ख कृत परितोषेण। यान्त्याऽऽभिजात्यान्निगूढो न लक्षितस्त्वया देव्या कोपानुबन्ध। भ्रूभगे०'[१] इससे आभिजात्य के कारण क्रोध की स्पष्टत अभिव्यक्ति न होने का सकेत है।

विदूषक के द्वारा वासवदत्ता वेश मे सागरिका को राजा से मिलाने की योजना का पता लग जाने पर देवी राजा के नर्मसचिव विदूषक और सागरिका को बन्धन मे डालने के लिये तनिक भी नही हिचकती और न ही राजा से इस सम्बन्ध मे किसी प्रकार का परामर्श ही करती है।[२]

कन्या नायिका सिहलेश्वर पुत्री सागरिका उच्चकुलीना, अतिशय रुपवती, सलज्जा और निपुण है। जहॉ राजा एक बार ही उसे देखकर उसके प्रति आकृष्ट हो जाता है, वहीं वह कामपूजन मे राजा को प्रथम दर्शन मे साक्षात् कामदेव समझती है किन्तु वन्दीगण की स्तुति से जब यह ज्ञात हो जाता है कि यही वे राजा है जिनके लिये पिता ने मुझे समर्पित किया था, तभी वह उसके प्रति आसक्ति व अनुरागवती होती है। फलत वहॉ दासी के रुप मे रहने मे भी वह गौरव का अनुभव करती है।[३]

नायक के प्रति उसका प्रणयभाव सर्वथा मर्यादित है, श्रद्धापूर्ण है। वह राजा से मिलते समय स्त्रीसुलभ लजा व सकोच का उसी प्रकार परित्याग नही करती जैसे कालिदास की शकुन्तला। सखी सुसगता के बहुत आग्रह पर वह उसे तर्जित करती है जिससे विहृत[४] नामक नायिकाओ के स्वाभाविक अलकार की अभिव्यक्ति होती है। नायक मे प्रगाढ़ प्रेम होते हुए भी वह उससे मिलने के लिये अपनी ओर से कोई प्रस्ताव या प्रयत्न नही करती, इतना ही नही सुसगता के द्वारा कदलीगृह मे ले जाते समय विरोध करती है, तथा अतिशय लज्जालु बनी रहती है।

---

१ रत्ना०, पृष्ठ ८६।

२ वही, पृष्ठ १२६।

३ 'कथमय स राजा उदयनो यस्याह तातेन दत्ता। तत्परप्रेषणदूषितमपि मे जीवितमेतस्य दर्शनेनेदानीं बहुमत सवृत्तम्।' —रत्ना०, पृष्ठ ३८.

४ 'विहृत जल्पकालेऽपि मौन ह्री व्याज चापलम्' —ना० द० सू० २७८.

राजा के प्रति प्रगाढ अनुराग होते हुए भी ईष्यालु, व प्रेम बाधक रानी के प्रति किसी प्रकार के अनुचित कार्य या भाव से सर्वथा पराडमुख रहती है। उसकी गम्भीरता व विवशता का सुन्दर चित्र उसके इस कथन मे स्पष्ट है कि—

लुल्लहजणअणुराओ लज्जा गुरुई परव्वसो अप्पा।
पिअसहि विसम प्पेम्म मरण सरण ण वरमेक्कम्॥[१]

प्रियदर्शिका मे आरण्यका मुग्धा होते हुए भी रत्नावली की भाँति सरल नही है, उसे रानी की सेवा करना अच्छा नही लगता। क्योकि उसे अपने उच्च राजवश की अनुभूति रहती है।[२]

नायक को देखने के बाद दूती के द्वारा गृह-गमन का निवेदन करने पर वह शीतल जल मे पैर के स्तम्भित हो जाने का बहाना करती है,[३] जिसका मूल उद्देश्य शकुन्तला की भाँति राजा के पुनर्दर्शन की लालसा है। अत गति मे विभ्रम या विशेषता होने के कारण विलास नामक स्वाभाविक अलकार है।[४]

आरण्यका जहाँ सुशीला, रुपवती है वही वह सगीत कला मे अत्यन्त निपुण भी है। 'तृतीय अक के गर्भाक मे किया गया वीणा-वादन उसकी कलाप्रियता का प्रमाण है।[५]

नायक के प्रति गाढानुरागवती होने के कारण निराशा मे वह विषपान से आत्महत्या का प्रयत्न करती है। इससे उसका राजविषयक उत्कट प्रेम व्यक्त होता है। स्पष्ट रुप से यदि कहा जाय तो हर्ष ने कालिदास के अनुकरण पर नायिका की सृष्टि की है। जो नाटिका की प्रकृति व स्वभाव के सर्वथा अनुकूल व स्वाभाविक है। प्रियदर्शिका मालविका की साक्षात् अनुकृति प्रतीत होती है।

विद्धशालभजिका नाटिका की नायिका लाटाधिपति चन्द्र वर्मा की अविवाहिता कन्या है जो पुरुष वेश मे नायक राजा विद्याधरमल्ल के यहाँ भेज दी गई है। देवी नायिका को अन्त तक भी इस बात का पता नही चलता है कि यह स्त्री है।

देवी नायिका का मानवती और ईर्ष्यालु रूप इस नाटिका मे उभर कर प्रत्यक्ष हुआ है। वह चण्डमहासेन की कन्या कुवलयमाला का अपने मामा के पुत्र मृगाक वर्मा (मृगाकावली) से विवाह कर राजा का उसके प्रति आकर्षण समाप्त कर देने का उपक्रम करती है।[६] वह राजा के नर्मसचिव विदूषक का

१ रत्ना० २/१.
२ प्रिय०, पृष्ठ २१।
३ प्रिय०, पृष्ठ ३१।
४ विलास प्रिय दृष्ट्यादौ चारुत्व गात्रकर्मणो।' —ना० द०, सु० २७४
५ 'काचनमाले उपनय मे घोषवतीम् , यावदस्यास्तन्त्री समीक्षे।' —प्रिय०, पृष्ठ ५२.
६ विद्ध०, पृष्ठ ३४-३५।

पुरुष डमरुक से विवाह करा कर विदूषक के उपहास के साथ राजा का भी तिरस्कार करती है[१] क्योकि राजा के मित्र का अपमान राजा का अपमान होता था।

प्रथम दो अको मे राजा से देवी या मृगाकावली का कोई मिलन या परस्पर बातचीत न होने से यद्यपि प्रत्यक्षत उनके चरित्रो का विकास नही हुआ है किन्तु दासी मुख से देवी की क्रूरता का पता लगता रहता है। वह स्वार्थिनी है, जब उसे यह पता लगता है कि उसकी सेविका मेखला की एक निश्चित तिथि पर मृत्यु हो जायेगी तो वह स्वय चारायण (राजा के नर्मसचिव) से उसके प्राणदान की भिक्षा मागकर[२] अपने आभिजात्य को पतित कर देती है। इतना ही नही इसके लिये वह राजा से भी कहती है कि उसकी दासी का इतना अधिक अपमान उचित नही है।[३]

नायिका मृगाकावली रूपवती और चतुर है। मत्री के द्वारा उसकी आकृति अनेकत्र चित्रित करा देने पर वह उन्हे देखकर रात मे स्वप्न देखता है। उठकर उनके बारे मे विचार करता है। फिर मृगाकावली भी तो अपनी रुपमाधुरी का यत्र तत्र कन्दुक क्रीडा, दीर्घिका तट, मणिवेदी आदि पर दर्शन करा कर उसको आकृष्ट करती है। यद्यपि यहॉ स्पष्टत उसका स्वार्थ प्रतीत होता है, क्योकि उसके मन की भावना राजा को अपनी ओर आकृष्ट करने की प्रतीत होती है जो सहज धर्म नही है। अत उसके मुग्धभाव का अपकर्ष हुआ है।

प्रथम बार मिलन के अवसर पर वह स्पष्टत सखी से प्रश्न करती है कि क्या यही वह विद्याधर मल्ल है ? जिनकी लक्ष्मी और सरस्वती पत्नियॉ है ?[४]

इस मिलन मे नायक यद्यपि कण्ठहार तो उसे पहना देता है किन्तु किसी प्रकार की भावाभिव्यक्ति नायिका की नही हो पाती। अत स्पष्ट है कि देवी की उद्धत, ईर्ष्यात्मक भावनाओ के चित्रण के अतिरिक्त कवि नायिका के चरित्र का विकास करने मे समर्थ नही हो सका, वह तो लोकोक्तियो और सूक्तियो का चयन करता रहा है।

कर्णसुन्दरी नाटिका मे देवी नायिका मध्या प्रकृति की धीरा नायिका है। वह उच्चकुलीन और स्वाभिमानिनी है किन्तु पति के प्रतिकूल आचरण करना उसके वश की बात नही है। नारी सुलभ क्रोध उसमे भी है और वह पति के स्वप्न मे अन्य स्त्री के विषय मे किये गये प्रलाप को सुनकर समीप से चली जाती है किन्तु स्वत ही अपनी त्रुटि पहचान लेती है और कहती है—'आर्यपुत्र आयास्यते। अनुचितकारिणी भवामि।'[५]

---

१ वही, पृष्ठ ४०-४१।
२ वही, पृष्ठ ६८।
३ वही, पृष्ठ ७०।
४ विद्ध०, पृष्ठ ८८।
५ कर्ण०, पृष्ठ १६।

उसका स्वाभिमान इससे मरता नही और जब उसे पता लगता है कि राजा कर्णसुन्दरी पर आसक्त है तो वह इसका मजा चखा देने के लिये अपने भागिनेय को कर्णसुन्दरी के वेष मे समर्पित कर ठगना चाहती है।[१] जैसे कि विद्धशालभजिका मे देवी, मृगाकावली को पुरुष समझकर स्त्रीवेश मे उसका विवाह राजा से कराकर उसका उपहास करने का उपक्रम करती है।[२]

जहाँ देवी नायिका का यह रूप है वही इसके विपरीत विद्याधरराज की पुत्री जो इसकी नायिका है। अत्यन्त कोमल हृदया, मुग्ध, सुन्दरी और लज्जालु है। वह अधीर भी है, क्योकि प्रिय की प्राप्ति न होने पर वह रुदन करने लगती है।[३] काम-पीडित होकर लोक-लज्जा और देवी की परवाह न कर प्रियतम के पास पहुँच जाने की भावना व्यक्त करती है जो उसकी अधीरता की चरमस्थिति है।[४] फिर भी रत्नावली की अपेक्षा इसमे नायिका की उतनी मधुर स्थिति स्पष्ट नही हो सकी, उसका मूलकारण कवि की काव्यपक्ष प्रधानता है।

उषारागोदया नाटिका मे देवी नायिका रुक्मवती उच्चकुलीन होने के कारण रत्नावली की वासवदता की भाँति धीर, गम्भीर और स्वाभिमानिनी है। दोलारोहण और मदनोत्सव मे कुमार की अन्यमनस्कता से वह उनसे किसी प्रकार का कथन नही करती और राजा को आराम करने की बात कह कर स्वय चली जाती है।

यद्यपि रुक्मवती कुमार के उषाविषयक प्रेम से ईर्ष्यालु है किन्तु वह कुमार और उषा के प्रेम व्यापार को छिपकर न तो स्वय देखने का प्रयत्न करती है और न ही अपनी सेविकाओ का जाल ही बिछाती है। उषा और अनिरुद्ध के विवाह कराने के लिये उसे न तो किसी प्रकार का सन्देश प्राप्त होता है और न रहस्योद् भेद जैसी घटना ही घटती है। फिर भी वह स्वय ही उन दोनो का विवाह करा देती है, जिसका कारण यही प्रतीत होता है कि उसने कुमार और उषा के अतिशय प्रेम को देखकर ही ऐसा निर्णय लिया। नायिका उषा बाणराज की पुत्री है किन्तु उसे स्वाभिमान या अह जैसा कोई भाव नही है। वह अन्य नाटिकाओ की भाँति यहाँ दासी रुप मे भी नही है। रूपवती, मुग्धा कन्या नायिका के रुप मे वह नायक का वियोग सहन कर पाने मे असमर्थ है। सकेतित समय पर वह व्याकुल होकर सखी से चित्र बनाकर दिखाने का अनुरोध करती है। स्वय भी उस चित्र मे सन्देश लिख देती है।[५] किन्तु सन्ध्या की उद्दीपक

---

१ वही, पृष्ठ ४९-५१।
२ विद्ध०, पृष्ठ ११०-११२।
३ 'किं एव्व रोदिअदि'। —विद्ध०, पृष्ठ 29.
४ जाने सखि स्मरशिखिज्वलिता जनस्य
तस्य व्रजामि निकट परिभूय लज्जाम्।
पश्चाद्यथाभिरुचित विदधातु देवी
किं दु सह विरहपावकतोऽपि वा स्यात्॥ —कर्ण०, २/३४.
५ उषा०, पृष्ठ ३२।

वेला मे वह वियोग विह्वल हो मूर्च्छित हो जाती है। अतएव यहाँ मुग्धा नायिका के सत्य प्रेम की दशा मे विलास नामक स्वाभाविक अलकार है।

यहाँ नायिका चित्रलेखा के साथ सरलतया राजा के समक्ष चली जाती है।[१] वह रत्नावली की प्रियदर्शिका की भाँति सकोच नही करती और न ही मृगाकावली की भाँति अपने रूप को ही दिखाती फिरती है। भारतीय नारी की मर्यादा के आधार पर वह लज्जा विनय से युक्त है और अपने उपयुक्त पति के प्रति ही आसक्ति सम्पन्ना है। कुमार से मिलने पर वह केवल मन मे 'अय स जन' कहकर आश्चर्य व्यक्त करती है और लज्जावश कुछ भी नही बोलती।

चन्द्रकला नाटिका मे देवी पाण्ड्य नरेश की ज्येष्ठ पुत्री स्वाभिमानी, ईर्ष्यालु किन्तु राजा के प्रति अत्यन्त आदर रखने वाली है। स्वभाव से गम्भीर होते हुए भी वह प्रगल्भा कोटि मे आती है। राजा सदैव उनसे भयभीत रहता है। विदूषक की असावधानी से चन्द्रकला के प्रति प्रियभाव का रहस्योद्भेद हो जाने पर तो वह कहता है कि 'अब मेरी चेतना ही लुप्त हो रही है।'[२] इससे देवी के प्रभुत्व की अभिव्यक्ति होती है। चन्द्रकला के लिये तो वह कहती है—'हन्जे, कालसप्पिणीकिर णीलमणिमालारुवेण वसदि त्ति को जाणादि।'[३] और वह निष्ठुर होकर विदूषक व चन्द्रकला दोनो का लतापाश से बधन करा देती है।[४]

वघेरे को मारने के लिये उद्यत राजा को मना करती है यहाँ उसका स्त्रीत्व प्रबल हो उठा है। वघेरे को राजा ने मार दिया, यह समाचार सुनकर वह वीरपत्नी की भाँति राजा का अभिनन्दन करने को आकुल हो उठती है।[५]

वह रत्नावली की वासवदता की सत्य अनुकृति है, नीतिज्ञ है, तभी तो चन्द्रकला को अपनी बहिन का ज्ञान होने पर राजा से विवाह भी स्वय कर देती है।

आधुनिक युगीन नाटिकाकार मथुरादास ने वृषभानुजा मे नाटिका रुढि का उल्लघन किया। यद्यपि कथानक योजना और वर्णन शैली से यह नाटिका कोटि का रुपक है किन्तु इसमे देवी नायिका की योजना का सर्वथा अभाव है।

राधा जो कृष्ण के अनुराग की आलम्बन है, वृषभानु की पुत्री है और रूपवती, कलानिपुण तथा लज्जालु है यद्यपि वृन्दाटवी मे वह कृष्ण की वृन्दादेवी के द्वारा की गई प्रशसा को सुनकर ही आती है किन्तु कृष्ण को देखकर उस पर अनुरक्त हो जाती है। वह कालिदास की शकुन्तला की भाँति राजा के

---

१ वही, पृष्ठ ३७।
२ चन्द्र०, पृष्ठ ६३।
३ वही, पृष्ठ 61।
४ वही, पृष्ठ 63।
५ वही, पृष्ठ 39-41।

दर्शनो के लिये लालायित रहती है, और कृष्ण के समीप से जाते समय हार के पतित नीलमणिको खोजने के बहाने रुक जाती है।

राधा, अपनी सखी के द्वारा किये गये प्रलापो को वक्रभणित मानकर वहाँ से चली जाने का भय उत्पन्न कर अपनी मुग्धता का परिचय देती है किन्तु कुछ समय पश्चात् वह स्वय कामलेख लिखती है, वियोग की ज्वाला मे जलती हुई उसके लिये मुरली की ध्वनि विष के समान प्रतीत होती है।[१]

मुग्धा नायिका का सबसे बडा गुण भोलापन होता है। कृष्ण के पास किसी चित्र को देखकर बेचारी राधा किसी अन्य स्त्री का चित्र समझ लेती है। वह कुपित हो जाती है किन्तु वस्तुस्थिति ज्ञात होने पर कि यह तो मेरा ही चित्र है वह अत्यन्त दु खी होती है कि बिना कारण ही उसने प्रियतम को इतनी देर दु.खी किया। यही द्वितीय नायिका का क्षणिक आभास प्राप्त होता है।

इस प्रकार नाटिका साहित्य मे प्राय सर्वत्र द्विविध नायिकाओ का अनुकरणात्मक चित्रण किया गया है। कमलिनी कलहस, मलयजाकल्याणम्, चन्द्रप्रभा, मृगाकलेखा, नवमालिका आदि सभी मे इसी प्रकार देवी और कन्या नायिकाओ का शास्त्रीय पद्धति पर चित्रण करने का प्रयत्न है। किन्तु पारिजात मन्जरी और कमलिनी कलहस मे नायिकाओ की प्राप्ति सर्वथा नवीन ढग से होने के कारण उनकी पृथक् स्थिति है फिर भी यह घटनात्मक वैचित्र्य है। नायक नायिकाओ का चरित्र प्रायश रत्नावली आदि को आदर्श बनाकर ही चित्रित किया गया है।

राजा के सहायक पात्र.

विदूषक—सस्कृत रुपको मे विदूषक का महत्वपूर्ण स्थान है। वह नायक की नर्मकार्यो मे सहायता ही नही करता अपनी हास्यात्मक क्रियाओ से रहस्य का उद्‌भेद भी करता है, व नाट्य को नीरस व अरुचिकर होने से बचाता भी है। दर्पणकार ने इसे श्रृगार सहायको मे गिना है।[२]

इसके नाम कार्य आदि के विषय मे साहित्य दर्पणकार ने लिखा कि विदूषक का नाम कुसुम व बसन्त आदि ऋतुओ के नाम पर होता है तथा वह अपने कार्य, शरीराकृति, वेष व भाषा के द्वारा हसाने वाला, कलहप्रेमी प्रकृति का होता है।[३]

नायक के उत्तम, मध्यम और अधम सहायको मे यह मध्यम सहायक होता है।[४]

---

१ सयोगेऽमृतसकाशो वियोगे विषसनिभ.।
नादोऽय सखि हेतुर्मे जीवने मरणेऽपि वा॥
—वृष०, ४/११.

२ सा० द० ३/४०.

३ कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यै.।
हास्यकर. कलहरतिर्विदूषक स्यात्स्वकर्मज्ञ ॥ —सा० द०, ३/४२.

४ सा० द०, ३/४६

सस्कृत नाटिकाएँ श्रृगार प्रधान कैशिकी वृत्ति मे ललित इतिवृत्तात्मक होती है। नायक धीरललित विलासी एव प्रेमासक्त होता है, अत प्रेमकार्य मे उसकी सहायता करने वाले-पात्र विदूषक का होना स्वत ही अनिवार्य हो जाता है। फलत. एक परम्परागत पात्र के रुप मे इसका सभी नाटिकाओ मे प्रयोग होता है।

शास्त्रकारो ने यद्यपि विदूषक का वहुश विवेचन किया है। जैसे—भरत के अनुसार विदूषक द्विज जाति का, विकृत रुप वाला होता है। वह कभी शूद्र जाति का नही हो सकता। इसकी आखे बडी-बडी, रक्तवर्ण वाली, दाँत भी बडे-बडे और पेटू तथा मधुरप्रिय होता है।

नाट्यदर्पणकार ने खल्वाट, दन्तुर, कुब्ज तथा विकृताननत्वादि आगिक विकारो तथा आकाश विलोकन, अश्लील, व निरर्थक भाषण आदि के द्वारा हास्योत्पादक पात्र की विदूषक सज्ञा दी है।[१]

नाट्यदर्पण मे दिव्य, नृप, अमात्य और ब्राह्मण, इन चार प्रकार के नायको के चार ही प्रकार के विदूषको का भी निर्देश है। ये है क्रमश लिगी, द्विज, राजजीवी और शिष्य।[२]

विदूषक यद्यपि ब्राह्मण होता है किन्तु शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार वह सस्कृत नही बोलता। भरत ने प्राच्य प्राकृत के प्रयोग का विधान किया है।[३] सागर नन्दी ने भी अपने ग्रन्थ मे इसी भाव को व्यक्त किया है।[४]

विदूषक के कुछ कार्य नाटिकाओ मे इस प्रकार के देखने को मिलते हैं जो विद्धत्तापूर्ण होते हुए भी मूर्खतापूर्ण ही कहे जा सकते है क्योकि उनसे कभी-कभी ऐसी परिस्थितियाँ आ जाती ही जिससे नायक सकट मे फस जाता है। यद्यपि इससे कौतूहल की उत्पत्ति होती है।

इसका दूसरा कार्य प्राय दासी, विशेषत महादेवी की दासी से लडना झगड़ना व गाली गलौच करना भी नाटिकाओ मे वर्णित किया गया है।

नायक को नायिका से मिलाने के लिये गुप्त योजनाए तो बनाता ही है, राजा की मनोवृत्ति का ध्यान रख कर उचित प्रकृति वर्णन भी करता है। राजा के हितसाधन मे स्वय बन्धन मे भी बध जाता है।

---

१ हास्य चास्यागनेपथ्य वचो विकारात् त्रिधा। तत्रागहास्य खलति-खण्ज-दन्तुर-विकृताननत्वादिना। नेपथ्य हास्यमत्यायताऽम्बरत्वोल्लोकित विलोकित गमनादिना। वचोहास्यमयसम्बद्धानर्थकाश्लीलभाषणादिना भवति।
—ना० द०, पृष्ठ ३७६

२ स्निग्धा धीरोद्धतादीना यथौचित्य वियोगिनाम्।
लिंगी द्विजो राजजीवी शिष्यश्चैते विदूषकाः। —ना० द० (सू०) २५२

३ प्राच्या विदूषकादीनाम्। —ना० शा० १८/३८.

४ शौरसेनीमथंप्राच्याभवन्ती कर्हिचित् पठेत्।
एता एव वणिक् श्रेष्ठि बालकाश्च विदूषका॥ —ना० ल०

नाटिकाओ मे इसे भोजन भट्ट और भीरु प्रकृति का चित्रित किया गया है। वह रानी से ही नही उसकी सेविकाओ से भी डरता है। कही-कही उसका स्वाभिमानी रुप भी प्रकट हुआ जहॉ वह अपने अपमान का बदला लेता है।

विदूषक का जहॉ उपर्युक्त मनोरजक रुप है, वही वह विदग्ध और शास्त्र पारगत भी होता है। चरणध्वनि से स्त्रियो का ज्ञान, गन्ध सूघकर मार्गान्वेषण, उपासना से फल प्राप्ति, दुष्वप्न के उपाय आदि का उसे भली प्रकार ज्ञान होता है। अत विदूषक एक असाधारण पात्र होता है। विशेषत नाटिकाओ मे।

अनेक नाटिकाओ मे विदूषक का नाम शास्त्रीय पद्धति पर नही रखा गया है।

श्रीहर्ष की नाटिकाओ मे कम से कम एक तिहाई भाग (कथन) विदूषक का ही है। वह प्रणयी नायक का वफादार सेवक, हितचिन्तक मित्र, कामगुरु और सुन्दर मनोरजन करने वाला सखा है। वासवदत्ता की सेविकाओ को 'गर्भदासी' शब्द से ही सदैव तिरस्कृत करता है। सारिका का जो चतुर्वेदग्राही ब्राह्मण की सज्ञा देकर तत्कालीन समाज की वैदिक सस्कृति और साहित्य के प्रति अनास्था का भी सकेत करता है।

राजशेखर की नाटिका मे नारायण नामक राजा का नर्मसचिव विदूषक है जो आरम्भ से ही अपनी विदग्धता का प्रकाश करता है। स्वप्न देखकर उठे हुए राजा के विषय मे वह कहता है राजा को मध्य मे टोकना पडेगा क्योकि 'आम्र की पृष्ठग्रन्थि बिना दबाए रस नही निकालती'।[१]

वह अनेक हास्य, वाग्व्यवहार करता है किन्तु महारानी के द्वारा अलीक विवाह से अपमान अनुभव करता है और इसका बदला लेने के लिये दृढ सकल्प करता है तथा मेखला को अपनी जघाओ के बीच से बिना निकाले सन्तोष की सास नही लेता। यद्यपि वह राजा के प्रति पूर्णत वफादार है। कर्णसुन्दरी मे वह नायक की योजना मे ही व्यस्त रहता है। अनेकत्र वह नायक के उदात्त वर्णन से इतना प्रभावित होता है कि स्वय भी कवि के समान काव्य का पाठ करता है।[२]

उषारागोदया मे कुमार का मित्र गिरिवर विदूषक की भूमिका मे आता है किन्तु वह किसी भी महारानी की दासी से किसी प्रकार का हास परिहास नही करता। वह एक शिष्ट और सभ्य पुरुष की भॉति व्यवहार करता हुआ यदाकदा राजा के समक्ष मूर्खता का प्रकाश कर जसामान्य का मनोरजन करता है, किन्तु राजा उसे मूर्ख कह कर झिडक देता है।

राजा की एक उक्ति पर जब वह दही भात की बात कहता है तो नायिका की सखी चित्रलेखा कुछ व्यग्य वचन कहती है जिससे वह अपमान का अनुभव कर बाहर चला जाता है।[३]

---

१ विद्ध0, पृष्ठ 9।

२ कर्ण0, 1/49-50; 2/12, 15, 18, 26; 3/22, 27.

३ उषा0, पृष्ठ 38 (अवमानितोऽस्मि तावत् कथ तिष्ठामि)

कविराज विश्वनाथ की नाटिका चन्द्रकला मे विदूषक का नाम रसालक है। यह नायक का प्रिय, विश्वासपात्र मित्र, नर्म सचिव और सहायक है।यद्यपि वह देवी और उसकी दासियो से भयभीत रहता है किन्तु वह उन दासियो पर अपना शासन भी चलाता है। अपनी मूर्खता के कारण वह देवी के समक्ष चन्द्रकला की अगूठी पहनता है जिससे रानी उसे पहचानकर अत्यन्त क्रुद्ध हो जाती है और राजा के लिए महान् सकट खडा हो जाता है।[१]

वह राजा का परम हितकर भी है। नायिका से एकान्त मिलन कराने के लिए वह स्वय बघेरे का रूप धारण करके आता है।[२] विदूषक विदग्ध पुरुष है। वह चन्द्रकला के सन्ताप का हेतु राजा है, इसकी पुष्टि के लिए कहता है—'न खलु कुसुमित सहकार' वर्जयित्वा चन्द्रिकाया अन्यत प्रकार'।[३]

विदूषक का नाम पुष्पलता या ऋतु आदि पर होना चाहिए, तदनुसार यहाँ उसका नाम रसालक उचित है।

वृषभानुजा के विदूषक का नाम प्रियालाप है जो शास्त्रीय दृष्टि से ऋतु आदि के अनुकूल नही है किन्तु तो भी उसका नाम उसकी प्रकृति के अनुकूल सर्वथा उचित है। अन्य नाटिकाओ के समान ही इसमे भी वह नर्मसखा के रूप मे कृष्ण का सहायक है और अपनी विचित्र हास्यास्पद वाक्यावली का प्रयोग कर मनोरजन करता है। अन्य सभी नाटिकाओ मे भी विदूषक का इसी प्रकार महत्वपूर्ण पात्र के रूप मे चित्रण किया गया है जो कथाबन्ध को आगे बढाने मे, कहीं द्वन्द उपस्थापित करने मे और कही नीरसता से बचाने मे काम आता है। यह एक अपरित्याज्य पात्र के रूप मे प्रयुक्त हुआ है।

मन्त्री—

राजा के अन्य सहायको मे प्रमुख स्थान मन्त्री का है। वह राजकार्य की चिन्ता के साथ मुख्यत राजा के व्यक्तिगत हित की बात पर अधिक ध्यान रखता है। कही किसी स्त्री के विवाह से राजा का भाग्योदय हो सकता है, तो वह उसकी प्राप्ति के लिए छलबल आदि के प्रयोग मे भी नही हिचकता।

रत्नावली मे यौगन्धरायण राजा के चक्रवर्तित्व लाभ के लिए रत्नावली को प्राप्त करने हेतु वसवदत्ता की मृत्यु की झूठी अफवाह फैलाकर उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है तथा राजा की अनुरागवृद्धि के लिए उसे अन्तपुर मे परिचारिका रूप मे रख देता है और अवसर आने पर इन्द्रजाल का प्रदर्शन कर उसकी महत्ता का प्रकाश कर सबको आश्चर्य मे डाल देता है तथा रानी के द्वारा ही उसका विवाह करवाता है जिससे रानी फिर कभी उससे ईर्ष्या न कर सके।

---

१ **चन्द्र०, पृष्ठ ४२।**

२ **वही, पृष्ठ ३२**

३ **वही, पृष्ठ ३४।**

श्रीहर्ष ने अपनी दूसरी नाटिका प्रियदर्शिका मे यह कार्य कचुकी के द्वारा कराया है किन्तु वह यौगान्धरायण की प्रतिभा और विवेक का पात्रानुकूल न तो प्रकाश ही कर सका और नही उसे करना चाहिए था क्योकि कचुकी तो मुख्यत अन्तपुर का ही पात्र माना गया है।

विद्वशालभजिका मे भागुरायण मन्त्री पद पर है वह यौगन्धरायण के समान ही कार्य करता है। अपने स्वामी विद्याधर मल्ल के चक्रवर्तित्व लाभ के लिए लाटाधिपति की कन्या मृगाकावली को जिसे पुरूषवेश मे रखा गया था, ले आता है।

कर्णसुन्दरी मे समत्कर राजा के चक्रवर्तित्व की कामना से नायिका को मिलाने की योजना करता है और चारो ओर सैनिक भेजकर उसे प्राप्त कर लेता है।

उषारागोदया मे इस प्रकार का कोई प्रयोजन तो नही किन्तु उद्धव मत्री का कार्य करते दिखाई दे रहे है क्योकि वे कुमार को बाणासुर के यहा से मुक्ति दिलाने के पश्चात् उसका उषा बाणासुर कन्या से विवाह कराना चाहते है। यहा नारद ने भी इस कार्य मे सहयोग किया है। यद्यपि ये दोनो ही मत्री नही है फिर भी दोनो वही कार्य करते है जो अन्य नाटिकाओ मे मन्त्री।

चन्द्रकला नाटिका मे इस प्रयोजन को बदल दिया गया। यहा सुबुद्धि नामक मन्त्री चन्द्रकला को इसलिए प्राप्त कराता है क्योकि उसका जिसके साथ विवाह होगा उसे स्वय लक्ष्मी प्रकट होकर वरदान देगी। इस प्रकार अपने स्वामी के भाग्योदय को ध्यान मे रखकर ही मन्त्री ने ऐसा किया।

वृषभानुजा नाटिका मे मथुरादास ने मन्त्री पद का कार्य सर्वप्रथम स्त्री जाति को सौपा। वृन्दा देवी कृष्ण व राधा को परस्पर मिलाने के लिये एक दूसरे से एक दूसरे की प्रशसा करती है और दोनो को आकृष्ट कराती है।

मन्त्री के अतिरिक्त राजा के सहायक पात्र सेनापति, कचुकी, दूत और वनपाल आदि है जिनकी कोई प्रमुख भूमिका नाटिकाओ मे नही होती।

नायिका के सहायक पात्र

(1) सस्कृत नाटिकाओ मे जिस प्रकार नायक का सहायक विदूषक होता है, उसी प्रकार नायिकाओ की सहायिकाएँ चेटिया होती है। कन्या नायिका की सहायिका की अपेक्षा देवी की सहायिकाएँ अनेक चेटिया होती है, वे न केवल बलवती और प्रवीण होती है अपितु अत्यन्त क्रूर भी होती है।

महारानी की एक विश्वासपात्र दासी गुप्तचर के रूप मे नायक व नायिका की प्रणयलीलाओ का तथा विदूषक की सहायता का समाचार, प्राप्त करने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहती है और विदूषक आदि के वाक्यो मे चतुरता से सन्देह आदि उत्पन्न कर देती है। वे स्थान, आभूषण आदि की विशेषताओ से भिज्ञ होती है और सकेत स्थलो से भलीभाति परिचय रखती है जिससे अपराधियो को रगे हाथो पकड सके।

इन सहायिकाओ के नाम भी प्राय काम, ऋतु, लता आदि पर होते है। ये विदूषक की भाति अधम श्रेणी की पात्र होती है अतएव प्राकृत भाषा का प्रयोग करती है।

रानी व नायिका की दासियो मे परस्पर ईर्ष्या रहती है किन्तु महारानी के आदेश का सभी पालन करती है। इस प्रकार सस्कृत नाटिकाओ के पात्र केवल कल्पित ही नही दैनन्दिन जगत के सजीव पात्र होते है। विशेषत राजदरबारो के वे स्वकालीन समाज की स्थिति का सम्यक प्रतिनिधित्व करते है यद्यपि वे एक दूसरी नाटिका के पात्रो की हुबहू अनुकृति प्रतीत होते है।

उनके वाक्य प्रयोग मे शास्त्रीय औचित्य के साथ-साथ लौकिक सगति भी होती है। अत वे उस वर्ग के प्रतीक के रूप मे पूर्णत. सफल है।

(स) कवि की नाट्य प्रतिभा

आचार्य भरत ने नाट्यकार की परिभाषा करते हुए लिखा अर्थात् पिछले अध्यायो मे बताए हुए सात्विक भावो को जो व्यक्ति पात्रो मे प्रतिष्ठित करता है वह नाट्यकार कहलाता है।

यस्याद्यथोपदिष्टात् तांश्च भावॉश्च सत्व सयुक्तान्।
भूमिविकल्पो नयति च नाट्यकार संज्ञितस्तस्मात्॥1[१]

नाट्यकार इस उत्तरदायित्व का तभी निर्वाह कर सकता है जबकि वह मानवमात्र की सभी साधारण, असाधारण परिस्थितियो, वाग्व्यवहारो, चेष्टाओ और रहन सहन की पद्धतियो से पूर्ण जानकारी रखता हो। इतना ही नही उसे भूत व वर्तमान इतिहास, भूगोल, प्रकृति व पशु-पक्षियो के आकार, व्यवहार और वाणी का भी ज्ञान होना अनिवार्य है अन्यथा वह भरत के "त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्य भावानुकीर्तनम्[२] नानाभावोपसम्पन्न नानावस्थान्तरात्मकम्, लोकवृत्तानुकरण नाट्यमेतन्मया कृतम्॥[३] " इत्यादि निर्देशो का पालन नही कर सकेगा। इसलिए नाट्यकार को इतिहास, शास्त्र, शिल्प, पुराण, लोकाचार, समाजविज्ञान और मानसार आदि का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। तभी वह नाट्यरचना मे समर्थ हो सकता है, नाट्य प्रतिभा प्राप्त कर सकता है।

नाट्यकार की इस शास्त्रीय प्रतिभा के साथ यह भी अपेक्षित है कि वह कल्पनाशील, भावुक और सहृदय हो, क्योकि नाट्य का मूल उद्देश्य अभिनेयता के माध्यम से पाठक या दर्शक को रसचर्वणा की स्थिति मे ले जाना है। उसे आनन्द सागर मे डुबोना है। नाट्य से दु खी, परिश्रमी का परिश्रम, और दोनो का शोक दूर होकर विश्रान्ति प्राप्त होती है।[४] यह तभी सभव है जब नाट्यकार यह जानता हो कि

---

१ ना. शा ३५।७७ (गो ओ.सी बड़ोदा), निर्णय सागर प्रेस से प्रकाशित नाट्यशास्त्र में यह श्लोक पैतीसवें अध्याय की ३१ वी सख्या पर इस प्रकार लिखा है
यस्माद्यथोपदिष्टान् सा स्वभावाद्य सत्व युक्तान्
भूमिर्विकल्प यति च नाट्यकार. कीर्तितस्तस्मात्॥

२ हि. ना. शा १।१०७.

३ वही १।११२.

४ दु खार्ताना श्रमार्ताना शोकार्ताना तपस्विनाम्।
विश्रान्ति जनन काले नाट्यमेतद् भविष्यति॥ हि. ना शा. १।११५.

कौन सी घटना, कैसे पात्र से, किस ढग से व कब रगपीठ पर प्रस्तुत की जाय। रगपीठ पर प्रस्तुतीकरण के लिए दृश्यविधान, लोकरुचि, अभिनय प्रकार, सगीत-योजना और रंगमचीय व्यवस्था का सम्यक् अवबोध अपेक्षित है।

अभिनव भरत ने इन्ही तत्वो को दृष्टिगत करते हुए लिखा कि—
इतिहास और सगीतकला, भाषा-अभिनय का जो ज्ञाता
लोक-वृत्ति मर्म-ग्राही नाट्यकार वह बन पाता।[1]

इसमे सन्देह नही कि कवि की अपेक्षा नाट्यकार को अधिक सावधानी बरतनी पडती है। उसे अधिक विद्वान् व लोकाचार से पूर्ण अभिज्ञ होना पडता है तथा अनेको की इच्छाओ को एक साथ ही एक क्षण मे तृप्त करना पडता है।[2] आचार्य भरत ने नाट्य को समस्त ज्ञान का आगार कहा है।[3]

नाट्यकार ही समाज का वह प्राणी है जो सामाजिक बुराइयो को हास्य, अनुकरण और निर्देशो से जनसामान्य के समक्ष प्रस्तुत करने मे सकोच नही करता। जनसामान्य भी उससे शिक्षा प्राप्त करता है, असन्तोष या घृणा नही करता।

नाट्यकार के इन उत्तरदायित्वो और नाट्यरूप को ध्यान मे रख कर कलात्मक दृष्टि से जब विचार करते है तो निम्न तत्त्व ऐसे है जो नाट्यकार को अपनी शक्ति, प्रतिभा व विवेक से सजाने पडते है। दूसरे शब्दो मे ये ही नाट्य के मुख्य तत्व है

(अ) इतिवृत्त व कथावस्तु

कवि अपनी स्वेच्छा से सामाजिक परिस्थितियो और कल्पित भावो के अनुरूप ऐतिहासिक, पौराणिक, आख्यात अथवा काल्पनिक इतिवृत्त का चयन करता है। उसे इस बात पर विशेष ध्यान देना होता है कि वह जिस इतिवृत्त का चयन कर रहा है वह जनसामान्य को आकर्षित करने वाला है? उससे बाल, वृद्ध स्त्री और युवा समान आनन्द का अनुभव कर सकते है? कही वह सामाजिक मूल्यो और नैतिक भावो का पतन तो नही करता? आदि।

इस प्रकार के इतिवृत्त (मूलकथानक) का चयन करने के पश्चात् कवि पुन अपनी प्रतिभा का नियोग कर उसके विकास कार्य मे सलग्न होता है। इसके लिये वह युगधर्म, सामाजिक रुचि और सघर्षपूर्ण परिस्थितियो के परिप्रेक्ष्य मे अवान्तर कथाओ की योजना, मूलवृत्त मे परिवर्तन, परिवर्द्धन व काट-छाट करता है।

सस्कृत नाटिकाओ का इतिवृत्त प्रकरणवत् कविकल्पना प्रसूत होना चाहिए[4] किन्तु इस नियम का अक्षरश अन्धवत् पालन समीचीन नही कहा जा सकता। यही कारण है कि हर्ष ने प्रख्यात्, रुद्रचन्द्रदेव व हस्तिमल्ल ने पौराणिक और

१ अभि. ना. शा., पृष्ठ १०१

२ नाट्य भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येक समाराधनम्
(कालिदास) मालविका. १।४

३ न तज्ज्ञान न तच्छिल्प न सा विद्या न सा कला
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्नदृश्यते॥ हि. ना. शा १।११६.

४ तत्र वस्तु प्रकरणात् —दश. ३।४३,
नाटिका क्लृप्तवृत्ता स्यात् —सा द. ६।२६९.

मदनबाल सरस्वती तथा बिल्हण ने ऐतिहासिक सस्पर्श करते हुए इतिवृत्त का चयन किया।

(ब) घटना सयोजन एव दृश्यविधान

सस्कृत नाट्यकार का उद्देश्य मुख्यत अपनी भावनाओ को दृश्य बनाकर दर्शक को अनुभूत कराना है। तदर्थ उसका यह कर्तव्य है कि वह कथावस्तु मे घटनाओ एव दृश्यो का इस प्रकार विन्यास करे, जो औचित्यपूर्ण एव सरल हो। इसके लिये उसे यह ध्यान मे रखना है कि कोई भी दृश्य बहुत देर तक एक ही रूप मे न चलता रहे और घटनाए भी इस प्रकार की हो जो उत्तरोत्तर कुतूहल की सृष्टि कर सके। विष्कम्भक, प्रवेशक आदि अर्थोपक्षेपको की योजना अल्प एव सक्षिप्त हो।

दृश्य विधान मे भी यह ध्यान देना चाहिए कि कोई भी दृश्य ऐसा न हो जिससे कि दूसरे दृश्य की आयोजना मे विलष्टता हो। यद्यपि सस्कृत नाट्यकारो ने समय, स्थान आदि की सीमाओ मे सकोच नही किया है। किन्तु नाटिकाकार इस विषय मे सचेष्ट हैं। श्रीहर्ष ने रत्नावली का सारा कथानक अन्त पुर एव उसके उद्यान मे ही केन्द्रित रखा। समय की दृष्टि से भी इसका क्षेत्र सीमित है। बसन्त ऋतु मे किसी दिन सन्ध्या से कुछ समय पूर्व ही नाटिका का आरम्भ हुआ होगा, क्योकि अक की समाप्ति के समय वैतालिको द्वारा सन्ध्या समय की सूचना दी जाती है।[१] इस अक मे अधिकाधिक 2 घण्टे की कथा है।

दूसरे अक की कथा दूसरे दिन की है या एक दो दिन बाद की क्योंकि उसमे सागरिका की कामपीड़ा, कृशता आदि का वर्णन है।[२] तृतीय अंक की घटना उसके दूसरे दिन की है जिसमे राजा की कामपीडा एव नायिका से मिलने आदि के उपक्रम है। सम्पूर्ण अक मे एक ही दिन के कुछ घण्टो का ही वृत्त है जो सन्ध्या के समय का ही प्रतीत होता है। चतुर्थ अंक उसके अगले दिन की घटना है। इस प्रकार कुल 4,5 दिनो की ही घटना नाटिका मे वर्णित है। इसी प्रकार अन्य नाटिकाकारो ने भी प्रयत्न किया है। अतः नाटिकाकारों के विषय मे यह आक्षेप नही किया जा सकता कि उन्होने समय या स्थान का ध्यान नही रखा।

(स) पात्र योजना

भारतीय नाट्यकारो ने पात्रो को कथा के अनुरूप ढालने का प्रयत्न किया है, और रसाभिव्यक्ति मे उन्हे कही भी बाधक नही समझा। कथावृत्त का निर्वाहक पात्र होता है अत उसकी इतिवृत्तानुमूलकता अवश्यभावी है। विलियम आचार्य महोदय के अनुसार कार्यरूप घटनाओं की स्थिति चरित्र के लिए होनी चाहिए, ज़ब यह सम्बन्ध उलटा हो जाता है,[३] नाटक विचित्रतापूर्ण खिलौना कहा जा सकता हे सजीव कला की वस्तु नही।[३] वस्तुत चरित्र का स्वरूप कथावस्तु की क्रियात्मकता के मध्य ही प्रस्फुटित होता है। कथावस्तु को आधार मानकर नायक के धीरोदात्तादि भेद एव गुण निर्धारित किए गये।

---

१ रत्ना. १। २३-२४

२ वही २। १३-१४

३ ना क., पृष्ठ ३९ पर उद्धृत।

पाश्चात्य आलोचको ने सस्कृत नाटको के पात्रो को प्रकार (टाईप) श्रेणी मे रखकर रूढि निर्वाहक मात्र ही माना है जिसे अन्धभक्त भारतीयो ने भी स्वीकार कर लिया।[१] वस्तुत यह बात स्वीकरणीय नही। भारतीय नाट्य आदर्शप्रधान है, उनके पात्र दर्शको के सुखात्मक आनन्द की चिर प्रतिस्थापना करते है। पाश्चात्य त्रासदी के समान द्वन्द्वात्मक या दु खात्मक क्षणिक आवेग मात्र ही प्रस्तुत करने मे इतिश्री नही मानते है।

सस्कृत नाटिकाओ मे यद्यपि कुछ सीमा तक नायकादि पुरुष पात्रो को प्रकार रूप प्रदान किया गया। सभी नाटिकाओ मे समान रूप से उसका कामीरूप, राज्यकर्म निरपेक्ष, बिलासी और देवी नायिका के प्रति भीरू चित्रित किया गया, किन्तु यह दोष नही क्योकि यहा भी उसे इतिवृत्त के अनुकूल ही चित्रित करना श्रेयस्कर समझा गया।

(द) रस योजना

सस्कृत कवियो ने रसाभिव्यक्ति को नाट्य का प्रतिपाद्य माना। श्रृगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीमत्स, अद्भुत, इन आठ रसो को ही नाट्य रस की मान्यता दी गई।[२] भरत ने शान्तरस का भी उल्लेख किया किन्तु उसे नाट्यरस से पृथक् ही रखा[३] किन्तु परवर्ती काल मे शान्त को भी नाट्य रस की मान्यता मिल गई क्योकि अश्वघोष, हर्ष आदिको ने शान्त को अगीरस बना कर बुद्धचरित और नागानन्द आदि नाटको की रचना की। इस प्रकार सस्कृत नाट्य मे ९ रसो की स्थिति होती है। इनकी चर्वणा दर्शक की भावना शक्ति और अभिनेता के अभिनय पर आश्रित रहती है। किन्तु विभावानुभावादि की सही स्थिति घटना मे उपस्थित करना कवि की सफलता के आधीन है। जितना उच्चकोटि का कवि होगा उसका काव्य उतना ही अधिक रसाभिव्यजक होगा।

सस्कृत नाटिका लेखको मे हर्ष, राजशेखर, विश्वनाथ आदि अनेको को यह सौभाग्य प्राप्त है कि वे रसव्यजकता के श्रेष्ठ कलाकार सिद्ध हुए है। नाटिका श्रृगार रस प्रधान नाट्य विधा है। सभी नाटिकाकारो चाहे वे 7वी शती के हर्ष हो या 19वी शती के गोपालकृष्ण सभी ने अविकल रूप मे श्रृगार रस की अभिव्यजना मे पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

(य) भाषा

सस्कृत नाट्य तत्वो मे यद्यपि इसकी गणना नही की गई किन्तु भाषा और भाव का आधाराधेय सम्बन्ध होने के कारण महत्वपूर्ण स्थान है। सस्कृत रूपक

---

१ दि कोनवेन्सनली फिक्स्ड टाइप्स आव करेक्टर्स विकम ओनली डिस फिगर्स शैडो्स थ्रो ए वोग मिस्ट आव लक्जूरिएण्ट पोएट्री। देअर आर व्यूटिफुल लेडीज, .. . दे आर डिस्क्रिमिनेटेड बाई नेम्स बट नाट बाई करेक्टर।

(दास गुप्ता) हि. स. लिट., पृ ४४६

२ श्रृंगारहास्य करुण रौद्र वीर भयानका
बीमत्साद्भुतसज्ञो चैत्यष्टौ नाट्ये रसा स्मृता ॥

ना शा ६। १६

३ ना शा ६। ८३-८७

ही ऐसी नाट्य कृतिया है जिनमे पात्रानुकूल भाषा के प्रयोग प्राप्त होते है। उत्तम श्रेणी व कभी-कभी मध्यम श्रेणी के पात्र सस्कृत का,[1] स्त्रिया तथा निम्न श्रेणी प्राय मध्यम श्रेणी के भी पात्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करते है। प्राकृत के भी शौरसैनी, महाराष्ट्री और मागधी तीन प्रमुख भेद है।[2] नायिका, विदूषक आदि शोरसैनी का प्रयोग करते है। प्राकृत पद्य प्रायश महाराष्ट्री मे होते है। निम्न श्रेणी के पात्र मागधी, अर्धमागधी या प्राच्या आदि का प्रयोग करते है।[3]

भाषा के इस प्रकार के विभाजन का कारण सामाजिक स्थिति है। पढे लिखे उच्चकुलीनो की भाषा सस्कृत थी जबकि अनपढ और निम्न श्रेणी के पात्रो तथा स्त्रियो की भाषा प्राकृत थी। इसी आधार पर सभी रूपक विधाओ मे प्रयोग किया गया। सस्कृत नाटिकाकारो ने भी इसका तत्परता से पालन कर अपनी प्रतिभा का वैभव प्रदर्शित किया है।

आज यद्यपि प्राकृत प्रयोग सर्वथा व्यर्थ है। उसके समझने वाले ही उपलब्ध नही, फिर भी सस्कृत नाट्यकारो की प्रतिभा का यह प्रतीक है कि उन्होने इस प्रकार के प्रयोग किये है।

(र) अभिनय

नाट्य का एक प्रमुख तत्व अभिनय होते हुए भी वह कवि का धर्म नही अभिनेता का धर्म है। आगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक अभिनयो मे कवि प्राय वाचिक अभिनय के लिए भाषा का प्रयोग करता है, शेष सभी के लिए रग निर्देश करता है। आगिक और सात्विक अभिनयो के प्रयोग योग्य भाषा एव शैली की योजना नाटिकाकारो की सफलता है।

इन नाट्यतत्वो के परिप्रेक्ष्य मे किसी नाट्यकार को श्रेष्ठ, प्रतिभाशाली या महान् का विरुद मिल जाता है तो किसी को साधारण या अप्रतिभाशाली का अपयश। नाट्य प्रतिभा की दृष्टि से उन सभी तत्वो का सम्यक् प्रयोग ज्ञान जिसे होता है वही प्रतिभावान् नाट्यकार माना जाता है। अभिनव नाट्यशास्त्रकार ने नाट्यकार को आदर्शवादी, सम्भावनावादी, वस्तुवादी और भाग्यवादी इन चार श्रेणियो मे विभक्त किया है।[4]

अपने प्रधान पात्र मे गुणो को खोजकर उसकी प्रशसा करने वाले आदर्शवादी कवि कहलाते है ये कवि प्राचीन और नवीन दोनो प्रकार के है, किन्तु प्राचीनतावादी नवीन परिस्थितियो को और नवीन प्राचीन परिस्थितियो को स्वीकार नही करते।

सस्कृत नाट्यकार प्राचीनता मे विश्वास करते हुए आदर्श के पक्षपाती है अवश्य किन्तु वे पात्र के अवगुणो को अनदेखा नही करते और अवसर पाते ही उस का विरोध करते है। कालिदास ने तो स्पष्ट कहा है—

---

१ ना शा. १७। ३१
२ वही १७। ३५-३६
३ वही, सप्तम अध्याय।
४ आदर्श सम्भावनावस्तु भाग्यवादिनो नाट्यकारा
अभि ना शा सूत्र ५२

पुराणामित्येव न साधु सर्वं, न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम
सन्त परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेय बुद्धिः ॥[१]

इससे यह स्पष्ट है कि सस्कृत नाट्यकार समय और परिस्थिति के अनुसार नाट्य शास्त्रीय नियमो मे परिवर्तन के पक्षपाती रहे है। वे भाग्यवाद को मानते थे पर कट्टर भाग्यवादी नही थे। भट्टनारायण कर्ण के शब्दो मे कहता है—

'भाग्यायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्।'[२]

यहा भाग्य और पुरुषार्थ को एक मच पर समन्वित कर दिया गया है।

अभिनव नाट्यशास्त्रकार ने स्वभाव के आधार पर पुन नाट्यकारो को गम्भीर और अगम्भीर रूप दो भेदो मे विभक्त करने का श्रम किया है जो सस्कृत नाट्यकारो के पक्ष मे अविचारणीय है। वे जिस विषय को अपनी लेखनी का विषय बनाते है वही गम्भीर हो जाता है।

अभी तक कवि प्रतिभा के सम्बन्ध मे नाट्य तत्वो के आधार पर जो व्याख्या की गई उसे पुनरीक्षित करते हुए नाट्य प्रतिभा पर विचार करना आवश्यक है। वस्तुत जब कभी हम किसी कवि के सम्बन्ध मे उसका नाट्य वैशिष्ट्य कलात्मक वैशिष्ट्य, शास्त्रीय विवेचना आदि के नाम से जो कुछ पढते है वहा भरत आदि नाट्यशास्त्रीय नियमो की ही विवेचना उपलब्ध होती है। जिस नाट्यकार ने जितनी अधिक सीमा तक इनका पालन किया है उसको उतना ही श्रेष्ठ कवि माना गया है।

यद्यपि दो एक रसपेशल कालिदास आदि कवि इस सीमा से पृथक् है फिर भी प्रायश नाट्यकारो की प्रतिभा का निकष शास्त्रीय सिद्धान्त ही है। सस्कृत नाटिककारो के विषय मे तो यह अधिकाशत सत्य भी है।

श्रीहर्ष की रत्नावली को कलात्मक दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ नाटिका की मान्यता दी गई क्योकि इसमे प्राय वे सभी नियम अपनाए गए है जो नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थो मे प्रतिपादित है। राजशेखर, बिल्हण, विश्वनाथ आदि ने भी हर्ष की इस पद्धति की आलोचना नही की, उपेक्षा भी नही की अपितु उनका अनुसरण करते हुए स्वय भी नवीन नाटिकाओ की सृष्टि कर गए, किन्तु शास्त्रीय नियमो की अपेक्षा इन्होने यथार्थ और लौकिक पक्ष को प्रधानता दी है।

अत नाट्य प्रतिभा मे विशेषतः नाटिका लेखन मे वही कवि श्रेष्ठ और प्रतिभा सम्पन्न है जो नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तो का पालन अधिकाधिक कर सका है और सघटना, रस पेशलता तथा व्यावहारिकता के साथ उनका उचित सयोजन कर सका है।

नाटिकाकारो मे एक दो कवियो को छोड़ प्राय· सभी ने परम्परावादी होते हुए भी इन नियमो का औचित्यपूर्ण निर्वाह किया है अत उनका प्रातिभ वैभव उनकी कीर्तिपताका को अमर बनाने मे पूर्ण समर्थ है।

---

१ मालविका. १। २.
२ वेणीसहार, ३। ३७

तृतीय अध्याय

सामाजिक एवं राजनैतिक समीक्षा

(अ) सामाजिक एव राजनैतिक समीक्षा

(ब) धर्म एव दर्शन

(स) आमोद प्रमोद

(द) रूढिया एव परम्पराए

सस्कृत नाटिका साहित्य के प्रणयन का मूल उद्देश्य जनसामान्य का मनोरजन करना है। अनेक नाटिकाओ मे यह उल्लेख है कि इनका अभिनय देवयात्राओ[1], मदनोत्सवो[2] एव राजदरबारो[3] मे हुआ था, अतः इससे इसकी पुष्टि होती है कि इन नाटिकाओ का उद्देश्य मात्र मनोरजन था। अन्यथा देव यात्राओ मे श्रृगार रस प्रधान इन नाटिकाओ के अभिनय का क्या औचित्य है।

ये सभी नाटिकाए प्रायश एक जैसे कथानक पर आधारित है अतएव इनका समाज भी सामान्यत एक सा ही है। राजाओ की विलासी वृत्ति और परिचारिकाओ द्वारा राजारानियो की सेवा सुश्रूषा, मानो इतने मे ही सारा समाज क्रियाशील है। तदितर राजकार्य, नगर स्थिति, देश, धर्म की व्यवस्था आदि की ओर कवियो ने अपना ध्यान ही नही दिया। यत्र तत्र राजा की विजय सूचनाओ से उनकी राजनीतिक स्थिति का किचित् उन्मेष होता है। फिर भी पात्रो के वाग्व्यवहारो एव स्त्रियो के वर्णनो से तात्कालिकी सामाजिक स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

सामान्यत सभी नाटिकाओ मे वर्णित सामाजिक व्यवस्था तीन वर्गो मे विभक्त थी। प्रथम—राजमहलो का विलासी वर्ग, द्वितीय—राजमहलो के परिचारक एव तृतीय—जनसामान्य। विलासी वर्ग मे भी पुरुष और स्त्री दोनो की पृथक्

१ कर्णसुन्दरी, मृगाक-लेखा।

२ रत्नावली, प्रियदर्शिका, विद्धशालमजिका।

३ कमलिनी कलहस।

व्यवस्था, पृथक् सेवक वर्ग, एव पृथक् क्रियाकलाप होने के कारण दोनो के सर्वथा दो वर्ग अलग अलग माने जा सकते है। परिचारको मे भी इसी प्रकार रानी की सेविकाओ एव राजा के सेवक-सेविकाओ के दो वर्ग थे।

नाटिकाओ मे वर्णित राजाओ का जीवन सर्वथा असामाजिक, कामुक एव मात्र अन्तपुर के लिये ही था। जो एक परकीया (कन्या) नायिका के प्रति अत्यासक्त, कामी एव पदे पदे महारानी से शकालु रहने वाली प्रकृति का व्यक्ति होता है।

पुरुष वर्ग मे आभिजात्य पुरुषो को अनेक स्त्रियो से विवाह करने की, अन्तपुर मे विभिन्न स्थानो की सुन्दरी किन्तु अविवाहित युवतियो को रखने की एव उनके लिये सगीत-नृत्य आदि की शिक्षा देने की व्यवस्था करने का अधिकार था।

स्त्रियाँ विवाह के पश्चात् ही सम्मान की भागी होती थी। कन्याएँ विवाह से पूर्व ही युवक के प्रति प्रेमातुर होकर उससे गन्धर्व विवाह भी कर लेती थी।

ब्राह्मणो का समाज मे स्थान गिर गया था। प्रायश वे राजा के हसोड मित्र बन जाते थे। उनका रूप मुख्यत भोजन भट्ट का था, एव चोटी व ब्रह्मसूत्र उनके उपहास के साधन होते थे।

वर्णव्यवस्था व आश्रम व्यवस्था का कोई स्पष्ट विवरण नही मिलता। यत्र तत्र वेदपाठी ब्राहमणो का उल्लेख है किन्तु वे अनास्था के विषय ही बने रहे है।

समाज मे अन्धविश्वास अत्यधिक था,मन्त्र तन्त्र मे विश्वास,इन्द्रजाल की माया,महात्माओ द्वारा असमय मे ही वसन्त ऋतु को प्रकट कर देना या किसी लता के पुष्पो को किसी दूसरी लता मे खिला देने आदि के अनेक उदाहरण इसकी पुष्टि करते है।

समाज के निम्नस्तरीय सेवक वर्ग मे परस्पर हास परिहास,अपशब्दो का प्रयोग,तथा एक दूसरे को धोखा देने की भावना रहती थी।

सामाजिक दृष्टि से अमात्य वर्ग को सम्मानित स्थान प्राप्त था जो राजा की राज्य व्यवस्था का सचालन एव राजाओ की उन्नति के विविध उपायो का चिन्तन करता हुआ ही प्राय प्रस्तुत किया गया है।

विशिष्ट स्त्रियो के विवाह से राजा को चक्रवर्तित्व की प्राप्ति या लक्ष्मी का प्रकट होकर वरदान देने जैसी मान्यताओ से जहा एक ओर राजकन्याओ का महत्व प्रतिपादित होता है वही दूसरी ओर राजाओ की विलासिता व किसी अविवाहित कन्या के प्रति आकर्षण रूपी दोष का ढकना रूप प्रयोजन भी सिद्ध होता है।

इस प्रकार नाटिकाओ की सामान्य सामाजिक व्यवस्था का सक्षेप मे परिज्ञान कर लेने के पश्चात् प्रमुख नाटिकाओ मे वर्णित सामाजिक स्थिति का सक्षेपेण विचार करना नितान्त अपेक्षित है जिससे विवेचन की वास्तविकता पर प्रकाश पड सके।

रत्नावली एव प्रियदर्शिका—

एक ही कवि महाराजा हर्षवर्धन की कृतिया होने एव एक ही इतिवृत्त पर आधारित होने के कारण इन दोनो नाटिकाओ की सामाजिक स्थिति प्राय एक जैसी ही है।

श्री हर्ष ऐसे काल मे हुए थे जो ब्राह्मण धर्म का पतन काल था,वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा समाप्त हो रही थी,तथा जो बौद्र धर्म का उत्थान काल था। चीनी यात्री ह्वेनत्साग ने अपने भारत वर्ष के 8वर्ष 635 ई0 से 643 ई0 तक हर्ष के राज्य मे बिताये थे,उसने लिखा है कि शिव,सूर्य और बुद्र के प्रति समान आदर भाव रखने पर भी हर्ष का जीवन के अन्तिम भाग मे बौद्र धर्म के प्रति झुकाव अधिक हो गया था।

श्रीहर्ष द्रारा प्रतिपादित समाज को 4 वर्गो मे विभक्त किया जा सकता है,प्रथम विलासी राजवर्ग,द्रितीय सेवक वर्ग,तृतीय अमात्य एव वीर पुरुष वर्ग तथा चतुर्थ जनसामान्य।

प्रथम विलासी राजवर्ग के अन्तर्गत मुख्यत राजा एव रानी ही आती है। ये दोनो स्वच्छन्द प्रकृति एव स्वतन्त्र क्रियाओ के व्यक्ति थे। राजा की दिनचर्या मे बहुत अधिक भाग अन्त पुर, राजोद्यान एव विहार स्थलो मे व्यतीत होता था। राजकार्य का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व मन्त्री पर ही रहता था।[१]

राजाओ के राजमहल अत्यन्त भव्य एव समृद्रि के प्रतीक थे,जिनमे सोपानो तक मे मणियो की पच्चीकारी होती थी। उसके विहार के लिए वर्षा,ग्रीष्म आदि ऋतुओ मे अलग अलग भवन बनाये जाते थे । जिनको शीतगृह, माधवी मण्डप,कदली गृह आदि नामो से कहा जाता था, जहॉ राजा अनेक प्रकार की प्रणय क्रीडाए करता था।

राजा एव रानी दोनो के परिचारक वर्ग,सर्वथा स्वतन्त्र थे। सारिका,बन्दर आदि को पालने की रुचि भी थी। सारिकाए अत्यन्त शिक्षित होती थी। सागरिका के सम्पूर्ण वृत्तान्त को सारिका अक्षरश राजा के समक्ष कथन कर देती है।[२]

राजा एव रानी दोनो ही समान रुप से सगीत की शिक्षा ग्रहण करते थे। प्रियदर्शिका के द्रारा बजाई गई वीणा के लय व ताल का राजा को अच्छा ज्ञान है।[३] तभी तो वह उनका नाम ले-लेकर प्रशसा करता है।

राजाओ की विलासिता का इतना निम्नस्तरीय चित्रण हर्ष ने किया है कि जो उन्हे असामाजिकता के कगार पर लाकर खडा कर देता है। उदाहरणार्थ राजा उदयन रत्नावली मे सागरिका को और प्रियदर्शिका मे आरण्यका को देखकर आकृष्ट होने के बाद जब उससे मिलता है और इस रहस्य का रानी को पता

---

१ 'राज्य' निर्जितशत्रु योग्यसचिवे न्यस्त समस्तो भर. —रत्न० १/९

२ रत्ना०, पृष्ठ ६०, ६२।

३ प्रिय०, ३य१०,

चलता है तो वह कुपित होती है, वहॉ राजा पैरो पर गिरकर क्षमायाचना करता है[१] किन्तु उस पर भी रानी का क्रोध शान्त नही होता और वह सागरिका, आरण्यका व राजा के सहयोगी विदूषक को बन्धन मे डलवा देती है।[२] बेचारा राजा निरीह, शक्तिहीन एव बेवश पुरुष की भाति रानी को प्रसन्न करने का ही उपाय सोचता ह[३] जो उसकी विलासिता का नग्न चित्र प्रस्तुत कर देते है।

राजाओ को अनेक विवाह करने की अनुमति यद्यपि थी किन्तु रानी की स्वीकृति से ही। क्योकि राजा का सागरिका से विवाह से पूर्व प्रेम करने मे विदूषक की सहायता को रानी की परिचारिका काचनमाला ने दुर्नय शब्द की सज्ञा देकर नीति विरोधी बताया है।[४]

विलासी राजवर्ग मे स्त्रियो का पुरुषो की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली रुप चित्रित किया गया है यह उनके कार्यो से स्पष्ट है। ये कामदेव की पूजा मे विश्वास व लतावृक्षादि मे स्त्रीपुरुषवद् व्यवहार करने वाली होती है। इनकी अपनी परिचारिकाएँ होती है जो रानी के सकेत पर राजा की हर प्रणय भावना पर दृष्टि रखती है और राजा की सभी प्रणय क्रीडाओ एव गुप्त व्यापारो की सूचना महारानी को देती है। इतना ही नही अपने नियोजक की समस्त सुख-सुविधा का पूरा पूरा ध्यान रखना भी इनका कर्तव्य है।

राजवर्ग मे राजकन्या जो नाटिकाओ की मुख्य नायिका होती है, सर्वथा राजा के प्रति अनुरागवती ही चित्रित की गई है, अपनी एक परिचारिका सखी के अतिरिक्त यदि किसी से उसका वाग्व्यवहार होता है तो वह केवल राजा से,अन्य किसी से उसे कोई प्रयोजन नही।

परिचारक वर्ग मे भी दो श्रेणिया थी,एक अन्तरग दूसरा सामान्य। राजा का मित्र विदूषक और रानी की एक दासी काचनमाला उनके अन्तरग सेवक सेविका है। अन्य सभी परिचारक इनकी भी आज्ञाओ का उसी प्रकार पालन करते है जिस प्रकार स्वामी, स्वामिनी का।

रानी और राजा के परिचारक वर्ग मे परस्पर ईर्ष्या रहती थी। विदूषक रानी की सेविकाओ को दुष्टदासी, दास्या पुत्रि आदि शब्दो से तथा रानी की परिचारिकाए विदूषक को हताश,दुष्ट आदि वचनो से अपमानित करती थी। अत वे परस्पर अपशब्दो का प्रयोग करते थे, यह ज्ञात होता है।

सेवक वर्ग स्वामी का वफादार सहायक है जो उनके दु ख सुख से दु खी एव सुखी होते है।[५] अपनी स्वामिनी के प्रति अत्यन्त भावाविष्ट होकर मनोरमा

---

१ रत्ना० ३।१४।

२ रत्ना०, पृष्ठ १२६, प्रिय०, पृष्ठ ६७।

३ प्रिय०, ४।१।

४ "हदास अणुभव दाव अत्तणो दुण्णअस्य फल।
(हताश, अनुभव तावदात्मनो दुर्नयस्य फलम्)

५ कांचनमाला—मर्त्रि, एव न्विदम् । किं पुन साहसिकाना पुरुषाणा न सभाव्यते ।
—रत्ना०, पृष्ठ ११०

अन्योक्ति के माध्यम से राजा को अभिनव रसास्वादलम्पट की सज्ञा देने मे[१] भी सकोच नही करती।

रत्नावली और प्रियदर्शिका दोनो ही नाटिकाओ मे मन्त्री अमात्य को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। राजा उदयन के चक्रवर्तित्व के लिए यौगन्धरायण रत्नावली को प्राप्त कराने हेतु वासवदत्ता के लावाणक मे जल जाने का मिथ्या प्रवाद फैलाता है, तथा सिहलेश्वर से किसी प्रकार रत्नावली को सागरिका के रुप मे प्राप्त कर गुप्त रुप से अन्त पुर मे रखवा देता है।[२]

कचुकी यद्यपि अन्त पुर का प्रधान व्यवस्थापक होता था,किन्तु प्रियदर्शिका मे वही राजा की शुभकामना से आरण्यका को मिलाने की व्यवस्था करता है।

सिद्ध महात्माओ के प्रति लोगो की भक्ति और आदर भाव था। वे उनके कार्यो व वचनो पर विश्वास करते थे। रत्नावली मे रत्नावली से विवाह करने पर चक्रवर्तित्व की प्राप्ति का कथन,[३] बिना ऋतु के ही महात्माओ का लताओ मे पुष्पादि उत्पन्न करना,[४] एव राजा के द्वारा मन्त्रप्रयोग से आरण्यका का विषवेग दूर कर देना[५] आदि इसके प्रमाण है। विजय की सूचना मिलने आदि शुभ कार्यो पर गुरुओ व ब्राहमणो की पूजा की जाती थी तथा सभी बन्धनगत व्यक्तिओ को मुक्त कर दिया जाता था।[६]

सेनापतियो के आगमन पर उनका सत्कार किया जाता था,राजा उनके बैठने के लिए आसन आदि की व्यवस्था करता है।[७] स्वय उठकर उनका आलिगन भी करता है।

जनसामान्य मे राजा के प्रति आदर भाव था। समाज मे वेश्याओ को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था,वे राजा के द्वारा आयोजित सभी समारोहो मे बराबर भाग लेती थीं, तथा होलिकोत्सव मे एक दूसरे के केसरचूर्ण को मलकर व रग खेलकर आनन्द मनाती थी।[८]

स्त्रीपुरुष दोनो ही मदिरापान करते थे और मत्त होकर इन उत्सवो मे भाग लेते थे। यह बात विदूषक के इस वर्णन से विदित होती है जहॉ वह राजा को मदन महोत्सव मे क्रीडारत नागरिको का दर्शन कराता हुआ मधुपान से मत्त प्रकृतिवाली स्त्रियो का वर्णन करता है।[९]

---

१ प्रिय०, पृष्ठ ४०
२ रत्ना०, पृष्ठ १०
३ वही, १ ।७।
४ वही, पृष्ठ ४२, ५४।
५ प्रिय०, पृष्ठ ९२ ।
६ प्रिय०, पृष्ठ ८५।
७ राजा-(आसन निर्दिश्य) रुमण्वन्। इत आस्यताम्। विजयसेन स्थीयताम्०। —प्रिय०, पृष्ठ १०,
८ रत्ना०, पृष्ठ १६।
९ वही, पृष्ठ १८ (१/१३)

स्त्री समाज मे व्रत, उपवास,[१] वृक्ष पूजा[२] यदि प्रचलित थी तो पुरुष समाज मे मन्त्र तन्त्र मे विश्वास[३] एव भूत-प्रेतो के प्रति आस्था[४] भी थी।

समाज मे चुगल खोरो की निन्दा की जाती थी। विदूषक सारिका कथन के प्रकरण मे कहता है-तत्तिष्ठ मुहूर्त यावदेतेन पिशुनजनहृदयकुटिलेन दण्डकाष्ठेन परिपक्वमिव कपित्थफलमस्माद्बकुलपादपादाहत्य भूमौ त्वा पातयिष्यामि।[५]

इस प्रकार पिशुन हृदय को कुटिल दण्ड के समान बताकर उनकी निन्दा की गई है। विदूषक एक स्थान पर यज्ञोपवीत की शपथ लेता है,[६] सारिका को चतुर्वेदी ब्राह्मण की सज्ञा देता है,[७] और षड्वेदज्ञ ब्राहमणो मे अपना महत्व बतलाता है।[८] इन कथनो से स्पष्ट है कि उस समय वेदो, वेदपाठियो और ब्राह्मणो का समाज मे बहुत महत्व नही था। क्योकि यज्ञोपवीत की श्पथ लेने से ब्राह्मणो की पतनावस्था का, सारिका को चतुर्वेदी ब्राह्मण की भाति कुरकुराने के कथन से वेदपाठियो की अज्ञानता एव षड्वेदज्ञ कहने से वेदो की सख्या आदि का भी ज्ञान न होना आदि भावो की स्पष्ट अभिव्यक्ति है। जो तत्कालीन वेदो एव वैदिक सस्कृति के पतन की स्थिति का स्पष्ट परिचायक है। भरत वाक्य से भी इस बात पर प्रकाश पडता है क्योकि उनमे ब्राहमणो के विधिपूर्वक यज्ञ करने एव दुर्जनो व दुष्ट वचनो की शान्ति के लिये प्रार्थना की गई है।

जहॉ समाज की एक पतनशील स्थिति का परिज्ञान इन नाटिकाओ से होता है, वही यह भी ज्ञात होता है कि समाज अत्यन्त सुखी समृद्ध एव व्यापार आदि के द्वारा बहुमूल्य रत्नो का क्रय विक्रय करता था। समुद्रयान आदि का स्पष्टोल्लेख इस बात का प्रतीक है कि लोग अत्यन्त सम्पन्न और सुखी थे। किन्तु नाटक,अभिनय आदि कार्य निम्नस्तरीय लोग ही करते थे उच्चस्तरीय नही। यह विदूषक के कथन से स्पष्ट है।[९]

लोगो को अनेक देशो मे आने जाने की सुविधाए थी तथा राजा लोगो को अपने राज्य विस्तार एव चक्रवर्तित्व आदि की प्राप्ति की चिन्ता रहती थी।

विद्धशालभंजिका—

10 वी शती के कवि राजशेखर ने विद्धशालभजिका नाटिका मे हर्ष द्वारा प्रतिपादित समाज व्यवस्था की ही स्थापना की है। राजाओ की धनसमृद्धि और विलासिता का थोडा और अधिक विस्तार उन्होने किया है। क्योकि यहा सोये

१ वही, १/१९।
२ वही, पृष्ठ ३२।
३ रत्ना०, २१५.
४ वही, पृष्ठ ५६।
५ वही, पृष्ठ ५८।
६ वही, पृष्ठ ८४।
७ वही, पृष्ठ ६२।
८ प्रिय, पृष्ठ १७।
९ एते खलु राजानो दास्याअपि एव नर्त्यन्ते। अहो कार्यस्य गुरुता।-प्रिय०, पृष्ठ ५४

हुए राजा को जगाने के लिए वेतालिकाओ द्वारा गीतपाठ और तूर्यनाद आदि की योजना की जाती थी।[१]

इसी प्रकार राजभवनो एव उसके अन्य उपयोगी महलो मे अधिक शिल्प कर्म होता था।[२] भवनो मे लकडी एव पत्थरो की अनेक मूर्तिया गढ कर लगाई जाती थी[३] तथा भवन भित्तियो पर राजा रानियो की प्रणय क्रीडाओ को चित्रित करने की परम्परा भी थी।[४]

विदूषक आदि अन्तरग व्यक्ति अनकी शयन विधि तक का ज्ञान रखते थे कि वे कहा,कब,किसके साथ शयन करते है।[५]

सेवक वर्ग अधिक मुखर और निर्लज्ज हो गया था। विदूषक अपना अपमान करने वाली मेखला जो रानी की विश्वस्त दासी है को अपनी जघाओ के नीचे से निकालने के लिये अमावस्या के दिन उसकी मृत्यु का मिथ्या कथन करता है।[६] और अपनी जघाओ के नीचे से निकलजाने से उसकी मुक्ति का उपाय बताता है।[७]

किन्तु इस प्रकार के निम्नस्तरीय कार्य निम्नवर्गीय समाज मे ही नहीं थे,आभिजात्य वर्ग मे भी थे। रानी मात्र उपहास के लिए विदूषक का अलीक विवाह (अर्थात पुरुष का पुरुष से विवाह) आयोजित करती है और सम्पूर्ण विवाह विधि सम्पन्न कराती है जिसमे राजा भी सम्मिलित होता है।[८] इसी उपहास का बदला विदूषक मेखलादासी से लेता है।

रानी इसी प्रकार का एक और कार्य करती है, वह यह कि-राजा का पुरुषवेशधारी मृगाकावली से विवाहायोजन इस आशय से करती है कि जिससे राजा का पुरुष मृगाकवर्मा से विवाह होगा और वह अपमानित होगा।[९] किन्तु वह स्वय धोखा खा जाती है क्योकि मृगाकवर्मा वस्तुत पुरुष नही पुरुषवेश मे कन्या ही है। इन योजनाओ मे वासवदता की उदात्तता का पतन हुआ है। वह अपने पति के लिए प्राण देने वाली वासवदत्ता न होकर स्वार्थ साधिका सामान्य स्त्री के रुप मे उभर कर आती है जबकि राजा उदयन अपेक्षाकृत उसको बराबर सम्मान देता है, क्योकि दूसरी कन्या के प्रति आसक्त होने पर भी वह वासवदता का अपमान नही करता,उसके प्रति अपना प्रेम भी शिथिल नही करता।

---

१ विद्ध०, पृष्ठ ६।
२ वही, पृष्ठ ७-८।
३ वही, पृष्ठ २७।
४ विद्ध०, पृष्ठ २५-२६.
५ वही, पृष्ठ १२।
६ वही, पृष्ठ ६२।
७ वही, पृष्ठ ६३।
८ वही, पृष्ठ ४०।
९ वही, पृष्ठ ११०-११२।

इस प्रकार के मूर्खतापूर्ण कार्यो से जहा सामाजिको का मनोरजन होता है वही तत्कालीन आभिजात्य वर्ग का निम्न चित्र भी स्पष्टत उभर आता है। राजा को अनेकानेक कन्याओ से विवाह करने का अधिकार तो था ही इस बात का ज्ञान ब्राह्मणी के द्वारा कराये गये राजा के विविध विवाहो के वर्णन से होता है। वह कहती है कि मैने राजा का विविध कन्याओ, जैसे-मगधराज पुत्री अनगलेखा, मालवाधिपकन्या रत्नावली व प्रियदर्शिका, पाचालकन्या विलासवती, अवन्तीश्वरसुता केलिमती व कलावती, जालन्धेश्वर पुत्री लीलावती एव केरलराजकन्या पत्रलेखा आदि आदि से विवाह कराया है।[१]

अनेक राजा अपनी पुत्रियो का एक ही राजा से विवाह करते थे,इसका कारण यह प्रतीत होता है कि लोग शक्ति व आभिजात्य के पक्षपाती तथा समृद्धि के भूखे थे।

विदूषक जो हास्यरस का अभिनेता होता है तत्कालीन समाज की कमियो को विदग्धता से प्रस्तुत करता है। वह अपनी पत्नी को शुष्ट-कुश-रज्जुवत् कर्कश बताता है।[२] इससे यह आभास होता है कि उस समय ब्राह्मण अपने अनुकूल पत्नी नही पाते थे,और सम्भवत इसीलिए रानी के एक आमन्त्रण पर ही वह दूसरी शादी के लिये भी सरलता से तैयार हो जाता है। किन्तु यह स्थिति सम्पूर्ण ब्राह्मण समुदाय की नही थी।

इस समय विद्वानो मे परस्पर शास्त्रार्थ भी होता था, किन्तु सम्भवत उसे अधिक महत्व नही दिया जाता था,क्योकि विदूषक उन्हे फल-लोभी किन्तु पल्लवग्राही बन्दरो से उपमित करता है।[३]

इसी प्रकार वह शिखाबन्ध मे कुरु,अमानुषी वाणी श्रूयते[४] आदि कथन से भी ब्राह्मणो का उपहास करता है। राजशेखर कालीन स्त्री समाज का सक्षिप्ततया ज्ञान विदूषक के अलीक विवाह से अपमानित होने पर प्रयुक्त किये गये विशेषणो से होता है। मुख्यत भ्रमरटेण्टे, टेण्टाकराले, रच्छालोट्टणि (रथ्यालुण्ठिनी), पर पुत्र विछाविणी (पर पुत्र विद्राविणी) और विषमकर्तरि (विषम कर्त्रि) आदि सम्बोधन पद इस दृष्टि से अवलोकनीय है।[५] भ्रमरटेण्टे का अभिप्राय इधर उधर घूमने वाली है,तदनुसार उस समय कुछ दुश्चरित्र स्त्रिया समाज मे इधर उधर घूमा करती थी,टेण्टाकराले अर्थात् झगडालु इससे समाज मे परस्पर झगडने की,रथ्या लुण्ठिनी (सडक पर लोटने वाली) से मदिरापान आदि के कारण मदविह्वल होकर स्त्रियो के भी सडक पर गिर पड़ने की, पर पुत्र-विद्राविणी (दूसरे के पुत्रो को

---

१ विद्ध, पृष्ठ ९३।

२ वही, पृष्ठ ११।

३ विदुषक—(ही ही भो, एते खलु पण्डिता अलीकविकल्पैर्फललुब्धा इव मर्कटामूलमलभमाना पल्लवग्राहिणो भवन्ति, मूर्ख., पुन. पनसवनपालक इव मूलमन्विष्यन् फल प्राप्नोति ।
— विद्ध,पृष्ठ ५१

४ विद्ध, पृष्ठ ५०।

५ वही, पृष्ठ ४१।

भ्रष्ट करने वाली) से समाज मे युवको को दुश्चरित्र बनाने वाली एव विषम कर्त्रि से असामाजिक कर्म करने वाली स्त्रियो का ज्ञान होता है। यद्यपि यह सत्य है कि निम्न श्रेणी की स्त्रिया ही इन बुराइयो से युक्त थी व इन्हे निन्दित भी समझा जाता था, किन्तु स्त्री समाज मे ये बुराइया अवश्यरुपेण व्याप्त थी।

शेष सामाजिक स्थिति रत्नावली के समान ही चित्रित है जिसमे भूत प्रेतो पर विश्वास[१] राजकन्या विवाह से चक्रवर्तित्व प्राप्ति[२] आदि प्रमुख है। विवाह पूर्णत पौराणिक विधि से होते थे।[३]

इस नाटिका मे समाज का एक वर्ग और पृथक रुप से उभरा है,वह है कवि वर्ग। जो अपने काव्य को अमृत विन्दुवद् आस्वाद व्यजक मानता है,[४] अपनी प्रतिष्ठा चाहता है और इसीलिए स्वत ही अपनी प्रशसा भी करता है।

कर्णसुन्दरी—

अन्य नाटिकाओ की भाति इसमे भी राजवर्ग अत्यन्त विलासी,कामुक और भीरु है। पुरुषो की अपेक्षा स्त्रिया अधिक साहसी एव अधिकार सम्पन्ना है। राजा की पूर्व स्वीकृति के बिना ही रानी उसके विवाह का आयोजन करती है और राजा को भी किसी प्रकार की आपत्ति नही होती।[५]

स्त्री पुरुष अपना वेश बदलकर,छिपकर एक दूसरे की रहस्य वार्ताओ का श्रवण और उनकी क्रियाओ का अवलोकन करते थे।[६] यहा भी रानी राजा को अलीक विवाह द्वारा तिरस्कृत करने का उपक्रम करती है।[७]

भूत प्रेतो मे विश्वास तो था ही[८] किन्तु देवी-पूजा व शिवाराधना के द्वारा कार्यसिद्धि की भी आशा की जाती थी।[९]

स्त्री व पुरुष दोनो की शिक्षा व्यवस्था थी किन्तु राजकन्याओ की विशेषत नृत्य, सगीत आदि की ही शिक्षा दी जाती थी। जैसे कि यहा कर्णसुन्दरी को।[१०] राजा की ओर से मदन महोत्सवायोजन किया जाता था, जिसमे समस्त नर-नारी समान रूप से भाग लेते थे। विशिष्ट राजकन्याओ से विवाह करने पर चक्रवर्तित्व की प्राप्ति जैसी मान्यताओ पर विश्वास किया जाता था।[११]

---

१ **विद्ध,पृष्ठ ५४।**
२ **वही, ४१२०.**
३ **वही, पृष्ठ ४०**
४ **वही,पृष्ठ १/७.**
५ **कर्ण,पृष्ठ ४९।**
६ **वही,पृष्ठ३७,४०।**
७ **कर्ण., पृष्ठ ५१**
८ **कर्ण., पृष्ठ १९**
९ **वही, पृष्ठ २८, २। २७**
१० **वही, पृष्ठ २०।**
११ **वही, पृष्ठ ५।**

राज सभाओ मे वेश्याओ का नृत्य होता था[१] घरो मे स्वर्ण पिजरो मे पक्षी पालने की पृथा से[२] समृद्धि व सुख वैभव पर भी प्रकाश पडता है।

लोगो मे धार्मिक भावना व्याप्त थी, शिव, विष्णु, लक्ष्मी और जैनधर्म प्रवर्तक महावीर स्वामी के प्रति आस्था थी,[३] लोग उनकी यात्राओ का आयोजन करते थे।[४]

काव्य, सगीत और चित्रकला आदि मे सामान्य निपुणता स्त्री और पुरुष दोनो ही ग्रहण करते थे।

उषारागोदया—

दक्षिण भारत के कवि रुद्रचन्द्रदेव ने 12वी शती मे उषारागोदया नाटिका की रचना की थी। दक्षिण भारत के कवि होने के नाते इसमे वर्णित सामाजिक रूढियो एव परम्पराओ मे अन्य नाटिकाओ की अपेक्षा कुछ स्वाभाविक भिन्नता है। यो तो इस प्रकरण के आरम्भ मे जिस सामान्य सामाजिक स्थिति का सकेत किया गया है वह यहा भी अक्षुण्ण है। जैसे विलासी वर्ग और सेवक वर्ग की विविध हास्यादिक एव विलासी क्रीडाएँ, विदूषक की निम्नोक्तिया, भूतप्रेतादिको के प्रति विश्वास तथा असमय मे पुष्पोत्पत्ति प्रभृति अन्धविश्वासात्मक मान्यताएँ किन्तु अनेक स्थलो पर स्थानीय सामाजिक रूढियो का भी पृथक् अस्तित्व है। उदाहरणार्थ

यहा मदनोत्सव एव मदनपूजा का आयोजन वर्षा ऋतु मे किया गया है।[५] जब कि उत्तर भारत मे यह उत्सव होलिकोत्सव आदि के रूप मे वसन्त ऋतु मे मनाया जाता है।

मदन-पूजा मे कामदेव की प्रतिमा के स्थान पर साक्षात् राजा (पति) को पूजने का भी विधान था।[६] मदनोत्सव मे हिण्डोले मे झूलने की प्रथा सामान्य थी।

सुखसमृद्धि ओर विलासिता के रहते हुए भी लोगो मे धार्मिक भावना थी। लोग तीर्थो के प्रति अति श्रद्धासमन्वित थे और वहा जाकर अपने को पाप-मुक्त कर शुद्धि प्राप्त करते थे किन्तु इस सब की अपेक्षा आन्तरिक शुद्धता को विशेष महत्व दिया जाता था। नायक कुमार स्पष्ट कहता है कि अन्तरात्मा शुद्ध होने पर तीर्थादिको के द्वारा शुद्धि का क्या प्रयोजन।[७]

विवाह के अवसर पर मण्डप को भली प्रकार सजाने के लिये मोतियो की माला, धूप, दीपमालिका आदि का प्रयोग किया जाता था।[८] विवाहादि कार्य

१ वही, १। ७
२ वही, १। ५.
३ वही, १। ४
४ वही, पृष्ठ ३।
५ उषा, पृष्ठ १५
६ रूपरेखा-भत्तदारिए। पच्चक्खो एव्व कुसुमाउहो। ता किं दाणिं पडिमादिणा। भट्टा एव्व कहणण्अच्चीअदि। —उषा., पृष्ठ १५
७ उषा ४। ४
८ वही, पृष्ठ ४९।

किसी सिद्ध पुरुष, तपस्वी आदि की उपस्थिति मे होता था और वे वीर पुत्रोत्पत्ति का वरदान देते थे।[१]

नाटिका मे तत्कालीन समाज का जो भी चित्रण है उस पर रत्नावली का प्रभाव है। चूकि नाटिकाओ की सर्वथा एक प्रकार की रचना पद्धति है, अत उनसे स्थान काल आदि की सामाजिक स्थिति पर विशेष प्रभाव नही पडता।

पारिजातमजरी

धारा मे दो शिलाओ पर उत्कीर्णित पारिजात मजरी नाटिका के दो अंक एक ही शिला पर उत्कीर्ण प्राप्त होते है जिनमे सम्प्रति एक ही उपलब्ध है। इसके लेखक मदनबाल सरस्वती प्राचीन नाटिकाओ के अश्लील समाज की अपेक्षा कुछ शिष्ट समाज का चित्र प्रस्तुत कर सके।

यद्यपि नाटिका का आरम्भ वसन्तोत्सव से होता है,[२] जिसमे होलिकोत्सव के समान अनेक वाद्यो का लय तालयुक्त वादन, एव सिन्दूर, कस्तूरी, श्रीखण्ड और कश्मीरद्रव आदि का लेप किया जाता था।[३] किन्तु हास, परिहास आदि का जो भी चित्रण है वह अपनी समान श्रेणी के पुरुषो मे ही था। जैसे विदूषक कनकलेखा नामक चोटी पर और कनकलेखा विदूषक पर सिन्दूर प्रक्षेपण करते है, इसी प्रकार रानी जब नायक के ऊपर सिन्दूर डालने का उपक्रम करती है तो राजा को सजग देखकर स्वत ही ग्रीवा झुकाकर सिन्दूर डालने का निषेध करती है।[४]

यहा नायिका का रूप शिष्ट समाज के स्त्री-पुरुषो का सा जो वास्तविक है, चित्रित है।

इस नाटिका मे स्त्रियो के विविध पर्वो मे पृथक्-पृथक् वाद्यो के प्रयोग का भी सकेत है, जैसे हिन्दोलक चतुर्थी नामक व्रत मे वे हिन्दोलक नामक वाद्य से विनोद करती थी।[५]

समाज मे अनेक रूढिया एव परम्पराएँ अवश्य थी, जैसे चित्र प्रयोग नामक आयुर्वेदिक योग से असमय मे पुष्पो को विकसित कर देना,[६] चालुक्य राजपुत्री जयश्री की मृत्यु के बाद स्वर्द्रुममजरी किसलय के सम्पर्क से पुन जीवित हो जाना[७] एव पुष्प प्रहार से ही मूर्च्छित हो जाना आदि है।[८]

---

१ वही, पृष्ठ ५०।
२ पारि., पृष्ठ ५।
३ वही, १। २०-२२
४ पारि. १। २३
५ वही, पृष्ठ ७
६ वही, पृष्ठ १५
७ वही, १। ७
८ वही, पृष्ठ २१

यद्यपि ये रूढिया अवास्तविक मानकर अन्धविश्वासी भावना को जन्म देती हैं किन्तु तो भी इनसे काव्यत्व की पुष्टि व यत्किचिद् रूप मे सामाजिक स्थिति का परिज्ञान होता ही है।

चन्द्रकला—

रूढिवादी परम्परा मे विरचित चन्द्रकला नाटिका मे जिस समाज का चित्रण है वह पूर्वत् विलासी राजपरिवारो एव उनके अनुकूल प्रजावर्ग का सूचक है।

एक ओर राजवर्ग अन्तःपुर की सीमाओ मे घिरा हुआ कामुक, विलासी एव निरुपाय रूप मे चित्रित है[१] तो दूसरी ओर स्त्री समुदाय पुरुषो की प्रत्येक श्रृगारिक चेष्टाओ के प्रति जागरूक एव यथासभव रूपवती किसी भी कन्या को नायक के समक्ष न जाने देने के लिये तत्पर है।[२]

राजा अपनी प्रेयसी से मिलने के लिए विदूषक को तरक्षु बनकर आने की एव रानी आदि को भयभीत करने की हास्यास्पद योजना बनाकर अपनी शक्तिहीनता का परिचय देता है।[३] फिर यह भी वनपाल को निर्देश देना कि मृत तरक्षु लाकर यहा डाल दो जिससे रानी को विश्वास हो सके कि मैने ही उसका वध किया है।[४] उसकी मिथ्या अह भावना और उपहासात्मक क्रियाशीलता का परिचायक है।

स्त्री समाज मे पाशक केलि नामक कोई खेल प्रचलित था जिसमे सम्भवत पुष्पावचयन आदि को करने की कुछ विधि होती थी, क्योकि यहा सुनन्दना चन्द्रकला से दो आम्र पल्लवो के ऋण को चुकाने का कथन करती है।[५]

राजकन्या (चन्द्रकला) से विवाह करने पर स्वय लक्ष्मी प्रकट होकर उसे बरदान देगी।[६] इस प्रकार की भावनाओ पर जहा विश्वास किया जाता था, वही लोग देवी-देवताओ के प्रति भी श्रद्धालु होते थे, यह भी ज्ञात होता है।

हिन्दू समाज मे इस समय यवनो के आक्रमण होने लगे थे। इसलिए राजा लोग सेनाएँ रखकर आक्रमण करते थे और युद्धो मे उनको जीतने का प्रयत्न करते थे। कवि ने त्रिकलिगाधिपति निशक भानुदेव के द्वारा यवनो पर विजय के साथ चौल, कौशल, बग, हावग, कौच, काची, गौड़, डाहल, मत्स्य, लाट और कर्णाट आदि को जीतने का उल्लेख किया है।[७]

कविराज विश्वनाथ ने उडीसा के आदिवासी या बगाल के समीपवर्ती जनजातियो की स्थिति के केवल एक पक्ष पर हलका सा प्रकाश डाला है कि शबर आदि जातिया नरबलि देकर विन्ध्यवासिनी की पूजा करती थी।[८] क्योकि

---

१ चन्द्र. पृष्ठ ७, २०
२ वही, पृष्ठ ७
३ वही, २।४
४ वही, पृष्ठ ३२
५ वही, पृष्ठ १८
६ चन्द्र. १/६
७ वही, पृष्ठ २
८ वही, पृष्ठ ७२

शबर स्वामी को चन्द्रकला जगल मे अकेली मिल गई थी जिसे वह विन्ध्यवासिनी के मन्दिर मे बलि देने ही वाला था कि अचानक राजा के सेनापति विक्रमाभरण का कोई सैनिक वहा दर्शनार्थ गया और उस शबर स्वामी का बध कर चन्द्रकला को छुडा लाया।[१]

इससे एक और सामाजिक स्थिति का सकेत मिला कि राजकन्याएँ अपनी सखियो के साथ बिना किसी पुरुष रक्षक के बडे-बडे जगलो मे विहारार्थ निकल जाती थी। इससे उस काल मे स्त्री समाज की स्वतत्रता पर पर्याप्त प्रकाश पडता है।

राजा लोग विलासी प्रकृति के होते हुए भी मन्त्रियो एव सेनापतियो के प्रति आदरभाव रखते थे एव उनका उचित सम्मान भी करते थे।

समाज मे आत्महत्या का प्रचलन था, स्त्रिया प्राय. अपने प्रेम-व्यापार मे अधीर एव निराश होकर लतापाश एव विषपान आदि के द्वारा आत्महत्या का प्रयास भी करती थी।[२]

कमलिनीहस

१७वी शती की इस नाटिका मे समाज तान्त्रिको, ऐन्द्रजालिको, और चित्रकारो के एक पृथक् समाज का परिज्ञान होता है, जो पेशेवर के रूप मे इन कार्यों को करते थे।

कमलजा की नाट्य-शिक्षा का उत्तरदायित्व, भरताचार्य पर है।[३] कारण्डव चित्रकला के साथ-साथ मूर्तिकला मे भी निष्णात है।[४]

राज समाज मे भी सभी व्यक्ति शिक्षित नही होते थे, स्वय राजा अपने श्यालक अन्तपाल द्वारा प्रेषित पत्र को अपने लेखाधिकारी से पढवाता है।[५] इससे स्पष्ट है कि वह न तो स्वय पत्र लिख पाता था और न ही पढ पाता था।

शेष सभी मान्यताएँ पूर्ववत् है जो समाज की सामान्य स्थिति मे सकेतित है। राजा विलासी, उनके परिचारक पृथक्-पृथक्, अनेक छल छद्मो से कन्याओं से विवाह व गुप्त मिलन की योजनाएँ एव स्त्रियो की प्रबलता आदि में सहायता करने वाले है। यहा नायिका को प्रकट करने की सर्वथा अभिनव योजना है जो नाटिका की सर्वथा नूतन विशेषता होते हुए भी एक सामाजिक स्थिति का भी सकेत करती है। वह यह कि अच्छोद सरोवर पर वकोटहतक (शत्रुराजा) नायक की सेना से डरकर भागते समय अपनी कन्या और उसकी सखी को एक पुण्डरीक मे छिपाकर रख देता है और स्वय भाग जाता है।[६] राजा के सैनिक उस पुण्डरीक को लाकर राजमहल मे पहुचाते है जिसे खोलने पर उसमे से

१ वही, पृष्ठ ७३-७४
२ चन्द्र, पृष्ठ ५८
३ कम पृष्ठ ६
४ वही, पृष्ठ ७
५ कम पृष्ठ २३
६ कम. पृष्ठ ८३

अपूर्व सुन्दरी कन्या और उसकी सखी निकलती है, फलत उनका नाम कार्यानुकूल कमलजा और मृणालिका रख दिया जाता है।[१]

यहा इतने बडे कमल और उसमे भी दो युवतियो को धारण कर छिपा लेने की सामर्थ्य सर्वथा असम्भव प्रतीत होने के कारण यह स्वीकार किया जा सकता है कि अच्छोद सरोवर जैसे बिहार सागरो के तट पर इस प्रकार के लकडी या प्रस्तर के मण्डप बनते होगे जो पुण्डरीक के आकार के होते होगे और उनमे राजपरिवारो के लोग बिहार करते रहे होगे। कादम्बरी मे भी अच्छोद सरोवर पर, महाश्वेता एव पुण्डरीक, कपिजल आदि के स्नान एव बिहार का विस्तृत वर्णन है। अत राजा के सैनिक उस बिहार मण्डप को जिसमे कि कमलजा अपनी सखी के साथ छिपी थी, ज्यो का त्यो उठा लाये होगे और उसको खोलने पर वे दोनो बाहर आ गई।

इससे तत्कालीन समाज की समृद्धि व वैभवपूर्ण स्थिति के साथ ही कलात्मक उन्नति का भी परिचय मिलता है।

मृगांकलेखा—

विश्वनाथ देव रचित मृगाकलेखा नाटिका मे भी उषारागोदया की भाति वर्षा ऋतु मे मधूत्सव का आयोजन होता है।[२] मधूत्सव से कामपूजा सम्बन्धी उत्सव ही लिया जायेगा न कि वसन्तोत्सव अन्यथा परस्पर विरोध हो जायेगा।

सामाजिक स्थितियो पर प्रकाश डालने वाली नाटिकाओ मे मृगाकलेखा नाटिका का रत्नावली के समान ही महत्व है।

आभिजात्य वर्ग सुख समृद्धि के वातावरण मे रहने के कारण विलासी हो जाते थे किन्तु वे प्राय अपने कार्यव्यापार से विरत नही होते ते। यहा नायक जो उच्चकुलीन राजा है, मृगया के लिये कामरूप प्रदेश की ओर जाता है जहा कामरूपेश्वर की कन्या देखकर उस पर आसक्त हो जाता है।[३] इससे राजा की विलासी भावना की प्रतीति होती हे, किन्तु वह अवसर पडने पर वीरता का भी प्रदर्शन करता है, ऐसा नही है कि उदयन आदि की भाति निरीह हो जाये। जैसे श्मशान भूमि पर दानवेन्द्र शखपाल को नायिका की बलि के लिये उद्यत देख, उससे युद्ध करता है और अपनी प्रेयसी को अपने बाहुबल से ही मुक्त करा लाता है।[४]

समाज मे लोग तिरस्करिणी और अन्तर्धान जैसी क्रियाओ पर विश्वास करते थे।[५] इस प्रकार के व्यक्ति ऐन्द्रजालिक, सिद्धियोगिनी आदि राजाश्रित रहकर

१ वही, पृष्ठ ६
२ मृगा, पृष्ठ ३
३ मृगा १। १४-१५
४ वही, पृष्ठ ४५-४६
५ वही, पृष्ठ ७

उनके कार्य साधक होते थे। जैसे यहा सिद्धि योगिनी नायक को नायिका की प्राप्ति कराने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।[१]

समाज का वह वर्ग जो प्राय मास मदिराभोजी, चण्डिका उपासक और बलिकर्म करने वाले होते थे, जिन्हे मन्त्र आदि का भी ज्ञान रहता था, राक्षस कोटि मे गिने जाते थे। यहा शखपाल, कुण्डरुधिर आदि इसी प्रकार के समाज के व्यक्ति थे। इनकी स्त्रिया प्राय अपने केश खुले रखती थी अत उन्हे राक्षसी का प्रतीक रूप मान लिया गया था। विदूषक खुले बालो वाली नायिका मे राक्षसी रूप की कल्पना करता है।[२] इस नाटिका मे भी समाज मे वर्ण व्यवस्था का स्पष्ट कोई विवरण नही मिलता किन्तु ब्राह्मणो को नित्य सन्ध्योपासन आदि का विधान बतलाना।[३] सौभाग्यवती स्त्रियो के द्वारा पूर्णचन्द्र का पूजन करना,[४] राजाओ के द्वारा निशस्त्र पर प्रहार न करना[५] आदि के विधान कुछ न कुछ वर्णाश्रम धर्म की ओर सकेत करते है।

यद्यपि स्त्रियो का समाज मे समादृत रूप था फिर भी अभिसरण आदि की निम्न क्रियाएँ भी प्रचलित थी और वे पर पुरुष गृहो मे गमन करती थी।[६] विवाहादि उत्सवो पर गली चौराहो को सजाने की प्रथा थी, बारातो मे वेश्याओ के लास्य तथा हाथी एव घोडो को सजाकर ले जाने की पृथा थी।[७]

देवी को बलि देकर प्रसन्न किया जाता था जिसमे भैसे की बलि की सामान्य प्रथा थी।[८] विशेष सिद्धि के लिये नरबलि भी दी जाती थी।

शमशान पर निवास करने वाले एव मास भोजी लोगो का समाज मे निम्न स्थान था। इस प्रकार की योजना नाटिका साहित्य मे सर्वथा नवीन कल्पना है।

वृषभानुजा—

आधुनिक युग के नाट्यकार मथुरादास ने भगवान् कृष्ण को नायक बना कर वृषभानुजा नाटिका की रचना की है, जिसमे राधा और कृष्ण की प्रणय-भावना का चित्रण है। इसमे सामाजिक स्थिति पर कोई विशेष प्रभाव नही पडता अपितु पूर्वनाटिकाओ मे वर्णित सामान्य सामाजिक स्थिति का ही चित्रण है।

बलिपूजा के द्वारा रोगो को शान्त करने का भी उल्लेख है।[९] इसी प्रकार वृक्षो की पूजा[१०] व अग स्फुरण आदि के द्वारा शकुनो मे विश्वास था।[११]

१ वही, पृष्ठ ४८
२ मृगा. पृष्ठ १६
३ वही, पृष्ठ १५
४ वही, पृष्ठ २८
५ वही, पृष्ठ ४५
६ वही, पृष्ठ ३०
७ वही, पृष्ठ ४। ५-६
८ वही, पृष्ठ ३। २४
९ वृष ४। ४
१० वही, पृष्ठ ४०
११ वही, पृष्ठ १५

कृष्ण के मित्र विदूषक व उसकी परिचारिकाओ मे परस्पर ईर्ष्यात्मक व अपमानात्मक वाग्व्यवहार निम्न श्रेणी के सामाजिको की स्थिति का दिग्दर्शन कराते है। यहा विदूषक राधा की परिचारिका चम्पकलता को पुष्पो की चोरी लगाता है।[१]

कुमारियो मे भी नूपुर पहनने की पृथा ब्रजक्षेत्र की आभूषण प्रियता का दिग्दर्शक है।

इस प्रकार सम्पूर्ण नाटिका साहित्य मे प्राय एक जैसी ही सामाजिक परिस्थितायें वर्णित की गई है। यत्र तत्र कुछ भिन्नता अवश्य है, किन्तु विशेष चमत्कृति नही। नाटिकाओ का मूल उद्देश्य विलासी राजाओ की प्रवृत्तियो का अनुकरण कर उन्हे सन्मार्ग पर लाने के लिये कर्तव्य पथ का अप्रत्यक्षत सितशर्करोपशमनीय पद्धति से निर्देश करना है।

राजा के सभाभवनो, देवयात्राओ एव विजयोत्सवो पर इस प्रकार की कामुक नाटिकाओ के अभिनय का और कोई औचित्य प्रतीत नही होता।

राजनैतिक स्थिति

सस्कृत नाटिकाओ मे राजाओ की विजय के प्रतिपादन मे केवल उनके सैनिको की वीरता का ही चित्रण है किन्तु मत्री के कार्यो मे राजनीतिक कूट कर्मो का भी सकेत प्राप्त होता है।

रत्नावली मे हर्ष ने मन्त्री के बुद्धि वैभव का विस्तार से वर्णन किया है। उसे जैसे ही यह ज्ञात हुआ कि रत्नावली का पति चक्रवर्ती सम्राट होगा, वह अपने स्वामी के लिए सिहलेश्वर से उसकी याचना करता है, किन्तु वासवदत्ता के रहते हुए जब वह मना कर देता है तो मन्त्री यौगन्धरायण कूटनीति से काम लेता है और लावाणक मे आग लगवा कर उसमे वासवदत्ता के जल जाने का प्रवाद फैला देता है, बाद मे पुन जब सिहलेश्वर से रत्नावली की याचना करता है तो वह तैयार हो जाता है और वत्सराज के पास उसे भेज देता है। मार्ग मे यानभग हो जाने पर किसी प्रकार बचकर जब वह उसे मिलती है तो उसकी रत्नमाला को देखकर वह पहचान लेता है किन्तु इस वृत्त को सर्वथा गुप्त रख कर सागरिका नाम से राजा के अन्त·पुर मे देवी के समीप पहुचा देता है।

स्पष्ट है कि यहा यौगन्धरायण ने सामनीति का प्रयोग किया है और अन्तपुर मे रखने तथा उसकी प्राप्ति मे कूटनीति का। प्रियदर्शिका मे यही काम कचुकी करता है।

प्रायश अन्य सभी नाटिकाओ मे यही स्थिति है। सर्वत्र मन्त्री इसी प्रकार नायिका को अन्तपुर मे पहुचाने का प्रयत्न करता है और नायिका चुपचाप वहा बनी रहती है। यह भी एक विशिष्टता है कि नायिका जो एक राजा की कन्या है इस प्रकार चुपचाप दासी के धर्म को स्वीकार कर लेती है और लेशमात्र भी

१ वही, पृष्ठ ३२

प्रतिवाद नही करती। इससे यह प्रतीत होता है कि सभवत मन्त्री और नायिका मे परस्पर कुछ इस प्रकार का समझौता हो जाता होगा, अन्यथा एक राजकन्या इस प्रकार के अपराध को चुपचाप कैसे सहन कर लेती। किसी मे इसे इस रूप मे मोड दिया जाता है कि उसके पिता ने ही उसे राजा को देने का या तो वचन दिया था या निश्चय कर लिया था।

इस षडयन्त्र का पता राजा को भी नही चल पाता। अन्त मे जब उसका राजकन्या से विवाह होता है तब उसे सत्य स्थिति का पता चल पाता है। इससे स्पष्ट है कि राजाओ की प्रत्येक प्रकार की उन्नति, अवनति का सूत्रधार पूर्णरूपेण मन्त्री ही होता था।

वृषभानुजा मे मन्त्री की स्थिति का अभाव होने से यह राजनीतिक स्थिति नही आती फलत: वहा कवि ने दूसरी नीति का अवलम्बन किया। भगवती वृन्दा जो क्षेत्रीय समाज मे अति प्रतिष्ठित व पूज्य है, कृष्ण व राधा की हित कामना व परस्पर अनुराग हेतु एक दूसरे से एक दूसरे की प्रशसा करती है और इस कार्य मे मन्त्री के समान ही सफलता प्राप्त करती है।

कमलिनी कलहस मे निश्चय ही यह स्वाभाविक रूप से शत्रुपुत्री के रूप मे अन्त पुर मे आती है और उसे देखकर राजा के अनुरक्त हो जाने पर अन्त मे उसका विवाह करा दिया जाता है।

इस प्रकार मन्त्रियो के बुद्धि चातुर्य मे ही सम्पूर्ण राजनीतिक दांवपेच दृष्टिगोचर होता है। राजनैतिक उथलपुथल या राजनीति के छ गुणो का प्रायश प्रयोग अवसर प्राप्त नही होता। सभी राजा (नायक) परम स्वतत्रता और निश्चय के साथ प्रेम-व्यापार मे प्रवृत्त होते है।

अत इन नाटिकाओ मे राजनीतिक अस्थिरता जैसी कोई बात नही वर्णित की गई और न ही बहुत अनुशासनबद्ध व सुगठित समाज ही चित्रित किया गया।

मृगाकलेखा मे शखपाल दानवेन्द्र के द्वारा नायिका के अपहरण आदि की घटनाएँ किसी राजनीतिक स्थिति का परिणाम नही अपितु मात्र कौतूहलोत्पादक ही है।

विजय सूचनाओ से राज्य की सीमा-विस्तार के लिये युद्ध होते थे, यह विदित होता है किन्तु उनमे राजाओ का कोई योगदान नही होता था। महामात्य या मन्त्री लोग ही इन सब कार्यो के लिये पूर्णत अधिकार प्राप्त थे।

इस प्रकार सम्पूर्ण नाटिका साहित्य राजनैतिक दृष्टिकोण से अछूता सा ही है।

(ब) धर्म एवं दर्शन—

श्रृगार रस प्रधान नाटिकाओ का उद्देश्य धर्म और दर्शन आदि से सर्वथा विपरीत मात्र मनोरजन है किन्तु सभी नाटिकाओ का अभिनय या तो देवोत्सवो मे हुआ या देवयात्राओ या राजमण्डपो मे ऐसा उल्लेख तत्तन्नाटिका की प्रस्तावना

मे किया गया है। जिससे तत्कालीन धर्म का कुछ सकेत अवश्य मिलता है। इसी प्रकार प्रत्येक नाटिका का आरम्भ किसी न किसी देव स्तुति से होता है। तदनुसार तत्तत्समाज की धार्मिक स्थिति पर कुछ प्रकाश पडता है।

धार्मिक स्थिति को जानने का नाटिकाओ मे तीसरा साधन पात्रो के परस्पर व्यवहार मे आए हुए प्रसग है। किसी किसी नाटिका के भरत वाक्य मे भी यत्किचिद् रूप मे धार्मिक स्थिति का सकेत है।

इन सभी दृष्टियो से नाटिकाओ की परीक्षा करने पर मुख्यत चार धार्मिक सम्प्रदायो का ज्ञान प्राप्त होता है। शेव-जैन, शाक्त और वैष्णव।

शैव धर्म के अन्तर्गत शिव, भूत, प्रेत की उपासना होती थी। एक दो नाटिकाओ को छोडकर शेष सभी नाटिकाओ मे प्रायश नान्दी मे शिव की स्तुति की गई है।[१] शिव के साथ ही पार्वती की भी वन्दना है क्योकि नाटिकाओ के विषयानुसार प्रायश शिव के ताण्डव रूप का ही स्तवन अभीष्ट रहा है। नाट्यशास्त्रीय मर्यादा के अनुसार भगवान् शिव और पार्वती को नृत्य एव अभिनय आदि का अधिष्ठातृ देव माना गया है।

महाकवि बिल्हण की कर्णसुन्दरी नाटिका के प्रथम पद्य मे भगवान् जिन की स्तुति की गई है, तथा वही नाभेय भगवान् के यात्रामहोत्सव मे अभिनीत की गई,[२] यह भी उल्लेख है। इससे जैन धर्म का भी प्रसार था और लोग आदर के साथ देवयात्राओ मे सम्मिलित होते थे, यह ज्ञात होता है।

विन्ध्यवासिनी या देवी की पूजा तथा बलि देने की व्यवस्था का वर्णन होने से श्रीहर्ष के समय से ही शाक्त धर्म की स्थिति का भी पता लगता है किन्तु इसका विशेष वर्णन कर्ण सुन्दरी[३] नाटिका से लेकर परवर्ती काल की नाटिकाओ मे स्पष्टत किया गया। शाक्त धर्मानुयायी देवी के अनेक रूपो की कही कालिका के रूप मे, कही विन्ध्यवासिनी के रूप मे, कही दुर्गा या भवानी के रूप में और कही चण्डिका के रूप मे उपासना करते थे अतएव पृथक् पृथक नाटिकाओ मे इन विविध रूपो की स्तुति की गई है।

राजशेखर ने नाटिका साहित्य मे सर्वप्रथम विष्णु का उल्लेख किया[४] तत्पश्चात् बिल्हण[५], मदन बालसरस्वती[६], विश्वनाथ कविराज[७] और मथुरादास[८] ने वैष्णव धर्म का विधान विष्णु के विविध रूपो, जैसे विष्णु, कृष्ण, नारायण

१ प्रिय १/१-२, रत्ना १/१-३, विद्ध. १/३, कर्ण १/२, उषा १/१-२, चन्द्र. १/१, कम १/१, मृगा १/१-३
२ कर्ण.. पृष्ठ ३
३ कर्ण, पृष्ठ २९, चन्द्र, पृष्ठ ७२, मृगा. ३/२४, पृष्ठ २६, वृष ४/४
४ विद्ध. ४/२७
५ कर्ण १/३
६ पारि. १/१
७ चन्द्र. ४/१६
८ वृष १/१-४

आदि की स्तुति के माध्यम से किया। कृष्ण को विष्णु का ही अवतार मानने के कारण पारिजात मजरी और वृषभानुजा नाटिकाओ की नान्दी वैष्णव धर्मानुयायी स्वीकार करने मे किसी प्रकार की आपत्ति नही आती।

इस प्रकार नान्दी या भरत वाक्य आदि के माध्यम से नाटिका साहित्य मे वर्णित प्रमुख चार धर्म सम्प्रदायो का उल्लेख है।

इन सभी धर्मो को एक धर्म के रूप मे भी मान्यता दी जा सकती है वह है पौराणिक धर्म। पौराणिक धर्म के अन्तर्गत वृक्ष पूजा, तिथि नक्षत्र आदि के अनुसार वृत उपवास आदि तथा नदी, पर्वत एव तीर्थो की पूजा आ जाती है। जो प्राय सभी नाटिकाओ मे वर्णित है।

कामदेव को भी देववत् पूजा जाता था जिसमे सभी सौभाग्यवती स्त्रिया, कुमारिया और युवापुरुष उपस्थित रहते थे। ब्राह्मणो को विशेष भोजन कराया जाता था। उषारागोदया नाटिका मे देवी कुमार की कामदेव के रूप मे पूजा करने के पश्चात् शिखिर विदूषक को मोदक शराब समर्पित करती है।[१]

विद्धशालभजिका मे एक स्थान पर देवकुल का उल्लेख है जिससे मन्दिरो की स्थापना एव देव प्रतिष्ठा आदि पर प्रकाश पडता है।[२] साथ ही अदेव देवकुल कहने से मन्दिर मे मूर्तियो के अभाव का भी सकेत है। जिससे मन्दिरो की अवनति पर प्रकाश पडता है। राजशेखर के समय ब्राह्मणधर्म भी था क्योकि विचक्षण ब्राह्मणो को गन्धर्व वेद ज्ञाता बतलाकर उनके चरण स्पर्श से वस्तुएँ पवित्र हो जाती है, ऐसा मुनियो का मत है यह कथन करती है।[३]

विदूषक के वाक्य से मुनिधर्म का भी सकेत मिलता है जहा वह समाधि का अनुकरण करता हुआ राजा को ध्यानभग करने से रोकता है।[४]

कर्णसुन्दरी नाटिका मे भी जहा मुख्यत जैनधर्म पर विचार किया गया, वही शिव, विष्णु आदि की स्तुति[५] के पश्चात् अनेक पौराणिक विश्वास भी अभिव्यक्त किये गये, जेसे यक्ष, राहु आदि से विदूषक का भयभीत होना[६] नायिका की सखी के द्वारा भवानी की पूजा से कार्य सिद्धि का कथन करना[७] आदि।

चन्द्रकला और मृगाकलेखा नाटिकाओ मे देवी को बलि देने के लिये पशु व नर दोनो का बध किया जाता था, ऐसा उल्लेख है।[८] इससे उस समय

---

१ देवी-रूअ लेहे। अज्ज गिरिवरस्स किदे णिम्मिद मोदअसराव समप्पेहि।

२ विद्ध., पृष्ठ ४८

३ यतो मुनयोप्येव स्मरन्ति पादेभ्यो ब्राह्मणा पवित्रयन्ति सर्वम्। विद्ध., पृष्ठ ६३

४ विद्ध. पृष्ठ ६७

५ कर्ण., १/२-३।

६ वही, पृष्ठ १९

७ ऐसा मअवदी मवाणी पणदजणवच्छला णिच्छिअ तुह इच्छ पूर इस्सदि। कर्ण., पृष्ठ २९

८ चन्द्र., पृष्ठ ७२ एव मृगा, पृष्ठ ३६ तथा ३/२४

शक्ति की उपासना प्रधान होने के कारण शाक्त धर्म ही उन लोगो का प्रमुख धर्म था जो जगल के आदिवासी, बनवासी (शबर) या राक्षस कोटि के व्यक्ति थे किन्तु शिष्ट, सभ्य समाज मे ऐसा नही था। मृगाकलेखा मे तो ब्राह्मण धर्म का भी स्पष्टोल्लेख है यदि ब्राह्मण नित्य सन्ध्योपासना नही करते थे तो उन्हे प्रेत-बाधा भी लग जाती थी।[१] सौभाग्यवती स्त्रिया अपने पति के समक्ष पूर्णचन्द्र की पूजा करती थी।[२]

ऐन्द्रजालिक, कापालिक आदि के कार्यो मे भी विश्वास था किन्तु इसे किसी पृथक् धर्म की मान्यता नही दी जा सकती। भगवान् कपाली (शिव) की उपासना और शक्ति की सेवा करने वाले बाममार्गियो को कुछ इस प्रकार सिद्धि प्राप्त हो जाती थी कि वे क्षणिक चमत्कार से लोगो को आश्चर्य मे डाल देते थे। इस प्रकार के इन्द्रजाल का, कापालिक और सिद्धयोगिनी आदि की तिरस्करिणी विद्याओ का समाज मे प्रचलन था जो पौराणिक धर्म के ही अन्तर्गत स्वीकार किया जा सकता है।

रत्नावली मे इन्द्रजाल का प्रदर्शन[३], कमलिनी कलहस मे भी इन्द्रजाल का प्रयोग[४], मृगाकलेखा मे सिद्धयोगिनी के द्वारा तिरस्करणी विद्या का प्रयोग[५] एव दानवराज शखपाल के द्वारा माया की उद्‌भावना आदि के रूप मे इनका वर्णन है।

जहा तक नाटिकाओ की धार्मिक दृष्टि से विवेचना का प्रश्न है, उसके अनुसार समाज मे सभी धर्मो की स्थिति थी, यह अनेकश कथनो से स्पष्ट है, दैनन्दिन जीवन मे भी उसका उपयोग वृक्ष पूजा व्रतोपवास आदि के द्वारा स्पष्ट हुआ है। विवाह आदि के विषय मे देवी नायिका का विधिविधान से विवाह तो होता ही था, राजकन्याएँ जो राजा की आकर्षण केन्द्र बनती थी का भी विवाह पूर्णत मण्डप इत्यादि की योजना कर वैदिक विधि से ही होता था। देवी के द्वारा अलीक विवाह योजनाओ मे मण्डप एव विवाह कालिक क्रियाओ के वर्णन से यह बात स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त नाटिकाओ के अध्ययन से किसी विशिष्ट धर्मपद्धति का ज्ञान प्राप्त करने का उपाय नाटिकाओ के मूलोद्देश्य का उच्छेदन रूप ही होगा।

दर्शन—

सस्कृत नाटिकाएँ विशुद्ध रूप से साहित्यिक कृतिया है जिनमे श्रृगार रस और कैशिकी वृत्ति का बाहुल्य है। इनमे दार्शनिक तत्वो का सर्वथा अभाव ही माना जाता है।

---

१ मृगा., पृष्ठ १५
२ वही, पृष्ठ २८
३ रत्ना., ४/१९
४ कम. पृष्ठ ७
५ मृगा., पृष्ठ ४८

धर्म और दर्शन की अभिन्नता के आधार पर इनमे भले ही यत्किचिद् उन्मेष करने का प्रयत्न लोग करे किन्तु, वास्तविक दृष्टि से ये नाटिकाएँ दर्शन से सर्वथा शून्य है।

(स) आमोद प्रमोद

राजपरिवार की विलासी चित्तवृत्तियो से समलकृत राजा, रानी की विविध श्रृगारिक क्रीडाओ को अभिनेय बनाने वाली सस्कृत नाटिकाओ का कलेवर अनेक हास परिहास और मनोविनोदात्मक घटनाओ से ओतप्रोत रहता है। राजा रानिया जहा अनेकानेक इस प्रकार की क्रीडाएँ करती थी जो केवल हास्यास्पद ही होती थी वही अनेक ऐसी भी क्रियाएँ थी जो ईर्ष्याभाव से या प्रतिकार के रूप मे भी की जाती थी।

ये सभी हास परिहास आदि के साधन ही आमोद प्रमोद के स्वरूप को व्यक्त करते है। समस्त नाटिकाओ से सकलित ये आमोद-प्रमोद के साधन निम्न लिखित है

१. उत्सवायोजन—

राजपरिवार के लोगो के मनोविनोद का यह एक विशेष साधन था जो मदनोत्सव, मधूत्सव, वसन्तोत्सव, हिन्दोलोत्सव आदि अनेक रूपो व अनेक नामो से मनाया जाता था। प्रत्येक नाटिका मे इस उत्सव का वर्णन है जिसमे राजपरिवार के साथ-साथ जनसामान्य भी भाग लेता था।

वसन्तोत्सव—

रत्नावली मे वसन्तोत्सव के आयोजन का उल्लेख है जिसमे केसर का पीला चूर्ण गुलाल और पिचकारियो के रग से भूमि गीली एव सिन्दूर वर्ण की हो गई है।[१] यह उत्सव निश्चय ही आज भी होलिकोत्सव के रूप मे उसी प्रकार रग, गुलाल आदि से मनाया जाता है। विविध प्रकार के मादक द्रव्यो का सेवन आज भी प्रचलित है किन्तु प्राचीनकाल मे यह मुख्यत: राजाओ का उत्सव होता था, राजा लोग इसके आयोजन की घोषणा करते थे। यह विदूषक के इस कथन से स्पष्ट है कि हे मित्र, यह मदन महोत्सव न आपका है और न कामदेव का ही अपितु मुक्त ब्राह्मण का है।[२] किन्तु आज इस उत्सव मे अश्लीलता अधिक हो जाने से केवल निम्न श्रेणी के समाज का ही मुख्य पर्व रह गया है।

विद्धशालभजिका नाटिका मे वसन्त ऋतु का ही वर्णन किया गया है वहा इसे उत्सव के रूप मे आयोजित नही किया गया।[३] इसी प्रकार कर्णसुन्दरी

१ रत्ना., १/१०-१२.

२ **भौ वअस्स, एव ण्णेद। अह उण जाणामि ण भवदो ण कामदेवस्स मम ज्जेव्व एकस्स बम्हणस्से। — रत्ना., पृष्ठ १४.**

३ विद्ध. १/२३-२६

नाटिका मे भी वसन्त ऋतु का वर्णन ही राजा की प्रसन्नता के निमित्त वर्णित है।[१] किन्तु वहा स्वय नायक वसन्त ऋतु को चैत्रोत्सव की सज्ञा देता है।[२]

उषारागोदया नाटिका मे कुमार ने वसन्तोत्सव का वर्णन करते हुए उसमे वारवधुओं के साथ मिलकर जनसामान्य के क्रीडा करने का, क्रीडासक्ता वधुओं के आभूषण की कान्ति के समान पीत मृगमद आदि से लिप्त अगणभूमियो का वर्णन किया है।[३] इससे जनसामान्य के आमोद-प्रमोद का साधन यह उत्सव था, यह ज्ञात होता है। यद्यपि वसन्तोत्सव से प्रचलित कामपूजा यहा वसन्तऋतु मे न करके वर्षा ऋतु मे की गई है[४] जो स्थानीय विशेषता का ज्ञापक है साथ ही यह भी ज्ञात होता हे कि राजाओं के यहा बसन्त और वर्षा दोनो कालो मे उत्सवायोजन किये जाते थे।

मृगाकलेखा नाटिका की प्रस्तावना मे सूत्रधार वर्षा ऋतु का स्पष्ट सकेत करता है[५] किन्तु जब वह अपनी गृहिणी से जाकर आयोजन के विषय मे प्रश्न करता है तो वह उत्तर देती है कि यह मधूत्सव का आरम्भ है अत मै व्यस्त हू।[६]

इस प्रकार परस्पर विरोध सा प्रतीत होता है, किन्तु 'मधूत्सव' शब्द मे मधु का अर्थ कामदेव ही गृहीत करना चाहिए वसन्त ऋतु नही। अत जिस प्रकार उषारागोदया मे वर्षा ऋतु मे कामदेव के पूजन का विधान रुद्रचन्द्रदेव ने किया था उसी प्रकार इसमे भी श्री विश्वनाथ देव ने।

श्री विश्वनाथ देव भी दक्षिणी कवि थे। उन्होने वाराणसी मे रहकर यद्यपि नाटिका की रनचा की थी किन्तु जन्मस्थान की परम्परा का आना अत्यन्त स्वाभाविक है। अत दक्षिण भारत मे वर्षाऋतु मे ही कामदेव पूजन का विधान था यह ज्ञात होता है।

वृषभानुजा नाटिका मे उत्तर भारत की परम्परानुसार मदन महोत्सव मनाने की प्रथा का सकेत है।[७] किन्तु यह उत्सव नगर मे न होकर वृन्दाटवी मे होता है और उसमे कुमारिकाओं को सम्मिलित होने का निषेध सा था, यह बात इससे स्पष्ट होती है कि कृष्ण का सखा कृष्ण से कहता है कि आज राधा यमुना मे मज्जन करने के बहाने वृन्दाटवी मे पहुचेगी।[८] किन्तु यहा बहाने से वृन्दाटवी

---

१ कर्ण. १/४२-४६.

२ केषाचित्सुखयन्ति चात्र हृदय चैत्रे विचित्रोत्सवे। —कर्ण. १/४६.

३ उषा., २/११-२२.

४ वही, पृष्ठ १

५ मृगा १/५

६ वही, पृष्ठ ३

७ वृष., पृष्ठ ११

८ प्रियालाप· श्रुत खलु मया एतेषु मधुवासरेषु वृषभानुपुरतो भानुनन्दिनीमज्जन व्यपदेशेन मदन महोत्सव मानयितु प्रभाते राधाप्रमुख कुमारिकाजनो वृन्दाटवी निकुजवीथिकासनिवेशमागच्छति। —वृष, पृष्ठ ११

मे पहुचने का उद्देश्य मदन महोत्सव मे सम्मिलित होना नही है, अपितु कृष्ण से गुप्त रूप मे मिलना है। अत इसे परम्परा नही माना जा सकता।

इस प्रकार रत्नावली से लेकर वृषभानुजा तक प्राय सभी प्रमुख नाटिकाओ मे लोगो के आमोद प्रमोद का साधन उत्सवायोजन, मदन महोत्सव और वसन्तोत्सव आदि के रूप मे चित्रित किया गया है।

इन उत्सवो मे असीम आनन्द की प्राप्ति के उद्देश्य से स्त्री और पुरुष दोनो ही मदिरापान[१] करते थे। नृत्य करते थे, और हिण्डोले पर चढकर झूलते थे।

किसी-किसी नाटिका मे इसे हिन्दोलोत्सव की सज्ञा देकर पृथक् उत्सव का रूप दिया गया है।[२] वसन्त और वर्षा दोनो ऋतुओ मे आज भी भारतीय समाज मे हिण्डोले की प्रथा है। किन्तु यह अब केवल स्त्रियो मे ही प्रचलित है, पुरुषो मे नही।

२. अलीक विवाह योजना—

नाटिकाओ मे सर्वाधिक हास्यास्पद घटना अलीक विवाह की योजना है। रानी, राजा या विदूषक का उपहास करने के लिये उनका वधूवेशधारी किसी पुरुष से विवाह कराती है। विदूषक के इस प्रकार के अलीक विवाह आयोजन मे तो राजा भी सम्मिलित होता है, जबकि राजा का अलीक विवाह विदूषक व मन्त्री आदि की चतुरता से निष्फल हो जाता है और स्वय रानी ही उपहास की पात्र बन जाती है।

इस अलीक विवाह योजना से वेश परिवर्तन स्त्रिया पुरुषो का व पुरुष स्त्रियो का वेश धारण कर आनन्द मनाते थे, यह तथ्य भी प्रकाश मे आता है।

विद्धशालभजिका मे यह योजना अत्यन्त चमत्कारिक एव मनोरजक ढग से प्रस्तुत की गयी है। यहा सर्वप्रथम देवी, विदूषक का अपने सेवक डमरूक के साथ विवाह आयोजित करती है। राजा भी इसे आनन्द का विषय मानता हुआ उसमे सम्मिलित होने के लिए कहता है मन्ये देवी उपहसितुमेनमिच्छति। तज्जोषमास्महे। वर्धता परिहासलता।[३] विवाह विधि को सम्पन्न कराने के लिए जब भावरे डालने का अवसर आता है, उस समय डमरूक स्थिति को स्पष्ट करता है।[४] जिससे विदूषक का अत्यन्त उपहास होता है।

इसी नाटिका मे दूसरा अलीक विवाह आयोजन देवी के द्वारा राजा का किया जाता है जिसमे देवी मृगाक वर्मा को वास्तविक रूप मे पुरुष समझकर उसे स्त्री परिधान पहनाकर राजा से विवाह करती है[५] किन्तु बाद मे चन्द्र वर्मा

---

१ रत्ना., पृष्ठ १४.
२ उषा., पृष्ठ १४, मृगा. १/२
३ विद्ध., पृष्ठ ३८
४ वही, पृष्ठ ४०-४१
५ विद्ध., पृष्ठ १११-११२

के दूत द्वारा मृगाक वर्मा का कन्या होने का रहस्य प्रकट करने से[१] रानी अत्यन्त लज्जित हो जाती है।[२]

इधर विदूषक भी अपना बदला लेने के लिए मेखला नामक दासी को अपनी जघाओ के नीचे से निकालने की योजना कर राजा और रानी का मनोविनोद करता है।[३]

कर्णसुन्दरी मे भी देवी के द्वारा कर्णसुन्दरी वेशधारी किसी पुरुष से राजा के विवाह की योजना की जाती है[४] किन्तु विदूषक और अमात्य की योजना से साक्षात् कर्णसुन्दरी का ही विवाह राजा के साथ करा दिया जाता है। अन्त मे रहस्य प्रकट होने पर देवी अत्यन्त चकित होती है।[५]

कमलिनी कलहस मे भी रानी भ्रमरक को कमलजा का वेश धारण कराकर अलीक विवाह से राजा का उपहास चाहती है, किन्तु कारण्डव और विदूषक की सहायता से वास्तविक कमलजा को ही देवी, राजा के लिए सौप देती है, पश्चात् देवी को पता चलता है कि कारण्डव कृत माया कमलजा के ब्याज से वह स्वय ठग ली गयी है जिससे स्वत उसी का उपहास होता है।[६]

वेश परिवर्तन की अन्य अनेक घटनाएँ नाटिकाओ मे मिलती है, किन्तु वे सभी स्वार्थ साधक ही होती है, क्योकि वही देवी वेशपरिवर्तन कर राजा के अन्य स्त्रीगत प्रेम का पता लगाती है तो अन्यत्र राजा अपनी प्रेयसी से मिलने के लिये ऐसा करता है। अत उनमे आमोद प्रमोद जेसी निमित्तता नहीं होती किन्तु निश्चय ही उससे राजा या रानी का मानसिक सन्तोष होने के कारण इन्हे भी इसी रूप मे स्वीकार किया जा सकता है।

३. नृत्य, नाट्य आयोजन—

आमोद प्रमोद का तीसरा साधन नाटिकाओ मे नृत्य और नाट्य के आयोजन थे। प्रिय-दर्शिका नाटिका मे राजा व रानी की प्रसन्नता के लिये साकृत्यायनी एक नाटक की आयोजना करती है जिसे स्वय राजा उदयन, उदयन का और आरण्यका (प्रियदर्शिका) का अभिनय करती है।[७] यद्यपि देवी के द्वारा मनोरमा दासी को उदयन की भूमिका निभानी थी।

रत्नावली मे वसन्तोत्सव के अवसर पर विदूषक राजा को मदनिका द्वारा किये जा रहे वसन्त के अभिनय का अवलोकन कराता है।[८] अत यहा भी हर्ष ने नाट्य को मनोरजन का उपाय सकेतित किया है।

---

१ **वही, ४/२०.**

२ **वही, पृष्ठ ११४.**
"पश्य दैव-दुर्विलसितानि। यन्मया केलिक्रमेणालीक परिकल्पित तत् सत्यत्वेन परिणतम्।"

३ **विद्ध, पृष्ठ ६७-६९**

४ **कर्ण., पृष्ठ ५०-५२**

५ **वही, पृष्ठ ५३**

६ **देवी-सर्वथानेन हताशेन वचितास्मि —कम., पृष्ठ ८०**

७ **प्रिय., पृष्ठ ५४-६४**

८ **"एषा खलु मदनिका मदनविसंष्ठुल बसन्ताभिनय नृत्यन्ती चूतलतिकया सह इत एवागच्छति।" रत्ना., पृष्ठ १८.**

कर्णसुन्दरी नाटिका मे तो राजा के सभाभवन मे दक्षिणात्या नटी के नृत्य का स्पष्टोल्लेख किया गया है।[१] इससे यह भी स्पष्ट है कि धनीमानी या राजपरिवार के व्यक्ति मनोविनोद के लिए न केवल नृत्य का आयोजन ही करते थे, अपितु देश के दूर भागो से भी नर्तकियो को बुलाकर नृत्य के द्वारा मनोरजन करते थे। उषा रागोदया नाटिका मे रानी की सहचारियो के द्वारा मदनमहोत्सव के अवसर पर प्रमदोद्यान मे वसन्त के अभिनय की सूचना दी गयी है।[२] राजा इसे उत्कष्ठा शान्ति का उपाय मानकर सम्मिलित होता है।

राज-चूडामणि दीक्षित के द्वारा लिखी गई कमलिनी कलहस नाटिका मे भी राजा रानी की प्रसन्नता के लिए एक नाटक की सूचना दी जाती है जिसमे मृणालिका को कमलजा की भूमिका निभानी है इस निर्देश के साथ ही देवी के नाट्यालोकन हेतु कुतूहल का भी उल्लेख है।[३] वृषभानुजा नाटिका मे कृष्ण के द्वारा रासलीला भी इसी उद्देश्य की पूर्ति करती है[४] यह रासलीला आज भी ब्रज क्षेत्र मे मनोरजन का प्रमुख साधन है।

स्त्री समाज मे लताओ और कुमुदिनी आदि पुष्पो के विवाह का आयोजन कर मनोविनोद किया जाता था। एक दृष्टि से यह भी अलीक विवाह ही है। क्योकि इसमे मात्र एक कल्पना के यथार्थ कुछ भी नही है।

चन्द्रकला नाटिका मे देवी नायिका विदूषक के द्वारा राजा को सन्देश भिजवाती है कि आज चन्द्रमा की किरणो से विकसित कुमुदिनी का चन्द्र के साथ विवाहोत्सव सम्पन्न करना है।

अत महाराज को गृह दीर्घिका पर अवश्य पहुचना चाहिए।[५] इस प्रकार के अनेक हास परिहासात्मक आमोद प्रमोद के उपाय नाटिकाओ मे भरे पडे है।

४. चित्ररचना—

चित्र रचना के द्वारा उत्कण्ठित मन को बहलाने के उदाहरण तो प्रायश सभी नाटिकाओ मे है ही, किन्तु कमलिनी कलहस मे कमलजा की मूर्ति का निर्माण कारण्डव केवल मनोविनोद के उद्देश्य से ही करता है, मृणालिका का उत्तर देते हुए विदूषक के कथन से इसकी सपुष्टि होती है।[६] यह चित्रकला स्त्री, पुरुष दोनो समाजो मे भली भॉति प्रचलित थी। भवनो की भित्तियो पर, भोजपत्रो पर और कमलिनी दलो पर भी चित्रकारी के अनेक उदाहरण प्राप्त हे जिनमे विविध रगो को बडी कुशलता के साथ भरा जाता था। राजा एव उसकी प्रेमिका वियोग के क्षणो मे इन्ही चित्रो की रचना कर मन बहलाव करते थे। राजवर्ग

---

१ वर्ण, १/७
२ उषा., पृष्ठ २४
३ कम., पृष्ठ ४५
४ वृष, १/६
५ चन्द्र., पृष्ठ २४
६ "विदूषक-किमन्यत् वयस्य विनोदनमन्तरेण।" —कम., पृष्ठ ४९

के अतिरिक्त परिचारिका वर्ग भी इस कर्म मे पर्याप्त कुशल होते थे। रत्नावली मे सागरिका राजा का चित्र बनाती है, उसी चित्र मे सुसगता दासी सागरिका का चित्र बना देती है जिसे देखने पर क्रुद्ध सागरिका से सुसगता कहती है—'सखि क्यो अकारण क्रुद्ध हो रही हो जैसे तुमने कामदेव लिखा था वैसी मैने रति को उसके समीप लिख दिया।[१]

वीणा[२], वशी[३] और हिन्दोलक[४] आदि वाद्य एव सगीत भी मनोविनोद के प्रमुख साधन थे। राजमहलो मे सगीत शिक्षा की व्यवस्था रहती थी उसके लिए आचार्यो को भी नियुक्त किया जात था। कमलिनी कलहस मे कमलजा के लिए यह व्यवस्था सुलभ थी। शख भेरी मृदग और तूर्य आदि वाद्ययन्त्रो का भी अवसरानुकूल प्रयोग होता था। सोये हुए राजा को जगाने एव मागलिक अवसरो पर इन वाद्ययन्त्रो का प्रयोग किया जाता था।

५. क्रीडाएँ—

विद्धशालभजिका और कर्ण सुन्दरी नाटिकाओ मे कन्दुक-क्रीडा तथा चन्द्रकला मे पाशक क्रीडा[५] नामक खेलो के भी उल्लेख है। खेलो के अन्तर्गत ही इन्द्रजाल को भी ग्रहण किया जा सकता है।

रत्नावली मे राजा और रानी के समक्ष मनोविनोदार्थ ही इन्द्रजाल का प्रदर्शन किया गया था[६], भले ही इसमे मन्त्री का बुद्धिकौशल और चमत्कार प्रयोग उद्देश्य रहा हो किन्तु राजा और रानी इसको मनोविनोदार्थ ही देखने के लिये उत्सुक थे। इसी प्रकार कमलिनी कलहस मे भी इन्द्रजाल के प्रयोग का उल्लेख है।[७]

किसी किसी नाटिका मे द्यूत क्रीडा का भी सकेत है। इसी प्रकार विद्धशालभजिका मे स्त्रियो की स्नान क्रीडा[८], विद्वानो मे शास्त्रार्थ[९] आदि अनेक क्रीडाओ के प्रचलन का सकेत प्राप्त होता है।

स्त्रियो की युवा पुरुषो के प्रति की गई प्रेम भावना को ही यहा कामक्रीडा की सज्ञा दी गई है।

६. पशुपक्षी पालन—

परिवारो मे शुक, सारिका, बन्दर आदि को भी पालने की प्रथा थी। इनसे बात करना, इनके द्वारा उच्चारित शब्दो का श्रवण और कौतुकपूर्ण इनकी क्रीडाओ

१ रत्ना., पृष्ठ ४६
२ प्रिय., पृष्ठ ५१
३ वृष., पृष्ठ ४१
४ पारि., १/२२
५ चन्द्र., पृष्ठ १८
६ रत्ना., पृष्ठ १४४
७ कम., पृष्ठ ७
८ विद्ध., १/४४
९ वही, पृष्ठ ५१

को देखना आनन्द दायक था, अत पशु पक्षी भी नाटिका कालीन समाज, मे आमोद प्रमोद के लिये पाले जाते थे। गोपाल कृष्ण की चन्द्रप्रभा मे बाज पक्षी के भी पालने की व्यवस्था है।

सस्कृत नाटिकाओ मे मुख्यत राजपरिवारो का ही वर्णन होने के कारण यद्यपि जनसामान्य की स्थिति का, उनके आमोद प्रमोद के साधनो का विस्तृत विवेचन उपलब्ध नही होता, फिर भी यत्र तत्र प्राप्त सकेतो के आधार पर जो कुछ भी ज्ञात हो सका उसी का यहा उल्लेख किया गया है और उससे तत्कालीन सामाजिक स्थिति पर प्रकाश पडा है किन्तु उच्च राजवर्गीय समाज का विशेष।

उपलिखित आमोद प्रमोद के साधनो के साथ-साथ राजवर्ग के आवास हेतु बहुमूल्य रत्न-जडित भवन एव सिहासन, सुसज्जित उद्यान और समय तथा ऋतु के अनुकूल विकास सार्मग्रिया प्रभृत मात्रा मे विद्यमान रहती थी।

धारा यन्त्रगृह, क्रीडा पर्वत, माधवीमण्डप, गृहदीर्घिका, कदलीगृह, केलि कैलाश आदिको के निर्माण का मूल उद्देश्य राजा और राजपरिवार के लोगो की प्रसन्नता ही था।

इसी प्रकार विदूषक, परिचारिकाओ आदि के विविध हास-परिहास भी राजाओ के मनोविनोद के साधन ही थे।

७. आभूषण धारण—

स्त्री और पुरुषो दोनो ही आभूषण पहनते थे, दोनो के आभूषणो मे यद्यपि अन्तर था किन्तु प्राय अनेक आभूषण एक जैसे थे, उदाहरणार्थ कर्णा-भूषण, अगुलीयक और रत्नमाला आदि। स्त्रिया सिर से पैर तक सभी अगो मे आभूषण धारण करती थी। स्वर्ण आदि धातुओ के साथ मणियो का भूयसा प्रयोग उनमे था।

(द) रूढ़ियां एवं परम्पराएँ

सस्कृत साहित्य मे कुछ विशिष्ट रूढिया प्रचलित थी, जिन्हे कविख्याति एवं कवि समय प्रसिद्धि आदि शब्दो से कहा गया है। आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण मे कुछ रूढियो का उल्लेख ख्यातिविरुद्धता नामक दोष का निरूपण करते समय किया है। तदनुसार कुछ कविख्यातिया निम्नलिखित है—

आकाश और पाप का वर्ण काला होता है, यश, कीर्ति और हास तथा पुण्य का श्वेत एव क्रोध, अनुराग का वर्ण लाल होता है।

समुद्र, नदी, तालाब आदि सभी जलाशयो मे कमल आदि पुष्प तथा हसादि पक्षी रहते है किन्तु वर्षा मे हस मानसरोवर को चले जाते है। चकोर चन्द्रिका पान करता है। युवतियो के चरण प्रहार से अशोक और उनकी मुख मदिरा से बकुल पुष्पित होते है।

कामदेव के धनुष की प्रत्यचा भ्रमरपक्ति तथा बाण-पुष्प और स्त्री कटाक्ष होते है। वियोग मे युवा-युवतियो के हृदय फट जाते है और इन बाणो से विंध

जाते है। अशोक वृक्ष मे फल नही आते, बसन्त मे जाति (चमेली) नही फूलती, चन्दन मे फल व पुष्प दोनो ही नही होते उनमे सर्प लिपटे रहते है।

कमल दिन मे और कुमुदिनी रात्रि मे खिलती है। चक्रवाक युगल रात्रि मे वियुक्त हो जाते है, मेघ की गर्जन सुनकर मयूर नृत्य करने लगते है।[१]

उपरिनिर्दिष्ट इन रूढियो मे कुछ तो सर्वथा काल्पनिक है और कुछ यथार्थ पर आधारित है। इन रूढियो का सभी काव्यकारो व नाट्यकारो ने पालन किया है। जो इनका पालन न करके अन्यथा प्रतिपादन करता था वह इस कवि का दोष माना जाता था जिसे ख्याति विरुद्धता कहा गया है।

सस्कृत नाटिकाओ मे इनमे से अनेक रूढियो का स्पष्ट पालन हुआ है। प्रणयमूलकता होने, एव विप्रलम्भ श्रृगार के भूयसा प्रयोग से कामदेव के धनुष एव पुष्प बाणो तथा चन्द्र आदि उद्दीपक वस्तुओ का वर्णन पदे पदे विद्यमान हैं। नायिकाओ की विरहपीडा मे चक्रवाकी का उपमान रूप मे तथा कमल, कमलनाल आदि का शीतोपचार हेतु बहुश प्रयोग किया गया है।

इन कवि रुढियो के अतिरिक्त कुछ अन्य रूढिया भी सस्कृत नाटिकाओ मे स्थान पा गई थी, जिन्हे नाटिका के लक्षण रूप मे ही परवर्ती नाट्यकारो ने स्वीकार किया। उदाहरणार्थ—

(१) नाटिका की दो नायिकाओ मे द्वितीय, कन्या नायिका का जिससे विवाह होगा वह चक्रवर्ती सम्राट् होगा या स्वय लक्ष्मी प्रकट होकर उसे बरदान देगी, इस प्रकार का कथन।

प्राय सभी नाटिकाओ मे रूढिरूप मे कवियो ने इसका पालन करने का प्रयत्न किया है किन्तु कमलिनी कलहस और वृषभानुजा नाटिकाओ मे इस को स्वीकार नही किया गया। कमलिनी कलहस की नायिका कमलजा, वकोटहतक जो नायक का शत्रु था, की कन्या है और राजा के सैनिको द्वारा पुण्डरीक के अन्दर लाई गई है। वृषभानुजा नाटिका की नायिका वृषभानुनन्दिनी है जो भारतीय युगपुरुष कृष्ण की प्रेयसी के रूप मे पुराणो मे वर्णित की गई है। अत इन दोनो नाटिकाओ मे इस रूढि का उल्लघन हुआ है।

(२) नाटिकाओ की दूसरी रूढि है शत्रुओ पर विजय की सूचना। नाटिका के चतुर्थ अक मे जब निर्वहण सन्धि का अवसर आता है तो नायक के सेनापति या दूत आदि के द्वारा उसके शत्रुओ पर विजय या राज्य विस्तार की सूचना मिलती है।

श्री हर्ष ने जहा नाटिका साहित्य मे सर्वप्रथम इस रूढ़ि की नीव डाली, वही उन्होने अपनी दूसरी नाटिका प्रियदर्शिका मे इस रूढ़ि को प्रथम अक मे ही प्रदर्शित करने का उपक्रम किया। इससे रूढ़ि का पालन तो हुआ किन्तु क्रम बदल गया।

---

१ सा. द. ७/२३-२५

ऐसा प्रतीत होता है कि श्री हर्ष ने प्रियदर्शिका की ही रचना सर्वप्रथम की थी, उसमे उन्होने प्रथम अक मे ही विजय की सूचना का उपन्यास किया, किन्तु घटना सयोजन के औचित्य की दृष्टि से यह उचित प्रतीत नही हुआ क्योकि पाच कार्यावस्थाओ मे अन्तिम फलागम नामक कार्यावस्था मे ही विजय, स्त्रीलाभ आदि का वर्णन करने से नाटिका के उद्देश्य की पूर्ति होती है। फलागम कार्यावस्था निश्चय ही नाटिका के अन्तिम भाग मे होती है।

दर्शको की रुचि और औचित्य की दृष्टि से भी यह सर्वथा अस्वाभाविक लगता है कि नाटिका जैसे कोमल नाट्य के आरम्भ मे ही विजय वृत्तान्त की सूचना देने के लिए वाचिक अभिनय की आयोजना कर उन्हे अभिनय के आस्वाद से वचित 'कर दिया जाय।

वृषभानुजा को छोडकर अन्य सभी नाटिकाओ मे इस रुढि का पालन किया गया है।

(३) नाटिकाओ की तीसरी रूढि है नायक का देवी नायिका से डरते हुए प्रेम-व्यापार मे प्रवृत्त होना। इस रूढि का पालन सभी नाटिकाओ मे तत्परता से किया गया है किन्तु वृषभानुजा नाटिका अपवाद है। क्योकि इस नाटिका मे देवी नायिका का सर्वथा अभाव है। तो भी कृष्ण और राधा परस्पर मिलने के लिये स्वच्छन्द नही है। कृष्ण को भय है अपने गोपालक साथियो का और राधा को अपनी मा का। इसलिए दोनो का परस्पर अनुराग वृन्दाटवी के निकुजो मे ही पल्लवित होता है।

अत मथुरादास ने निमित्तान्तर से नायक नायिका मे भय उत्पन्न कर यत्किचिद् रूप मे रूढि का परिपालन किया है।

(४) नाटिकाओ मे कन्या नायिका को देवी नायिका का सम्बन्धी बतलाना भी एक रूढि ही है। किसी मे वह देवी की ममेरी बहन तो किसी मे मौसेरी बहन के रूप मे चित्रित की गई है।

वृषभानुजा मे देवी नायिका के अभाव के कारण इस सम्बन्ध का प्रश्न ही नहीं उटता। कन्या नायिका से देवी के सम्बन्ध की योजना इसलिए भी अपेक्षित समझी गई क्योकि नायक का उस कन्या के साथ विवाह देवी के ही आश्रित होता है। यदि वह देवी की सम्बन्धिनी न होती तो उसका वह राजा से विवाह ही भला क्यो कराती।

पात्र, अक, घटना एव रस आदि के विषय मे नाट्यशास्त्रीय रूढियो का वर्णन नाटिकाओ की विशेषता एव नाट्यशास्त्रीय समीक्षा प्रकरण मे किया जा चुका है।

इन रूढियो का पालन करते हुए नाटिकाकारो ने नाटिका के कलेवर मे जहा अत्यन्त एकरूपता लाने का प्रयत्न किया है, वही अनेक परम्पराओ जो शास्त्रीय एव लौकिक व्यवहार से समाहृत है, का भी पालन किया है। इसमें कुछ प्रमुख परम्पराएँ इस प्रकार हैं

(५) **कन्या नायिका को अन्त पुर में दासी रूप मे रखना** आचार्य भरत और परवर्ती सभी शास्त्रकारो ने कन्या और देवी दो नायिकाओ का उल्लेख किया, किन्तु हर्ष ने सर्वप्रथम मत्री यौगन्धरायण के द्वारा राजा की हितकामना एव कन्या के प्रति उसका अनुराग बढ़ाने के उद्देश्य से सागरिका व आरण्यका को अन्त पुर मे दासी के रूप मे रखने की योजना की। तत्पश्चात् अनेक नाटिकाकारो ने अन्त पुर मे कन्या पहुचाने को एक परम्परा मानकर उसका प्रयोग किया।

विद्धशालभजिका मे अमात्य भागुरायण लाट प्रदेश के राजा चन्द्र वर्मा की पुत्री मृगाकावली को, जिसे राजा के मन्त्रियो ने पुत्र के अभाव मे पुत्रवेश मे ही रखा था और मृगाकवर्मा ऐसा नाम दिया था, को अपने स्वामी विद्याधर मल्ल के लिये उज्जयिनी मे युक्तिपूर्वक मगाकर अन्त पुर मे रखवा देता है।[१]

यहा राजशेखर ने इस परम्परा के निर्वाह के साथ-साथ थोडा और सुधार किया कि चारो ओर दीवार व स्तम्भो पर उसके चित्र, व मूर्तिया खुदवा दी जिससे राजा उसके प्रति सरलतया आकृष्ट हो जाय।[२] फलत राजा सर्वप्रथम स्वप्न मे उसे देखता है और फिर बाद मे चित्र, शालभजिका आदि के रूप मे देखकर बलवदुत्कण्ठित हो जाता है।

इस कार्य को सम्पादित करने मे मन्त्रिगण अपना परम कौशल मानते थे। अतएव भागुरायण कहता हैं "फलित नौ नीतिपादपलतया धिया।"[३]

कर्ण सुन्दरी नाटिका मे भी अमात्य सम्पत्कर विद्याधरेन्द्र पुत्री कर्ण सुन्दरी को राजा के चक्रवर्तित्व की कामना से, अपने सैनिको से मगवा कर अन्त पुर मे रखवा देता है और उसके चित्र अनेक स्थानो पर चित्रित करा देता है।[४] जिससे राजा स्वप्न मे उसे देखकर[५] उसके प्रति आकृष्ट हो जाता है।

यहा स्पष्ट है कि बिल्हण ने राजशेखर की पद्धति का अक्षरश अनुकरण करने का प्रयत्न किया है।

उषारागोदया नाटिका मे यद्यपि दो अको तक नायिका के दर्शन नही होते किन्तु अमात्य उद्धव के इस कथन से कि "जब तक कुमार को बाणपुत्री प्राप्त नहीं हो जाती तब तक उसकी मुक्ति से क्या लाभ"[६] यह स्पष्ट है कि वह उसे प्राप्त कराने के लिये प्रयत्नशील है।

चन्द्रकला नाटिका मे मन्त्री सुबुद्धि पाण्डय राज पुत्री चन्द्रकला को राजा के अन्त पुर मे इसी उद्देश्य से पहुचाता है। क्योकि उसे सिद्धादेश से ज्ञात है

१ विद्ध. १/९
२ **वही, पृष्ठ ५२-५३ (विदूषकोक्ति)**
३ **वही, पृष्ठ ११४**
४ **कर्ण. १/१३-२२**
५ **वही, १/३५**
६ **उषा., १/६**

कि जो भी इस कन्या का हाथ पकडेगा उसे स्वय लक्ष्मी प्रकट होकर वरदान देगी।[१]

दाक्षिणात्य कवि वीर राघव ने मलयजा कल्याण व विश्वनाथ देव ने मृगाकलेखा मे इस परम्परा मे किचित् सुधार किया, वह यह कि राजा मृगया प्रसग मे नायिका को देखकर आसक्त है। मृगाकलेखा का नायक कलिगेश्वर कामरूपेश्वर तनया को देखकर उस पर आसक्त हो जाता है, पश्चात् मन्त्री रत्नचूड राजा की मदनावस्था को देखकर उसकी प्राप्ति का प्रयत्न कर उसे राजा के अन्तपुर मे पहुचाता है।[२]

किन्तु यहा कवि ने जहा पूर्वत औचित्य की रक्षा की है वही मृगाकलेखा को अन्तपुर मे लाने के लिये सिद्धियोगिनी की सहायता लेकर[३] एक अस्वाभाविक कल्पना का सयोजन भी किया है।

पारिजातमजरी मे कन्या प्रकारान्तर से कचुकी के द्वारा[४] और कमलिनी कलहस मे सैनिको के द्वारा पुण्डरीक के अन्दर[५] अन्तपुर मे लाई जाती है। वृषभानुजा मे कृष्ण का देवी नायिका के साथ कोई वृत्त प्रस्तुत न करने के कारण तथा सम्पूर्ण कथावृत्त यमुनातट और वृन्दाटवी मे ही सम्पन्न होने के कारण नायिका को अन्तपुर मे लाने का कोई प्रश्न ही नही उठता। यहा यह भी स्मरणीय है कि राधा और कृष्ण का प्रेम प्रत्यक्ष दर्शन से नही अपितु वृन्दा के द्वारा की गई एक दूसरे की प्रशसा से ही हो जाता है।

इस प्रकार वृषभानुजा नाटिका को छोडकर शेष सभी मे किसी न किसी बहाने कन्या को राजा के अनुराग और आकर्षण के लिये अन्तपुर मे लाया जाता है।

(६) **मधूत्सव या वसन्तोत्सव** चूकि नाटिकाओ का प्रतिपाद्य रस श्रृगार है और श्रृगार की पूर्णता मधुमास और काम के बिना नही हो सकती, अत सभी नाटिकाओ मे वसन्तोत्सव और कामपूजन का आयोजन किया गया है। विशिष्ट रूढियो और परम्पराओ से सर्वथा भिन्न वृषभानुजा मे भी वसन्तोत्सव का वर्णन है। वसन्त का वर्णन अत्यन्त उद्दीपक रूप मे चित्रित किया गया है जिससे नायक नायिका की विरह व्यथाओ के चित्रण मे कवियो को अपनी काव्यशक्ति और अभिनव कल्पनाओ को प्रस्तुत करने का अवसर पर्याप्त रूप मे मिला है।

(७) नायिका का एकबार ही दर्शन करने से नायक का कामासक्त होना, यह भी नाटिका की एक परम्परा है। हर्ष ने नायिका को उद्यान मे एक बार दिखलाकर वत्सराज उदयन के चित्त मे कामभावना को जाग्रत करने की जो

---

१ **चन्द्र., १/६**
२ **मृगा., पृष्ठ ६**
३ **मृगा., पृष्ठ ७**
४ **पारि., पृष्ठ ४**
५ **कम., पृष्ठ ६**

पद्धति डाली, परवर्ती नाटिकाओ मे वह परम्परा के रूप मे अपना ली गई। यद्यपि हर्ष से भी पूर्व के कवि कालिदासादिक के काव्यो मे भी यह परम्परा है किन्तु नाटिका मे प्रथम बार श्री हर्ष कृत प्रयोग ही प्राप्त होता है। अत श्री हर्ष से ही यहा आरम्भ माना गया।

राजशेखर और बिल्हण ने इस परम्परा मे और अधिक चमत्कार पैदा करने के उद्देश्य से नायिका को प्रत्यक्ष न दिखा कर स्वप्न मे दिखाया और उसी से नायकों के हृदय मे उनके प्रति अनुराग का बीज बो दिया। वृषभानुजा मे परस्पर एक दूसरे के सम्बन्ध मे श्रवण करके ही अनुराग उत्पन्न हो जाता है।

अन्य सभी नाटिकाओ मे अन्तपुर या उद्यान मे ही नायिका को प्रत्यक्ष देखकर अनुराग का उदय किया गया है किन्तु मलयजा कल्याणम् और मृगाकलेखा नाटिकाओं मे नायक नायिका को अन्तपुरादि मे न देखकर मृगया मे देखता है और वही से अनुरक्त हो जाता है।

(८) **कामपीडा मे शीतल वस्तुओं से द्वेष** सस्कृत नाटक एव नाटिकाओ मे कामजन्य पीडा का भूयसा वर्णन है। नायक और नायिका दोनो ही एक दूसरे के प्रति आसक्त होकर विरहाग्नि मे जलते है। इस अवस्था मे उन्हे चन्द्रकिरणे सन्तापदायक, चन्दनलेप, कमल, तालपत्र आदि पीडादायक प्रतीत होते है। यह दशा सम्पूर्ण साहित्य मे विद्यमान होने के कारण परम्परावादी है।[१]

नाटिकाओ मे इस परम्परा से जहा विविध सात्विक भावो के अभिनय का अवसर मिलता है वही कवि अपनी कल्पना को अधिक विकसित करने का भी सुअवसर प्राप्त करता है।

(९) **मदनलेख** कालिदास आदि प्राचीन कवियो से परम्परा के रूप में नाटिकाकारो ने मदनलेख की योजना की। प्रायश सभी नाटिकाओ मे नायिकाएँ अपने प्रियतम (राजा) के लिये पत्र लिखकर अपनी दशा का चित्रण करती है।

कर्ण सुन्दरी नाटिका मे तो सात दीर्घ छन्दो मे कामलेख किया गया है, जो कदाचित् अरुचिकर होने से सहृदय हृदयानुरजक नही कहा जा सकता। यहा कवि परम्परा के निर्वाह मे औचित्य का उल्लघन कर बैठा और यह भूल गया कि यह दृश्य काव्य है या श्रव्य काव्य।

वृषभानुजा नाटिका मे राधा भूर्जपत्र पर कामलेख लिखती है।[२]

रत्नावली नाटिका मे कवि ने इस परम्परा के निर्वाह के लिये सर्वथा नूतन कल्पना की है वह यह कि सारिका ही रत्नावली की सम्पूर्ण पीडा, जो कि उसने अपनी सखी के समक्ष कही थी, का कथन राजा के समक्ष कर देती है। इस

१ तव कुसुमशरत्व शीतरश्मित्वमिन्दोः
द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु
विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखै,
त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि। अभि. शा. प्रथम अक

२ वृष ४/९

प्रकार कामलेख के मूल उद्देश्य नायक को नायिका की विरहस्थिति की सूचना देना, पूर्ण हो जाता है।

(१०) **चित्रलेखन** प्राचीन नाटक साहित्य से नाटिकाकारो ने चित्रलेखन परम्परा को भी विरासत रूप मे लिया। किसी नाटिका मे नायक और किसी मे नायिका अपने प्रिय का चित्र लिखकर मनबहलाने का उपाय करती है। यह परम्परा भी हर्ष से लेकर परवर्ती सभी नाटिकाओ मे विद्यमान है। बाद मे वह चित्र प्राय देवी के द्वारा देख लिया जाता है जिससे देवी के मन मे राजा और नायिका के प्रति ईर्ष्या भाव जागृत हो जाता है।

(११) **यज्ञोपवीत की शपथ लेना** रत्नावली नाटिका मे विदूषक की एक क्रिया यज्ञोपवीत की शपथ लेना, परवर्ती नाटिकाओ मे परम्परा के रूप मे अपना ली गई विदूषक अपने कार्य की सत्यता या रहस्य को गुप्त रखने के लिये ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) की शपथ लेता है। इससे उसका ब्राह्मणत्व भी प्रकट हो जाता है।

(१२) **कुमारिकाओ के द्वारा नूपुर धारण** नाटिकाओ का समाज अलकारप्रिय चित्रित किया गया है, अविवाहित स्त्रिया भी अनेक आभूषण धारण करती थी।[१] इनमे एक नूपुर भी है। नूपुर पेर का आभूषण है आज इस अलकार को 'बिछिया' शब्द से उत्तर भारत मे अभिहित किया जाता है। यद्यपि आजकल कुमारिकाएँ नूपुर धारण नही करती क्योकि सौभाग्यवती स्त्री का नूपुर धारण करना उनका सौभाग्य प्रतीक माना जाता है विधवा हो जाने पर स्त्रिया माग के सिन्दूर के साथ ही उसका परित्याग कर देती है। प्राचीन काल मे कुमारिकाएँ भी नूपुर धारण करती थी ऐसी परम्परा का ज्ञान होता है क्योकि अनेकानेक नाटिकाओ मे नायक के चित्त को आकर्षित करने का एक साधन नूपुर भी माना गया है।

स्थानभेद से आभूषणो के नाम भी बदल जाते है, इस दृष्टिकोण से यदि कोई अन्य पैर का आभूषण नूपुर कहलाता है तो वह सौभाग्यवती स्त्री के विषय मे लागू नही होगा। फिर भी नूपुर धारण करने की परम्परा और आभूषण प्रियता का ज्ञान तो होता ही है।

सस्कृत नाटिकाओ मे इसी प्रकार पात्रो के परस्पर भाषण, कार्य एव व्यवहार मे अनेकानेक परम्पराएँ है जिनका पालन करने के लिये कवियो ने यत्र तत्र औचित्य की उपेक्षा भी की। श्रृगार के प्रति पक्षपाती होने की परम्परा के निर्वाह मे कवियो ने राजा के राजात्व का सर्वथा लोप कर दिया यही कारण है कि नाटिकाओ को मात्र प्रणयगाथा के रूप मे मान्यता दी गई और उनका स्थान साहित्य मे गिर गया। वाराणसेय सस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी के साहित्य प्राध्यापक स्व० प द्विजेन्द्र नाथ मिश्र महोदय ने एक लेख मे लिखा"आदर्श

---

१ दे. रत्ना १/१६, प्रि ३/४, उषा २/१४

रहितम्, अतिक्रान्तमर्यादम्, अत्यन्तमस्पृहणीयच किमपि कथावस्तु दर्शकाय पाठकाय वा दित्सव एता सर्वा सस्कृत नाटिका कयापि दृष्ट्या केनापि प्रकारेण समादरणीया नैव प्रतिभान्ति। कथ तत्काव्य स्तुमो वय यत्काव्य गर्ते पतनायोपदिशति।"[१]

किन्तु निश्चय ही यह पक्षपातपूर्ण कथन है, नाटिकाएँ एक निश्चित रूढि और परम्परा पर लिखी गई अवश्य किन्तु उनसे तत्कालीन सामन्तवादी युग की विलासिता के प्रति लोगो को सावधान करने एव उनकी त्रुटियो को नाट्य के माध्यम से प्रस्तुत करने के लिये नाटिकाओ का उपयोग उचित ही है। यही तो कान्तासम्मित उपदेश है।

नाटिकाकारो ने अनेकानेक अन्य परम्पराओ जैसे सन्ध्या, चन्द्रोदय, मध्याह्न, उद्यान, विवाहोत्सव, मलय पवन, वन और प्रासाद आदि जो वस्तुत काव्य के विषय है का भी विस्तृत वर्णन किया है। यद्यपि किसी किसी नाटिका मे ये गुण रूप मे है किन्तु कुछ मे इनका प्रयोग दोषाधायक हो गया है जहा कवि ने दीर्घकाल तक इनमे अपनी काव्य प्रतिभा का प्रयोग किया है।

फिर भी परम्परा प्रथित वर्णनो मे नाटिकाकारो ने विशेष अभिरुचि प्रदर्शित की है।

---

१ सरस्वती सुषमा पत्रिका, पृष्ठ १३५-१४०

चतुर्थ अध्याय

कथावस्तु और उसके स्रोत

(अ) कथावस्तु और उसके स्रोत

(ब) भाषा एव भाव

(स) रसविन्यास

(द) अलकार सौष्ठव एव छन्दोविधान

(य) प्रकृति पर्यवेक्षण

सस्कृत नाटिका साहित्य का बहुत अधिक अश आज लुप्त है, यत्र तत्र ग्रन्थो मे किए गए उल्लेखो से इस लुप्त अश का परिज्ञान होता है। उपलब्ध नाटिकाओ मे भी कुछ अपूर्ण एव अस्पष्ट है फिर भी यहाँ उपलब्ध अनुपलब्ध नाटिकाओ का विवरण प्रस्तुत करना नितान्त आवश्यक है। विविध साहित्यिक एव ऐतिहासिक ग्रन्थो के पर्यालोचन से जिन उपलब्ध अनुपलब्ध नाटिकाओ का ज्ञान प्राप्त होता है वे ईसवी क्रम से निम्नलिखित है—

७वी शती—

ख्यातिप्राप्त हिन्दू राजा हर्षदेव (हर्षबर्द्धन) ने 'रत्नावली' एव 'प्रियदर्शिका' (दो) नाटिकाओ की रचना की। ये दोनो नाटिकाएँ ही आदि है। इनसे पूर्व की नाटिकाएँ न तो उपलब्ध ही है और न ही कही उनका उल्लेख है, किन्तु भरतकृत नाट्यशास्त्र मे 'नाटी' सज्ञा से जिस सकीर्ण रूपक (नाटिका) का विवरण मिलता है उससे यह स्वत सिद्ध है कि उस समय नाटिकाएँ अवश्य प्रचलित थी जिनके आधार पर ही 'नाटी' का लक्षण दिया गया। क्योकि ये सकीर्ण रूपक नाटिकाएँ है।

११वी शती के नाट्याचार्य सागरनन्दिन ने अपने ग्रन्थ नाटक लक्षण रत्नकोष मे नाटिका की विशेषताओ का उल्लेख करते हुए 'ग्रामेयी' और 'रत्नावली' को उदाहृत किया है।[1] यह ग्रामेयी नाटिका कब, किसके द्वारा कहाँ लिखी गई

१ ना ल र, २६१।

इसका कोई उल्लेख नही किया। सागरनन्दिन के अतिरिक्त अन्यत्र कही भी सस्कृत साहित्य मे इसका उल्लेख नही है।

१०वी शती

इस शती के प्रसिद्ध साहित्यिक ग्रन्थ 'काव्य मीमासा' के रचयिता राजशेखर ने 'विद्धशालभजिका' नामक नाटिका की रचना की थी। यह नाटिका हर्षकृत रत्नावली की घटनाओ और शैली के अनुकरण पर लिखी गई।

११वी शती

प्रसिद्ध साहित्य प्रणेता बिल्हण ने ऐतिहासिक कथानायको पर आधारित कर्णसुन्दरी नामक नाटिका की रचना की थी।

इसी शती के अतिविख्यात साहित्यशास्त्री क्षेमेन्द्र ने जो कि औचित्य सम्प्रदाय के जनक माने जाते है, ने 'ललित रत्नमाला' नाटिका की रचना की थी। प्रो एसएन दासगुप्ता ने 'ए हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर' नामक अपने ग्रन्थ मे इसका उल्लेख किया है।[१] दुर्भाग्यवश यह ग्रन्थ आज तक उपलब्ध नही हो सका।

१२वी शती

नाट्यदर्पण नामक ग्रन्थ के रचयिता श्री रामचन्द्र ने नलदमयन्ती के **चरित्र** पर आधारित 'वनमाला' नामक नाटिका की रचना की थी, यह उनके नाट्यदर्पण से ज्ञात होता है।[२] किन्तु यह नाटिका सम्प्रति उपलब्ध न होने के कारण इसका विस्तृत परिचय नही दिया जा सकता।

नाट्यदर्पणकार ने अपने ग्रन्थ मे तीन अन्य नाटिकाओ का विवरण भी दिया है जिनमे भट्टभवनुत चूडामणि कृत 'कोशलिका'[३] नाटिका, अज्ञात लेखक कृत 'इन्दुलेखा'[४] एव 'अननगवती'[५] नाटिकाएँ है जिनके सम्बन्ध मे किसी प्रकार का विवरण नही दिया जा सकता क्योकि ये नाटिकाएं आज उपलब्ध नही है।

इसी शती मे वारगल के राजा रुद्रचन्द्रदेव ने 'उषारागोदया' नामक नाटिका की रचना की। कुछ विद्वानो ने इस नाटिका का नाम 'उषर्गेदिय' ऐसा लिखकर इसके रचयिता का नाम रुद्रदेव दिया है।[६] श्री गैरोला ने इनका काल १३वी शती माना। इसका निराकरण कवि परिचय प्रकरण मे किया जायेगा।[७]

१ ए हिस्ट्री आव सस्कृत लिटरेचर, पृष्ठ ४७१।
२ ना द पृष्ठ ३१९।
३ वही , पृष्ठ ३०।
४ वही, पृष्ठ १९४।
५ वही, पृष्ठ २८०।
६ स सा सक्षि इति., पृष्ठ ६२६।
७ वही, पृष्ठ ६२६।

१२वी शती की दो अन्य नाटिकाओ 'वासन्तिका' और 'श्रृगारवापिका' की सूचना दासगुप्ता[१] एव श्री एम कृष्णमाचारी[२] महोदय के उल्लेखो से मिलती है। श्रृगारवापिका का दूसरा नाम 'श्रृगार वाटिका' भी है तथा इसके लेखक श्री विश्वनाथ भट्ट निर्दिष्ट किए गये है।

१३वी शती—परमार वशीय राजा अर्जुन वर्मा के गुरु मदनबाल सरस्वती ने इस शती के आरम्भ मे 'पारिजात मजरी (विजयश्री)' नाटिका लिखी जिसके दो अक आज भी मध्यप्रदेश के धार नामक स्थान मे शिलालिखित विद्यमान हैं। प बलदेव उपाध्याय ने लेखक का नाम मदनबाल सरस्वती के स्थान पर मदनपाल सरस्वती लिखा है।[३]

'सुभद्रा' नाटिका की रचना कर्नाटक, प्रदेशीय पाण्ड्यराज के आश्रित कवि हस्तिमल्ल ने की थी जिसका कथानक पौराणिक है।[४]

१४वी शती—श्री कृष्णमाचारी महोदय ने इस शती की दो नाटिकाओ धर्मगुप्त (१३१० ई) कृत 'रोमाक नाटिका' और नारायण पण्डित कृत 'चन्द्रकला' का परिचय दिया है।[५]

साहित्यदर्पण रचयिता विश्वनाथ कविराज ने अपने ग्रन्थ मे अपने पिता चन्द्रशेखर की 'पुष्पमाला'[६] एव अज्ञात कवि की गृहवृक्षवाटिका[७] नामक नाटिका के उदाहरण दिए है।

स्वय विश्नाथ कविराज ने इसी शती के उत्तरार्द्ध मे 'चन्द्रकला' एव 'प्रभावती' नामक नाटिकाओ की रचना की थी। किन्तु प्रभावती के आज केवल उदाहरण रुप मे दिये गये कुछ पद्य ही उपलब्ध है।[८]

१५वी शती—'वृषभानुजा'—सुवर्ण शेखर के कायस्थ कुलोत्पन्न मथुरादास ने इस नाटिका की रचना की है। यद्यपि इनका समय अज्ञात है फिर भी कुछ आचार्यो ने इनका समय १५वी शती निश्चित किया है।

'कनकलेखाकल्याण'—डा. कपिलदेव द्विवेदी ने बामनभट्ट बाण की इस नाटिका का काल १५वी शती का पूर्वार्द्ध निर्धारित किया है।[९] यह नाटिका अनुपब्ध है।

१ हि स लिट., पृष्ठ ४७३।
२ हि. क्लासि. स लिट., पृष्ठ ७४८।
३ स. सा. इति., पृष्ठ ६२६।
४ उषा (भूमिका) , पृष्ठ १।
५ हि. क्लासि. लिट., पृष्ठ ७४८।
६ सा. द. पृष्ठ १७३।
७ वही, पृष्ठ २०९।
८ सा द. पृ. २०९
९ स सा समी., इति० पृष्ठ ४४५।

१७वी शती—'कमलिनी कलहस'—राजचूड़ामणि दीक्षित जो महान् साहित्यकार थे, ने इसकी रचना १७वी शती के पूर्वार्द्ध मे की थी। इस शती के अन्त मे मेघ विजय नामक कवि ने 'चन्द्रप्रभा' नामक नाटिका की रचना की,[१] जो गुजरात पुस्तकालय अहमदाबाद मे विद्यमान है।

१८वी शती—'मलयजा कल्याणम्'—इसके रचयिता दाक्षिणात्य कवि वीरराघव है। इनका काल १८वी शती का उत्तरार्द्ध है।

'मृगांक लेखा'—विश्वनाथ शर्मा जो मूलत दक्षिण भारतीय थे किन्तु वाराणसी मे बस गये थे, ने इस नाटिका की रचना की थी।

'नवमालिका'—इस शती के उत्तरार्द्ध मे उत्तर भारत के प्रख्यात पण्डित विश्वेश्वर पाण्डेय ने इस नाटिका की रचना की थी।

१९वी शती—'ललित नाटिका'—डा. हीरालाल ने पडित अम्बिकादत्त व्यास कृत 'ललित नाटिका' का उल्लेख किया है। सम्प्रति यह अनुपलब्ध है।[२]

'चन्द्रप्रभा'—१९वी शती के पूर्वार्द्ध मे या उससे भी पूर्व गोपालकृष्ण नामक कवि ने इस नाटिका की रचना की थी। यह नाटिका आज भी हस्तलिखित ही है और सरस्वती भवन पुस्तकालय वाराणसी मे सुरक्षित है।[३]

२०वी शती—'मुक्तावली'—इस नाटिका की रचना सोठी भद्रादिराम शास्त्री नामक कवि ने २०वी शती मे की ऐसा उल्लेख डा हीरालाल ने किया है।[४]

श्री एम एम कृष्णमाचारी महोदय ने कुछ प्राचीन पुस्तको मे उल्लिखित नाटिकाओ का विवरण भी दिया है जो इस प्रकार है[५]—

१ **इन्दुमती**—लेखक अज्ञात, श्रृगारप्रकाश मे उल्लिखित।

२ **चित्रलेखा**—इसका भी लेखक अज्ञात एव श्रृगारप्रकाश मे उल्लेख है।

३. **पद्मावती**—इसका रचयिता अज्ञात है किन्तु इसका उल्लेख रसार्णवसुधाकर ग्रन्थ मे हुआ है।

४. **कुवलयवती**—इस नाटिका की रचना कृष्णकविशेखर ने की थी।

इन ४ नाटिकाओ के काल, विषय आदि के सम्बन्ध मे कोई भी उल्लेख प्राप्त न होने के कारण किसी भी प्रकार का विवरण नही दिया जा सकता।

इस प्रकार सम्पूर्ण उपलब्ध अनुपलब्ध नाटिकाओ की सख्या 35 है। सभवत और भी नाटिकाएँ होगी किन्तु वे प्रकाश मे नही आ सकी है।

कथावस्तु उपलब्ध नाटिकाओ के अध्ययन से स्पष्ट है कि विभिन्न नाटिकाओ की कथावस्तु प्राय एक जैसी घटनाओ से ओतप्रोत है फिर भी उनमे

१ (दासगुप्ता) हि. स लिट., पृष्ठ ३७५, ७०३।
२ आधु स सा., पृष्ठ १२३।
३ सरस्वती म पुस्त हस्तलि ग्रन्थ स ४२९१५।
४ आधु स सा., पृष्ठ १२३।
५ हि. क्लासि. स लिट., पृष्ठ ७४८।

कुछ मौलिक अन्तर है। सक्षिप्तत यहॉ इन उपलब्ध नाटिकाओ का इतिवृत्त प्रस्तुत किया जा रहा है।

रत्नावली—वत्सदेश के राजा उदयन का मत्री यौगन्धरायण सिहलाधिपति विक्रमबाहु की पुत्री रत्नावली को अपने स्वामी के लिए इस हेतु मागता है कि वह चक्रवर्ती सम्राट बन सके क्योकि उसे ज्ञात है कि रत्नावली का विवाह जिसके साथ होगा वह चक्रवर्ती सम्राट् होगा। उदयन की पत्नी वासवदत्ता के रहते हुए सिहलेश्वर ने रत्नावली को देने से जब मना कर दिया तो यौगन्धरायण ने वासवदत्ता के लावाणक मे जलकर मर जाने का मिथ्या प्रवाद फैला दिया। इस सूचना से सिहलेश्वर मत्री के द्वारा पुन याचना करने पर रत्नावली को उदयन के लिए जलयान से भेज देता है। मार्ग मे जलयान के भग्न हो जाने पर किसी प्रकार रत्नावली किनारे जा लगी। एक व्यापारी ने उसे मत्री यौगन्धरायण के पास पहुँचा दिया। यौगन्धरायण ने उसके गले की रत्नमाला से रत्नावली ही है यह पहचान कर सागरिका नाम से उसे वासवदत्ता की परिचारिका के रूप मे उदयन के अन्तपुर मे रख दिया। कौशाम्बी मे वसन्तोत्सव के आयोजन पर सागरिका उदयन को साक्षात् कामदेव समझ उसकी पूजा करती है। किन्तु वैतालिको की स्तुति से यही राजा उदयन है जिसके लिए वह भेजी गयी, यह जानकर राजा के प्रति कामासक्त हो जाती है। वह कदलीगृह मे उसका एक चित्र बनाती है, उसकी सखी सुसगता उसी चित्र मे सागरिका का भी चित्र अकित कर देती है। सुसगता के आग्रह पर उसने राजा के प्रति अपने प्रेम का कथन कर दिया जिसे सारिका सुन लेती है। इसी बीच अश्वशाला से बन्धन भ्रष्ट बानर के आने से अन्तपुर मे कोलाहल हो जाता है, घबडाहट से दोनो वहॉ से भाग जाती है। बानर सारिका के पिजरे की खिडकी खोल देता है, वह उडकर अकाल कुसुमित नवमालिका को देखने आये राजा के समक्ष सागरिका की प्रेमासक्ति का कथन कर देती है। उत्सुकतावश राजा कदलीगृह जाता है जहॉ उसे चित्रफलक मिलता है। दैवात् सभी सागरिका सुसगता के साथ वहॉ चित्र लेने आती है। इस प्रकार राजा से सागरिका का प्रथम मिलन होता है। नवमालिका दर्शनार्थ वासवदत्ता भी वहॉ आती है। विदूषक हाथ ऊपर उठाकर नृत्य करने लगता है जिससे कक्षा मे छिपाया गया चित्र भूमि पर गिर पडता है और वासवदता उस चित्र को देखकर क्रुद्ध हो जाती है।

सागरिका के प्रति विरहाकुल राजा को सागरिका से मिलाने के लिए विदूषक एक योजना बनाता है जिसके अनुसार माधवी-मण्डप मे सागरिका को वासवदत्ता के वेष मे उपस्थित होना था किन्तु वासवदत्ता को इस रहस्य का किसी प्रकार पता लग जाता है और वह स्वय वहॉ सागरिका से पूर्व पहुँच जाती है, राजा उसे सागरिका समझकर उसके रूप लावण्य की प्रशसा करता है जिससे वासवदत्ता राजा के सागरिका विषयक प्रेम को समझकर अपने आपको प्रकट कर देती है और राजा के मनाने पर भी क्रुद्ध हो वहॉ से चली जाती है। सागरिका इस

रहस्योद्घाटन से अपने अपमान की आशका मे लतापाश से आत्महत्या का प्रयत्न करती है। राजा उसकी रक्षा करता है और वहाँ उससे प्रेमालाप करता है, इसी बीच वासवदत्ता पुन आती है और उनके इस व्यापार से दु खी होकर सागरिका और विदूषक को बन्दी बनाती है।

सेनापति रुमण्वान राजा को विजय की सूचना देता है। ऐन्द्रजालिक वेषधारी यौगन्धरायण राजा की अनुमति पाकर खेल दिखा रहा है तभी सिहल राजा का मत्री वसुभूति कचुकी के साथ आकर रत्नावली के समुद्र मे डूब जाने की सूचना देता है। अनन्तर अन्त पुर मे आग लगने की सूचना पाकर वासवदता कारागार मे सागरिका की रक्षा करने की प्रार्थना करती है। राजा उसे बचा लाता है वसुभूति उसे पहचान लेता है, यौगन्धारायण अपनी सम्पूर्ण योजना का कथन करता है। अन्त मे वासवदता अपने मामा की पुत्री उस रत्नावली (सागरिका) का हाथ राजा को पकडा कर सुख समृद्धि की प्रार्थना करती है।

रत्नावली का प्रेरणा स्रोत

प्राचीन सस्कृत साहित्य के पृष्ठ पलटने पर गुणाढ्य की बृहत्कथा एव तदाश्रित कथासरित्सागर ऐसे ग्रन्थ मिलते है जिनमे शताधिक लोक-कथाओ का सकलन है। समय-समय पर वत्स देशाधिप उदयन का चरित्र विद्वानो की लेखनी से अवतरित हुआ है, बौद्ध-साहित्य और पतजलि तथा कौटिल्य के ग्रन्थो मे उदयन की कथा के सकेत मिलते है।

आदि नाटककार भास ने स्वप्नवासवदत्तम् और प्रतिज्ञायौगन्धरायण नाटको की कथावस्तु उदयन के चरित्र से ही चुनी। शूद्रक,[१] कालिदास[२] आदि प्रसिद्धि प्राप्त कवियो ने उदयन की लोकप्रियता की मुक्त कण्ठ से प्रशसा की है।

उदयन की कथा का सविस्तार वर्णन सोमदेव कृत कथा सरित्सागर मे किया गया है।[३] रत्नावली और प्रियदर्शिका नाटिकाओ की रचना करते समय कवि ने कथासरित्सागर को दर्पण रूप मे सामने रखा, यह नि·सदेह है, क्योकि इन नाटिकाओ का इतिवृत्त किचित् नाटकीय परिवर्तन के साथ कथासरित्सागर की अनुकृति है।

कथासरित्सागर व रत्नावली दोनो मे उदयन की राजधानी कौशम्बी तथा मत्री यौगन्धरायण, मित्र वसन्तक, सेनापति रुमण्वान एव प्रद्योत पुत्री वासवदत्ता राजमहिषी के रूप मे वर्णित है। कथासरित् सागर की बन्धुमती का नाम रत्नावली मे सागरिका कर दिया गया है।

घटनाएँ भी दोनो की अत्यन्त समान है। यौगन्धरायण लावाणक मे वासवदत्ता के जल जाने का मिथ्या प्रचार करता है। उद्यान लतागृह मे बन्धुमती (सागरिका)

---

१ मृच्छ ४/२६.
२ मेघ. पूर्वमेघ ३०।
३ कथा स सा., लम्बक २-८।

से राजा का गुप्तमिलन एव प्रेम व्यापार, बन्धुमती (सागरिका) के असली नाम को छिपा कर दूसरा नाम दिया गया है, वासवदत्ता का राजा और सागरिका (बन्धुमती) के गुप्त प्रेम को जानकर कुपित होना, बन्धुमती (सागरिका) और वसन्तक को बन्धन मे डालना तथा अन्त मे प्रसन्न होकर दोनो का विवाह सम्पन्न कराना आदि घटनाएँ भी समान है।

सिद्धान्तत कोई भी कवि इतिवृत्त मात्र की रचना कर काव्य सौष्ठव और उद्देश्यो की पूर्ति नही कर सकता।[1] उसे अपनी कल्पना के द्वारा काव्यानुकूल भावो का सम्मिश्रण अथवा नाटकीय घटनाओ का सयोजन करना पडता है। हर्ष ने भी बृहत्कथा अथवा कथासरित् सागर, जो लोक-कथाओ का विशाल सग्रह है से उदयन की मूलकथा का चयन तो किया पर नाट्यशास्त्रिय नियमो की रक्षा एव साहित्यिक सौन्दर्य की वृद्धि के लिए आवश्यकतानुसार घटनाओ, पात्रों और उनके स्वभाव एव व्यापारो की नवीन कल्पनाएँ की। उदाहरणार्थ—

(क) रत्नावली मे मानभग की घटना कवि की सर्वथा मौलिक उद्भावना है, यह घटना सागरिका को छद्म रूप से अन्तपुर मे रखने एव राजकुमारी को दासीरूप देने के औचित्य की रक्षा मे सहायक सिद्ध हुई है।

(ख) वसन्तोत्सव मे कामपूजन की कल्पना से सागरिका और उदयन मे परस्पर अनुराग का बीजारोपण हुआ।

(ग) सागरिका का वेष बदलकर नायक से मिलने का प्रयत्न रानी के क्रोध को उद्दीप्त करने तथा सागरिका को बन्दी बनाने मे स्वाभाविकता लाता है।

(ड) यौगन्धरायण का इन्द्रजाल खेल सागरिका को रत्नावली के रुप मे प्रतिष्ठित कर रानी के द्वारा नायक नायिका के विवाह की शास्त्रीय रूढि को पूर्ण करता है।

प्रिय दर्शिका—'कथावस्तु'—दृढ वर्मा का कचुकी विनय वसु कलिग नरेश से राजा का परिचय कराता है , कलिंग नरेश उसकी कन्या का पणिग्रहण अपने साथ करने के लिए प्रार्थना करता है, किन्तु दृढ वर्मा ने अपनी कन्या का विवाह वत्सराज से करने का पूर्वत ही सकल्प किया था। कलिगराज ने इससे क्रुद्ध होकर वत्सराज जब प्रद्योत के यहॉ बन्दी था उस समय दृढ वर्मा पर आक्रमण कर दिया। दृढ वर्मा बन्दी हो गया किन्तु उसका कचुकी किसी प्रकार उसकी कन्या प्रियदर्शिका को बचाकर निकाल ले गया और विन्ध्यकेतु के यहॉ शरण ली। दृढ वर्मा का मित्र होते हुए भी विन्ध्यकेतु वत्स से शत्रुता रखता था, अत उसने उसे आघात पहुँचाने की चेष्टा की। वत्स के सेनापति विजयसेन ने विन्ध्यकेतु पर आक्रमण किया और उसे मार डाला। उसके घर मे उसे वही प्रियदर्शिका

१ नहि कवेरितिवृत्त मात्र निर्वहणेन किंचित् प्रयोजनम् इतिहासदेव तत्सिद्धे
—ध्वन्यालोक—उद्योत—३, पृष्ठ ३१२

रहस्योद्घाटन से अपने अपमान की आशका मे लतापाश से आत्महत्या का प्रयत्न करती है। राजा उसकी रक्षा करता है और वहाँ उससे प्रेमालाप करता है, इसी बीच वासवदत्ता पुन आती है और उनके इस व्यापार से दुखी होकर सागरिका और विदूषक को बन्दी बनाती है।

सेनापति रुमण्वान राजा को विजय की सूचना देता है। ऐन्द्रजालिक वेषधारी यौगन्धरायण राजा की अनुमति पाकर खेल दिखा रहा है तभी सिहल राजा का मत्री वसुभूति कचुकी के साथ आकर रत्नावली के समुद्र मे डूब जाने की सूचना देता है। अनन्तर अन्तपुर मे आग लगने की सूचना पाकर वासवदता कारागार मे सागरिका की रक्षा करने की प्रार्थना करती है। राजा उसे बचा लाता है वसुभूति उसे पहचान लेता है, यौगन्धारायण अपनी सम्पूर्ण योजना का कथन करता है। अन्त मे वासवदता अपने मामा की पुत्री उस रत्नावली (सागरिका) का हाथ राजा को पकडा कर सुख समृद्धि की प्रार्थना करती है।

रत्नावली का प्रेरणा स्रोत

प्राचीन सस्कृत साहित्य के पृष्ठ पलटने पर गुणाढ्य की बृहत्कथा एव तदाश्रित कथासरित्सागर ऐसे ग्रन्थ मिलते है जिनमे शताधिक लोक-कथाओ का सकलन है। समय-समय पर वत्स देशाधिप उदयन का चरित्र विद्वानो की लेखनी से अवतरित हुआ है, बौद्ध-साहित्य और पतजलि तथा कौटिल्य के ग्रन्थो मे उदयन की कथा के सकेत मिलते है।

आदि नाटककार भास ने स्वप्नवासवदत्तम् और प्रतिज्ञायौगन्धरायण नाटको की कथावस्तु उदयन के चरित्र से ही चुनी। शूद्रक,[१] कालिदास[२] आदि प्रसिद्धि प्राप्त कवियो ने उदयन की लोकप्रियता की मुक्त कण्ठ से प्रशसा की है।

उदयन की कथा का सविस्तार वर्णन सोमदेव कृत कथा सरित्सागर मे किया गया है।[३] रत्नावली और प्रियदर्शिका नाटिकाओ की रचना करते समय कवि ने कथासरित्सागर को दर्पण रूप मे सामने रखा, यह निसदेह है, क्योकि इन नाटिकाओ का इतिवृत्त किचित् नाटकीय परिवर्तन के साथ कथासरित्सागर की अनुकृति है।

कथासरित्सागर व रत्नावली दोनो मे उदयन की राजधानी कौशम्बी तथा मत्री यौगन्धरायण, मित्र वसन्तक, सेनापति रुमण्वान एव प्रद्योत पुत्री वासवदत्ता राजमहिषी के रूप मे वर्णित है। कथासरित् सागर की बन्धुमती का नाम रत्नावली मे सार्गरिका कर दिया गया है।

घटनाएँ भी दोनो की अत्यन्त समान है। यौगन्धरायण लावाणक मे वासवदत्ता के जल जाने का मिथ्या प्रचार करता है। उद्यान लतागृह मे बन्धुमती (सागरिका)

१ मृच्छ ४/२६.
२ मेघ. पूर्वमेघ ३०।
३ कथा स. सा., लम्बक २-८।

से राजा का गुप्तमिलन एव प्रेम व्यापार, बन्धुमती (सागरिका) के असली नाम को छिपा कर दूसरा नाम दिया गया है, वासवदत्ता का राजा और सागरिका (बन्धुमती) के गुप्त प्रेम को जानकर कुपित होना, बन्धुमती (सागरिका) और वसन्तक को बन्धन मे डालना तथा अन्त मे प्रसन्न होकर दोनो का विवाह सम्पन्न कराना आदि घटनाएँ भी समान है।

सिद्धान्तत कोई भी कवि इतिवृत्त मात्र की रचना कर काव्य सौष्ठव और उद्देश्यो की पूर्ति नही कर सकता।[१] उसे अपनी कल्पना के द्वारा काव्यानुकूल भावो का सम्मिश्रण अथवा नाटकीय घटनाओ का सयोजन करना पडता है। हर्ष ने भी बृहत्कथा अथवा कथासरित् सागर, जो लोक-कथाओ का विशाल सग्रह है से उदयन की मूलकथा का चयन तो किया पर नाट्यशास्त्रिय नियमो की रक्षा एव साहित्यिक सौन्दर्य की वृद्धि के लिए आवश्यकतानुसार घटनाओ, पात्रो और उनके स्वभाव एव व्यापारो की नवीन कल्पनाएँ की। उदाहरणार्थ—

(क) रत्नावली मे मानभग की घटना कवि की सर्वथा मौलिक उद्भावना है, यह घटना सागरिका को छद्म रूप से अन्तपुर मे रखने एव राजकुमारी को दासीरूप देने के औचित्य की रक्षा मे सहायक सिद्ध हुई है।

(ख) वसन्तोत्सव मे कामपूजन की कल्पना से सागरिका और उदयन मे परस्पर अनुराग का बीजारोपण हुआ।

(ग) सागरिका का वेष बदलकर नायक से मिलने का प्रयत्न रानी के क्रोध को उद्दीप्त करने तथा सागरिका को बन्दी बनाने मे स्वाभाविकता लाता है।

(ड) यौगन्धरायण का इन्द्रजाल खेल सागरिका को रत्नावली के रुप मे प्रतिष्ठित कर रानी के द्वारा नायक नायिका के विवाह की शास्त्रीय रूढि को पूर्ण करता है।

प्रिय दर्शिका—'कथावस्तु'—दृढ वर्मा का कचुकी विनय वसु कलिग नरेश से राजा का परिचय कराता है , कलिंग नरेश उसकी कन्या का पणिग्रहण अपने साथ करने के लिए प्रार्थना करता है, किन्तु दृढ़ वर्मा ने अपनी कन्या का विवाह वत्सराज से करने का पूर्वत. ही सकल्प किया था। कलिगराज ने इससे क्रुद्ध होकर वत्सराज जब प्रद्योत के यहाँ बन्दी था उस समय दृढ वर्मा पर आक्रमण कर दिया। दृढ वर्मा बन्दी हो गया किन्तु उसका कचुकी किसी प्रकार उसकी कन्या प्रियदर्शिका को बचाकर निकाल ले गया और विन्ध्यकेतु के यहाँ शरण ली। दृढ वर्मा का मित्र होते हुए भी विन्ध्यकेतु वत्स से शत्रुता रखता था, अत उसने उसे आघात पहुँचाने की चेष्टा की। वत्स के सेनापति विजयसेन ने विन्ध्यकेतु पर आक्रमण किया और उसे मार डाला। उसके घर मे उसे वही प्रियदर्शिका

१ नहि कवेरितिवृत्त मात्र निर्वहणेन किंचित् प्रयोजनम् इतिहासदेव तत्सिद्धे.
—ध्वन्यालोक—उद्योत—३, पृष्ठ ३१२

कन्या मिली जिसे उसने विन्ध्यकेतु की पुत्री समझ आरण्यका नाम से विजयोपहार के रूप मे अपने स्वामी वत्स के पास पहुँचा दिया। वत्सराज भी उस कन्या को शत्रुपुत्री समझकर वासवदत्ता की परिचारिका रूप मे अन्तपुर मे रख दिया है।

एक दिन पुष्पावचयन के लिए आयी आरण्यका को राजा ने लताओट से देखा। अचानक कमल से उडे हुए भ्रमर से पीडित आरण्यका सहायतार्थ कथन करती है। राजा वहाँ पहुँचकर बाहुपाश मे उसे भर लेता है। इस प्रकार दोनो का परस्पर अनुराग हो जाता है। विदूषक कात्यायनी के साथ एक नाटक की योजना करता ह जिसमे राजा का अभिनय आरण्यका (प्रियदर्शिका) की सखी सुसगता को व वासवदत्ता का अभिनय आरण्यका को करना है। योजनानुसार राजा की भूमिका मे स्वय राजा ही अवतरित होता है। नाटक देखकर वासवदत्ता अत्यन्त उद्धिग्न हो वहाँ से चली जाती है। एकान्त मे सोते हुए विदूषक को जगाने पर विदूषक राजा के रहस्य का उद्भेद कर देता है। वासवदता क्रुद्ध हो आरण्यका को बन्धन मे डाल देती है।

वासवदत्ता अपने मौसा दृढवर्मा के विषय मे चिन्तित है क्योकि वह कलिग राज के यहाँ बन्दी था। इसी बीच वत्स का सेनापति आकर सूचना देता है कि कलिग गज की पराजय हो जाने से दृढवर्मा मुक्त हो गए है और वह पुन अपने पद पर प्रतिष्ठित हो गए है। दृढवर्मा वत्स की कृतज्ञता प्रकट करने वहाँ आता है इसी बीच प्रियदर्शिका कारागार मे विषपान कर लेती है, वासवदत्ता उसका उपचार वत्स से कराने के लिए प्रियदर्शिका को वहाँ बुलाती है। राजा मन्त्र बल से उसका विष दूर करता है। दृढवर्मा का कचुकी उसे पहचान लेता ह। वासवदत्ता उसे अपनी मौसेरी बहन समझकर राजा के साथ उसका विवाह करा देती है।

स्रोत—प्रियदर्शिका नाटिका का कथानक भी उदयन और वासवदत्ता के चरित्र पर आधारित है। उदयन की कथा का विस्तृत वर्णन कथासरित्सागर मे उपलब्ध होता है, यह उल्लेख किया जा चुका है। अत इस नाटिका की कथावस्तु का मूल स्रोत कथासरित्सागर को मानना उचित है।

यहाँ यह सन्देह होता है कि श्रीहर्ष ने एक ही कथानक एव एक जैसी घटनाओ पर आधारित दो भिन्न नाटिकाओ की रचना क्यो की।

इसका समाधान यही हो सकता है कि श्रीहर्ष ने पहले प्रियदर्शिका की रचना की किन्तु उसमे अपनी कला का उदात्त रूप प्रस्तुत न कर पाने के कारण उसी नाटिका को कल्पना की उत्कृष्ट भूमि मे ले जाकर और अधिक सुसगठित ओर सुन्दर बनाने का यत्न किया जिससे प्रियदर्शिका का ही सशोधित रूप रत्नावली है, यह स्वीकार किया जा सकता है।

विद्धशालभंजिका-कथावस्तु—लाट प्रदेश के सामन्त चन्द्रवर्मा के घर एक कन्या का जन्म हुआ किन्तु कोई पुत्र न होने के कारण पुत्र रूप मे ही उस

कन्या की सूचना प्रजा को दी गई। कन्या मृगाक लेखा का नाम बदल कर मृगाक वर्मा कर दिया गया और उसे चन्द्रवर्मा ने अपने आधिपति विद्याधरमल्ल के यहॉ भेज दिया। विद्याधरमल्ल ने ब्राह्म मुहूर्त मे एक स्वप्न देखा कि किसी सुन्दरी ने उसके गले मे मोतियो का हार पहनाया है। वह अपनी स्वप्नसुन्दरी को चित्रवीथी मे एक खूटी (शालभजिका) के रूप मे देखकर रत्नमाला उसके गले मे डाल देता है। राजा के मन्त्री भागुरायण को यह पता था कि मृगाक वर्मा लडका नही लडकी है और उसका विवाह जिसके साथ होगा वह चक्रवर्ती सम्राट् होगा। इसीलिए उसने स्थान-स्थान पर खूटियो आदि पर मृगाक, लेखा की आकृति खुदवा रखी थी जिससे कि राजा उसके प्रति आकृष्ट हो जाये।

कुन्तल राजपुत्री कुवलयमाला को सौत बनने के भय से वासवदत्ता छद्म युवक मृगाक वर्मा के साथ विवाह का प्रस्ताव करती है, इधर राजा अपने मित्र विदूषक के साथ उद्यान मे कन्दुक की क्रीडासक्ता मृगाकावली को प्रथमबार स्त्रीवेश मे तथा तालपत्र पर लिखे प्रणय लेख को पढते हुए देखकर आसक्त हो जाता है। सन्ध्यावन्दन के पश्चात् चन्द्रवर्णन करते समय राजा का मृगाकावली के साथ क्षणिक मिलन होता है।

राजा का उपहास करने की कामना से वासवदत्ता मृगाकावली को जिसे वह पुरुष समझ रही है, स्त्रीवेश मे राजा से विवाह रचाती है, किन्तु इस कार्य मे वह स्वत ही धोखा खा जाती है तभी चन्द्रवर्मा के यहॉ से समाचार मिलता है उसे पुत्र प्राप्ति हो गई है। इसलिये मृगाक वर्मा वेश मे जो मृगाकावली कन्या है उसका विद्याधर से विवाह कर दिया जाये। वासवदत्ता इस घटना से लज्जित होती है और मृगाकावली का विवाह तो राजा के साथ कर ही चुकी थी। कुवलयमाला का भी विवाह राजा के साथ कर देती है।

स्रोत—विद्धशालभजिका का कथानक पूर्णतया कल्पित है क्योकि इस कथानक का (बीज रूप मे) अन्यत्र कही उल्लेख नही हुआ है। प्रेरणा स्रोत की दृष्टि से यदि इस नाटिका की मीमासा की जाय तो स्पष्टत राजशेखर, भास कालिदास और श्रीहर्ष के ऋणी है।

नाटिका का नायक विद्याधरमल्ल और महारानी दोनो की सृष्टि उदयन और वासवदत्ता को आदर्श मानकर की गई, भले ही वे इतने सक्षम सिद्ध न हो सके हो। स्वप्नदर्शन की कल्पना राजशेखर को भास के स्वप्न वासवदत्ता से प्राप्त हुई। वेष परिवर्तन व विभिन्न प्रणय लीलाओ की समायोजना का आधार हर्ष की रत्नावली और कालिदास का माल विकाग्नि मित्रम् है। अत· इतिवृत्त की स्वतत्र कल्पना करने पर भी राजशेखर, भास कालिदास और श्रीहर्ष के नाटको से न केवल अत्यन्त प्रभावित थे, अपितु उन्हे इनके नाटको से ही प्रेरणा मिली यह स्वीकार किया जा सकता है।

कर्णसुन्दरी—कथावस्तु—चालुक्यराज का विद्याधर की राजकुमारी से विवाह होने वाला है मन्त्री उस राजकुमारी को अन्तपुर मे प्रविष्ट करा देता है, जिससे

राजा पहले उसे स्वप्न मे और फिर चित्र मे देखकर उस पर आसक्त हो जाता है। राजा की इस आसक्ति को जानकर ईर्ष्यालु रानी उसके मिलन मे बाधा डालती है। एकबार स्वत रानी, कर्णसुन्दरी के वेश मे जाकर राजा के मनोभावो का अध्ययन करती है और यह ज्ञात कर लेने पर कि राजा कर्णसुन्दरी के प्रति अत्यासक्त है, एक लडके को कर्णसुन्दरी का वेश पहना कर उसके साथ राजा का विवाह करने का उपहास करती है, किन्तु मत्री अपने बुद्धिचातुर्य और युक्ति से उस लडके के स्थान पर कर्णसुन्दरी को ही प्रस्तुत कर देता है। रानी स्वय ही अपने कार्य से प्रताडित हो जाती हे। राजा को विजय की सूचना प्राप्त होती है और रूढि के अनुसार कर्णसुन्दरी का राजा के साथ विवाह हो जाता है।

स्रोत—विल्हण की यह नाटिका ऐतिहासिक पुरुष कर्णदेव त्रैलोक्यमल्ल जो ११वी शती के शासक थे—को नायक बनाकर लिखी गई है।[१] चूँकि बिल्हण इन्ही के राज्याश्रय मे रहते थे इसलिए उन्होने उनकी कर्णाट राजपुत्री मियाणल्ल देवी के साथ वृद्धावस्था मे विवाह सम्बन्धी घटना को नाटकीय रूप दिया।

कवि की स्वतन्त्र कविप्रतिभा का विकास नाटिका मे अवश्य हुआ है किन्तु नाटिका की सम्पूर्ण योजना राजशेखर की नाटिका विद्धशालभजिका को आधार मानकर की गई। प्रत्येक घटना-बिन्दु दोनो मे क्रम और स्वरूप की दृष्टि से समान है। उदाहरणार्थ-नायिका के साथ विवाह से चक्रवर्ती साम्राज्य की प्राप्ति, स्वप्न दर्शन व चित्रदर्शन से अन्योन्यानुराग मै वृद्धि, वेश परिवर्तन कर राजा की नायिका के प्रति अनुराग पद्धति का ज्ञान प्राप्त करना एव लड़के के साथ राजा का विवाह कर उसको धोखा देने का प्रयत्न आदि अत्यन्त समान है। अत इतिवृत्त का ऐतिहासिक स्रोत होते हुए भी प्रेरणा स्रोत विद्धशालभजिका को ही माना जा सकता है।

पारिजात मंजरी—कथावस्तु—चालुक्यराज भीमदेव द्वितीय को जीतने के पश्चात् अर्जुन वर्मा जब उद्यान मे विश्राम कर रहा था, तभी अचानक उसके वक्ष पर एक माला गिरी जो एक सुन्दर युवती के रूप मे परिवर्तित हो गई। कचुकी के सरक्षण मे इस युवती को अत पुर पहुँचा दिया जाता है जहॉ रीतिबद्ध घटना क्रम मे राजा का अन्योन्यानुराग और पश्चात् विवाह हो जाता है।

स्रोत—मध्यप्रदेश के धारा नगर मे शिलालिखित इस नाटिका के उपलब्ध दो अको के आधार पर विद्वानो ने नाटिका का नायक १३वी शती के परमारवशी राजा अर्जुन वर्मा और नायिका को चालुक्य कन्या मानकर ऐतिहासिक पात्र कहा है। इन दोनो के विवाह की घटना भी ऐतिहासिक है ऐसी मान्यता हे किन्तु नाटिका के रूप मे कल्पित करने के कारण कवि ने पर्याप्त परिवर्तन किए। माला का कन्या रूप मे परिवर्तित होने की घटना सर्वथा कल्पित है जो कदाचित चालुक्य कन्या की उद्यान मे प्राप्ति का प्रतीक है।

प्रेरणा की दृष्टि से कवि रत्नावली, कर्णसुन्दरी आदि से प्रभावित है।

---

१ कर्णसुन्दरी (भूमिका) पृ २ (निर्णय सागर प्रेस)

उषारागोदया-कथावस्तु—ग्रीष्माभितप्त कुमार अनिरुद्ध मित्र विदूषक (गिरिवर) के साथ रक्ताशोक मे मेघमाला देख कर और अधिक विह्वलता का अनुभव करता है। महारानी के आमन्त्रण पर हिन्दोलोत्सव मे सम्मिलित होकर भी विकलता की अनुभूति से रानी का उत्साह भग कारक वर्णन करता है जिससे कुपित रानी वहाँ से चली जाती है। अचानक वसन्त के आविर्भाव से वसन्तोत्सवायोजन होता है और पुन महारानी के निमत्रण पर कुमार प्रमदवन मे पहुँचता है।

कृष्ण का सारथी दारुक कृष्ण बाणासुर युद्ध का सविस्तार वर्णन एव विजय की सूचना देकर चला जाता है। कुमार इस विजय की सूचना महारानी को देने अन्त पुर जाता है। उषा सकुशल द्वारिका पहुँच गई, इसकी सूचना देने वाले नारद के दो शिष्य पर्वत ऋषि से मिलते है और वे असमय मे मुनिदत्त ऋषि के द्वारा वसन्तोद्भूति की सूचना नारद को देने के लिए चले जाते है। उषा की सखी चित्रलेखा अपनी सखी के मनबहलाव के लिए अनिरुद्ध का चित्रफलक तैयार कर उषा को देती है जिस पर अपनी प्रणय गाथा लिखकर उषा वियोगविह्वल होकर मूर्च्छित हो जाती है। अचानक घुडसाल से मेषद्वन्द्व छूटने से उत्पन्न कोलाहल से मूर्च्छा भग हो जाती है, और चित्रलेखा उसे साथ लेकर तमालवीथी मे छिप जाती है।

कुमार चित्रफलक और नलिनीदल शय्या देखकर दुखी होता है तभी चित्रलेखा के साथ उषा कुमार से वहाँ मिलती है। कचुकी सूचित करता है कि महारानी ने उषा अनिरुद्ध के विवाह को स्वीकृति दे दी है।

विवाह स्थल पर नारद की प्रतीक्षा मे बैठे व्यक्तियो को आकाश मार्ग से आते नारद दिखाई पडते है। स्वागतार्थ खडी रुक्मवती को पुत्र प्राप्ति का वरदान देकर नारद उषा अनिरुद्ध का विवाह सम्पन्न कराकर आशीर्वाद देते है।

स्रोत—उषा और अनिरुद्ध का प्रणय एव विवाह की मूलकथा श्रीमद्भागवत[१] एव कथासरित्[२] सागर मे उपलब्ध है। कविवर रुद्रचन्द्रदेव ने वही से कथानक ग्रहण कर शास्त्रीय पद्धति से सीमित घटनाओ वाली नाटिका की सृष्टि की। कथानक की मूल कथा मे कवि ने नाटिका की रूढियो का पालन करने के लिए नवीन पात्रो और घटनाओ की अभिनव कल्पना की। निश्चय ही कवि ने इस परिवर्तन से मूल कथानक को ऐतिहासिक नाटक की भूमिका से बाहर निकाल कर विशुद्ध साहित्यिक नाटिका की श्रेणी मे खड़ा कर दिया है। असमय वसन्त का आविर्भाव, चित्रफलक की रचना एव रानी की ईर्ष्या, नाटिका की रूढि की रक्षा करने के लिए कल्पित है, जबकि उषा और कुमार अनिरुद्ध का विवाह कृष्ण बाणासुर सग्राम और द्वारिकापुरी आदि की घटनाएँ श्रीमद्भागवत और कथा सरित्सागर के मूल कथानक पर अवलम्बित है।

---

१ श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १०, अध्याय ६२-६३।

२ कथा स सा., लम्बक ६/११-३२.

मलयजाकल्याणम्-कथावस्तु—तोण्डीर देशाधिपति देवराज महारानी के साथ मलयदेश मे आखेट करने गया, जहाँ हाथी पर सवार मलयराज पुत्री मलयजा को देखकर आकृष्ट हो गया। मलयजा भी हृदय खो बैठी और राजा के प्रति आसक्त हो गई। उद्यान मे भ्रमण करते हुए निकुज ओट मे मलयजा का दर्शन व उसका विस्त्रभालाप सुनकर जब राजा को विदित हुआ कि उसका आकर्षण राजा के प्रति है तो वह हर्षित हुआ। मलयजा के वीणावादन से प्रियालवृक्ष अकाल पुष्पित हो गया। अधीर राजा मलयजा से मिला भी।

महारानी को मलयजा और राजा के रात्रि मे गुप्त-मिलन की योजना का रहस्य ज्ञात होने पर भ्रमरिका दासी के वेश मे वह स्वय गई और उनके प्रणयालाप को सुनकर क्रुद्ध हो प्रकट हो गई। जमदग्नि ऋषि प्रविष्ट होकर महारानी की अनुकूलता की भविष्यवाणी करते है, मलयराज मित्रों के परामर्श से देवराज के साथ अपनी पुत्री मलयजा का विवाह कर देते है। तभी देवराज को विजय की सूचना मिलती है। महारानी भी प्रसन्न होकर राजा का आलिगन करती है।

स्रोत—वीर राघव ने इस नाटिका को लिखने की प्रेरणा रत्नावली आदि नाटिकाओं से प्राप्त की। देवराज और मलयजा के विवाह की घटना इतिहास से प्रमाणित नही होती। इस लिए पूर्वनाटिकाओं से प्रेरणा प्राप्त कर कवि ने अपनी कल्पना के आधार पर इस नाटिका की सर्वथा अभिनव पद्धति से रचना की।

चन्द्रकला नाटिका—कथावस्तु—महाराजा चित्ररथदेव के महामात्य सुबुद्धि को पाण्ड्य नरेश की छोटी राजकन्या चन्द्रकला अपने सेनापति से प्राप्त होती है। महामात्य इस आकाशवाणी को सुनकर कि 'जिसके साथ इस कन्या का विवाह होगा, लक्ष्मी स्वय प्रकट होकर वरदान देगी' अपनी सम्बन्धिनी बनाकर स्वामी की हित-कामना से उसे राजान्तपुर में रख देता है।

एक बार ही दृष्टि-पथ मे आने पर राजा उसके प्रति आसक्त हो जाता है। उधर वही स्थिति चन्द्रकला की भी होती है। सुनन्दना आदि सखिया दोनो को परस्पर मिलाने की गुप्त योजनाएँ बनाती है जिससे रानी को इन दोनों के मिलन की सूचना न मिल सके।

राजा का मित्र विदूषक रसालक पूर्वयोजनानुसार बघेरे (तरक्षु) का वेष धारण कर प्रमदोद्यान मे आता है और रानी के पास बैठे हुए राजा को एकान्त मे मारने के बहाने ले जाता है जहा चन्द्रकला उसकी प्रतीक्षा मे बैठी मिलती है। विदूषक से महारानी के आगमन की सूचना मिलते ही चन्द्रकला अगूठी वही छोड़कर भाग जाती है। राजा विदूषक को अगूठी छिपाकर रखने का निर्देश देता है। महारानी तरक्षुबध से प्रसन्न होकर राजा के वीर भाव की पूजा कर अपना हार उपहार रूप मे विदूषक को पहनाती है। विदूषक उन्मत होकर चन्द्रकला की अगूठी अगुली मे पहनता है जिसे रानी पहचान लेती है और क्रुद्ध होकर अन्तपुर चली जाती है।

क्रोधावेश मे महारानी चन्द्रकला को सुनन्दना दासी के घर छिपा देती है किन्तु विदूषक मणिमण्डप मे राजा के साथ उसके मिलन की गुप्त योजना करता है असावधानीवश रहस्योद्भेद हो जाने से महारानी स्वय वहा लताओट से उन दोनो की प्रणयवार्ता सुनकर अति क्रुद्ध हो जाती है और सुनन्दना, विदूषक तथा चन्द्रकला तीनो को बन्दी बनाने का आदेश दे देती है। कुछ दिनो के पश्चात् महारानी के पिता पाण्ड्य नरेश का सन्देश दो बन्दीगण लाते है, वर्षो बाद आये मायके के व्यक्तियो से मिलने की उत्सुकता मे विदूषक को मुक्त कराकर उसके द्वारा मणिमण्डप मे उनसे मिलने के लिए राजा को सन्देशा भेजती है।

बन्दीगण राजा को सूचित करते है कि पाण्ड्य नरेश की छोटी पुत्री एक बार विहार के लिए जा रही थी। मार्ग भूल जाने के कारण एक शबर के हाथ आ गई उसने चतुर्दशी की रात्रि को विन्ध्यवासिनी देवी को प्रसन्न करने के लिए मन्दिर मे बलि देनी चाही किन्तु उसी समय सेनापति विक्रमाभरण का एक सैनिक देवी दर्शनार्थ वहाँ पहुँचा और उसने उसकी रक्षा के लिए शबरराज का बधकर दिया। कन्या जब सेनापति के पास आयी तो उसने उसे महामात्य सुबुद्धि को सौप दिया। पाण्ड्य नरेश ने आपके योग्य उस कन्या को समझकर उसका विवाह आपके साथ करने का विचार किया है।

इस घटना को सुन, महामात्य ने आकाशवाणी का सारा वृत्तान्त बताकर वास्तविकता कह दी। चन्द्रकला जब वहाँ बुलाई गई तो बन्दियो ने उसे पहचान लिया। महारानी उसके प्रति किए गए दुर्व्यवहार के लिए चन्द्रकला से क्षमायाचना कर राजा के साथ उसका विवाह कर देती है तभी महालक्ष्मी प्रकट होकर राजा को वर प्रदान एव दर्शन देती है।

स्रोत—कविराज विश्वनाथ की यह नाटिका पूर्णत उनकी निजी कल्पना है किन्तु नाटिका का घटनाचक्र रत्नावली के समान एक निश्चित रूढि चक्र पर घूमता हुआ पात्रो की भिन्नता मात्र के अन्तर से पूर्णरूपेण रत्नावली की अनुकृति प्रतीत होती है। इसलिए इस नाटिका को लिखने की मूलप्रेरणा कवि को हर्ष की रत्नावली से मिली, यह निर्विवाद है। नायक को ऐतिहासिक पुरुष मान लेने से सम्पूर्ण अथवा प्रधान पात्रो और घटनाओ की ऐतिहासिकता पूर्ण नही हो पाती। अत इसे ऐतिहासिक नाटिका नही माना जा सकता।

वृषभानुजा—कथावस्तु—भगवती वृन्दा के द्वारा की गई रूपमाधुरी की प्रशसा से कृष्ण और राधा बिना देखे हुए ही एक दूसरे पर अनुरक्त हो गये। कृष्ण अपने मित्र व राधा अपनी सखी के साथ वृन्दाटवी मे पहुँचती है, वहाँ कामदेव का पूजन करती हैं। कामासक्त कृष्ण वरदान देने के लिए वहाँ पहुँचते है किन्तु गोपकुमारो के कोलाहल से वह मिलन अधूरा ही रह जाता है।

मदनानल सन्तप्त कृष्ण और राधा तमालवीथी मे पुन मिलते है किन्तु तभी मा के द्वारा राधाऽन्वेषण की सूचना पाकर वियुक्त हो जाते है। कृष्ण तमालपत्र

पर राधा का चित्र अकित करते है और राधा भूर्जपत्र पर मदनलेख। चतुरता से सखी के द्वारा वह मदनलेख कृष्ण के पास पहुँचाया जाता है। उन्मत्त कृष्ण मुरलीवादन करते है जिसे सुनकर मूर्च्छित हुई राधा को कृष्ण, स्पर्श आदि के द्वारा चेतना प्रदान करते है। विदूषक के नृत्य से उसकी कक्षा मे दबा, राधा का चित्र गिर पडता है। दूर से देखकर राधा अन्य स्त्री की कल्पना से ईर्ष्यावश क्रुद्ध हो जाती है, बाद मे वस्तुस्थिति से अवगत हो प्रसन्न हो जाती है। भरतवाक्य के साथ नाटिका की समाप्ति होती है।

स्रोत—रत्नावली, विद्धशालभजिका आदि नाटिकाओ से प्रेरणा, प्राप्त कर श्रीमद्‌भागवत के प्रसिद्ध पौराणिक पुरुष राधा और कृष्ण की प्रणय-लीला को आधार बनाकर कवि ने इस नाटिका की रचना की। इसलिए जहाँ कथा-वस्तु का स्रोत श्रीमद्‌भागवत् है वही नाटिका के रूप मे योजना का प्रेरणास्रोत रत्नावली आदि नाटिकाएँ है। नायक नायिका ही पौराणिक पात्र है अन्य समस्त वृत्त कविकल्पित है। कृष्ण राधा की परस्पर अनुरक्ति और उनकी विविध श्रृगारिक क्रीडाओ का वर्णन यद्यपि भागवत आदि ग्रन्थो मे है किन्तु नाटिका मे वर्णित प्रेम पद्धति रूढिबद्ध होने के कारण भिन्न है फिर भी पौराणिकता को ध्यान मे रखने के कारण ही कवि ने देवी नायिका की कल्पना नही की क्योकि वह सर्वथा अविश्वसनीय होने से ख्याति-विरुद्धता दोष बन जाता। अतएव कवि ने चित्र की योजना से क्षणिक ईर्ष्या करने का अवसर राजा को दिलाया है।

कथावस्तु और उनके प्रेरणास्रोत का निर्देश करते समय यह ध्यान रखा गया है कि केवल प्रतिनिधि नाटिकाओ का ही विवेचन हो। सभी नाटिकाओ की कथावस्तु आदि का उल्लेख प्रबन्ध को अनावश्यक विस्तार देने वाला होने के कारण ही ऐसा किया गया है।

कथावस्तु विभाग—कथावस्तु का शास्त्रीय दृष्टि से आधिकारिक और प्रासगिक द्विविध विभाग किया गया है।[१] प्रासगिक के पताका और प्रकरी रूप दो भेद होते है।[२]

यह आधिकारिक और प्रासगिक इतिवृत्त प्रख्यात, उत्पाद्य और मिश्र भेद से तीन प्रकार का स्वीकार किया गया है।[३]

नाट्‌यदर्पणकार ने नाटिका के इतिवृत्त मे वे सभी भेद या धर्म भी स्पष्टत स्वीकार किए है जो नाटक या प्रकरण के इतिवृत्त मे अपेक्षित है। तदनुसार नाटिका के इतिवृत्त को-५ अवस्थाओ, ५ सन्धियो, ६४ सध्यगो, पता का स्थानको, अकों, प्रवेशक, विष्कम्भक आदि अर्थोपक्षेपको से समन्वित करना चाहिए।[४]

१ दश १/११

२ वही १/१३

३ दश १/१४-१५

४ नाटिकायाम्-'अवस्था-सन्धि-सन्ध्यग-बीज-विन्दु-पताका-प्रकरी-पताकास्थानक-अंक-प्रवेशक-विष्कम्भक-इतिवृत्त, उभयभेद साधारणानि लभ्यन्ते।

—ना. द. (सू.) १२१ की वृत्ति, पृष्ठ २१४

कथावस्तु का विशिष्ट शास्त्रीय विवेचन नाट्यशास्त्रीय समीक्षा प्रकरण मे विस्तार से किया गया है। यहाँ मुख्यत उनकी कथावस्तु और प्रेरणा-स्रोत का निर्देश ही अभीष्ट माना गया है।

(ब) भाषा एवं भाव

भाषा एव भाव का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। भावो की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा है और भाषा का विषय भाव होता है। अत भाषा आधार और भाव आधेय है।

सस्कृत नाटिका की कल्पना कोमल प्रकृति के समवलम्बन से हुई है। इसलिए उसकी भाषा मे भी कोमलता मधुरता आदि भावो की सहजानुवृत्ति होती है किन्तु शास्त्रीय ग्रन्थो मे भाषा सम्बन्धी विस्तृत विवेचन भरत से लेकर सभी शास्त्रकारो ने किया है। यहाँ सक्षिप्तत उन विशिष्ट नियमो का उल्लेख अत्यपेक्षित है।

नाट्यदर्पणकार ने भाषाप्रयोग के सम्बन्ध मे निर्दिष्ट किया कि देव व देवियाँ, नीच पुरुष पात्रो को छोडकर उत्तम, मध्यम पुरुष पात्र, कभी-कभी राजमहिषी, मत्रिपत्नी, पण्यस्त्री एव स्त्री-पुरुष दोनो प्रकार के सयासी सस्कृत भाषा का प्रयोग करे।[१]

बालक, नपुसक, ग्रहग्रस्त, मत्त, स्त्री प्रकृति, पुरुषो एव स्त्रियो की भाषा प्राकृत ही होनी चाहिए। उत्तम प्रकृति के पुरुष पात्र भी जब दारिद्र्य या ऐश्वर्य मोहित हो तो उन्हे भी प्राकृत भाषा का ही प्रयोग करना चाहिए।[२]

नाट्यदर्पणकार ने प्राकृत मे भी विभाग करते हुए निर्दिष्ट किया कि अत्यन्त नीच अर्थात् अधम प्रकृतिक व पिशाचादिक की प्राकृत पैशाची व मागधी का मिश्रित रूप हो, नीच पात्र की शोरसेनी प्राकृत तथा किसी देश विशेष के पात्र मे तद्देशीय प्राकृत का प्रयोग करना चाहिए।[३]

प्राकृत और सस्कृत के अतिरिक्त पात्रो की प्रकृति के अनुसार उनके सम्बोधनो के प्रयोग का भी नियमन किया गया है, यथा—ब्राह्मण अपनी पत्नी व परिव्राजिका को आर्या शब्द से, माता व वृद्धाओ को अम्बा शब्द से तथा अन्य पूज्या स्त्रियो को भवती शब्द से सम्बोधित करे। छोटा भाई बडे भाई को भ्राता शब्द से, मत्री, नट, नटी को आर्य, आर्या शब्दो से सम्बोधित करे।[४] पत्नी पति को आर्यपुत्र, पति पत्नी को प्रिये कहे । परिचारिकाएँ एव सेवक रानी को

---

१ देवानीचनृणा पाठ सस्कृतेनाथ जातुचित्।
महिषी मन्त्रिजाया पण्यस्त्रीणामव्याज लिंगिनाम्॥ —ना. द (सू.) २८९

२ बाल-षण्ढ-ग्रहग्रस्त- मत्त—स्त्रीरुप- योषिताम्
प्राकृतनोत्तमस्यापि दारिद्रयैश्वर्य मोहित ॥ —ना. द (सू.) २९०

३ ना द (सू) २९१।

४ ना द सू २९४।

भट्टिनी, स्वामिनी और वेश्या को उसके सेवक अज्जुका, बराबर की स्त्रियाँ एक दूसरे को हला कह कर सम्बोधित करे।[१]

जैन व बौद्धभिक्षु को भदन्त, सूत्रधार को उसका सेवक भाव, सूत्रधार उसे मार्ष, उत्तमप्रकृतिक नीच पात्रों को सौम्य, भद्रमुख और नीच-नीच को हडे आदि से सम्बोधित करे।[२]

इस प्रकार विस्तार से इन सम्बोधनो की व्यवस्था की गई है, जिनमे सभी का उल्लेख यहाँ अपेक्षित नही। प्रस्तुत प्रकरण मे प्रमुख प्रतिनिधिमूत नाटिकाओ के भाषात्मक सौन्दर्य पर विचार किया जा रहा है।

रत्नावली की भाषा—श्रृगार जैसे कोमल रस को अगी बनाकर लिखी गई नाटिकाओ मे सस्कृत और प्राकृत दोनो भाषाओ का प्रयोग किया गया है। हर्ष ने रसानुकूल भाषा प्रयोग का स्तुत्य प्रयास किया है। आनन्दवर्द्धन ने नाटको मे समास बहुल रचना का जो निषेध किया है[३] उसका हर्ष ने तत्परता के साथ पालन किया। अतएव कोमलकान्त पदावली के प्रयोग मे उन्होंने कालिदास को आदर्श माना है।

हर्ष ने अपनी नाटिकाओ मे स्त्री-सौन्दर्य एव प्रकृति-वित्रण मे कोमल पदावली का भूयसा प्रयोग किया। वसन्तोत्सवारम्भ मे क्रीडासक्त स्त्रियो के स्तनभार, कटि की क्षीणता, नूपुर आदि की वर्णना मे पचम वर्ण का प्रथम एव तृतीय वर्णो के साथ भूयसा प्रयोग से[४] माधुर्य गुण की सृष्टि हुई है।[५] इसी प्रकार काम पूजन,[६] सागरिका रूप प्रशस्ति,[७] लतापाश मुक्ति,[८] आदि अवसरो पर भी भाषा का कोमल भाव स्पष्ट है।[९]

मदनोत्सव को स्वकीय उत्सव की मान्यता देते समय राजा के द्वारा प्रयुक्त भाषा मे अल्प समासत्व तो है ही राजा का आभिजात्य भी व्यक्त होता है। वर्णनानुकूल भाषा मे परिवर्तन अपेक्षित होता है। अतएव हर्ष ने दक्ष के यज्ञ विध्वस के समय शिव की स्तुति करते हुए न केवल समस्त अपितु कठोर भाषा वर्णो का भी प्रयोग किया है।[१०] जिससे वीररस की स्फुट प्रतीति होती है।

---

१ वही सू. ४/२००

२ वही ४/३०३-३०५

३ 'स्वविषयेऽपिनाटकादौ नातिदीर्घसमासा चेति सघटनाया दिगनुसर्तव्या'
—ध्वन्यालोक, पृष्ठ २९५

४ रत्ना १/१६.

५ मूर्ध्निवर्गान्त्य वर्णेनायुक्ताष्टठ डढा न्विना
रणौ लघू व तद्व्यक्तौ वर्णा कारणता गता।
अवृत्ति रल्प वृत्तिर्वा मधुरा रचना तथा। —सा द. ८/३-४

६ सा द १/२२.

७ वही ३/१३

८ वही ३/१७

९ वही १/९.

१० रत्ना १/३

ओज गुण की अभिव्यक्ति के रेफ सयुक्त टवर्ग और चतुर्थ वर्णो का मिश्रण अत्युपकारक माना गया है।[१] तदनुसार कवि ने विजय वर्मा द्वारा किये गये युद्धवर्णन मे उत्कट भाषा का प्रयोग किया है।[२] ऐन्द्रजालिक योजना मे आग लगने पर धूमोद्गार की भयकरता करते समय[३] ओजोगुण प्रधान भाषा का चरमोत्कर्ष परिलक्षित होता है।

अनेक वर्णनात्मक अवसरो पर हर्ष ने कोमल वर्ण-विन्यासात्मक समास बहुल भाषा का भी प्रयोग किया है जो कदाचित् समीचीन नही कहा जा सकता किन्तु कही पर भी रस प्रतिकूलता अथवा दृश्यता मे त्रुटि न आने से इसे दोष नही माना जा सकता। उदाहरणार्थ कदलीगृह से निकल कर सागरिका को प्रथम बार देखने पर उसकी प्रशसा करने[४] मे इसका प्रयोग है।

पात्रानुकूलता पर भी ध्यान रखने के कारण हर्ष विदूषक के द्वारा शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग कराते है[५] क्योकि वह नीच पात्र है। विदूषक के शब्दो मे हास्य की भी अभिव्यक्ति होती है जो कवि की निपुणता का परिचायक है।

समस्त स्त्री व पुरुष पात्र शास्त्र निर्दिष्ट सम्बोधनो का प्रयोग करते है। प्राय नीच और मध्यम पात्रो की स्थिति होने के कारण नाटिकाओ मे कवियो ने इस पर विशेष ध्यान दिया है।

भाषात्मक सौन्दर्य और गाम्भीर्य की अभिव्यक्ति के लिए यत्र तत्र सूक्ति वचनो का प्रयोग,[६] व्यगात्मक कथन[७] और भावी इतिवृत्त सूचक अनेक पदो की योजना कर कवि ने अपनी भाषात्मक शक्ति का प्राजल चित्र भी प्रदर्शित किया है।

रत्नावली नाटिका मे कही पर भी ऐसी भाषा का प्रयोग नही है जो प्रयत्नसाध्य अलकारो से बोझिल एव कृत्रिम प्रतीत होती हो। उपमा, प्रतीप, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि कोमल प्रकृतिक अलकारो के प्रयोग के साथ यत्र तत्र प्रयुक्त वक्रोक्ति[८] श्लेष आदि अलकारो से भाषा मे सौन्दर्याधान ही हुआ है।

---

१ वर्णस्याद्य तृतीयाभ्या युक्तो वर्णौ तदन्तिमो
उपर्यधो द्वयोर्वा सरेफाष्टठडढै सह
शकारश्च षकारश्च तस्य व्यजकता गता
तथा समासो बहुला घटनोद्धत्य शालिनी॥ —सा द. ८/५-७

२ रत्ना ४/५-६.

३ वही ४/१४

४ रत्ना० २/१६

५ ना. द. सू २९१।

६ न कमलाकर वर्जयित्वा राजहस्यन्यत्र रमते। —रत्ना., पृष्ठ ४६

७ द्वीपादन्यस्मादपि —रत्ना १/६.

८ वही ३/१३

कालिदास को आदर्श मानने के कारण भाषा एव भावो की अभिव्यक्ति मे वैदर्भी शैली का प्रयोग है। यद्यपि समकालीन कवि बाणभट और मयूर आदि समास बहुल रचनाकार थे पर उनका प्रभाव इनकी लेखनी को प्रभावित न कर सका, कारण स्पष्ट है कि कवि का लक्ष्य नाटिका की कोमल प्रकृति के माध्यम से राजाओ की विलासिता का चित्रण था। कालिदास के समान हर्ष किसी गम्भीर भाव को सरल पद्धति से व्यजनात्मक शब्दो से कहने मे सिद्धहस्त है जिससे न केवल भाषा की सुकोमलता की अपितु बैदर्मी रीति की भी रक्षा हुई है।

विद्धशालभजिका—(राजशेखर) —प्रियदर्शिका और रत्नावली के पश्चात् कालक्रम से राजशेखर कृत विद्धशालभजिका का नाम आता है। इसकी भाषा ललित और मधुर है। रसानुकूल वर्णविन्यास और पात्रानुकूल भाषा के प्रयोग मे कवि सिद्धहस्त है। वे सूक्ति बहुल रचना कर अपने ग्रन्थ को गम्भीर, शक्ति सम्पन्न और रसाप्लुत कर देते है। यह उन्होने स्वय ही प्रस्तावना मे स्पष्ट किया है।[१]

राजशेखर ने प्राय नायिका रूप,[२] वसन्त चित्रण[३] मदन प्रभाव[४] आदि के चित्रण मे कोमलकान्त पदावली का प्रयोग कर वैदर्भी रीति को पुष्ट किया है। झूले पर बैठी नायिका की करधनी की मणियो की झकार, सुगन्धित श्वास से भ्रमरो का आकृष्ट होना एव आभूषणो का सुन्दर चित्रण पचम और तृतीय वर्ण के सयोग से तथा लकार के ललित प्रयोग से निश्चय ही सौन्दर्य की सृष्टि हुई है।[५]

राजशेखर ने भाषा के धनी होने का गौरव तो प्राप्त ही किया है, उनकी प्रतिभा का सर्वोत्कृष्ट रूप प्राकृत भाषा मे अभिव्यक्त हुआ है क्योकि इनकी दृष्टि मे प्राकृत सस्कृत की अपेक्षा अधिक सुकुमार एव मनोहर है।[६] फिर भी सस्कृत का कोई हीन रुप उनकी इस नाटिका मे दृष्टिगोचर नही होता। सर्वप्रथम नान्दी मे कवि ने कामदेव की आराधना मे जिस सरल भाषा को अपनाया है निश्चय ही वह लालित्यपूर्ण एव कामदेव जेसे कोमलातिकोमल देव की वर्णना के लिए उचित ही है।[७]

---

१ पातु श्रोत्र रसायन त्रयितु वाच. सता सम्मता।
व्युत्पत्ति परमामवाप्तुमवधि लब्धु रसस्त्रोतस ॥
भोक्तु स्वादुफल च जीविततरोर्यद्यस्ति ते कोतुकं
तद्भात शृणु राजशेखर कवे सूक्ति. सुधास्यन्दिनी.। —विद्ध-१/७

२ विद्ध—१/४० , २/४, २०

३ वही—१/३०.

४ वही—१/२२

५ वही—१/३२.

६ परुसा सकिअ बधा पाउद बधो वि होई सुअमारो।
पुरुस स महिलाण जेत्तिअ मिहतर तेत्ति अभिमाण॥ —कर्पूर १/८

७ विद्ध-१/१

राजशेखर ने किंचित् कठोर अर्थ की अभिव्यजना करते समय भाषा को थोडा सा कसना उचित समझा और कठोर वर्णो का तो नही किन्तु अल्प समास के द्वारा उसे अपेक्षाकृत गम्भीर बनाया जो उनकी सूक्ष्मेक्षण बुद्धि का वैभव है। उदाहरणार्थ—ग्रीष्म का वर्णन करता हुआ कवि कितनी चतुरता से कहता है कि—ग्रीष्म की शोभा दिनान्त के समय रमणीय है, केले के फलो को पकाने वाली ग्रीष्म ऋतु मे नारियल का जल कुछ कठिन हो जाता है तथा रात्रि के अन्तिम प्रहर मे रति की कामना जाग्रत होती है।[१] इसमे ग्रीष्म ऋतु के नाम से ही कुछ कठिनता प्रतीत होती है अतएव कवि ने भी इसमे अल्प समस्त पदावली का प्रयोग करना उचित समझा।

राजशेखर कालिदास हर्ष आदि से अत्यन्त प्रभावित थे इसमे सन्देह नही फिर भी उन्होने भाव की दृष्टि से भले ही कालिदास का अनुकरण किया हो पर भाषा की दृष्टि से वह स्वत सिद्धहस्त है अतएव उनकी भाषा मे अभिनव प्रयोग दृष्टिगोचर होता है—

"नीलकमल के समान नेत्रो वाली नायिका के आसू आखो मे पुतलियो पर लहराकर तरल होते है फिर बरौनियो के अग्रभाग मे धीरे-धीरे पहुँच कर बिन्दु-रूप मे धनीभूत हो जाते है, फिर वे बूदे परस्पर मिलकर धारा रूप मे और बाद मे आन्तरिक पीड़ा से प्रवाहरूप मे बहती है।"[२]

इस वर्णन मे कवि ने कालिदास के कुमारसभव के उस प्रकरण से अवश्य ही प्रेरणा प्राप्त की है जहाँ उन्होने पार्वती के शरीर पर पड़ने वाली प्रथम वर्षा की बूदो का वर्णन किया है।[३] किन्तु कवि ने भाषा का किंचित भी अनुकरण नही किया।

वर्णनानुकूल भाषाविन्यास मे भी राजशेखर ने चूक नही की है। बालविडाल लोचन से प्राची की उपमा[४] मे समस्त पदावली का प्रयोग, नान्दी प्रयोग मे भगवान शकर के भयकर उपकरणो का वर्णन करते समय कठोर वर्णविन्यास भाषा की मर्यादा की रक्षा के साक्षी है। इसी प्रकार मध्याह्न वर्णन,[५] कन्दुकक्रीडा,[६] चन्द्रोदयादि[७] वर्णनो मे भी कवि ने भाषा को समास-बहुल एव कठोर बनाया है।

पात्रानुकूल भाषाविन्यास कवि की विशेषता है। विदूषक की वाणी मे उसके स्वभावानुकूल कठोरता और हास्य है। वह सम्बोधन मे अनेक अपशब्दो का प्रयोग कर अपनी मूर्खता को व्यक्त करता है।[८]

---

१ वही-४/२
२ विद्ध ३/२४.
३ 'स्थिता क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधरा'—कुमारसभव,
४ विद्ध १/११.
५ वही १/४३.
६ वही २/६-७.
७ वही ३/८.
८ आः दास्यासुते ! पुराण कुट्टिनि ! मकरदंष्ट्रे ! भ्रमरटेण्टे टेण्टा कराले ! रथ्या लुण्ठिनि ! त्रुटित संघटिते, आदि विद्ध, पृष्ठ ४१.

वदर्भी रीति के अनुसार कोमलवर्णोपन्यास के साथ-साथ कवि सूक्ति-बहुल भाषा के प्रयोग मे भी सिद्धहस्त है, जैसे—"को दुर्जन वचनाना कर्ण ददाति याद्दश कवि स्तादृशी काव्यबन्धच्छाया, विधत्ते सोल्लेख कतरदिह नाग तरुणिमा, न खलु मृगलाछनमुज्झित्वाऽन्येन शशिकान्त पुत्रिका बद्धनिर्झरा प्रह्रष्यति।" आदि सूक्ति वाक्यो से पूरी नाटिका भरी पडी है।

कवि ने ग्राम्य कहावतो को भी सस्कृत मे निबद्ध कर भाषा को अधिकाधिक सर्वजनोपयोगी बनाने का सफल प्रयास किया है। उदाहरणार्थ—"वर तत्कालोपनतस्तिमिर न पुनर्दिवसान्तरितो मयूर" वाक्य निस्सन्देह 'नौ नगद न तेरह उधार' लोकोक्ति का ही सस्कृत रूपान्तर है। इस प्रकार कविवर राजशेखर ने भाषा को अधिक से अधिक स्पृहणीय बनाने का प्रयास किया है।

शैली—महाकवि राजशेखर ने श्रृगार रसानुकूल बैदर्भी रीति का आश्रय लेकर मधुर और प्रसाद गुण बहुल शैली अपनाई है जो नाटिका के लिए अपेक्षित है। विप्रलम्भ का चित्रण प्राय प्रश्नात्मक रूप मे करते है जिससे विषयवस्तु का उत्कर्ष और बढ जाता है। वाक्य लघु और भाव उदात्त होते है। अर्थगाम्भीर्य तो इनकी नाटिकाओ मे कूटकूट कर भरा हुआ है। भाषा को अधिकाधिक प्रवाहमय, सरल और सूक्ति सम्पन्न बनाना इनकी अभिरुचि है।

कर्णसुन्दरी—सस्कृत नाटक साहित्य के अवनतिकाल मे जन्मे कवि बिल्हण ने जहॉ विक्रमाकदेवचरित जैसे महाकाव्य की रचना कर अपने कवित्व का उज्ज्वल प्रकाश फैलाया वही उन्होने नाटिका की कोमल कथावल्लरी का भी विकास करने मे महत्त्वपूर्ण योगदान किया है, किन्तु इनके समय तक नाटको मे अभिनेयता की अपेक्षा श्रव्यता ही प्रधान रह गई थी। निसन्देह राजदरबार के कवि बिल्हण ने अपने आश्रयदाता की प्रशस्ति मे जिस कर्णसुन्दरी नाटिका की रचना की उसमे भाषा का सौष्ठव भर पाने मे वे सफलता प्राप्त नही कर सके।

भाषा—काव्य पक्ष को प्रधानता देने के कारण बिल्हण की इस नाटिका मे भाषा स्वाभाविक न रहकर कृत्रिम हो गई है। यद्यपि अनेक ऐसे भी स्थल है जहॉ उनकी भाषा का सौन्दर्य स्फुट हुआ है किन्तु तो भी पूर्ववर्ती आचार्यो की अपेक्षा उनकी भाषा मे मार्दव और माधुर्य कम ही है।

महाकवि बिल्हण ने यद्यपि कोमल वर्णो के सन्निवेश से वैदर्भी रीति का समाश्रयण करने का प्रयत्न किया है किन्तु महाकवि होने के कारण उनकी भाषा मे समास अनायास ही आ गये है। उदाहरणार्थ—प्रस्तावना मे प्रभातवर्णन करते समय यद्यपि प्रथम पचम और तृतीय वर्णो का सयोग है किन्तु समास के सन्निवेश से उसकी सरलता मे स्वाभाविक बाधा उत्पन्न हो गई है।[१]

---

१ दधति गृह चकोराश्चन्द्रिकाम्भ शिलोंछम्
क्वचन् कनकशाला जालकाभ्यन्तरेषु
अपि रतिभवनानि व्यजयन्ति प्रियाणाम्
निधुवन सुख निद्रा मूक पारावतानि॥ —कर्ण० १/५

इसी प्रकार वसन्त वर्णन,[१] नायिका-वर्णन,[२] विप्रलम्भ स्थिति मे नायिकास्मरण[३] आदि अवसरो पर कवि ने कोमलवर्ण विन्यास करते हुए भी समास का अनावश्यक प्रयोग किया है जिससे नाटिका की भाषा प्रतिपाद्य विरुद्ध हो गई।

फिर भी कवि सुन्दर एव सरस रचना विन्यास मे सक्षम अवश्य है। नायिका की विरह सन्तप्तावस्था का तरगवती चेटी के द्वारा वर्णन कराता हुआ कवि बडी सुकोमल भाषा का प्रयोग करता है। नायिका के चचल नेत्रो, को चन्द्रमा भी शीतल नही कर पाता, कमलदल पर शयन करने पर भी शरीर अशान्त है, शीतल मलयज रस भी कुचस्थली पर पहुँच कर धूलिवत् सूख जाता है, आदि वर्णन बडे ही प्रभावोत्पादक है।[४]

इसी प्रकार नायिका के हृद्गत प्रेम के लक्षणो का वर्णन,[५] विरह से पाण्डुर मुखच्छवि[६] एव नायिका की रमणीयता वर्णन[७] मे कवि ने निश्चय ही कोमल पदन्यास से नाटिका की श्रीवृद्धि की है।

कवि के समास प्रधान प्रयोग भी अनुप्रास के लालित्य से स्पृहणीय बन गए। राजा स्वप्नगत प्रेयसी का वर्णन करता हुआ दर्शन की उत्कण्ठा मे अपने हृदय पटल पर उसकी छवि लिखित रुप मे अनुभव करता है—

त्रिवलिवलितलीला लोल वेणी कलापम्
किमपि रस विभृते स्तिर्यगाकेकराक्षम्।
कलित कुटिल कण्ठ दर्शनोत्कण्ठयास्या
लिखितमिव ममान्तस्तन्मुख मन्मथेन ॥[८]

नाटिका के गद्य मे भी समास बहुल प्रयोग का व्यामोह नष्ट न होने से भाषा मे क्लिष्टता आ गई है। विदूषक के कथनो[९] मे यह पद्धति प्राय अवलम्बित है।

बिल्हण की भाषा सम्बन्धी त्रुटियो पर पर्दा नही डाला जा सकता। वे पात्रानुकूल भाषाविन्यास मे सर्वथा असफल रहे है। विदूषक जो कि हास्य रस की सृष्टि करने वाला प्रमुख पात्र है, उच्च प्राकृत का प्रयोग व गम्भीर भावो की अभिव्यक्ति कर एक समश्रेणिक मित्र की भाति साहित्यिक कथन करता है।[१०]

---

१ कर्ण० १/४५
२ वही १/५३.
३ वही २/३.
४ कर्ण० २/१.
५ वही २/७.
६ वही २/२५
७ वही २/३७.
८ वही १/२८
९ वही, पृष्ठ १२-१३ एव २७।
१० कर्ण० १/४९-५० , २/१२, १८ ,३/२७

कवि चूँकि काव्यप्रेमी है अतएव वह अनेक ऐसे भी पद्यो की रचना करता है जो केवल वर्णनात्मक है[१] और उनसे किसी भी रूप मे साहित्यिक श्रीवृद्धि नही होती।

नायिका के उद्दीपक रूप का, उसके विरह मे चन्द्रोदय, पवन और कामदेव का वर्णन पुन पुन करने के कारण भाषा मे पुनरुक्ति न होते हुए भी किसी प्रकार की नवीनता प्रतीत नही होती जिससे पाठक को कोई विशेष आह्लाद भी नही आता।

राजशेखर की विद्धशालभजिका को आदर्श मानकर लिखी जाने पर भी इसमे वर्णित घटनाओ की सद्य अनुभूति पाठक को क्लिष्ट भाषा के कारण नही हो पाती। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने इस नाटिका की रचना केवल श्रव्य काव्य के रूप मे ही की, उसकी अभिनेयता पर उनका कोई ध्यान नही गया। अत अभिनयात्मक भाषा का अभाव होने से एव एक भी सूक्ति वाक्य प्रयुक्त न करने के कारण तथा पात्रानुकूलता आदि का ध्यान न रखने से भी बिल्हण की इस नाटिका को उतनी सफलता नही मिल सकी जितनी कि इसकी प्रेरणास्पद नाटिका विद्धशालभजिका को।

पूर्वत उल्लेख किया जा चुका है कि सस्कृत नाटिका साहित्य मे अनेक ऐसी नाटिकाएँ उपलब्ध है जो अभिनय की दृष्टि से हीन होने के कारण समादृ न हो सकी, जिनमे से यह भी एक है।

शैली—बिल्हण की इस नाटिका मे काव्यात्मक शैली का प्रयोग है। पूर्ववर्ती नाटिकाओ रत्नावली और विद्धशालभजिका के समान श्रृगारात्मक प्रणय कथानक की रूढि के अनुसार नाटिका की घटनाओ का सन्निवेश तो इसमे है पर भाषा मे समास के आधिक्य और पद्यात्मकता के कारण सौन्दर्य सृष्टि न हो सकी। सम्वाद अल्प है और उनमे कोई चमत्कार भी नही है। अनेक कथन पद्यमय ही है। इसलिए रसपरिपाक भी सम्यक् नही हो सका। इससे स्पष्ट है कि इनकी शैली नाटकीय न होकर काव्यात्मक है।

उषारागोदया—भाषा—श्रृगार रस को अगी बनाकर वैदर्भी शैली मे लिखी गई इस नाटिका की भाषा मे मृदुता, सरलता और स्वाभाविकता का कवि ने यथा सम्भव पालन करने का प्रयत्न किया है।

रत्नावली नाटिका को आदर्श मानने के कारण वैदर्भी शैली का पालन करते हुए भी युगीन प्रभाव से प्रभावित हो अलकारो के प्रयोग से भाषा मे कृत्रिमता आ गई है, यह निर्विवाद है।

प्रस्तावना मे कवि बालसूर्य के वर्णन[२] मे व्यग्यात्मक भाषा का प्रयोग कर 'बाणासुर सग्राम के पश्चात् गिरिवर (अपने मित्र) के साथ अनिरुद्ध की उषा के प्रति

---

१ **वही १/३५, ४४.**

२ **बाणादिह परिमुक्तो लोहितमध्ये स्थितोऽति शल्य इव**
अयेऽनिरुद्धो गिरिजा सहसोषाराग रजितोऽभ्येति। **उषा० १/३**

अनुरक्ति का भाव भी व्यक्त कर दिया है। जो रत्नावली की शैली का अनुकरण है क्योंकि वहाँ भी भावी घटना की सूचना अन्य प्रसग से दी गई है।[१]

इसी प्रकार सूर्य की अस्त यात्रा के वर्णन मे कवि की भाषा वर्णनानुकूल है।

पश्चिम दिशा रूपी नायिका से मिलन के लोभ से रक्तागो वाला सूर्य अनुरागी व्यक्ति के समान समय आने पर अस्ताचल शिखर पर गिर रहा है।[२] यहाँ सूर्य वर्णन से राजा की मन-स्थिति का अच्छा परिचय प्राप्त होता हे।

कवि रुद्रचन्द्रदेव वर्णनो मे समय, स्थान और पात्रो का पूरा-पूरा ध्यान रखते है, साथ ही नाटिका की सुकुमारता का भी। मेघवर्णन[३] मे जहाँ उन्होने उसकी तरलता का प्रदर्शन करने के लिए असमस्त कोमल वर्णशय्या की कल्पना की है, वही युद्ध[४] के कठोर वर्णन मे क्लिष्ट समास बहुल शब्दावली के प्रयोग मे भी कोई सकोच नही किया।

विविध विरोधी भावो की रचना मे सिद्धहस्त कवि ने जहाँ देवी,[५] वसन्त[६] और नायिका[७] के वर्णनो मे सरल, मृदु वर्णविन्यास और अल्प समास का प्रयोग किया है वही अचानक मेषद्वन्द्व[८] के छूटकर आ जाने से उनके वर्णन मे समस्त पदावली का अवलम्बन किया है।

विदूषक के मुख से मेघ की उपमा सूकर[९] से दिलाकर एक विचित्र ग्रामीण रुपक की योजना करना भी कवि नही भूला है। शास्त्रादि विधाओ का अभ्यासी राजा अपने मित्र विदूषक को धन्वन्तरि[१०] की उपमा देकर भाषा एव भाव के औचित्य की यदि रक्षा करता है तो वही विदूषक कचुकी के आगमन पर उसकी उपमा कूष्माण्ड[११] से देकर अपने हलकेपन का अथवा निम्न श्रेणी के पात्र होने का स्पष्ट परिचय देता है।

पात्रो की प्रकृति, स्तर और कार्य के अनुसार ही भाषा का प्रयोग करने पर नाट्यकार सत्यरूप मे सामाजिक को अभिनय के माध्यम से सम्यक्तया रसानुभूति करा सकता है। कवि रुद्र-चन्द्रदेव ने इसका पूर्ण ध्यान रखा है। उनके उच्च श्रेणी के पात्र कुमार, उद्धव, पर्वत ऋषि और मुनिकुमार सस्कृत भाषा का तथा अन्य सभी स्त्री, पुरुष पात्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करते है। विदूषक

---

१ रत्ना १/६
२ उषा. ३/१२
३ वही १/१५
४ वही २/२४,२५
५ वही १/२०.
६ वही २/६,७
७ वही ३/१९.
८ वही ३/१०.
९ उषा० १/१३
१० वही, पृष्ठ २०।
११ वही, पृष्ठ ३८।

के प्राकृत पद्यो मे महाराष्ट्र प्राकृत का प्रयोग है[१] किन्तु गद्य मे शौरसेनी और मागधी ही मुख्यत प्रयुक्त है।

कचुकी मध्यम श्रेणी का पात्र होता है उसका कार्य अन्त पुर की व्यवस्था व रक्षा करना है फलत उसे प्राकृत भाषा का प्रयोग करना चाहिए किन्तु रुद्रचन्द्रदेव ने उससे सस्कृत भाषा का प्रयोग करा कर[२] उसके ब्राह्मणत्व की रक्षा की है। कचुकी को सस्कृत साहित्य मे विदग्ध पुरुष के रूप मे चित्रित किया गया है। जात्या उच्च एव ज्ञानेन वृद्ध होने के कारण सस्कृत प्रयोग मे किचिदपि अनौचित्य की प्रतीति नही होती। वह तो अत्यन्त निपुणता से वृक्षो के माध्यम से सज्जन पुरुषो की प्रशसा करता हुआ कहता है—

प्रतिपालयन्ति तिमिर हिमाशुकिरणैरपिध्वस्तम्।
अति तन्वातपमपि च स्वच्छायाया हि सज्जनास्तरव.॥[३]

यहाँ कचुकी ने प्रकारान्तर से अपने आश्रयदाता की भी प्रशसा की है। सूक्तिमय कथन के साथ ही भावगाम्भीर्य और अन्त मे सज्जन व तरुओ का उपमा मे पर्यवसान होने से भाषा अलकृत हो गई है।

पर्वत ऋषि गम्भीर, तेजस्वी और परमविद्वान् है अत उनके कथन मे समास बहुल भाषा का प्रयोग होना नितान्त स्वाभाविक है।[४]

कोमल प्रकृतिक नायिका उषा नायक के वियोग मे पदे पदे स्खलित हो रही है, धैर्य खो रही है इसीलिए उसके वाक्यो मे लघुता, अश्लिष्टता और कोमलता है। कुमार के चित्रफलक पर अपनी विवशता का उल्लेख करती हुई वह कहती है—

मधुसमय लघुपवन मृगांकपरिमण्डिता रजनी।
कामितजनविच्छेदः कथमपि कृत्वा जीवनं भवतु॥[५]

यहाँ उसकी अवस्था के अनुसार ही वर्णो व वाक्यो का प्रयोग कर कवि ने औचित्य की रक्षा की है।

क्रोध के समय चण्डि कहना,[६] विदूषक का अपने ब्राह्मणत्व के चिह्न ब्रह्मसूत्र की शपथ लेना[७] भाव एव पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग है।

१ वही, २/३
२ वही, पृष्ठ ३९।
३ उषा० ३/३४
४ उद्भिन्नाजनवारिदौघमलिनप्रान्ते. प्रकामायिते.,
माद्यच्चातक पक्तिरावमुखरै प्रौढ़ातपाहुस्सहै.।
प्रत्यग्रोदित शक्रचापसुभगैश्चचत्कदम्बानिलै—
र्घर्मान्तागम निर्व्यलीक पिशुनै. स्वप्नायित वासरै.। —उषा० ३/४
५ उषा० ३/८.
६ उषा०, २/२१.
७ वही, पृष्ठ १९।

कवि रुद्रचन्द्रदेव जहाँ छोटे छोटे वाक्यो के द्वारा नाटिका की सरलता के साथ-साथ उसकी अभिनेयता के पक्षपाती है, वही वे उसकी भाषा को सूक्ति वाक्यो के द्वारा अलकृत करना भी उचित समझते है। उद्धव अनिरुद्ध के आगमन की सूचना देने मे किसी प्रकार की शका नही करते क्योकि उनके अनुसार सेवको के द्वारा राजाओ के कटु आदेश को भी तिरस्कृत नही करना चाहिए विशेष रूप से उन्हे जो उत्तम श्री की इच्छा करने वाले है और नियुक्त किये गये है।[१] यह सम्पूर्ण वाक्य एक सूक्ति के रूप मे शिक्षा देने वाला है। इसी प्रकार—

'मधु समये वनिताना स्वभाव वैषम्यमायाति
किमुतेष्टजन वियोगे समाधि परि विक्लव चेत.'[२]

इस श्लोक मे स्त्री स्वभाव की एव—

'सुधाशुस्पर्धि वदने क्व क्लमस्तव सन्निधौ
जायन्ते जातु जरता कि सुधाऽस्वादिनामपि।[३]

इस श्लोक मे स्त्री के मुखचन्द्र की विद्यमानता मे वृद्धो को भी श्रमानुभूति नही होती, यह कथन कर सूक्ति वाक्यो की समायोजना की है। इस प्रकार कवि की भाषा सशक्त होकर भी सौष्ठव औदार्य तथा माधुर्य का परित्याग नही कर सकी है। इस प्रकार की विरोधी भाषा आवश्कता के अनुसार जब नाटिका का अग बन जाती है वह अनूठे कवियो की ही कलातूलिका का कौशल है।

कवि ने भाषा का चित्रात्मक वर्णन करने मे पर्याप्त सफलता प्राप्त की। नायक नायिका की शतपत्रदल रचित शय्या के वर्णन मे कह रहा है कि—इस शय्या से नायिका अभी-अभी उठकर गई है क्योकि कामानलसन्तप्त उसके हाथ से गिरे हुए पसीने की बूदो से इनमे शिमशिमा ध्वनि हो रही है।[४] वस्तुत शुष्क पत्रराशि यर जब पानी गिरता है तो इसी भाति ध्वनि उत्पन्न होती है। इस प्रकार इस नाटिका की भाषा सरल कोमल और प्रवाहमयी है।

सम्पूर्ण नाटिका मे सहायक पत्रो के द्वारा कोई भी ऐसा कथोपकथन (सम्वाद) नही है जो पाठको या दर्शको को उबाने वाला हो। कही पर भी अलकार अथवा भाषा लादी नही गई है। हॉ श्रृगारात्मक वर्णनो मे यत्र तत्र समास की अल्प छटा घटा बनकर अवश्य छा गई है। यह प्रवृत्ति प्राय वसन्तादि के वर्णन मे[५] है जहाँ कि वसन्त का विभिन्न रूपो मे वर्णन अपेक्षित है। प्राकृत का शास्त्र निर्दिष्ट प्रयोग है। सम्बोधनो मे भी किसी प्रकार की त्रुटि नही है।

---

१ प्रभूणा नावमन्तव्य· क्ष्वेडादेशोऽपि सेवकै
विशेषतो नियुक्तश्च श्रियमिच्छद्भिरुत्तमाम्॥ —उषा० १/७

२ उषा० २/१९.

३ वही २/२०.

४ उषा० ३/२१.

५ वही २/७

शैली—(भाव) —इस कवि की शैली पर तत्कालीन आलकारिक कवियो का प्रभाव पडा है अत अलकृत शैली होते हुए भी प्रवाह, सौष्ठव और कोमलता की रक्षा कवि ने बडी तत्परता से की है। सम्पूर्ण नाटिका मे वैदर्भी रीति और प्रसाद गुण विद्यमान है। सूक्ति-व्यजना और रसात्मकता कवि की प्रमुख विशेषताऍ है। कही पर भी अशोभनीय वाग्व्यवहार व अश्लीलता का दर्शन नही होता। सम्वाद प्राय लघु, गद्यात्मक एव मनोरजक है। अत इस नाटिका का भाषा सौष्ठव उत्कृष्ट है जिससे कि नाटिका रूढि के अनुसार उसकी मृदु प्रकृति की रक्षा हो सकी है।

चन्द्रकला—साहित्यदर्पण जैसे प्रोढ लक्षण ग्रन्थ की रचना करने वाले कवि विश्वनाथ जहॉ एक ओर परम तार्किक है वही दूसरी ओर चन्द्रकला आदि नाटिकाओ की रचना मे परम भावुक भी है।

वासवदत्ता, मालविकाग्निमित्र और रत्नावली ग्रन्थो से प्रभावित होकर ही विश्वनाथ ने कोमल इतिवृत्तात्मिका नाटिका की रचना की, यह नाटिका के कलेवर को देखने से स्पष्ट हो जाता है। अलकारप्रियता होते हुए भी रसप्रवणता आद्यन्त विद्यमान है।

भाषा की दृष्टि से कविराज विश्वनाथ समर्थ कवि है। वर्णनानुकूल, पात्रानुकूल एव ध्वन्यात्मक भाषा के उनके प्रयोग स्पृहणीय है।

नायिका के सौन्दर्य वर्णन मे ऐसी वर्णसघटना है जो हृदय को स्पर्श करती हुई सी प्रतीत होती है। पचम वर्ण न और म का भूयसा प्रयोग माधुर्य की वृष्टि करता है।[१]

जहॉ कलक रहित चन्द्र के समान मुख की वर्णना[२] मे कवि स्वच्छ निर्मल वाणी का प्रयोग किए बिना वास्तविकता का उपस्थापन भला कैसे कर सकता था वही वह श्रृगार की धारा मे बहकर आनन्दानुभूति से भी वचित नही रहना चाहता। वह नायिका के किंचित् दृश्यमान उरोज युगल के लावुण्यपूर मे इतना डूब गया है कि प्रयत्न करने पर भी बाहर नही निकल पाता।[३] इस प्रसग मे इस प्रकार की भाषा का प्रयोग है कि प्रत्येक वाक्य पढ़ते समय ऐसा लगता है कि मानो कही पानी मे मन डुबकियॉ लगा रहा है।

कवि जहॉ कोमल वर्णविन्यास के द्वारा सुकोमल रचना करने की क्षमता रखता है वही वह तरक्षु वर्णन मे समासबहुल क्लिष्ट रचना करने मे भी अभ्यस्त है। लाल-लाल ऑखे निकाल कर धूत्कार करता हुआ तरक्षु केलिवन मे कोपाविष्ट हो भूमि को कुरेदता हुआ प्रविष्ट हो रहा है।[४]

१ सा दृष्टिर्नवनीलनीरजमयी वृष्टिस्तदप्याननम्
हेलामोहन मन्त्र यन्त्र जनिता दृष्टिर्जगच्चेतस ।
सा भूवल्लिरनग शार्ग धनुषो यष्टिस्तथास्यास्तनु-
र्लावण्यामृतपूरपूरणमयी सृष्टि: परा वेधस । —चन्द्र० १/७.

२ चन्द्र० १/१३

३ वही १/१५.

४ वही २/४,६

वर्णन बडा विकट एव कठोर है किन्तु तो भी कवि कठोर वर्णो का भूयसा विन्यास नही करता है। इसका मात्र इतना ही कारण है कि नाटिका कोमल प्रकृति का काव्य है जिसमे उद्धत रचना किसी भी रूप मे उचित नही है।

कविराज विश्वनाथ रजनीकर कहकर चन्द्र की शीतलता व्यक्त करते है साथ ही उसी वाक्य मे उसकी दहनशीलता का भी चित्रण करने के लिए कलुषितान्तर· कहना नही भूलते।[१] भाषा के इस प्रकार भावसक्षम होने के उदाहरण अन्य कवि कृतियो मे कम ही उपलब्ध होते है।

चन्द्रकला की भाषा का एक विशेष वैशिष्ट्य है कि कवि ने अनेक पद्यो मे तुकान्तता का विन्यास कर उसमे अपूर्व लयात्मक सौन्दर्य की सृष्टि की है। उदाहरणार्थ द्वितीय अक के आरम्भ मे चन्द्रमा की विरही लोगो को पीडित करने की कूट भावना का वर्णन करते समय कवि ने एक-एक चरण के दो-दो भाग कर उनके अन्तिम अक्षरो मे एकता की सृष्टि की है, जैसे—

विरहिकुलकृतान्त क्षुण्णकर्पूरकान्त
कृतयुवधृतिभग सम्भृतानगरंग ।
गगनजलधिहस स्थाणुचूडावतस
क्षयितकुमुदतन्द्र,: शोभते शुभ्रचन्द्र ॥[२]

इस श्लोक मे प्रथम पाद का पूर्वार्द्ध विरहिकुल कृतान्त एक समस्त पद है जिसका अन्तिम वर्ण न्त है इसीलिए कवि ने इस पाद का उत्तरार्द्ध भी ऐसा एक समस्त पद 'क्षुण्ण कर्पूरकान्त' ढूँढ कर विन्यस्त किया कि जिससे उसके भी अन्त मे 'न्त' का प्रयोग हुआ। इसी भाँति द्वितीय चरण मे 'ङ्ग' 'ङ्ग' की तृतीय मे स स की एव चतुर्थ मे न्द्र न्द्र की आवृत्ति हुई है।

निश्चय ही इस अभिनव प्रयोग से कविता मे माधुर्य की सृष्टि तो हुई ही है, उच्चारण मे स्वत· लयात्मकता भी आ गई।

चरणो मे तुकान्तता का उदाहरण उनके प्रथम अक मे नायिका वर्णनावसर पर अकित पद्य है।[३]

पात्रानुकूल भाषा विन्यास मे दक्ष विदूषक जो हास्य अभिनेता है, मोदक प्रिय ब्राह्मण के रूप मे वाग्व्यवहार करते समय चन्द्र को हैयगवीन पिण्ड और उसकी किरणो को दुग्धधारा[४] के रूप मे ही देखता है।

इसी प्रकार उसे अशोक गुच्छ गुड़ के लड्डू के समान प्रतीत होने से मन को आकृष्ट करता है।[५]

---

१ वही २/१५.
२ चन्द्र० २/१.
३ वही १/९.
४ वही २/८
५ चन्द्र० १/१२

सुनन्दना, रतिकला आदि अविदग्ध स्त्री पात्रो की भाषा सरल, लघु वाक्यात्मिका एव अनुदार है जो केवल वर्णनात्मक है। यह शौरसेनी प्राकृत है।

विदग्ध राजा के मुख से कवि शुद्ध सस्कृत के प्रयोग से कोमल और कठोर भाषा का प्रयोग करता है और अनेक कथनो मे सूक्ति वाक्यो के निवेश से भाषा को सशक्त और गुरूतर बनाता है।

सूत्रधार मन की चचलता को लक्षित कर कहता है कि रमणीय पदार्थो के सतत उपभोग मे रत रहकर भी मन किसी नवीन वस्तु को देखकर उसकी ओर भागने लगता है।[१]

राजा की दृष्टि मे स्त्री जाति मे भय स्वाभाविक गुण के रूप मे विद्यमान रहता है।[२]

विदूषक जो सदैव राजा के मनोरजन के लिए प्रयत्नशील रहकर उसी को सर्वसुन्दर समझता है—कहता है—"पुष्पयुक्त आम्रवृक्ष को छोडकर चन्द्रिका अन्यत्र कहाँ जा सकती है।"[३]

नायिका चन्द्रकला की सखी रतिकला जिसे पुरुषो पर विश्वास नही है—बडे विश्वास के साथ यह कह देती है कि 'पुरुष भ्रमरो का यह स्वभाव हे कि वे सदैव नवीन-नवीन वस्तुओ की ही ओर दौडा करते है।[४]

इस प्रकार कवि ने स्थान-स्थान पर अनेक सूक्ति वाक्यो की योजना कर जहाँ भाषा के गौरव मे श्रीवृद्धि की वही वह इन सूक्तियो के भावो की कल्पना मे पात्रो के औचित्य की भी रक्षा की है जो जिस श्रेणी का पात्र है वह उसी प्रकार की सूक्ति का कथन करता है।

भाषा मे ध्वन्यात्मक शब्दो की योजना का एक उदाहरण वसन्त-वर्णन प्रसग मे कोयल की कुहू ध्वनि का चित्रण है जहाँ 'मुहुर्मुहु' शब्द का प्रयोग ध्वन्यात्मक है।[५]

वस्तुत सस्कृत साहित्य मे भाषा सौन्दर्य की दृष्टि से यदि कुछ काव्यो का वर्गीकरण किया जाय तो निश्चय ही चन्द्रकला नाटिका को उनमे अन्यतम स्थान प्राप्त होगा।

कोमल वर्ण विन्यासात्मक अनुप्रास का निम्नाकित पद्य के अतिरिक्त और उदाहरण हो ही क्या सकता है—

लताकुज गुंजन् मदवदलिपुंजं चपलयन्
समालिगन्नंगं द्रुततरमनगं प्रबलयन्।

१ वही १/५
२ 'कातर्यं हि नाम स्वाभाविको धर्म स्त्रीणाम्।' —चन्द्र०, पृष्ठ ३०.
३ 'न खलु कुसुमित सहकार वर्जयित्वा चन्द्रिकाया अन्यत प्रसार' —चन्द्र०, पृष्ठ ३४
४ 'पुरुषभ्रमराणा स्वभाव एष यत् किल नव नवमेवानुधावन्ति।' —चन्द्र०, पृष्ठ ६२
५ कुहूमाकारयत्येष कुहूकण्ठो मुहुर्मुहु।
तत् कथ परिदृश्येत् प्रिया चन्द्रकला मम॥ —चन्द्र० ३/१०.

मरुन्मन्दं मन्दं दलितमरविन्दं तरलयन्
रजोवृन्द विन्दन् किरति मकरन्दं दिशि दिशि॥[1]

इस पद्य के पढते-पढते भ्रमरो की गुजार, कामानुभूति, मरुत सस्पर्श आदि भावो की जितनी तीव्रता से प्रत्यक्ष अनुभूति होती है, उतनी शायद ही किसी कवि के काव्य से होती हो। इसी प्रकार की पदरचना को देखकर ही तो वामन-प्रभृति आचार्यो ने सगर्व यह लिखा था कि—

किं तथा कवितया राजन् कि वा वनितया तया।
पद विन्यास मात्रेण मनो नापहृतं यया॥

अत भाषा सौष्ठव और माधुर्य गुण के समन्वय की उदात्त चेष्टा विश्वनाथ की इस नाटिका मे विद्यमान है।

शैली—(भाव) —वैदर्भी रीति के माध्यम से नर्म क्रीडाओ और प्रणय वर्णनो की रचना करते हुए कवि ने कालिदास और हर्ष की शैली का अनुकरण किया है। इनकी भाषा मे कही भी कृत्रिमता परिलक्षित नही होती। स्वाभाविकता, सरलता और कोमलता पदे पदे विद्यमान है। सम्वाद प्राय लघु वाक्यो मे एव सरल है। गद्यात्मक वार्तालाप को प्राथमिकता दी गई है। जिससे नाटिका की रुढियो का अतिक्रमण नही हो सका है और दृश्यत्व पर भी कोई आच नही आई।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विश्वनाथ भाषा शैली की दृष्टि से नाटिकाकारो मे सर्वाग्रणी है—भले ही नाटककारो मे कालिदास सर्वाग्रणी हो।

वृषभानुजा—कायस्थ कुलोत्पन्न कवि मथुरादास की वृषभानुजा नाटिका नाट्य-शास्त्रिय रूढियो पर आधारित होकर भी अपनी पृथक् विशेषता रखती है। कवि को नाटिका लिखने की प्रेरणा हर्ष की रत्नावली से मिली यह निसन्देह है किन्तु शैली की दृष्टि से कवि कालिदास का ही अधिक ऋणी है।

वृषभानुजा नाटिका की भाषा नाटिकाऽनुकूल मृदु तो है पर उसमे रसपरिपाक की पूर्ण क्षमता नही है, यह कहा जा सकता है। यद्यपि कवि वृन्दारण्य मे गोपियो से आवृत कृष्ण के दर्शन कर सन्तोष प्राप्ति की कामना मे[2] सरल ललित एव कोमल भाषा का प्रयोग करता है किन्तु वृन्दारण्य के मनोहारी वर्णन मे वह समासबहुल भाषा का प्रयोग कर पाठक या दर्शक को आह्लाद नही दे पाता।[3]

कवि का वस्तुवर्णन निश्चय ही ललित पदनिबन्धन युक्त होने से रमणीय है। तमाल वृक्ष के वर्णन मे[4] जहाँ वह समस्त भाषा का प्रयोग करता है वही

१ चन्द्र० १/३.
२ वृष० १/६
३ वही १/१५
४ वही ३/९

उसमे कोमल वर्णो के उपन्यास से माधुर्य की सृष्टि भी करता है। इसी प्रकार चम्पकलता के म्लान मुख के प्रति सहानुभूति[१] मे कवि असमस्त भाषा का प्रयोग करता है।

राधा के द्वारा काम से सन्तप्त अपने अगो के प्रति कथन[२] निश्चय ही मृदु और व्यावहारिक है।

भाषा सौन्दर्य की दृष्टि से मथुरादास उतने सफल नही हुए है, अनेक स्थलो पर उन्होने कालिदास की भाषा व भाव का अक्षरश अनुकरण किया है। उदाहरण के लिए—राधा से मिलने पर कृष्ण कहते है कि 'हे तन्वि क्या मै स्वभाव सुन्दर तुम्हारे चरणो को दबाऊ, क्या अजन से तुम्हारे नेत्र रजित करु और क्या स्तनो पर पत्रावली की रचना करुँ।[३] कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक मे दुष्यन्त शकुन्तला की प्राप्ति पर कहता है—हे करभोरु क्या कमलिनी पत्रो के पखो से शीतल वायु का सचार करु अथवा कमल के समान लाल तुम्हारे चरणो को गोद मे रख कर दबाऊ।[४]

स्पष्ट रूप मे दोनो श्लोको मे भाव की अत्यन्त समानता के साथ-साथ भाषा 'चरणो सवाहयामि' की भी अनुवृत्ति है।

कवि मथुरादास ने यत्र तत्र सूक्तियो के द्वारा भाषा को सशक्त बनाने का प्रयास तो किया है पर उसमे भी पूर्ण सफलता प्राप्त नही हो सकी और सम्पूर्ण नाटिका मे एक दो ही ऐसे वाक्य है जिन्हे सूक्ति के समान मान्यता दी जा सकती है।[५]

कभी-कभी कवि ने अवसरानुकूलता का ध्यान न रखकर दीर्घ समासावली के प्रयोग से भाषा मे क्लिष्टता उत्पन्न कर दी है। कृष्ण वसन्त ऋतु की पुष्प समृद्धि के बीच बैठकर विश्राम करने के लिए अपने मित्र प्रियालक से एक अत्यन्त दीर्घ वाक्य जो प्राय समस्त है का प्रयोग करते है।[६] इसी प्रकार वृन्दा का नन्दगृह वर्णन[७] चम्पकलता का राधाकृष्ण की मनोदशा का दीर्घकथन[८] पाठको एव दर्शको को उद्वेजित कर देता है।

१ वही ४/१

२ वही ४/१४

३ 'किं ते निसर्गरुचिरौ चरणौ कराभ्या सवाहयामि नयने च तवाजनेन।
किं रजयामि किमु ते स्तनयोर्विचित्रा पत्रावली विरचयाम्यचिरेण तन्वि॥ वृष० ४/२२

४ किं शीतले क्लम विनोदिभिरार्द्रं वातान्
सचारयामि नलिनी दल तालवृन्तैः।
अके निधाय करभोरु यथा सुख ते
सवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ। —अभिज्ञान० ३/१८.

५ सन्निहितेऽपि दुरापे वस्तुनि मनसोऽनवाप्तविषयस्य।
भवति न सशयनाशो बहुशोऽप्याश्वास्यमानस्य॥ —वृष० २/८.

६ वृष०, पृष्ठ १२-१३।

७ वही, पृष्ठ ७-८।

८ वही, पृष्ठ २३-२४

नाटिका मे भाषात्मक दृष्टि से यह भी एक दाष है कि कवि प्राय वर्णनो मे 'ततस्तत' का अनेक बार प्रयोग करता है जो अरुचिकर है, सम्वाद के लिए लघु वाक्यो की अपेक्षा दीर्घ समासवती भाषा का प्रयोग स्पृहणीय नही माना जा सकता।

इस प्रकार कवि जहॉ वर्णनात्मक स्थलो पर भाषा को मधुर और सौष्ठव सम्पन्न बनाने मे सफल हुआ वही वह अनवसर मे समास की योजना से नाटिका मे क्लिष्टता दोष का भी उद्‌भावक बन गया है।

पात्रो की दृष्टि से भी नाटिका की भाषा निर्दोष नही है। कृष्ण का मित्र प्रियालक जो नाटिका की रूढि के अनुसार प्राय हास्यरस के अभिनेता रुप मे उपस्थित होता है, यहॉ उच्च प्राकृत का प्रयोग कर गम्भीर भावो की अभिव्यक्ति करता है जो निश्चय ही उसकी प्रकृति और ज्ञान के प्रतिकूल है।

राधा की सखी वनरक्षिका के द्वारा निम्न श्रेणी की प्राकृत का प्रयोग किन्ही अशो मे नाटिका के औचित्य की रक्षा करता है।

नाटिका के अनुसार श्रृगार अगीरस की कल्पना मे कवि उद्दीपक चित्रणो मे भाषा सौष्ठव की योजना सफल मानी जा सकती है। गद्य की अपेक्षा पद्य मे भाषा अधिक सुन्दर है।

इस प्रकार मथुरादास नाटिका की रचना करने वाले कवियो मे अन्यतम स्थान रखते है।

शैली—मथुरादास की शैली कालिदास के अनुकरण पर सरल कोमल और उदात्त है। वैदर्मी रीति का परिपाक नही तो अवलम्बन अवश्य है। प्राय वर्णनानुकूल भाषा मे काव्यसौष्ठव और कविकल्पना को अधिक गति मिली है। फिर भी इनकी शैली मे कालिदास की शैली के अनुकरण का प्रयास है।

(स) सस्कृत नाटिकाओं में रस-विन्यास

साहित्यिक मानदण्डो और लाक्षणिक रूढियो मे आबद्ध सस्कृत नाटिका का कलेवर राजसिक कामुकता और प्रणय-क्रीडा के अतिरिक्त कुछ भी नही कहा जा सकता। कवि अपने हृदय की श्रृगारात्मक कोमल अनुभूतियो को काल्पनिक इतिवृत के धरातल पर इस प्रकार सजाता है कि उसके सयोग वियोगात्मक स्वरूप मे पाठक या दर्शक उद्दीप्त होकर भावविह्वल हो जाते है।

स्पष्ट है कि नाटिका का अगीरस श्रृगार होता है[१] किन्तु वर्णनानुकूल अन्य रसो का भी उसमे नितान्त अभाव नही होता। अपने प्रातिभा वैभव का सर्वस्व काव्य रूप मे उपनिबद्ध कर देने के लिए कवि की दृष्टि रसोपयोगी सभी उद्दीपक आदि अगो पर घूमफिर कर शब्दरूप मे उन्हे समेटने का प्रयत्न करती है। कौन कितनी तत्परता से खोज कर यथास्थान बिठा पाता है, यह उसकी क्षमता और चातुर्य पर आधारित है। यहॉ उपलब्ध प्रमुख नाटिकाओ का ही रस विश्लेषण किया जा रहा है।

१ 'श्रृगारोऽङ्गी सलक्षण'—दश० ३/४४.

रत्नावली नाटिका—महाकवि हर्षबर्द्धन रसपेशल रचना करने मे सिद्धहस्त है, विशेषतया श्रृगाररस मे। उनकी सम्पूर्ण नाटिका मे ऐसे दृश्यो और घटनाओ का सयोजन है जो विभिन्न रसो की स्फुट अनुभूति कराते है। नाटिका का अगीरस श्रृगार होने के कारण जहाँ उसके सम्भोग एव विप्रलम्भ दोनो स्वरूपो की मधुर अभिव्यजना है वही उसमे अवसरानुकूल वीर, रोद्र, भयानक, करूण और अद्भुत रसो की भी अनुभूति है।

कवि भगवान शकर और पार्वती की स्तुति करता हुआ गिरिजा की शकर विषयिणी रति का जितनी सफलता से चित्रण कर सम्भोग श्रृगार का रूप अकित करता है वही वह देवादिविषयक रति होने के कारण भाव मे परिणति के लिए 'पातुव' लिखना भी नही भूलता।[१] इस आरम्भिक श्लोक मे श्रृगार की वर्णना से कवि की नाटिका का अगीरस श्रृगार ही होगा यह भाव भी व्यग्य हो जाता है।

नान्दी पद्य 'औत्सुक्येन कृतत्वरा०' मे श्रृगार के विविध भावो का मार्मिक वर्णन है। पार्वती भय, लज्जा, रोमाच और कम्प का एक क्षण मे ही अनुभव कर लेती है।[२] यहाँ आलम्बन विभाव भगवान शकर उद्दीपन, विवाह आदि विधि और नवसगम, सात्विक भाव पुलक, अनुभाव त्वरा और व्यभिचारी भाव औत्सुक्य, लज्जा, हर्ष आदि की सुन्दरतया प्रतीति होती है।

नाटिका मे प्रणय कामना ही प्राधान्येन वर्णनीय है क्योकि नायिका से मिलने का यत्न और उसकी प्राप्त्याशा व वियोग मे व्यथित होना तथा पश्चात् उसकी उपलब्धि हो जाना यही नाटिका की मूलकथा के आधार है। अत ग्रन्थ मे श्रृगार के विभिन्न रूपो की अभिव्यजना करना ही नितान्त आवश्यक है।

रत्नावली के प्रथम तीन अको मे विप्रलम्भ और सम्भोग श्रृगार का तथा चतुर्थ मे अन्य रसो का भी चित्रण है।

श्रृगार के उद्दीपक प्राय मलय पवन, अशोक, वसन्त, केशपाश, भ्रमर, नूपुर, पिक कूजन, आम्रमजरी, कमल, नलिनीदल आदि ही स्वीकार किये गये है।

नायक उदयन वसन्त ऋतु मे वृक्षो मे भी उन्माद देख रहा है—ये वृक्ष वसन्त के सम्पर्क से लाल कोपलो के द्वारा रक्तिमा को, भ्रमर झकार से अस्पष्ट प्रलाप को धारण करते हुए मलयपवन से चचल शिखा हो मानो मस्ती मे झूम रहे है।[३]

कामी ससार की प्रत्येक वस्तु मे कामुकता ही देखता है।[४] इस कालिदास के कथनानुसार नायक को जो स्वय कामी है वृक्षो मे भी कामजन्य उन्माद दिखाई पड़ रहा है। रक्तवर्णता काम का सात्विक भाव है[५] जो वसन्त के सम्पर्क

१ रत्ना० १/१
२ वही १/२
३ रत्ना० १/१७.
४ 'कामी स्वता पश्यति' (अभि० २/२)
५ सा द ३/१३६

से वृक्षा मे आ गया है। वृक्षो मे भ्रमर गुजार को अस्पष्ट प्रलाप कहा गया है। प्रलाप काम की एक दशा है।[१] मलयपवन के सम्पर्क से रागान्वित होकर सर हिलाना 'कम्प' सात्विक भाव को प्रकट करता है।[२]

कवि की रसवर्णन चातुरी का यही उत्कर्ष है कि जहाँ वह वृक्षो को उद्दीपक रूप मे चित्रित करता है वही उनमे कामदशा और सात्विक भावो की अभिव्यजना कर रससृष्टि करना भी नही भूलता।

अशोक वृक्ष को पुष्पित करने के निमित्त युवतियो द्वारा किए गए चरण प्रहार से उत्पन्न नूपुर ध्वनि का अनुकरण करने के लिये ही भ्रमर मानो मधुर गुजार करने लगे।[३]

विप्रलम्भ श्रृगार की मधुर अभिव्यजना मे कवि को अधिक सफलता मिली, जिसमे नायक नायिका एक दूसरे के आलम्बन विभाव है, प्रकृति के विभिन्न चेतन अचेतन रूप उद्दीपक, चित्रलेखन, रुदन आदि अनुभाव और ग्लानि, शका, प्रलाप, मूर्च्छा आदि व्यभिचारी भाव है।

कवि ने अभिलाष, व्याधि, चिन्ता, उद्वेग, गुणकथन और उन्माद तथा प्रलाप आदि कामदशाओं का सुन्दर चित्रण कर श्रृगार रस की अनुभूति कराने मे अपना कौशल प्रदर्शित किया है। अभिलाष एव गुणकथन दशाओ का सुन्दर चित्रण 'शीताशुर्मुखमुत्पले'[४] इत्यादि श्लोक मे अवलोकनीय है।

विप्रलम्भ श्रृगार मे कवि प्राय व्यभिचारी भावो के वर्णन से सौन्दर्य सृष्टि करता है।

सागरिका से मिलन के क्षणभर बाद ही विदूषक के द्वारा वासवदता की सूचना पाकर सागरिका भयातुर हो वहाँ से चली जाती है उस समय राजा को कितना पछतावा होता है, इसका चित्रण इस श्लोक मे द्रष्टव्य है—

'जिसका मेरे प्रति अनुराग व्यक्त था, वह रत्नावली के समान प्रिया हाथ आई किन्तु कण्ठ मे धारण भी न की गई थी कि तुमने उसे खो दिया।'[५]

यहाँ राजा का दैन्य (खेद) व्यभिचारीभाव राजा की सागरिका विषयक रति का सम्यक् बोध कराता है।

वितर्क व्यभिचारी भाव के माध्यम से अपने हृद्गत भावो का आश्चर्यजनक वर्णन करता हुआ राजा कहता है कि 'मन स्वभावत चचल और दुर्भेद्य है फिर भी काम ने मेरे इस मन को एक साथ ही बाणो से बीध दिया यह आश्चर्य है।[६]

---

१ सा० दर्पण ३/१९०
२ वही ३/१३६
३ रत्ना० १/१८
४ रत्ना० ३/११, ३/१
५ वही २/१९
६ रत्ना० ३।२

यहाँ राजा को चूँकि मन की चचलता का ज्ञान है इसलिए उसे काम के द्वारा विध जाने मे आश्चर्य होता है। अत यहाँ वितर्क नामक व्यभिवारी भाव है।

विप्रलम्भ के पश्चात् सम्भोग श्रृगार के भी कुछ दृश्य विचारणीय है—

वासवदत्ता को सामने देखकर राजा उसकी प्रशसा मे कहता है—"हे कामदेव। आज तू अपनी अगहीनता (अनगत्व) की निश्चय ही निन्दा करेगा क्योकि इस प्रिया के हाथ का स्पर्श तू प्राप्त नही कर सकेगा।"[१]

यहाँ राजा के हृदय मे विद्यमान रति का का आलम्बन वासवदत्ता सामने है, उद्दीपन मदन महोत्सव एव अशोक आदि वृक्ष। अनुभाव वासवदत्ता का स्पर्श तथा व्यभिचारी भाव गुण कथन। अत यहाँ सम्भोग श्रृगार की सुन्दर व्यजना है।

कवि हर्ष नायिका की विशेपताओ का वर्णन करते समय नायक मुख से कहते है—'त्रैलोक्य की भूषण रूपा इस ललना की रचना करने के पश्चात् निश्चय ही ब्रह्मा भी चारोमुख हिला हिलाकर वाह वाह कर उठे होगे।'[२]

यहाँ ब्रह्मा के मुख चलन से नायिका के अलौकिक सौन्दर्य की स्पष्ट प्रतीति होती है। इसी प्रकार श्रगार के चित्रण मे कवि ने नायिका का विविध रूपो मे चित्रण कर अपनी कला को मूर्त रूप दिया हे। इस विषय मे एक चित्र अवलोकनीय है।

नायक नायिका को देखता हुआ कहता है कि—'मेरी दृष्टि बडी कठिनाई से दोनो उरु को पारकर बहुत देर तक नितम्ब स्थल पर भ्रमण कर त्रिवली के दुर्गम भाग मे निश्चल होकर प्यास से व्याकुल हो उन्नत स्तनो पर धीरे-धीरे चढकर नेत्रो का अवलोकन कर रही है।'[३]

यहाँ कवि ने नायिका के ऊरु भाग की क्लिष्टता, नितम्बो की विशालता, त्रिवली की गम्भीरता और स्तनो की ऊँचाई का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। अत कालिदास के समान श्रृगार के अति कोमल और मधुर क्षणो का उतना मार्मिक चित्रण हर्प भले ही न कर सके हो पर श्रृंगार के विविध अगो, कामदशाओ और नायिका सौन्दर्य का, जो चित्रण किया है उससे वे कालिदास के समान ही रसानुभूति कराने मे सक्षम है।

अवसरानुकूल अन्य रसो के चित्रण मे भी इनकी लेखनी सफल हुई है भले ही ये स्थल स्वल्प है।

द्वितीय अक मे बन्धन भ्रष्ट बानर के उपस्थित हो जाने सें स्त्री समुदाय मे कोलाहल मच गया, क्योकि वह बानर जब अन्तपुर मे आया तो वहाँ विद्यमान हिजड़े भय के कारण लज्जा छोडकर भाग खड़े हुए। बामन (बौने) कचुकी के

१ वही १/२२
२ वही २/१६
३ रत्ना० २/११

कचुक मे छिप गये। किरात इधर उधर जगलो मे भाग गये और कुब्ज पुरुष अपने देखे जाने के भय से झुक कर चलने लगे। [1]

यहाँ भयानक रस है। [2] जिसका स्थायीभाव भय, बामन, वर्षपदकु और पुरुषो मे है। बानर का चिल्लाना उद्दीपन ह, वामन आदि का छिपना, भागना अनुभाव है और इधर उधर ताकना व्यभिचारी भाव है। स्वय लक्षणकार विश्वनाथ ने उसे साहित्यदर्पण मे भयानक रस के उदाहरण रूप मे दिया है।

इन्द्रजाल प्रदर्शन के अवसर पर अन्तपुर की आग का समस्त पदावली मे वर्णन भी भयानक रस का सुन्दर निदर्शन है। [3]

कवि के द्वारा इसी प्रकरण मे भावशबलता की भी सुन्दर अभिव्यजना है—

'अग्नि से सागरिका की रक्षा मे तत्पर राजा उसके वस्त्रो की आग देखकर पहले तो भयाक्रान्त और बाद मे उसे बचाने के लिए उत्साहित होता है।' [4]

यहाँ कवि ने पहले राजा के हृदयस्थ भय स्थायीभाव को सागरिका के अगो मे लगी आग एव निगड निबद्धता से अधिक पुष्ट किया किन्तु शीघ्र ही वह उसे निकालने के लिए उत्साह भाव सम्पन्न हो जाता है। अत भयानक और वीर दो रसो मे प्रथम द्वितीय का अग बन जाने से अपराग व्यग्य नामक गुणी भूत व्यग्य काव्य हो गया।

वस्तुत यहाँ भावशबलता का अच्छा परिपाक है , जैसे—प्रथम वाक्य मे जब नायक नायिका को अग्निधूम सहन करने के लिए कहता है तो धृति व्यभिचारी भाव, फिर अशुक ज्वलन को देखकर किकर्तव्यविमूढ स्थिति मे दैन्य व्यभिचारी भाव पश्चात् सागरिका के पतन और निगडनिबद्धता से परेशानी मे विषाद व्यभिचारी तथा रक्षा के प्रयत्न मे मति व्यभिचारी भाव है। अत एक ही श्लोक मे घृति, दैन्य, विषाद और मति व्यभिचारी भावो की विद्यमानता से भावशबलता है। [5]

इस नाटिका मे वीर रस केवल विजय वर्मा द्वारा विन्ध्य नरेश के युद्ध-वर्णन अवसर पर अभिव्यक्त हुआ है। [6]

रुमण्वान के युद्ध-कौशल वर्णन मे कवि के रौद्र रस विन्यास की कला का भी परिचय मिलता है। नियमानुकूल दीर्घ समास और सयुक्त व्यजनो के बहुल प्रयोग से ओज गुण की सृष्टि करता हुआ कवि कहता है—

१ **वही २/३.**

२ **विकृत स्वर सत्वादेर्भयभावो भयानक ।**
सर्वांग वेपथुस्वेदशोषवैचित्र्य लक्षण ।
दैन्य सभ्रम समोह त्रासादिस्तत्सहोदरः ॥

—दश० ४/८०.

३ **रत्ना० ४/१४.**

४ **वही ४/१७**

५ **सा द. ३/२६७**

६ **रत्ना० ४/५.**

'अस्त्रो से शिरश्छेद, रक्त नदी प्लवन, शस्त्र घर्षण ध्वनि, कवच पर आघात से अग्निकणो की उत्पत्ति आदि व्यापारो वाले युद्ध मे मस्त हाथी पर सवार स्वरक्षार्थ प्रयत्नशील कोशलाधिपति को रुमण्वान ने सहस्रो बाणो से बीध कर मार डाला।[१]

यहाँ रुमण्वान का क्रोध स्थायीभाव अस्त्रशस्त्रो की ध्वनि, रुधिर धारा आदि से उद्दीप्त एव अमर्ष आदि व्यभिचारी भावो से पुष्ट होकर रौद्र रस मे परिणत हो गया। इन्द्रजाल की घटना मे अद्भुत रस का भी प्रयोग है।[२]

इस प्रकार हर्ष की विविध रचना चतुर लेखनी से श्रृगार जैसे कोमल रसो के साथ रौद्र वीर भयानक आदि रसो की सफल अभिव्यजना हुई है। विदूषक के वाक्यो मे हास्य रस का भी पुट मिलता है। इसीलिए तो सुमधुर सृष्टि करने मे सिद्धहस्त हर्ष एक नवीन साहित्यिक विधा नाटिका के जनक के रूप मे चिरकाल तक स्मृत किये जाते रहेगे।

विद्धशालभजिका—प्रणय प्रधान सस्कृत नाटिकाओ का मुख्य प्रतिपाद्य श्रृगार रस सम्पूर्ण नाटिका मे भिन्न-भिन्न रूपो मे अवस्थित रहता है, यह निश्चय करके ही मानो राजशेखर ने इस नाटिका मे सर्वत्र काम की विविध अवस्थाओ, उद्दीपको एव व्यभिचारी भावो का वर्णन कर श्रृगार रस की अभिव्यक्ति की है। इस नाटिका मे यद्यपि श्रृगारेतर विभिन्न रसो का वर्णन नही है तो भी नाटिका विविधता से भरी पडी है। कही ललित पदावली से कामदेव का चित्र खीचा गया है तो कही सुकुमारता मे भी कठोरता का दर्शन होता है। कही नायिका के शरीर मे पुष्पो से भी अधिक कोमलता है तो कही ग्रीष्म अपनी भयानकता से उसे तपा रहा है इत्यादि।

नायिका के नतभ्रू, कर्णफूल, कन्दुक क्रीडा आदि नायक की कल्पना के अवलम्बन है। रसपरिपाक की दृष्टि से यह नाटिका अत्यन्त प्रिय एव हृदयहारिणी है। यद्यपि उद्दीपको के वर्णनो मे पुनरुक्ति प्रतीत होती है, फिर भी उर्वर कल्पना और शब्दशक्ति मे यह दोष आच्छादित हो गया है। उनकी रसविन्यास परम्परा का कुछ उदाहरणो से परिचय दिया जा रहा है।

स्त्री-सौन्दर्य का वर्णन करते समय कवि प्राय उपमानो का तिरस्कार करके उसकी सौन्दर्य सृष्टि करता है। नायिका की प्रशसा मे नायक कहता है कि 'इसके श्यामल नेत्र नीलकमलो पर विजय प्राप्त कर चुके है। चन्द्रमा और कामदेव का धनुष दोनो पराजय की आशका से इसके मुख और भौहो के क्रमश मित्र बन गये है। इसका शरीर तो सौन्दर्य का बाजार है, ऐसा लगता है कि ओष्ठ पर स्मित रेखा धारण करने वाली इस सुन्दरी की रचना कामदेव तभी कर सकता है जबकि वह कुछ दिनो तक नैपुण्य का अभ्यास करे।'[३]

---

१ **वही ४/६**
२ **वही /१०-११.**
३ **विद्ध० १/३३.**

यहाँ राजा का नायिका विषयक रतिभाव चित्र आदि से उद्दीप्त और हर्ष से पुष्ट होकर श्रृगार की रसानुभूति कराता है।

कवि राजशेखर नायिका के अगो मे ओर अधिक सोन्दर्य की कल्पना करते हुए कहते है कि इसके भ्रू एव नेत्रो मे जो धृष्टता है, स्तनो मे किचित उभार है। कटिप्रदेश क्षीण और नितम्ब स्थूल है, उससे ऐसा लगता है कि योवन ने इसे जमानत के रूप में कामदेव को समर्पित किया है।[१]

वस्तुत यह कवि की सर्वथा अनूठी कल्पना है। स्त्री सौन्दर्य के चित्रण मे असाधारण प्रतिभा सम्पन्न कवि राजशेखर कामदशाओ का वर्णन कर रसास्वाद कराने मे भी कम कुशल नही है।

'नायिका चन्दन रस से चन्द्रमा का चित्र बनाकर उसे दात से काटती है। फूलो को तोड-तोड कर फेक रही है और अगुलियो को तोड मरोड कर कामदेव की निन्दा करती है।'[२]

यहाँ नायिका चन्द्रमा को नष्ट कर देने की प्रतिशोध भावना से उसका चित्र बनाकर दात से काट रही है, इसी प्रकार पुष्पो को कामशर मानकर उन्हे नोच रही है। काम अशरीरी है अत कोई वश न चलने के कारण विवश होकर अपनी ही अगुलियाँ तोड कर और निन्दा करके अपने अन्तर्हृदय की ज्वाला शान्त करने का यत्न करती है। इसलिए यहाँ नायिका की उन्माद कामदशा का उत्कृष्टतम रूप चित्रित किया गया है।

इसी प्रकार नायिका विरह सन्तप्त नायक भी उन्माद अवस्था मे यह कहना नही भूलता कि हे चन्द्र तुम्हारा जन्म क्षीरसागर से हुआ है, कुमुदो से मित्रता है, तुम्हारी किरणे अमृतवर्षिणी है फिर तुम मेरे ऊपर अपनी ज्वालामयी किरणे क्यो फेंक रहे हो।[३]

यहाँ चन्द्र के सस्पर्शी सभी शीतल है फिर यह उसके विपरीत अग्नि-ज्वाला क्यो उगलता हे ? यह विरोधी भाव चिन्तनीय है। इससे नायक के हृदय का तर्क और दैन्य भाव व्यक्त हो गये है।

विरह की पराकाष्ठा का अनुभव करता हुआ नायक कहता है कि कृष्ण पक्ष की रात को काली स्याही से और गाढा कर दो, तन्त्र-मन्त्र से कमलो का सौन्दर्य नष्ट कर दो, चन्द्रमा के टुकडे-टुकडे कर इसे पीस डालो जिससे कि दसो दिशाओ मे नायिका का मुख देख सकू।[४]

---

१ विद्ध० १/४०

२ चन्द्र चन्दनकर्दमेन लिखित यन्मार्ष्टि दष्टाधरा
काम पुष्पशर. किलेति सुमनोवर्ग लुनीते च यत्।
वन्द्य निन्दति यच्च मन्मथमसौ भङ्क्त्वा प्रहस्ताङ्गुली
स्तत् काम सुभग! त्वया वरतनुर्वातूलता लम्भिता॥ —विद्ध० २/२०

३ विद्ध० ३/१३

४ वही ३/१

यहॉ राजा असम्भावित अर्थ की कल्पना करता हुआ जड चेतन मे अन्तर नही कर पा रहा है, जिससे उसकी उन्माद कामदशा अभिव्यक्त होकर विप्रलम्भ श्रृगार की प्रतीति कराती है।

कवि ने प्रभात, ग्रीष्म, वसन्त, सन्ध्या, मलय समीर, आदि उद्दीपनो का चित्रण भी बडी सजीवता से किया है।

मलय समीर का मोहक चित्रण अवलोकनीय है, यह मलय पवन स्त्रियो को झूला झूलने के लिए प्रेरित करता है, मानिनी के मान को तोडता है, प्रेमकार्य मे बाधको का विनाश करता है और कोकिलाओ के कण्ठ मे पचम राग उत्पन्न कर रहा है।[१]

यहॉ मलय पवन की विशेषताओ के वर्णन से कामी जनो के हृदयो मे विद्यमान रति का उद्दीपन होता है। राजशेखर श्रृगार के उद्दीपको का चित्रण करते समय श्रृगाराभास का भी मनमोहक वर्णन करते है। यथा—

कुन्दलता के रसविहीन हो जाने पर भ्रमर प्रणय प्रेमाधिक्य के भग होने की आशका से कुरुश्री के सदृश रसाल की उस शाखा को जो पुष्परूपी दृष्टि वाली है, धीरे से जाकर अपनाता है, आदर करता है, आलिगन करता है और चुम्बन करता है।[२]

यहॉ स्पष्ट रूप से भ्रमर मे कामी पुरुष की चेष्टाओ व अनुभावो का वर्णन करने के कारण श्रृगार तिर्यग्योनिगत होने से रसाभास[३] हो गया है।

नाटिका की कोमलता और उसकी प्रणय कथा को ध्यान मे रखकर ही सम्भवत राजशेखर ने श्रृगार के अतिरिक्त किसी अन्य रस का चित्रण करना उचित नही समझा। यत्र तत्र कुछ झलक सी मिलती है अन्य रसो की, जैसे—

नान्दी मे पार्वती के विवाह अवसर पर भगवान् शकर के भयानक आभूषणो और नान्दी की नासिका मे भयकर सर्प को देखकर डरी हुई पार्वती की रक्षा के लिए किये गये उपायो के वर्णन मे 'भय' स्थायीभाव का वर्णन है किन्तु भगवद्विषयिणी रति मे पर्यवसान होने के कारण उसका सम्यक् परिपाक नही हो सका।[४]

विदूषक के मिथ्या विवाह प्रसग[५] तथा उसकी उक्तियो मे हास्य की प्रतीति होती है।

राजशेखर की प्रतिभा का उज्ज्वल प्रकाश अगी श्रृगार रस के विविध स्वरूपो के चित्रण मे हुआ है जिससे नाटिका की कोमल प्रणय कथा का औचित्य

१ वही १/२७
२ विद्ध० १/४-५
३ सा० द० ३/२६४
४ विद्ध० १/३.
५ विद्ध० २ य अक

सरक्षित हुआ है। श्रीहर्ष की रत्नावली के आधार पर रचित होने पर भी रस-विन्यास परम्परा मे कवि कालिदास के अधिक समीप है।

कर्णसुन्दरी—सस्कृत नाटिकाओ की प्रणय कथा को राजमहलो की चहारदीवारी के अन्दर विलासक्रीडा का रूप देकर श्रृगार रसरजित करने की चेष्टा तो सभी कवियो ने की है किन्तु आचार्य बिल्हण ने नाटिका की गेयता की ओर विशेष ध्यान दिया है। इससे उनकी उर्वर कल्पनाओ मे काव्यात्मकता अधिक है।

इस नाटिका मे सभी या अनेक रसो का समावेश नही है, इसका कारण स्पष्ट है कि बिल्हण ने ऐसे वर्णनो की योजना ही नही की जिससे कि अन्य रसो के परिपाक की आवश्यकता ही प्रतीत होती। देवी नायिका और कन्यानायिका के साथ राजा के प्रणय-चित्रण मे सम्भोग और विप्रलम्भ श्रृगार का तथा उद्दीपको और व्यभिचारी भावो की सफल अभिव्यजना कर बिल्हण ने नाटिका की चारुता भग नही होने दी।

बिल्हण की रसवर्णना की कुछ मुख्य प्रवृत्तियो का विश्लेषण इस प्रकार है—

आलम्बन नायिका वर्णन—नायक स्वप्न मे नायिका को देखकर उसकी प्रशसा मे कहता है—कि 'उस स्त्री का जिसकी त्रिवली स्पष्ट है, वेणीकलाप चचल है, नेत्र अर्द्ध निमीलित है और कण्ठ बहुत ही मधुर है, मुख कामदेव ने मेरे हृदय मे अकित कर दिया है।'[१]

यहॉ नायक के हृदय मे स्वप्नदर्शन से नायिका के प्रति पूर्वानुराग का सुन्दर चित्रण है।

स्वप्नदृष्टा नायिका केवल नायक को ही नही सम्पूर्ण जगत को जीतने की क्षमता रखती है। क्योकि उसके विविध अगो मे कामदेव ने ऐसी सृष्टि ही जो की है।[२] इसीलिए उसके प्रति सन्तप्त होने मे नायक स्वय का कोई दोष नही मानता। वह तो समस्त जीवलोक के नेत्रो की चन्द्र सम्बन्धी वर्तिका है, कामदेव की कीर्ति पताका है।[३]

नायिका की वियोगावस्था—नायिका नायक के विरह मे कितनी सन्तप्त हो गई है इसका सुन्दर चित्रण इस वर्णन मे उपलब्ध होता है—

'मुख से निकली श्वास से आसपास की लताओ के पत्ते झुलस गये है, आखो से निकले हुए गरम अश्रु, वृक्षो के नीचे आलवाल के रूप मे प्रतीत होते है। शीतलता के लिए शरीर पर रखे गये नलिनी दल मुरझा गये है और मुख दूर्वादल के समान पीत वर्ण हो गया है।[४]

१ **कर्ण० १/२८**
२ **कर्ण० १/२९**
३ **वही १/३३.**
४ **वही २/२५**

नायिका का यह स्वरूप उसकी विरह वेदना का उत्कृष्ट रूप व्यक्त करता है, जिसे देखकर नायक का काम और अधिक उद्दीप्त हो उठा है।

नाटिका का तृतीय अक तो नायिका के विरह-वर्णन से भरा पडा है। एक स्थल पर वह अपनी सखी से स्पष्ट कह देती है कि—'मै अब देवी के भय से भयभीत या लोकलाज से लज्जित होने की चिन्ता नही करुगी और अपने आपको अपने प्रेमी के समीप जाकर समर्पित कर दूगी क्योकि वियोगाग्नि से बढकर दु ख देने वाली ससार मे अन्य कोई भी वस्तु नही है।[१]

यहाँ नायिका की दृष्टि मे वियोगाग्नि से बढकर पीडा देने वाला न तो देवी का भय ही है और न लोकलज्जा ही। अत यहाँ विप्रलम्भ स्थिति की चरम अनुभूति होती है।

कामदशाएँ—विप्रलम्भ स्थिति मे नायिका की पीडा इतनी अधिक बढ गई है कि उसे मरण के अतिरिक्त अब कोई अन्य वस्तु शरण नही दे सकती। काम उसके अगो को और मन को अहर्निशि जला रहा है, असहाय स्थिति मे अब उसकी सहायता करने वाला कोई भी नही है। इसलिए मरण निश्चित है।[२]

यहाँ नायिका मे निराशा के साथ मोह नामक कामदशा का सफल चित्रण है। नायिका इस प्रकार की निराशात्मक दशा का चित्रण अन्य अनेक स्थलो पर[३] भी किया गया है।

उद्दीपन—नायक नायिका परस्पर एक दूसरे के विरह मे वसन्त की छटा को देखकर उद्दीप्त हो जाते है और नायक कह उठता है—कि आम्र पर लगी ये मजरियाँ एव कोकिला का कलरव कामदेव की त्रैलोक्य को मारने की शरारत है।[४]

नायिका चन्द्र के उद्दीपक रूप को देखकर कहती है—कि यह चन्द्र अपनी किरणो से मुझे खीच रहा है, इसे मार डालो, भगवान शकर इसे फिर से भस्म कर दो,[५] इस प्रकार नायिका की उन्माद कामदशा का ज्ञान होता है। क्योकि नायक विषयक उसकी रति चन्द्र दर्शन से उद्दीप्त हो उठी है।

विदूषक के मुख से चन्द्र का उद्दीपक वर्णन सुनकर नायक इतना उद्दीप्त हो उठा कि वह सजीव निर्जीव मे भेद करना भी भूल गया। उसके प्रलाप का यह कथन द्रष्टव्य है—

"यह कामदेव जो कोकिला का कलरव कराता है, जो अपने धनुष पर आम्र मजरी का आरोपण करता है, जो चतुर्दिक पुष्पशल्यो को विकसित करता है, वह सब इसलिए कि विरहाग्नि का अहकार जीवित बना रहे।"[६]

१ कर्ण० २/३४.
२ वही २/३५
३ वही २/२७-२८
४ वही २/४३
५ कर्ण०, ३/१६
६ वही, १/४८.

सुन्दर कोमल वर्णोपन्यास मे कवि की मधुर वाणी वसन्त वर्णन मे पुष्पकलिका वत् प्रत्येक कामी की अन्तर्दशा का सुन्दर चित्रण करती है।

भावशान्ति—विरह जन्य कथाओ और प्रकृति के उद्दीपक चित्रणो के साथ ही भावोदय, भाव शान्ति आदि अन्य रसभेदो का भी मधुर परिपाक इनकी कविता मे हुआ है। भावशान्ति का एक चित्र अवलोकनीय है—

नायक राजा, स्वप्न मे प्रेयसी को फासी लगाते देखकर जब उसे रोकता है और उसकी रूपमाधुरी की प्रशसा करता हुआ उसका वस्त्राचल पकडना चाहता है, तभी वह रशना की मधुर झकार करने वाली न जाने कहाँ लुप्त हो जाती है।[१]

यहाँ राजा के हृदय का रतिभाव उसके अचानक लुप्त हो जाने से शान्त हो गया। इसलिए रति भाव की शान्ति के कारण यह भावशान्ति का सुन्दर उदाहरण है।

भावोदय का भी एक उदाहरण द्रष्टव्य है—राजा कहता है कि 'भगवान शकर को प्रणाम कर जब प्रदक्षिणा के लिए आगे बढा तो कोई मन को हरण करने वाली, कदली स्तम्भ के समान जघाओ वाली, कामदेव की जीवित नगरी के समान स्त्री मेरे नेत्रो के समक्ष आ गई।[२]

यहाँ राजा के हृदय मे पूर्वत भगवद्विषयिणी रति (भक्ति) थी किन्तु उसमे नायिका आलम्बनात्मक रति भाव का उदय हो जाने से भावोदय की सफल अभिव्यजना है।

अन्य रस—रस विन्यास कला मे दक्ष बिल्हण की कल्पना श्रृगारेतर वीर भयानक आदि रसो के उपन्यास मे भी प्रसूत हुई है।

वीरसिंह के द्वारा युद्धस्थल मे वीरपुरुषो की स्थिति का वर्णन जब किया गया है तो वहाँ वीर रस का[३] और युद्धवर्णन मे भयानक रस[४] का सफल विन्यास है।

वस्तुत कवि शब्द सौन्दर्य के साथ रस की उपस्थिति के प्रति अधिक आग्रही है, इसलिए यत्र तत्र श्रृगार वर्णनो मे समासबाहुल्य से जहाँ रसानुभूति मे कुछ व्याघात सा प्रतीत होता है वही वह उदात्त वर्णनो मे गुण बन जाता है।

कवि विविधता का पक्षपाती है इसीलिए उनकी लेखनी से श्रृगारादि रसो के परिपाक के साथ ही रसाभास आदि की योजना भी हुई है। तिर्यग्योनिगत श्रृगार का चित्रण प्रस्तावना मे भ्रमर द्वारा कुन्दलता के चुम्बन आदि कार्यो मे स्पष्ट है।[५]

१ वही, १/३९
२ कर्ण० १/३०
३ वही ४/१७-१९.
४ वही ४/२०
५ कर्ण() 1/9.

कवि ने इस पद्य मे विद्धशालमजिका का अनुकरण किया है।[१]

तटस्थ दृष्टि से बिल्हण की रसदृष्टि का यदि अवलोकन किया जाय तो यह कहना अनुचित न होगा कि उन्होने श्रृगारेतर अन्य रसो के चित्रण के प्रति कोई प्रयास नही किया और इससे 'अगमन्ये रसा सर्वे' की नाटक रूढि का अभाव उनकी इस नाटिका मे है।

नाटिका मे सम्वाद भी अत्यल्प है जो है भी वे प्राय काव्यात्मक होने से किचित् क्लिष्टता अवश्य उपस्थित करते है। श्रृगार आदि रसो का भी प्राय वर्णनात्मक चित्रण होने से रसपरिपाक की स्थिति कम ही स्थलो पर आती है। फिर भी इनकी विद्वत्ता और कवित्व पर कोई आक्षेप नही किया जा सकता।

उषारागोदया—कविवर श्री रुद्रचन्द्रदेव ने अपनी नाटिका उषारागोदया म जितनी तत्परता से रूढियो का पालन किया है वह स्तुत्य है। ललित पद-विन्यास अनायास ही रसवृष्टि करता है। कवि ने नाटिका की कोमल प्रकृति को ध्यान मे रख कर पूर्ववर्ती नाटिकाकारो के समान श्रृगार के उद्दीपको, कामदशाओ, व्यभिचारी भावो एव सयोग तथा विप्रलम्भ का ही विशद विवेचन किया है। रसवर्णन की दृष्टि से यद्यपि कोई नवीन विशेषता नही है तो भी रस-विन्यास किसी भी पूर्व नाटिकाकार से हीन नही है।

"उषाविषयक रतिमान कुमार (नायक) नायिका का स्मरण कर वर्षा की विशेषता का वर्णन करता हुआ कहता है कि 'यह मेघ विरहिणी बधुओ के ऑसुओ को अपनी जलधाराओ से द्विगुणित कर रहा है, इसी प्रकार नीले अन्धकार से उनकी निराशा को और सुगन्धित वायु से उनकी उच्छ्वासो को द्विगुणित कर रहा है।"[२]

यहॉ वर्षा का उद्दीपक रूप विरहिणी स्त्रियो के विरह जन्य अनुभावो को न केवल उद्दीप्त अपितु द्विर्गुणित कर रहा है, यह विशेपता है।

इसी प्रकार कवि की मधुर कल्पना का एक बसन्त चित्रण भी अवलोकनीय है। जहॉ 'कोकिला प्रत्येक पल्लव पर कलरव कर रही है, भौरे प्रति कली का चुम्बन एव रसास्वाद कर रहे है। वायु प्रकम्पित पुष्पासव को धारण करने वाले वृक्ष घूर रहे है, ऐसा काम की विजय का आरम्भ करने वाला वसन्त धन्य है।'[३]

इतना ही नही लताऍ भी तो लोगो को मदविह्वल कर रही है—क्योकि वे वृक्षो का आलिगन करती है। कोकिला स्वर के माध्यम से पचम स्वर मे गानकर अत्यन्त पुष्पासव का पान करने से स्वय भी मदविह्वल है और विरही लोगो को भी मदविह्वल कर रही है।[४]

---

१ **विद्ध0 1/4-5**
२ **उषा० १/१५**
३ **वही २/६**
४ **वही २/१०**

यहाँ कुमार को जो स्वय वियोगाकुल है, लतावृक्ष व्यतिकर मे नायक नायिका व्यवहार की प्रतीति हो रही है। कवि ने उद्दीपको मे अशोक, सध्या, माधवी लता और रात्रि के अन्धकार का वर्णन किया है।

नायिका उषा द्वारा नायक के चित्र को देखकर जो खेद व्यक्त किया है वह अवलोकनीय है। वह कहती है—ये वही महानुभाव है जिनकी रुपमाधुरी पर मै मोहित हूँ, ऐसा लगता है कि मै कही लिख दी गई हूँ। भूतो से ग्रहण कर ली गई हूँ, और मेरा ज्ञान नष्ट हो गया है क्योकि गुरुजनो के द्वारा देख ली जाने पर भी मैं निर्लज्ज बनी बैठी हूँ।[१]

यहाँ नायिका को यह विवेक है कि इतना विरह सहन कर जीवित नही रहना चाहिए था। इस वर्णन से नायिका की उत्कट प्रेम भावना का पता चलता है।

नायक तो नायिका के क्षण भर मिलन की कामना से उसे श्रृगार रसामृत का प्रवाह, चातुर्य की निधि, सौन्दर्य की लता, सौभाग्य बीज की उर्वरा भूमि, अनुराग कमल की वापी और मनमोहक चूर्ण बतलाता है।[२]

यहाँ नायक की रति का आलम्बन नायिका, उद्दीपन स्मरण, अनुभाव रूपवर्णन और दैन्य व्यभिचारी भाव है। इन सबसे श्रृगार की विशेषत विप्रलम्भ की अभिव्यजना हुई है।

नायक नायिका को श्रृगारामृत की नदी मानकर यह विश्वास प्रकट करता है कि यदि वह उसके समक्ष उपस्थित मात्र ही हो जाय तो उसकी प्यासी आँखे तृप्त हो सकती है।[३]

नायक को जब नायिका का विरह पीडित कर रहा है तो उसका धैर्य विगलित हो जाता है और वह उन्माद या प्रलाप स्थिति मे आकर काम को चाण्डाल कहता है और स्वय उसके द्वारा हृदय विदीर्ण कर प्राण निकलने की अनुभूति करता है।[४]

वह नायक कभी भी अर्थात् प्राण त्याग स्थिति तक नायिका से वियुक्त भी नही हो सकता और वह नायिका उसे बाण के रूप मे पीडित भी करती रहेगी ऐसा उसका विचार है। क्योकि वह नायिका को बाण की नोक के समान जो समझता है। जिसने न केवल उसके हृदय को ही नही अपितु समस्त इन्द्रियो को छलनी बनाकर सज्ञा शून्य भी कर दिया है।[५]

विप्रलम्भ श्रृगार की व्यजना के साथ ही वह सम्भोग श्रृगार के भी मन-मोहक चित्र प्रस्तुत करता है। हिन्दोलोत्सव मे उसका पटाचल वायुप्रकम्पित होकर कामदेव की पताका के समान ही प्रतीत होता रहा है।[६]

१ उषा० ३/८
२ वही ३/१९
३ वही ३/२५
४ उषा०, पृष्ठ ३७।
५ वही, ३/३९.
६ वही, १/२०

वर्षा से पिच्छिल मार्ग पर देवी नायिका भला कैसे चल सकेगी क्योकि उसकी गति तो हस की गति के समान है। उत्तुग पयोधरो से आलस्यपूर्णा है।[१]

यहाँ नायिका के पयोधरो की उन्नति उसके गमन मे बाधक प्रतीत हो रही है—यह कथन कवि की सूक्ष्मेक्षिका बुद्धि का प्रभाव है।

नायिका के प्रति प्रणयी नायक की प्रेमभावना मे जब देव के कोप का स्मरण नायक को आ जाता है तो उसका हृदय फटने लगता है।[२] यहाँ श्रृगार रस की स्थिति मे भय या शोक विरोधी भावो का स्मरण हो आने से किसी प्रकार भी श्रृगार की हानि नही होती अपितु उसकी ओर पुष्टि होती है क्योकि स्मर्यमाण, विरोधी, भी रस का उत्कर्षाधायक ही होता है।[३]

इस प्रकार सम्पूर्ण नाटिका मे श्रृगार के विविध रूपो की सफल अभिव्यजना है। श्रृगारेतर अन्य रसो का सम्यक् परिपाक नही हुआ है, फिर भी भयानक और रौद्र रसो का भी अवसरानुकूल उपस्थापन किया गया है।

अश्वशाला से बन्धन भ्रष्ट मेषद्वन्द्व चित्रलेखा उषा आदि स्त्री पात्रो को भयाक्रान्त कर उन्हे वहाँ से भगा ही देता है।[४] यहाँ भयानक रस की और दारुकि के द्वारा कृष्ण बाणासुर सग्राम[५] के वर्णन मे वीर और रौद्र रसो की भी व्यजना स्पृहणीय है।

इन वर्णनो के आधार पर ही रुद्रचन्द्रदेव इस अपवाद से मुक्त हो गये कि वे अवसरानुकूल अन्य रसो का वर्णन नही करते।

चन्द्रकला—सस्कृत काव्यशास्त्र के प्रतिभावान् विद्वान् कविराज विश्वनाथ कृत नाटिका मे श्रृगार के द्विविध रुपो के अतिरिक्त नायिका सौन्दर्य, उसकी चेष्टाओ और नायक की हृदयोक्तियो का सरस चित्रण महत्त्वपूर्ण है। स्वय लक्षणकर्ता होने के कारण भी कवि ने रसपरिपाक की ओर अधिक ध्यान दिया है।

सस्कृत साहित्य मे कविराज का 'लताकुजम्' इत्यादि श्लोक[६] मलय- पवन के उद्दीपक रूप के लिए अत्यादृत है। श्रृगार के उद्दीपको मे वसन्त का सर्वोपरि स्थान है, क्योकि उसमे मलय समीर, पुष्प वृद्धि, निर्मल चन्द्रिका, भ्रमर-गुजन, कोकिलारव और नवपल्लवो की इतनी समृद्धि होती है कि किसी भी वियुक्त प्रणयी की मानसिक आसक्ति मे एक कामुक ज्वार उत्पन्न हो जाता है।

---

१ वही, १/२६
२ वही, २/२२
३ स्मर्यमाणो विरुद्धोऽपि साम्येनाथ विवक्षित.।
अगिन्यगत्वमाप्तौ यौ तौ न दुष्टौ परस्परम्। —काव्यप्रकाश, ७ उद्योत.
४ उषा० ३/१०.
५ वही २/२४-३०.
६ चन्द्र० १/३

नाटिका की कथावस्तु का उपक्षेप करते समय कवि जहाँ अप्रस्तुत प्रशसा अलकार का सहारा लेता है, वही वह तिर्यग्योनिगत रस की अभिव्यजना कर रसाभास का उदाहरण प्रस्तुत करता है।[१]

वियुक्त नायक रूढि के अनुसार नायिका के अगो मे अपने अनुकूल गुण देखता है, वह स्वत काम सन्तप्त है, इस सन्ताप को शान्त करने के लिये नायिका ही साधन है। इसीलिए उसका यह कथन कि 'उसकी दृष्टि नीलकमलो की वृष्टि है, मुख सम्मोहन मन्त्र या यन्त्र के रूप मे लोगो को आकृष्ट कर रहा है—भूलता कामदेव की यष्टि और शरीर अमृत रस का सागर है[२] अक्षरश सत्य है। नायिका के गुणकथन से निश्चय ही उसके हृदय की अभिलाषा और अधिक उद्दीप्त हो जाती है यही काव्यमाधुर्य है।

यत्र तत्र विश्वनाथ ने नायिका वर्णन मे घिसीपिटी कल्पनाएँ कर कोई विशेष चमत्कार नही उत्पन्न किया है। उदाहरणार्थ नायिका के अवयवो का वर्णन करते समय नायक कहता है 'इसके भूमि पर रखे पैर स्वर्ण कमल के समान अहर्निशि खिले हुए है। ऊरु युगल कदली स्तम्भ के समान, श्रोणी प्रदेश सौन्दर्य-सागर मे निमग्न द्वीप के समान, मत्तगजराज के कुम्भ के सदृश उरोज द्वयी एव मुख निष्कलक चन्द्र की शोभा प्राप्त कर रहा है।[३]

वस्तुत यहाँ स्वर्णकमल, कदलीस्तम्भ, गजराज कुम्भ और निष्कलक चन्द्र आदि उपमान भूयसा वर्णित उपमान है। केवल सौन्दर्य सागर मे निमग्न द्वीप की अभिनव कल्पना ही सम्पूर्ण श्लोक की चारुता की सृष्टि करता है।

सौन्दर्यसागर के प्रति अधिक श्रद्धावान् नायक निरन्तर उसका अवगाहन करना चाहता हे इसीलिए जब वह नायिका का ईषत् दृश्यमान उरोज देखता है तो उसके सोन्दर्य सागर मे स्वत गोता लगाना कैसे भूल सकता है।[४]

नायिका तो अपने हृदय को स्पष्ट कह देती है कि उसे कष्ट भोगना ही हे क्योकि उसने विवेक खोकर ऐसे व्यक्ति से प्रेम किया है जो दुर्लभ है अत अब दु खी होना कोई अर्थ नही है।[५]

यहाँ नायिका का निराशा भाव स्फुट होकर रसानुभूति कराने मे सक्षम है। उसकी काम की प्रलाप दशा का चित्रण स्पृहणीय है—'नायिका कहती है कि एक ओर तो मुझे प्रिय का विरह पीडित कर ही रहा था कि उसमे चन्द्र और उदित हो गया, जिससे विधाता ने मेरी चोट पर एक और चोट कर दी।'[६]

१ चन्द्र० १/४
२ वही १/७
३ वही १/१३
४ दर प्रकाशे कुचकुम्भमूले द्रुत निपत्य द्रुतकर्बुराभे।
लावण्यपूरे विनिमग्नमुच्चैर्न मे कदाचिद् बहिरेति चेत ॥ —चन्द्र० १/१५
५ चन्द्र० १/१७
६ चन्द्र: २/१२

उसे इतने पर भी सन्तोष नही होता तो वह विनम्र निवेदन कर उसे मेघो मे छिप जाने की सलाह देती है किन्तु चन्द्र पर कोई प्रभाव न होने पर वह उसे कपटी व्यक्ति मानती है। जो ऊपर से प्रसन्न किन्तु अन्दर कलुषित अन्तर वाले होते है।[१]

यहाँ नायिका के हृदय का दैन्यभाव स्फुट है। कवि ने इसी भॉति कोकिला कूजन को, आम्रमजरियो को कामदेव की शरारत बतलाकर यह स्पष्ट कर दिया है कि कोई भी वियोगी कोकिलारव को सुनकर न तो शयन कर सकता है, न चल सकता है और न खडा ही रह सकता है।[२]

नायक की इस दशा के रहते हुए भी उसे अपने चित्त मे प्रिया प्राप्ति की आशा भी है, वह अपने हृदय की अधीर भावनाओ को प्रकट करता है—सज्जन लोग चाहे हमसे दूर हो जाये। हे सुन्दरी तुम मुझसे बोलती क्यो नही, ठीक है व्यर्थ के प्रयत्नो मे लगे रहना मूर्खो की आदत है, चचल नयने मुझे मत छोडो, क्या तुम मेरे आलिगन के विषय मे पूछ रही हो ? हे चित्त क्या तुम किसी दुर्लभ वस्तु की प्राप्त्याशा मे हो, हे सुन्दरी तुम कहाँ हो ?[३]

यहाँ नायक के विभिन्न भावो की भावशबलता उसके प्रलाप का परिणाम है। क्योकि इस एक ही पद्य मे क्रमश गर्व, औत्सुक्य, मति, दैन्य, आवेग, घृति और विषाद व्यभिचारी भावो का वर्णन है।

तरक्षु वर्णन मे कवि ने भयानक रस की सफल अभिव्यजना की है।[४] वही जब वह उसे मारने के लिए लोगो को विश्वास दिलाता है तो उस कथन से वीर रस की स्वाभाविक चर्वणा होती है।[५] यहाँ राजा तरक्षु को मारने के लिये 'औत्सुक्य' वीर का स्थायी भाव तरक्षु की उद्दीपक क्रियाएँ एव रानी का भय उसे उद्दीप्त कर शत्रु विजय के स्मरण से वह पुष्ट होकर सम्यक् अनुभूति करा सकने मे सक्षम है।

वस्तुत इस सम्पूर्ण नाटिका मे एकमात्र श्रृगाररस की ही विशेषेण सृष्टि है यत्र तत्र एक दो बार ही वीर भयानक रसो की अवतारणा हुई हे। कही कही विदूषक की उक्तियो मे हास्य का पुट दिखाई पड़ता है। चन्द्र का वर्णन करता

---

१ तदिदानी मेघान्तरेऽपि गोपायस्वात्मानम्। अलमेतेन दुर्जनोचितेनाचरितेन। (सरोषम्) आ· कथमतिदीनतया मयैवमभ्यर्थितोऽपि पुन पुनरपि वर्षसि मयि विषसवलित किरणजालम्। (विचिन्त्य) हु जाने यत् किल बहिर्दर्शितप्रसादानामपि कलुषितान्तराणा स्वभाव एव एष·। चन्द्र०, पृष्ठ ३५-३६

२ चन्द्र० ३/४.

३ सन्तोऽस्यन्तु पराडमुखा, सुमुखि मा किं नाम नौ भाषसे।
मूढाना वितथप्रयासपरता, मा मुच वामाक्षि माम्।।
(किं प्रपृच्छसि परीरम्भ न रम्भोरु मे।,
चेत प्रार्थयते किमन्यसुलभम् हा । क्वासि मे प्रेयसि।। चन्द्र० ३/६

४ चन्द्र, २/४,६.

५ वही, २/५

हुआ वह उसे मक्खन का गोला और उसकी किरणो को दुग्धधारा बताकर औचित्य की रक्षा तो करता ही है हास्य की सृष्टि भी करता है।

इस प्रकार प्रणय प्रधान नाटिका का कथानक श्रृगार रस से आप्लुत होकर सहृदय हृदयो का आह्लादक है।

वृषभानुजा—रत्नावली आदि नाटिकाओ के अनुकरण पर उपनिबद्ध श्रृगार रस प्रधान वृषभानुजा नाटिका की रचना कर कवि मथुरादास ने आधुनिक काल मे इस परम्परा को अक्षुण्ण रखा। कृष्ण राधा की प्रणय कथा का सरस चित्रण केवल श्रृगाररसमय ही है जहाँ कोई भी ऐसा वर्णन नही है जो किसी अन्य रस की प्रतीति भी करा सके। फिर भी श्रृगार का बहुविध वर्णन कवि की कला और रस परिपाक की दृष्टि से स्पृहणीय है।

नाटिका की नान्दी मे भगवान् कृष्ण की राधा विषयक रति का चित्रण मनोहारी है—'राधा के कपोलपर पत्राली रचना की कामना से कृष्ण के नेत्र राधा के मुख पर लगे रह गये और हाथो मे कम्पन होने लगा।[१]

यहाँ राधा का मुखावलोकन एव कम्प अनुभाव और सात्विक भाव है जिनसे उनकी हृद्गत भावनाओ का मधुर ज्ञान होता है। श्रृगार की उत्कट अनुभूति होते हुए भी देवादि विषयक रति होने के कारण यह भाव का सुन्दर निदर्शन माना जा सकता है।

राधा के नूपुरो की ध्वनि मे कृष्ण को पहले तो भ्रमरो की, ध्वनि का, फिर हस कदम्ब कूजन का सन्देह होता है किन्तु बाद मे उसे निश्चय हो जाता है कि यह राधा के नूपुरो की ध्वनि है क्योकि दिशाएँ राधा के शरीर कान्ति से स्वर्ण सिक्त सी प्रतीत हो रही थी।[२]

राधा के नूपुरो मे भ्रमर, हस कूजन आदि की भ्रान्ति से राधा विषयक रति का पोषण हुआ है।

प्रकृति के स्थूल स्वरूप मे भी उसे चेतन पुरुषो के समान अनुभूति होती है। वह लतामुखी राधा के द्वारा स्पर्श किये जा रहे तमाल वृक्ष को धन्य कहता है।[३]

नायक को खेद है कि उसने नायिका की प्राप्ति पर उसे रोक क्यो नही लिया क्योकि समस्त ससार की शोभाधायिका स्त्री मिलती कहाँ है।[४]

यहाँ नायक ग्लानि का अनुभव कर पछता रहा है, इतना ही नही वह तो प्रेयसी के बिना क्षण भर भी जीवित रहना नही चाहता क्योकि वियोग मे जीवित रहना प्रेम के अभाव का हेतु है।[५]

१ वृष०, १/१
२ वही, २/६
३ वही, २/७
४ वही, २/१०.
५ वृष०, २/१२

इसी प्रकार नायक का विप्रलम्भ स्वरूप भी नायिका के अग वर्णन मे साकार हो उठा है। वह कहता है कि उसका प्रत्येक अग सौन्दर्य की निधि है, विलास का भवन है, कान्ति की अधिष्ठात्री देवता है, माधुर्य रस का सार है।[१]

यहाँ नायक मे स्मृति कामदशा और प्रलाप की मधुर अभिव्यक्ति है। इसी प्रकार नायिका के विविध अगो मे अनेक प्रसिद्ध अप्रसिद्ध उपमानो की कल्पना कर कवि ने जहाँ अपनी कला को साकार किया है, वहीं वह यह भी स्वीकार करता है कि रमणीय स्त्रियो का भय भी उनका सौन्दर्याधायक होता है। क्योंकि उसकी दृष्टि मे रमणी स्त्रियो की (नायिका की) रचना ब्रह्मा पॉच भोतिक तत्वो से न कर केवल अमृत से ही करता है।[२]

नायक तो काम मे भगवान् शकर के जलाने से अब भी अग्नि कणो की सत्ता स्वीकार करता है क्योकि पुष्पबाण और अनगहोकर उसमे जलाने की क्षमता आ ही नही सकती।[३] इस प्रकार के वर्णनो मे कवि की उर्बर कल्पना तर्क की कसोटी पर खरी उतरती है और नायक मे तर्क भाव की स्पष्टाभिव्यक्ति से रसास्वाद होता है।

कालिदास का प्रभाव मथुरादास पर यद्यपि बहुत अधिक है फिर भी कुछ वर्णनो मे वे अति उत्कृष्ट रूप का वर्णन करने मे समर्थ हो सके है।

कृष्ण की दृष्टि मे राधा के कर्ण मे लगा नीलोत्पल इसलिए नीचे गिर गया क्योकि उसे राधा के कर्णपर्यन्त प्रसृत नेत्रापाग कैसे सहन कर सकते थे। इस ईर्ष्या के कारण ही अपागो ने ही उस पुष्प को नीचे गिरा दिया।[४]

कवि उसकी म्लानता मे उचित उत्प्रेक्षा कर रहा है—वह इसलिये म्लान है कि उसके कान तक पुन चढने के लिए उसे तपस्या कर अपने शरीर को कृश करना है। अत वह तपस्या कर रहा है।[५]

कवि की ये दोनो ही उत्प्रेक्षाएँ श्रृगार की मधुर अभिव्यजना मे पूर्ण सक्षम है। अन्य नाटिकाओ मे नायिका की विप्रलम्भ स्थिति का वर्णन बहुत अल्प है जो वह भी स्वय नायिका के द्वारा न होकर सखी आदि के माध्यम से है पर यहाँ मथुरादास ने राधा की वियोगावस्था का चित्रण उसी के द्वारा कराया है।

वह नायिका कृष्ण के चिन्तन मे कितनी व्याकुल है कि स्वप्न मे, जाग्रत मे, दिन या रात्रि मे बराबर कृष्ण प्राप्ति की ही चिन्ता है।[६]

एक ही वशी का स्वर सयोगावस्था मे अमृतवत् और वियोगावस्था मे विषवत् कष्टदायक है।[७] इस प्रकार का सम्पूर्ण कथन स्वय नायिका के द्वारा किया गया है अत यह उनकी अपनी विशेषता है।

१ वही, २/१४
२ वही, ३२१२-
३ वही, ३/१३
४ वृष०, ३/१४
५ वही, ३/१५.
६ वही, ४/७-८.
७ वही, ४/११

नायक नायिका के मिलन पर कवि ने कालिदास के 'सवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ' के अनुकरण पर यह कहलाकर कि 'क्या मै तुम्हारे चरणो को दबाऊ अथवा अजन से नेत्र रजित करूँ या कि स्तनो पर पत्रावली की रचना करू'[१] श्रृगार की चरम अनुभूति कराई है।

इस प्रकार सम्पूर्ण नाटिका मे श्रृगार रसराज की बहुविध वर्णना है। हास्य, रौद्र, वीर, करुण आदि अन्य रसो को कवि ने छूने का भी प्रयास नही किया ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने राधाकृष्ण की यमुनातीर की रासक्रीडा को ही नाटिका का रूप देने के निमित्त यह नाटिका लिखी। जिसमे अधिकाधिक श्रृगाररस की चर्वणा ही प्रधान है। कुछ भी हो कवि रसविश्लेषण और स्फुटाभिव्यक्ति के लिए दत्तचित्त है और पर्याप्त सफलता प्राप्त की है।

(द) अलकार सौष्ठव एवं छन्दोविधान

सस्कृत नाटक साहित्य मे अलकारो का भूयसा प्रयोग हुआ है। यद्यपि आचार्य भरत ने जहॉ नाटक के अग प्रत्यगो का अति सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण विस्तार के साथ किया है, वही उन्होने केवल उपमा, रुपक, दीपक और यमक इन चार अलकारो का ही प्रयोग किया है।[२] इससे प्रतीत होता है कि भरत नाटक के कोमल रूप को ध्यान मे रखकर उनमे अलकारो के पक्षपाती नही थे। रसानुकूल अलकारो का निर्देश करते हुए उन्होने स्पष्ट किया है कि 'छोटे अक्षरो से युक्त उपमा और रूपक का प्रयोग वीर रौद्र और अद्‌भुत रस के काव्यो मे तथा श्रृगार रस की रचनाओ मे रूपक और दीपक से युक्त आर्या छन्द का प्रयोग करना चाहिए।[३]

आचार्य भरत ने यमक अलकार के प्रयोग का कोई निर्देश नही किया कि इसका प्रयोग कहॉ करना चाहिए। इसका कारण यह प्रतीत होता हैं कि उन्होने नाटको को दुरूहता से बचाने के लिए ही सम्भवत यमकालकार के प्रयोग का कोई विवरण नही दिया, अन्यथा उनके—'मृदु ललित पदाढ्य गूढशब्दार्थहीन वुधजन सुख योग्य वुद्धिमन्नृत्य योग्यम्। बहु रसकृतमार्ग सन्धि-सन्धान-युक्त भवति जगति योग्य नाटक प्रेक्षकाणाम्॥'[४] इस उद्देश्य का ही विघात हो जाता है।

---

१ वृष०, ४/२२

२ उपमा दीपक चैव रूपक यमक तथा।
काव्यस्यैते ह्यलकाराश्चत्वार. परिकीतित ॥
—ना० शा० १६/४३

३ लघ्वक्षर प्रार्यकृतमुपमा रूपकाश्रयम्।
काव्य कार्य तु काव्यज्ञै. वीर रौद्राद्‌भुताश्रयम्॥
—ना० शा० १६/११०
रूपदीपक सयुक्तमार्यावृत्त समाश्रयम्।
श्रृगारे रसकार्ये तु काव्य स्यान्नाटकाश्रयम्॥
—ना० शा० १६/११२.

४ ना० शा० १६/१२४

श्रीहर्ष की रत्नावली और प्रियदर्शिका—अलकार रसानुयायी होते है[1] वे शब्दार्थ के माध्यम से रस का उपकार करते है।[2] रत्नावली नाटिका मे अलकारो का प्रयोग रसानुकूलता को ध्यान मे रखकर किया गया है। श्री हर्ष जिन्होने नाटिका को जन्म दिया, ने भरत के चार अलकारो की सीमा का पालन नही किया अपितु अपने पूर्ववर्ती कवियो विशेषत कालिदास से अधिक प्रभावित होने के कारण प्राय समस्त प्रचलित अलकारो का प्रयोग किया है।

यद्यपि रत्नावली से प्रियदर्शिका पूर्व की रचना है[3] फिर भी हर्ष की कला का चरमोत्कर्ष रत्नावली मे ही हुआ है। इसलिए उसी के अलकारो का परिचय यहॉ दिया जा रहा है।

रत्नावली मे उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और अतिशयोक्ति की घटा ही प्राय छाई है फिर भी अनेक स्थलो पर श्लेष, प्रतीप, पर्यायोक्त, काव्यलिग आदि की भी सफल अभिव्यजना हुई है।

मदनोत्सवायोजन मे कामी राजा वेश्या स्त्रियो के साथ क्रीडारत नागरिको को सर्पो के समान समझकर पाताल की स्मृति करता है, जहॉ सदैव घने अन्धकार मे सर्प शीर्षमणियो से सर्पो के आकार चमक उठते है।[4] कवि ने यहॉ श्लेष के माध्यम से बडी चतुरता के साथ कामान्ध पुरुषों को सर्प तुल्य बना दिया। स्मरणालकार[5] के साथ श्लेष का यहॉ मधुर साकर्य है।

हर्ष ने अलकारो के सन्निवेश मे उपमानो की खोज करते समय स्थान, पात्र, प्रकरण आदि का पूर्ण ध्यान रखा है जिससे उनकी स्वाभाविकता पर कोई आच न आ सके।

धीरललित नायक उदयन को वसन्तोत्सवावलोकनार्थ रगमच पर प्रस्तुत करता हुआ कवि कुसुम चाप (कामदेव) से उपमा देकर उसके ललित व्यक्तित्व और सहज सौन्दर्य की स्वाभाविक अभिव्यक्ति करता है।

---

१ उपकुर्वन्ति त सन्त येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलकारास्तेऽनुप्रासोपमादय॰ ॥

—का० प्र० ८/६७

२ ये वाच्य वाचक लक्षणाऽङ्गतिशयमुखेन मुख्य रस सम्भविनमुपकुर्वन्ति, ते कण्ठाद्यगानामुत्कर्षाधानद्वारेण शरीरिणोऽपि उपकारका हारादय इवालंकारा॰।

का० प्र० विवृति ८/६७

३ हर्ष के तीनो नाटको के तुलनात्मक अध्ययन से पाठक को यह अनुभव हो सकता है कि उनमे प्रियदर्शिका उसकी पहली कृति है क्योकि प्रियदर्शिका में वस्तु योजना की वैसी चुस्ती, काव्यगुणो की वैसी प्राजलता और छन्दो की वैसी विविधता नही पाई जाती जो रत्नावली और नागानन्द मे पाई जाती है।

—रत्ना० भूमिका, पृष्ठ १७ (डा० शिवराज शास्त्री)

४ अस्मिन्प्रकीर्णपटवासकृतान्धकारे
दृष्टो मनाड्मणिविभूषणरश्मिजालै।
पातालमुद्यतफणाकृति शृगकोऽय
मामद्य सस्मरयतीह भुजगलोक.॥ —रत्ना० १/१२.

५ यथानुभवमर्थस्य दृष्टे तत्सदृशे स्मृति, स्मरणम्। का० प्र० सूत्र १९८ (१०/१३२)

कवि की सशक्त लेखनी मे जहाँ एक ओर एक पद्य मे एक अलकार की मधुर सर्जना की अद्भुत क्षमता है वही अनेक अलकारो को एक ही पद्य मे पिरो देने का लाघव भी है।

देवी नायिका की रूपमाधुरी का चित्रण करता हुआ राजा कहता है कि 'हे देवी । चन्द्रकान्ति को तिरस्कृत करने वाले तुम्हारे मुख रूपी कमल से जीते गये जलज सौन्दर्यहीन हो रहे है तथा तुम्हारी दासीगणिकाओ के द्वारा गाये गये गीतो को सुनकर भृगागनाए मानो लज्जित होकर धीरे से कलियो के मध्य मे छुप रही है।[1] यहाँ मुखकान्ति से चन्द्रकान्ति के तिरस्कृत होने और कमलो के कान्तिहीन होने मे प्रतीप अलकार के माध्यम से उपमेय मुख का उत्कर्ष तथा भ्रमरियो के मुकुलान्तलीन होने मे दासी गणिकाओ की सुन्दर गीतध्वनि से लज्जित होने की सम्भावना की गई है, इससे सम्पूर्ण नायिका परिवार एव स्वय नायिका का अतिशय रूपवती व कलाप्रवीण होना ध्वनित होता है, जिससे श्रृगार रस की पुष्टि होती है।

कवि जब सूक्तिमय वाक्यो के द्वारा भाषा को सशक्त करना चाहता है तो अनेक गूढ अलकार जैसे विरोधाभास, समासोक्ति, अर्थान्तरन्यास, अपह्नुति आदि स्वत उसके अग बन जाते है।

नायिका को देखकर उसकी प्रशसा करता हुआ नायक अनेक उपमानो की स्थापना कर उपमेयो का अपह्नव करता है। 'नायिका स्वय श्री है, उसका हाथ, हाथ नही पारिजात पल्लव है और स्वेदकण अमृत द्रव है।[2] इस प्रकार सर्वत्र उपमेय का अपह्नव कर उपमान की स्थापना करने के कारण अपह्नुति अलकार है।[3] यहाँ नायिका विषयक नायक का अनुराग इस अलकार के माध्यम से अत्युत्कटतया प्रतीत होने के कारण सौन्दर्यसृष्टि करता है।

पात्रानुकूल उपमानो के प्रति साग्रही कवि निरन्तर समृद्धि के मध्य राज्य शासन सचालक वत्सराज के द्वारा अपनी प्रेयसी की उपमा रत्नावली (रत्नमाला) से दिलाता है। रत्नो की माला विलास की वस्तु है और कण्ठाश्लेष से अपूर्व सुख देती हे, अतिमूल्यवान होने के कारण यदि वह बिना उपभोग के खो जाये तो किसे दु ख नही होगा। वत्सराज इसी भाव को श्लिष्ट पदावली मे इस प्रकार कहता हे—'जिसका अनुराग मेरे प्रति स्पष्ट था, जो दैवयोग से किसी प्रकार मुझे

---

१ देवि त्वन्मुखपकजेन शशिनः शोभातिरस्कारिणा
पश्याब्जानि विनिर्जितानि सहसा गच्छन्ति विच्छायताम्।
श्रुत्वा ते परिवारबारवनितागीतानि भृगागना
लीयन्ते मुकुलान्तरेषु शनकै सजातलज्जा इव॥ —रत्ना० १/२५.

२ श्रीरेषा पाणिरप्यस्या पारिजातस्य पल्लव।
कुतोऽन्यथा स्रवत्येष स्वेदच्छद्मामृतद्रवः॥ —रत्ना० २/१८.

३ प्रकृत यन्निषिध्यात्सत्साध्यते सा त्वपह्नुति। —का० प्र० सू० १४५ (१०/९६)

प्राप्त हुई थी, अभी मैने उसका कण्ठाश्लेष भी नही किया था, ऐसी रत्नमाला के समान सागरिका तुम्हारे द्वारा लुप्त कर दी गई ।'[१]

यहाँ कण्ठाश्लेष, अनुराग आदि शब्द श्लिष्ट है जो साधारण धर्म का कार्य करते है। इस प्रकार श्लेषोपमा अलकार के माध्यम से कवि नायिका की उत्कृष्टता का वर्णन करता है।

अनेक अलकारो की सकरता के विभिन्न प्रयोग रत्नावली नाटिका की भाषा और भाव को सुन्दर बनाने मे पूर्ण सहयोग करते है।

अस्तगामी सूर्य का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि अस्ताचल शिखर पर कर स्थापित किये हुए सूर्य कमलिनी को मानो इस प्रकार सान्त्वना दे रहा है कि 'मै अब जा रहा हूँ तुम कल प्रात मेरे ही द्वारा जगाई जाओगी।'[२]

यहाँ कमलिनी और सूर्य के व्यवहार से नायक नायिका का व्यवहार ध्वनित होता है। नायक नायिका को विश्वास दिलाता है कि मै प्रवास से प्रात ही आ जाऊगा तुम दुखी न हो। इस प्रकार यहाँ समासोक्ति अलकार है[३], इसके निर्माण मे मस्तक और कर शब्द श्लिष्ट है साथ ही प्रत्यायनामिव करोति मे उत्प्रेक्षा है जो नायक नायिका व्यवहार के औचित्य की रक्षा करता है। इस प्रकार यहाँ समासोक्ति, श्लेष और उत्प्रेक्षा अलकारो का सकरालकार है।

श्री हर्ष ने आद्याचार्य भरतमुनि द्वारा निर्दिष्ट प्राय सभी नाट्य-सिद्धान्तो के पालन करने का प्रयत्न किया है वही परवर्ती काव्यशास्त्रियो द्वारा निर्धारित अलकारो के अभिनव प्रयोग मे सकोच नही किया। नाटिका के ललित कलेवर मे कष्ट साध्य अप्रसिद्ध अलकारो का प्रयोग यद्यपि विपरीत प्रयास है, फिर भी अनेक स्थलो पर ऐसे अलकारो का स्वाभाविक प्रयोग है। यह हर्ष की उदात्त बुद्धि और प्रातिभ वैभव है कि इन अलकारो के प्रयोग मे नाटिका के दृश्यत्व या श्रव्यत्व मे किचिदपि न्यूनता नही आने पाई है। तृतीय अक के आरम्भ में उनका यह श्लोक द्रष्टव्य है—

पालीयं चम्पकाना नियतमयमसौ सुन्दर सिन्दुवार·
सान्द्रा वीथी तथेयं बकुलविटपिनां पाटलापङक्तिरेषा।
आघ्रायाघ्राय गन्ध विविधमधिगतै पादपैरेवमस्मि-
न्व्यक्ति पन्था प्रयाति द्विगुणतरतमोनिह्नु तोऽप्येष चिह्नै· ॥[४]

---

१ प्राप्ता कथमपि दैवात्कण्ठमनीतैव सा प्रकटरागा।
रत्नावलीव कान्ता मम हस्ताद् भ्रंशिता भवता॥ —रत्ना० २/१९.

२ यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममैष
सुप्ता मयैव भवती प्रतिबोधनीया।
प्रत्यायनामयमितीव सरोरुहिण्या.
सूर्योऽस्तमस्तकनिविष्टकरः करोति॥ —रत्ना० ३/६.

३ समासोक्ति· समैर्यत्र कार्यलिंगविशेषणै·।
व्यवहार समारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः॥ —सा० द० १०/५६-५७

४ रत्ना० ३/८

यहाँ अनुमान नामक शास्त्रीय अलकार है जिसका लक्षण करते हुए काव्यप्रकाशकार ने कहा है—'साध्य और साधन का स्पष्ट कथन करना ही अनुमान है'[१] साध्य और साधन रूप अनुमान न्यायशास्त्र का पारिभाषिक रूप है। काव्य मे उसे हेतु और प्रयोजन शब्दो से समझा जा सकता है। इस पद्य मे अस्पष्टमार्गान्विषण रूप साध्य (प्रयोजन) है, सिन्दुवारादि वृक्ष और पाटलापुष्पादिको की गन्ध साधन (हेतु) है , उद्यान पक्ष है। अत पूर्णरूपेण अनुमान अलकार है जिससे उद्यान का सौन्दर्य बोध होता है।

यद्यपि यह पूर्णत शास्त्रीय अलकार है फिर भी कविनैपुण्य मे कोई बाधा नही आयी। निश्चय ही अलकार योजना मे कवि ने कालिदास आदि महान् पूर्ववर्ती कवियो का अनुकरण किया है, फलत- इस नाटिका मे अलकार आरोपित न होकर सहज और स्वाभाविक है।

बिना कारण के कार्य होना रूप विभावना[२] अलकार की सफल अभिव्यक्ति श्रीहर्ष के इस पद्य मे हुई है जहाँ 'नायिका सकेतस्थल पर प्रेमी नायक से मिलने पर भी नायक मुख पर दृष्टिपात नही करती, आलिगन मे गाढाश्लेष नही करती, और रोकने पर पुन पुन जाने की बात कहती है। किन्तु तो भी वह प्रेमी को आनन्द दे रही है।'[३] यहाँ आनन्ददान रूप कार्य हो रहा है किन्तु उसका कोई भी कारण निर्दिष्ट नही है। इस प्रकार नायिका की प्रणय क्रीडाओ का विभावनात्मक वर्णन नायकगत रति को और उत्कण्ठित करता है, यही अलकार का प्रयोजन है।

विदूषक के द्वारा रात्रि मे नायिका मिलन की योजना सुनकर अधीर हृदय नायक कितनी व्याकुलता का अनुभव करता है, इसका वर्णन दृष्टान्त के माध्यम से कवि ने इस प्रकार किया है—'प्रारम्भ मे तो कामजनित सन्ताप उतनी पीडा नही देता जितनी प्रियासमागम के समीप काल मे, ठीक ही है वर्षाकाल मे पानी पडने के पूर्व वाला दिन अत्यधिक सन्ताप देता है।'[४]

यहाँ कवि ने वर्षा ऋतु के दिवस का दृष्टान्त[५] देकर पीड़ा और ताप मे बिम्बप्रतिबिम्ब[६] भाव का सुन्दर समन्वय किया है। इससे न केवल नायक की

---

१ अनुमान तदुक्त यत् साध्यसाधनयोर्वचः। —का० प्र० १०/११७.

२ विभावना विना हेतु कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते। —सा० द० १०/६६

३ प्रणयविशदा दृष्टिं वक्त्रे ददाति न शकिता
घटयति घन कण्ठाश्लेषे रसान्न पयोधरो ।
वदति बहुशो गच्छामीति प्रयत्नधृताप्यहो
रमयतितरां सकेतस्था तथापि हि कामिनी॥ — रत्ना० ३/९

४ तीव्र स्मरसतापो न तथादौ बाधते यथाऽऽसन्ने।
तपति प्रावृषि नितरामभ्यर्णजलागमो दिवस.॥ — रत्ना० ३/१०.

५ दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुतः प्रतिबिम्बनम्। —सा० द० १०/५१

६ द्वयोरर्थयोर्द्विरुपादानम् बिम्बप्रतिबिम्बभाव. इति प्रतापरुद्रयशोभूषणे स्पष्टम्।
—का० प्र० बालबोधिनी टीका, पृष्ठ ६३६.

हृद्गत काम-पीडा का अपितु प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति के पूर्व का समय अधीरता दायक होता है, इस शाश्वत सत्य का भी परिचय सहजतया प्राप्त हो जाता है।

नवीन उपमानो की और नूतन अलकारो की खोज के साथ ही कवि प्रसिद्ध उपमानो को उपमेय बना कर या उनका तिरस्कार कर प्रतीप आदि अलकारो के प्रयोग मे भी उतना ही सफल हुआ है।

नायिका मुख स्वय चन्द्र है वह कमलो की शोभा को नष्ट करता है, साथ ही नेत्रो को भी आह्लादित करता है और इससे काम का उद्दीपन होता है। इसलिये अब आकाश चन्द्र की कोई आवश्यकता नही। यदि कहो कि इस मुख मे अमृत कहॉ जो चन्द्रमा मे है तो यह उचित नही क्योकि इस नायिका मुख के विम्बाधर मे अमृत भी तो है।[१] अत यह आकाश चन्द्र व्यर्थ ही उदित हो रहा है।

यहॉ चन्द्र की व्यर्थता का प्रतिपादन कर उसके सभी गुण मुखचन्द्र मे है, इस प्रकार का कथन करने के कारण प्रतीप अलकार है।[२] इस प्रतीप के साथ ही अनुप्रास की भी छटा होने से भाव और भाषा दोनो का उत्कर्ष हो गया है।

प्रेम सहज और सत्य होता है, उसमे लचीलापन नही आ सकता, भले ही शरीर नष्ट हो जाय। इस भाव की अभिव्यक्ति मे काव्यलिग अलकार का प्रयोग द्रष्टव्य है। 'अत्यन्त प्रेमशीला वासवदत्ता आज अपने प्रियतम के द्वारा किये गये अन्य नायिका विषयक अनुराग को देखकर भला उसे कैसे सहन कर सकती है, क्योकि वह तो उसकी दृष्टि मे एक भयकर अपराध है, भारतीय नारी की सत्ता और मर्यादा की उपेक्षा है, अत वासवदत्ता राजा के इस अपराध से क्षुब्ध होकर निश्चय ही अपने प्राणो का परित्याग कर देगी क्योकि उत्कृष्ट प्रेम का बन्धन यदि टूट जाये तो उसे सहज प्रेमी सहन नही कर सकता।[३]

यहॉ वासवदत्ता के प्राण त्याग का हेतु उदयन (नायक) का अन्य नायिका के प्रति अनुराग का प्रकट हो जाना है। जो यहॉ वाक्य रूप मे प्रयुक्त हुआ है। इसलिए प्रस्तुत पद्य मे काव्यलिग अलकार है।[४]

प्रेम के शाश्वत् रूप का वर्णन करते हुए आगे भी कवि ने स्पष्ट किया कि यह वह चित् तत्व है जो भिन्न भिन्नाश्रयो मे रहकर भी एक होता है, मरने

१ किं पद्मस्य रुच न हन्ति नयनानन्द विधत्ते न किं
वृद्धि वा झषकेतनस्य कुरुते नालोकमात्रेण किम्।
वक्त्रेन्दौ तव सत्यय यदपरः शीताशुरभ्युद्गतो
दर्प स्यादमृतेन चेदिह तदप्येवास्ति विम्बाधरे॥ —रत्ना० ३/१३.

२ प्रसिद्ध स्योपमानस्योपमेयत्व प्रकल्पनम्।
निष्फलत्वाभिधान वा प्रतीपमिति कथ्यते॥ —सा० द० १०/८७-८८.

३ समारुढा प्रीतिः प्रणयबहुमानादनुदिनं
व्यलीक वीक्ष्येद कृतमकृतपूर्व खलु मया।
प्रिया मुचत्यद्य स्फुटमसहना जीवितमसौ
प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलितमविषह्य हि भवति॥ —रत्ना०, ३/१५.

४ काव्यलिग हेतोर्वाक्य पदार्थता। —का० प्र० १०/११४.

का यत्न कोई करता है और मरणासन्न कोई और हो जाता है, इस भाव को असगति अलकार के माध्यम से कवि ने चतुरतापूर्वक चित्रित करते हुए लिखा—

मम कण्ठगता प्राणा पाशे कण्ठगते तव।
अत. स्वार्थ प्रयत्नोऽयं त्यज्यता साहस प्रिये।।[१]

यहाँ लतापाश रूप कारण नायिका कण्ठ मे और प्राणो का कण्ठ तक आ जाना रूप कार्य नायक मे हो रहा है, अत कार्यकारण की भिन्न भिन्नाश्रयो मे स्थिति होने के कारण असगति अलकार है।[२] जिससे दोनो का एक दूसरे के प्रति अनुराग दृढ़ होता है।

महाकवि कालिदास ने लिखा 'अतिस्नेह पापशकी'[३] अर्थात् अति स्नेह विभिन्न अमगल की आशकाए करने लगता है। श्रीहर्ष ने भी इसी भाव को इस पद्य मे पर्यायोक्त अलकार के माध्यम से व्यक्त किया है—

प्राणा परित्यजत काममदक्षिणं मा
रे दक्षिणा भवत मद्वचनं कुरुध्वम्।
शीघ्रं न यात यदि तन्मुषिता स्थ नूनं
याता सुदूरमधुना गजगामिनी सा।।[४]

विदूषक, नायक वत्सराज को नायिका सागरिका के विषय मे किसी भी अप्रिय सूचना देने से जब मना करता है तो नायक को विश्वास हो जाता है कि उसकी प्रेमिका मर गई अत वह अपने प्राणो के निकल जाने की बात उक्त पद्य मे कहता है। यह अमगल आशका नायक के नायिका विषयक अत्यधिक प्रेम का ही परिणाम है।

यहाँ प्राणो के ठगने का कारण नायिका का दूर चला जाना है, जो नायिका मर चुकी है, इस बात का भग्यन्तरेण सूचक है। इस प्रकार वर्णनीय विषय रूप व्यग्य का शब्दान्तरेण कथन करने के कारण पर्यायोक्त नामक अलकार है।[५]

दृश्यकाव्यो मे जहाँ भावुकता एव सरलता परमापेक्षित है वही उसमे कलात्मक सौन्दर्य भी होना चाहिए, सम्भवत हर्ष की यह मान्यता रही हो, क्योकि जहाँ अनेक अर्थालकारो मे नवीन भावो को सयोजित करने की कला मे वे सिद्धहस्त है वही साभिप्राय पदो का प्रयोग भी उनकी दृष्टि से ओझल नही हुआ है। अनेक पद्यो मे विशेषण साभिप्राय होकर परिकर नामक अलकार की स्वत ही सृष्टि करते है। जैसे—

१ रत्ना०, ३/१६.
२ कार्यकारणयोर्भिन्नदेशतायामसगतिः। —सा० द० १०/६९.
३ अभि० शाकु०, पृष्ठ १५४ (३य संस्क० १९७३ सा० भ० सु० बा० मेरठ)।
४ रत्ना० ४/३
५ पर्यायोक्त यदा भग्या गम्यमेवाभिधीयते। —सा० द० १०/६१

"माया के दो रूपो शाम्बरी और ऐन्द्रजालिकी का सम्बन्ध क्रमश शम्बर और इन्द्र से है इसीलिए कवि शम्बर और इन्द्र को प्रणाम करने की बात कहता है।"[१]

यहाँ ऐन्द्रजाल और शाम्बरी शब्द साभिप्राय है क्योकि इनसे इन्द्र और शम्बर का ज्ञान प्राप्त होता है, अत यहाँ साभिप्राय विशेषणात्मक परिकर नामक अलकार है।[२]

शब्दालकारो मे श्रीहर्ष ने यमक अलकार के प्रयोग का पूर्णत परिहार किया, केवल अनुप्रास को तथा यत्र तत्र श्लेष को अपनाया है। अनुप्रास मे भी कोमलता का ध्यान रखा है जिससे कि नाटिका की मृदु प्रकृति का कही पर भी विघात न हो सके।

वसन्तकाल मे वृक्षो के मादकस्वरूप की वर्णना[३] जहाँ कवि ने शिलष्टात्मक उतप्रेक्षालकार के माध्यम से की वही उसमे क, त, ल, म आदि कोमल वर्णो की आवृत्ति कर अनुप्रास को प्रश्रय दिया है इससे मधुर भावो के साथ श्रुति माधुर्य भी स्वयमेव समापतित हो गया है जिससे साक्षात् वसन्तावतरण हो गया है ऐसा प्रतीत होने लगता है।

वीर रौद्रादि रसो का वर्णन करते समय ओज गुण सहकारितया विद्यमान रहता है और ओजगुण मे विकटाक्षरबन्ध र, ट वर्ग आदि कठोर व्यजनो का सयोग तथा समास बाहुल्य अपेक्षित होता है ऐसा लाक्षणिको का अभिमत है।[४] किन्तु नाटिका के कोमल कलेवर को ध्यान मे रखकर ही शायद हर्ष ने युद्ध के ओजात्मक प्रसगो मे भी कठोर व महाप्राण वर्णो का प्रयोग नही किया।

चतुर्थ अक मे विजय वर्मा राजा से कोशलाधिपति के साथ सम्पन्न युद्ध का सक्षिप्त वर्णन करता है।[५] इस वर्णन मे कठोर वर्णो का प्रयोग नही है किन्तु समस्त पदावली के प्रयोग से ओज गुण की अभिव्यक्ति अक्षुण्ण है।

इस प्रकार श्रीहर्ष की रत्नावली नाटिका मे लगभग 25 अलकारो का सफलतापूर्वक प्रयोग उपलब्ध है। ये अलकार निम्नलिखित है—

१ अनुप्रास	३ श्लेष
२ उपमा	४ स्मरण

---

१ पणमह चलणे इन्दस्स इन्दजालआपिणद्धणामस्स।
तह जेव्व सबरस्स माआसुपरिट्ठिदजसस्स॥ —रत्ना० ४/७.

२ उक्तैविशेषणै साभिप्रायै परिकरो मत। —सा० द० १०/५७

३ उद्यद्विद्रुम कान्तिभि किसलयैस्ताम्रा त्विष बिभ्रतो
भृगालीविरुतै कलैरविशदव्याहारलीलाभृत।
घूर्णन्तो मलयानिलाहतिचलै शाखासमूहैर्मुहु-
र्भ्रान्ति प्राप्य मधुप्रसगमधुना मत्ता इवामी द्रुमा॥ —रत्ना० १/१७.

४ ओजश्चित्तस्य विस्तार रुप दीप्तत्वमुच्यते,
वीरवीभत्स रौद्रेषु क्रमेणाधिक्यमस्य तु।
वर्गस्याद्यतृतीयाभ्या युक्तो वर्णोतदन्तिमो
उपर्यधो द्वयोर्वा सरेफाष्टठडढै: सह॥
शकारश्च .. . घटनौद्धत्य शालिनी॥ —सा० द० ८/४-७.

५ रत्ना०, ४/५-६

५ रूपक	१६ स्वभावोक्ति
६ उत्प्रेक्षा	१७ अर्थान्तरन्यास
७ अतिशयोक्ति	१८ विभावना
८ दृष्टान्त	१९ विशेषोक्ति
९ काव्यलिग	२० असगति
१० प्रतीप	२१ परिकर
११ अनुमान	२२ विरोधाभास
१२ पर्यायोक्त	२३ सन्देह
१३ समासोक्ति	२४ सकर
१४ अप्रस्तुत प्रशसा	२५ ससृष्टि
१५ उदात्त	

प्रियदर्शिका—प्रियदर्शिका नाटिका को हर्ष की प्रथम कृति स्वीकार करते हुए विद्वानो का यह मन्तव्य है कि रत्नावली की अपेक्षा इस नाटिका मे कलात्मक सौन्दर्य कम है, किन्तु यह विचार केवल नाट्यशास्त्रिय विभिन्न अगो के सयोजन मे ही स्वीकार किया जा सकता है, अलकार आदि के प्रयोग मे तो यह नाटिका किसी भी रूप मे रत्नावली से घटकर नही है।

रत्नावली मे जिन अलकारो का प्रयोग है, प्राय वे सभी अलंकार इसमे भी प्रयुक्त हुए है। कुछ नवीन अलकारो को भी इसमे प्रयुक्त किया गया है जिनमे मुख्य है, विशेषोक्ति, अप्रस्तुत प्रशसा और निदर्शना।

शब्दालकारो मे अनुप्रास और श्लेष तथा अर्थालकारो मे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा अतिशयोक्ति, अपह्नुति, प्रतीप, व्यतिरेक, अनुमान, स्वभावोक्ति, असगति, समासोक्ति, काव्य लिग, सन्देह, उदात्त, परिकर, सकर और ससृष्टि मुख्यतः प्रयुक्त हुए है।

इन सभी अलकारो के उदाहरण नाटिका से यहाँ प्रस्तुत कर पाना संभव नही है फिर भी निदर्शन मात्र कुछ विशिष्ट प्रसगो के उद्धरण प्रस्तुत कर हर्ष की अलकार प्रयोग क्षमता का परिचय दिया जा रहा है।

रत्नावली की भाँति[१] प्रियदर्शिका मे भी नान्दी पदो मे कोमल वर्णो की आवृत्तिमूलक अनुप्रास अलकार का प्रयोग किया गया है जिससे भगवद्विषयिणी रति पुष्ट हुई है।[२]

युद्ध वर्णन में समस्त पदावली मे भी अनुपास का प्रयोग है[३] किन्तु वहाँ भी प्राय वर्गों के प्रथम तृतीय आदि कोमल वर्णों की ही आवृत्ति है जिसका

१ रत्ना०, १/१-४
२ प्रिय०, १/१-२.
३ वही, १/९-१०

मुख्य कारण नाटिका की मृदु प्रकृति है, अन्यथा युद्धवर्णन मे रौद्रवीरादि रसो मे ओजगुण होने के कारण कठोर वर्णो का ही भूयसा प्रयोग होना चाहिए।[१]

वर्षा आदि प्राकृतिक वर्णनो मे भी अनुप्रास का प्रयोग द्रष्टव्य है।[२] श्लेष अलकार प्राय उपमा, उत्प्रेक्षा प्रतीप आदि के साथ ही प्रयुक्त हुआ है, फिर भी उसके सौन्दर्य मे किंचित् भी कमी नही आई है। नायक वत्सराज को रगमच पर प्रस्तुत करते हुए कवि ने शब्द-श्लेष और प्रतीप के माध्यम से अपने ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान का अच्छा परिचय दिया है, यथा—

घनबन्धनमुक्तोऽयं कन्याग्रहणात्परां तुलां प्राप्य।
रविरधिगतस्वधामा प्रतपति खलु वत्सराज इव॥[३]

प्रसिद्ध उपमान सूर्य को यहाँ वत्सराज के समान निर्दिष्ट करने के कारण प्रतीप अलकार है[४]। उपमानोपमेय भाव की औचित्य रक्षा हेतु साधारण धर्म का होना नितान्त आवश्यक है तदर्थ यहाँ श्लिष्ट पदो का प्रयोग किया गया। ये शब्द है—घनबन्धनमुक्त, कन्याग्रहण, परा और तुला। सूर्य पक्ष मे इनके अर्थ क्रमश है—मेघबन्धन से मुक्ति, कन्या राशि, उत्तरा नक्षत्र ओर तुला राशि वत्सराज के पक्ष मे इनका अर्थ क्रमश—महान् कारागृह बन्धन से मुक्ति, कन्या प्रद्योत पुत्री, श्रेष्ठ और सादृश्य।

सूर्य को उपमेय बना देने के कारण नायक के व्यक्तित्व और शौर्य की मधुर अभिव्यजना हुई है जिससे राजविषयिणी रति पुष्ट होती है।

उपमा के साथ श्लेष का एक और प्रयोग द्रष्टव्य है। आरण्यका तालाब मे कमलपुष्पावचयन कर रही है, राजा उसके मुखसौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कहता है—'अपने नेत्रो से निरन्तर अमृत बिन्दुओ की वर्षा के समान आनन्द प्रदान करती हुई, चलते समय स्तनाग्र से फिसले हुए उत्तरीय के कारण रमणीयता को प्रकट करने वाली (चन्द्र पक्ष मे—मेघो के मध्य से बाहर आने के कारण रमणीयता प्रकट करने वाले), चन्द्रमा के समान तनु धारण करने वाली इस स्त्री का (पक्ष मे चन्द्र का) कर स्पर्श (पक्षे—किरण स्पर्श) पाकर भी ये कमल जो एकाएक बन्द नही हो रहे यही आश्चर्य है।'[५]

---

१ सा० द०, ८/४-७

२ प्रिय० २/२-३

३ प्रिय० १/५.

४ प्रसिद्धस्योपमानस्योपमेयत्व प्रकल्पनम्।
निष्फलत्वाभिधान वा प्रतीपमिति कथ्यते॥

—सा० द० १०/८७-८८.

५ अच्छिन्नामृतबिन्दुवृष्टिसदृशी प्रीतिं ददत्या दृशा
याताया विगलत्पयोधरपटादृष्टव्यता कामपि।
अस्याश्चन्द्रमसस्तनोरिव कर स्पर्शास्पदत्व गता
नैते यन्मुकुलीभवन्ति सहसा पद्मास्तदेवाद्भुतम्॥ —प्रिय० २/७

यहॉ श्लेषोपमा के साथ-साथ विशेषोक्ति अलकार भी है, क्योकि कमल बन्द होना रूप कार्य का कारण चन्द्रकर स्पर्श है और वह यहॉ विद्यमान है फिर भी कमल बन्द होना रूप कार्य नही हो रहा है। इसलिए कारण के रहते हुए भी कार्य का न होना रूप विशेषोक्ति अलकार का सफल प्रयोग है।[१] यह विशेषोक्ति नायिका को चन्द्र मानने के कारण है। नायिका चन्द्र के समान है। यहॉ उपमा और उसके साधारण धर्मवाचक पदो मे श्लेष है। इस प्रकार श्लेषोपमा विद्ध विशेषोक्ति से युक्त सकर अलकार नायिका की सौन्दर्योत्कृष्टता को व्यक्त करने के कारण श्रृगार रस का पोषक है।

नायिका के द्वारा कमल पुष्पावचयन कराते समय कवि कालिदास के भ्रमर बाधा प्रसग[२] को कैसे भूल सकता था। कमल गन्ध का लोभी भ्रमर यदि कमल और नीलोत्पल भ्रान्ति से नायिका मुख पर टूट पडता है तो इसमे आश्चर्य की कोई बात नही।

नायक कहता है—हे भयशीले, विषाद मत करो, ये भ्रमर सुगन्ध के लोभ से तुम्हारे मुख कमल पर गिर रहे है। यदि तुम भय के कारण चंचल नेत्रो को इधर-उधर इसी प्रकार प्रक्षिप्त करती रहोगी तो भला ये भ्रमर तुम्हे कैसे छोड देगे अर्थात् तुम्हारे नेत्रो को नीलोत्पल समझ कर तुम्हारे पास आते ही रहेगे।[३]

यहॉ नायिका के कृष्ण वर्ण नेत्रो मे नीलोत्पल की भ्रान्ति होने से भ्रान्तिमान[४] अलकार तथा नेत्रो से कुवलय लक्ष्मी का विक्षेप करने मे निदर्शना अलकार है। कुवलय वन लक्ष्मी कुवलय वन मे ही रह सकती है, नेत्रो मे नही, इसलिए उनमे सम्बन्ध बाधित है किन्तु उपमा मे पर्यवसान कर 'कुवलय वन लक्ष्मी के समान लक्ष्मी नेत्रो मे है' इस प्रकार कर देने पर निदर्शना अलकार बन जाता है।[५] इससे नायिका के मुख सौन्दर्य की शोभा मे वृद्धि होती है।

सर्वविदित है कि नाटक व काव्य के क्षेत्र मे सस्कृत साहित्य कालिदास का उच्छिष्ट है। काव्यलिग अलकार का प्रयोग करते हुए कवि राजा के सन्ताप मे उत्तरोत्तर न्यूनता का कारण उसकी अभिलाषाओ के प्रति आशावान् होना बतलाता है।

'राजा का कथन है कि अभिलाषाओ की (पूर्णता की) आशा करने के कारण अब चन्द्रमा पहले जैसा सन्ताप नही दे रहा है, मुख से निःसृत उष्ण

---

१ सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिस्तथा द्विधा। —सा० द० १०/६७

२ अभि० शाकु०, पृष्ठ ३२ (सा० भ० सु० मेरठ)

३ अयि विसृज विषाद भीरु भृगास्तवैते
परिमलरसलुब्धा वक्त्रपद्मे पतन्ति।
विकिरसि यदि भूयस्त्रासलोलायताक्षी
कुवलयवनलक्ष्मी तत्कुतस्त्वा त्यजन्ति॥ —प्रिय०, २/८.

४ साम्यादतस्मिंस्तद् बुद्धिः भ्रान्तिमान् प्रतिभोत्थित ॥ —सा० द० १०/३६.

५ अभवन् वस्तु सम्बन्ध उपमा परिकल्पक । —का० प्र० सूत्र १४९ (१०/९७)

निश्वास न तो अधरोष्ठ को म्लान ही कर रहा है और न मन ही शून्यता का अनुभव करता है, अगो मे अब आलस्य भी नही है तथा दुख धीरे-धीरे क्षीण होता जा रहा है।'[१]

यहाँ कवि ने विक्रमोर्वशीय[२] नाटक के भावो का अनुकरण किया है।

सूक्तिमय वाक्यो के द्वारा भाषा को सशक्त बनाते समय अर्थान्तरन्यास अलकार का प्रयोग द्रष्टव्य है—

'देव के प्रतिकूल होने पर मनुष्य के अभिलाषित मनोरथ पूर्ण नही होते, इस समर्थक वाक्य के परिप्रेक्ष्य मे कवि ने अप्रस्तुत अर्थ का चित्रण करते हुए लिखा—कि' भ्रमर, कमल मे अति मकरन्द रस विद्यमान है ऐसा समझ कर जैसे ही उसे पान करने के लिए वहाँ गया कि तभी हिमपात से वह कमल जल गया, ठीक ही है भाग्य की प्रतिकूलता मे कोई भी मनोरथ पूर्ण नही होता।[३]

यहाँ कवि ने नायिका द्वारा विषपान कर लेने पर राजा के हृद्गत भावो का मनोहर चित्रण किया है। कमल और भ्रमर के अप्रस्तुत वृत्तान्त के माध्यम से राजा की भावना का चित्रण किया गया है, अत अप्रस्तुत प्रशसा अलकार है। चतुर्थ चरण के सामान्य अर्थ के द्वारा शेष तीनो चरणो के विशेष अर्थ का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलकार है।[४] परस्पर एक दूसरे के निर्माण मे एक दूसरे की सापेक्षता होने से सकर अलकार बन जाता है।

इस श्लोक का भाव शिवराज विजय के इस श्लोक से पर्याप्त साम्य रखता है—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकज श्री·।
एव विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे
हा हन्त ! हन्त ! नलिनी गज उज्जहार॥

---

१ सताप प्रथम तथा न कुरुते शीताशुरद्यैव मे
निश्वासा ग्लपयन्त्यजस्रमधुनैवोष्णास्तथा नाधरम्॥
सप्रत्येव मनो न शून्यमलसान्यगानि नो पूर्वव—
दु.ख याति मनोरथेषु तनुता सचिन्त्यमानेष्वपि॥ —प्रिय० ३/५.

२ पादास्त एव शशिन सुखयन्ति गात्र
बाणास्त एव मदनस्य ममानुकूला।
सरम्भरुक्षमिव सुन्दरि यद्यदासीत्
त्वत्सगमेन मम तत्तदिवानुनीतम्॥ —विक्र० ३/२०

३ सजातसान्द्रमकरन्दरसा क्रमेण
पातु गतश्च कलिका कमलस्य भृग।
दग्धा निपत्य सहसैव हिमेन चैषा
वामे विधौ न हि फलन्त्यभिवाछितानि॥ —प्रिय० ४/८.

४ सामान्य वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यास साधर्म्येणेतरेण वा॥ —का० प्र० १०/१०९

इस प्रकार इस नाटिका के लघु कलेवर मे जिन प्रमुख अलकारो का प्रयोग हुआ वे रसानुकूल और स्वाभाविक है। कवि की विदग्धता है। उसके रस, पात्र और प्रकृति के अनुकूल अलकार सन्निवेश मे साकार हो गई है।

विद्धशालभजिका

राजशेखर जो ललित कलात्मक सृष्टि मे दक्ष है। वे विद्धशालभजिका नामक अपनी नाटिका मे रसानुकूल अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, अपह्नुति, विषम, व्यतिरेक आदि अलकारो के निरूपण मे सफल हुए है।

नान्दी मे व्याघात[१] अलकार के माध्यम से सुन्दरियो की स्तुति करते समय[२] कवि नाटिका की प्रकृति को भी व्यग्य रूप मे प्रस्तुत कर देता है क्योकि जो मृगाकावली पूर्वत नायक के सन्ताप का कारण बनती है, वही बाद मे उसकी आनन्दसृष्टि का कारण भी बनती है।

नाटिका कविप्रतिभा का सर्वोत्कृष्ट निदर्शन होता है। यह निर्विवाद है विविध अलकारो के माध्यम से कल्पना वल्लरी का विकास करना कवियो का विलास है। फलत राजशेखर ने भी तदनुकूल अलकारो का भूयसा प्रयोग किया है।

इनकी विशेषता है, उन अलकारो का विन्यास जो श्रीहर्ष आदि ने नही प्रयुक्त किये। स्वप्न द्रष्टा प्रेयसी का वर्णन करते समय राजशेखर यमक का प्रयोग करते हुए कहते है कि उसने (नायिका ने) मन्मथ को मन का मथन करने वाला बना दिया।[३] यहाँ मन्मथ शब्द मे यमक अलकार का सुन्दर प्रयोग है।

अर्थान्तरन्यास,[४] अतिशयोक्ति,[५] स्वभावोक्ति,[६] अनुप्रास[७] आदि के अनेक उदाहरण अत्यन्त स्पृहणीय है।

गद्य मे भी अनेक अलकारो के प्रयोग मे सिद्धहस्त कवि ने नाटिका की कोमल प्रकृति की किचित उपेक्षा की है। इसका कारण कवि की अलकारप्रियता है। नायिका के शरीर पर पुराने वस्त्र आभूषणो का परित्याग कर नवीन की स्थापना करने की सूचना मे दीर्घ समासावली रचना मे अनुप्रास, अलकार का प्रयोग उत्प्रेक्षा आदि से सम्वलित होकर आह्लादक होते हुए भी प्रयत्नसाध्य प्रतीत हो रहा है।[८]

---

१ यद्यथा साधित केनाप्यपरेण तदन्यथा
तथैव यद्विधीयेत स व्याघात इति स्मृतः ॥ —का० प्र० १०/१३८-१३९

२ दृशा दग्ध मनसिज जीवयन्ति दृशैव या. ॥
विरूपाक्षस्य जयिनीस्ता. स्तुवे वाम-लोचनाः ॥ —विद्ध० १/२.

३ विद्ध०, १/१५

४ वही, १/४२

५ वही, १/४४

६ वही, १/४३

७ वही, २/६, ७, २०, ३/५, ४/७.

८ वही, पृष्ठ ९७-९८।

अनेकानेक अलकारो को एक ही पद्य मे प्रस्तुत करना,[१] उत्तरोत्तर उत्कृष्ट अलकारो की योजना[२] आदि कवि प्रतिभा की विशिष्टता है।

सभी अलकारो के उद्धरण देकर उनकी वर्णना मे पिष्टपेषण दोषोद्भूति के रुप मे विस्तृत विवेचन नही किया गया है।

सक्षिप्तत कहा जा सकता है कि राजशेखर कालिदास आदि के समान कुशल कलाकार है, और रसानुकूल व अवसरानुकूल अलकारो के सरस विन्यास मे किसी भी कवि से घटकर नही है।

कर्णसुन्दरी—विक्रमाकदेव चरित महाकाव्य के प्रणेता महाकवि बिल्हण अपने युग के प्रतिभावान् कवियो मे सर्वाग्रणी थे। अपने आश्रयदाता को नायक बनाकर उसकी विलासिका प्रवृत्ति का अभिनयात्मक चित्रण करने के लिए कवि ने उपरूपको के प्रथम भेद नाटिका को चुना। जैसा कि बतलाया जा चुका है, नाटिका मृदु प्रकृति की श्रृगार रस बहुल कैशिकी वृत्ति समलकृत नर्मकर्मानुप्राणित[३] होती है। तदनुकूल वर्णविन्यास, असमस्त पदावली, माधुर्य प्रसादादि गुण तथा प्राधान्येन उपमामूलक अलकारो का प्रयोग ही नाटिका मे अपेक्षित होता है।

हर्ष आदि पूर्ववर्ती नाटिकाकारो ने इस प्रवृत्ति को ध्यान मे रखकर ही अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की। किन्तु परिस्थितियाँ बदलती है। बिल्हण पहले कवि बाद मे नाटिकाकार है, अत: वे काव्य-रचना मे जितने सफल हुए है उतने नाटिकाकार के रूप में नही। यही कारण है कि उनकी इस नाट्यकृति मे भी काव्य पक्ष का ही प्राधान्य है।

अलकार शब्दार्थमय काव्य के आभूषण है।[४] महाकवि बिल्हण मे अलकारो से समलकृत शब्दार्थ प्रस्तुत करने की अपूर्व क्षमता है। इसीलिये उन्होने नाटिका की मृदुप्रकृति की उपेक्षा कर इसे भी विदग्ध पुरुषो के मनोविनोद का साधन बनाने का प्रयत्न किया है। पदे पदे अलकारो की चकाचौध से समलकृत पद्य ही प्रायश. उपलब्ध होते है जिससे नाट्य के मुख्य उद्देश्य 'अभिनय के माध्यम से रसास्वाद कराना' का विघात हुआ है। फिर भी कवि की अलकार-प्रतिभा प्रशसनीय है। यहाँ स्थाली पुलाकन्यायेन उनकी कला का किचिदन्वीक्षण अपेक्षित है।

नान्दी के पद्यो मे कोमल वर्णात्मक अनुप्रास का प्रयोग कर जहाँ उन्होने अन्य नाटिकाकारो की पद्धति का अनुसरण किया है। वही काव्यलिग जैसे प्रौढ़ अलकार का प्रयोग कर अपनी विदग्धता का भी परिचय दिया है।[५]

---

१ वही, ४/१५.
२ वही, ४/२०
३ सा० द० ६/२६९-२७२।
४ सा० द० १०/१
५ कर्ण० १/१-३.

प्रभातकाल मे चन्द्र स्थिति का उत्प्रेक्षात्मक वर्णन अवलोकनीय है। अस्ताचल शिखर पर कान्ति-हीन चन्द्रमा इस प्रकार अस्त हो रहा है मानो उसे विरहिणी स्त्रियो ने शाप दे दिया हो।[१] शाप से व्यक्ति क्षीण होकर मृत्यु प्राप्त करता है। आगे भी कवि वर्णन करता है, कि सन्ध्या कालिकी लालिमा ऐसी प्रतीत हो रही है, जैसी क्रुद्ध चकोरी की रक्तवर्णा दृष्टि।

यहाँ रात्रि भर प्रिय से वियुक्त रहने के कारण चन्द्र के प्रति क्रुद्ध चकोरी का नेत्र लाल वर्ण का हो जाता है उसी प्रकार सम्पूर्ण प्रभात कालीन वातावरण है।

प्रतीप, उपमा और उत्प्रेक्षा के माध्यम से नायिका के सौन्दर्य का, उसके अग प्रत्यगो का सफल चित्रण कवि ने अनेकश किया है। एक स्थान पर वह कहता है—'जिन्हे तुला के किनारो से प्रकट शब्द के प्रति अनुराग है, ऐसे भवन कलहसो ने जिस नायिका के गति सौन्दर्य को प्राप्त करने के लिए मानो शिष्यत्व प्राप्त किया है, अमृत के समान मनोहर अगो वाली, जो चन्द्रमा के गर्भ से मानो निकली है ऐसी यह कौन मृग के समान नेत्रो वाली इस पृथ्वी को अलकृत कर रही है।[२]

यहाँ नायिका की गति का अनुकरण करने के लिए मानो हसो ने शिष्यत्व स्वीकार किया है, इस रूप मे उत्प्रेक्षा अलकार और प्रसिद्ध उपमान हस गति को उपमेय बना देने क कारण प्रतीप[३] अलकार है। नायिका चन्द्रमा के गर्भ से मानो निकली है यहाँ उत्प्रेक्षा और कुरगाक्षी मे लुप्तोपमा अलकार है। इस प्रकार एक ही पद्य मे उपमा, प्रतीप, दो उत्प्रेक्षाओ और अनुप्रास का सार्कर्य है।

पदे पदे इसी प्रकार अनेक अलकारो का प्रयोग कर कवि ने अपनी कला का द्योतन किया है।

मध्याह्न काल का वर्णन करते हुए कवि ने उत्प्रेक्षा, अपह्नुति आदि अलकारो के माध्यम से एक राजा के अधीन अनेक राजागण रहा करते थे, इस तथ्य को भी प्रकट किया है—

'अनेक राजागण परस्पर लज्जा के कारण मानो भूमि मे प्रतिविम्बित होने के बहाने किसलय के समान अपने हाथो को जोड कर मानो प्रणाम करते हुए पाताल मे प्रविष्ट हो रहे है। अपने छत्र खण्डो के द्वारा दिशाओ को चित्रित करने वाले उन राजाओ की विजय-यात्रा के मध्य बजाये गये वाद्यो की ध्वनि सुनकर प्रसन्नचित्त प्रभूत नगरबधुओ के द्वारा देखे जाते हुए वे अब घरो मे प्रविष्ट हो रहे है।[४]

---

१ अपरशिखरिचूडाचुम्बि बिम्ब हिमाशो-
रिह हि विरहिणीना याति शापैरिवास्तम्।
अपि कुपितचकोरी नेत्रसब्रह्मचारी
भजति कुकुभमैन्द्री कोऽपि साध्यो विलासः॥ —कर्ण १/४

२ कर्ण० १/१८

३ सा० द० १०/८७-८८

४ कर्ण० १/२३

यहाँ मिषात् शब्द से अपह्नुति, लज्जयाइव से उत्प्रेक्षा अलकार का प्रयोग है और साथ ही ष, ट, त्र, आदि कठोर व्यजनो की आवृत्ति होने के कारण अनुप्रास शब्दालकार भी है। मध्याह्न जैसे कठोर समय का वर्णन करने के लिए इसी प्रकार के ऊष्म व्यजनो का अनुप्रास अपेक्षित था जिससे ओज गुण की सृष्टि हो सके।[१]

यहाँ कवि ने लज्जा के कारण पाताल मे प्रविष्ट होने की सम्भावना और अपह्नुति रूप जिन दो अलकारो का प्रयोग किया है, उनसे मानव मन की इस भावना पर प्रकाश पडता है कि लज्जा से मनुष्य नीचे की ओर झुकता जाता है।

सम्पूर्ण नाटिका मे निरन्तर नायिका और कामोद्दीपक प्रकृति वर्णन करने के लिए कवि नवीन नवीन कल्पनाओ की खोज मे विभिन्न अलकारो को माध्यम बनाता है। किन्तु सर्वाधिक प्रयोग उत्प्रेक्षा अलकार का ही है।

उत्प्रेक्षा से भिन्न काव्यलिग अलकार का उदाहरण भी द्रष्टव्य है जहाँ वह नायिका हृदय की निराशाजनक भावनाओं का सुन्दर चित्रण करता है—'भगवान् शकर और पार्वती की प्रार्थना करती हुई नायिका कहती है कि मैंने इस जन्म मे तो नायक के सुन्दर शरीर को नेत्रो से देखने का सौभाग्य प्राप्त ही नही किया। प्रार्थना यह है कि अग्रिम जन्म मे आप लोगो की कृपा से मै कामदेव के स्मरण योग्य बन सकू।[२]

यहाँ अग्रिम जन्म मे स्मरण योग्य बनाने का हेतु इस जन्म मे नायक का दर्शन प्राप्त न करना है जो वाक्य रूप मे वर्णित है अत यहाँ वाक्यार्थ हेतुक काव्यलिग अलकार है। इस श्लोक के समान ही काव्य प्रकाश मे भी एक श्लोक उदाहृत है[३] किन्तु यह नही कहा जा सकता, कौन किससे प्रभावित है। नायिका के प्रति सम्पूर्ण समर्पण की भावना रखते हुए भी नायक, नायिका की प्रसन्नता को उसकी उदारता मानता हुआ कहता है—हे देवि तुम्हारे सिवा कौमुदी के समान कौन आनन्द दे सकता है, तुम्ही मुझे प्रसन्न या क्रुद्ध करने की सामर्थ्य धारण करती हो।[४]

यहाँ कवि ने अतिशयोक्ति और उपमा के माध्यम से जहाँ नायिका के स्वभाव की धीरता का प्रतिपादन किया है। वही उसके चचल स्वभाव का भी सकेत किया है। सम्पूर्ण नाटिका मे आधे से अधिक पद्यो मे नायिका की ही प्रशसा है। वियुक्त नायक, नायिका के अग प्रत्यग मे अनेक प्रकार के रूपो का अवलोकन करता है, जैसे—'इस स्त्री के कपोलो की कान्ति ताड़ पत्र की स्पर्धा करने वाली है, भ्रमर पक्तियो के घेरे के समान श्वासानिल निरन्तर बढ

१ सा० द० ८/४-६.
२ कर्ण० १/३६
३ का० प्र० पृष्ठ ५१०।
४ कर्ण० १/५५

रहा है, चचल गति वाली उसकी कृशता को ढकने वाला एक मात्र लावण्य ही है जो उसके अगो मे अवशिष्ट है, उस मृगनयनी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही मुझे नवीन प्रतीत हो रहा है।[१]

इतने पर भी जब नायक का मन नही भरा तो वह उसे काम की विजय-पताका तथा उसकी दृष्टि को विषजन्य मद की चचल तरग से उपमित करता है।[२]

इस प्रकार पुन--पुन कवि ने एक ही वर्णन को भिन्न-भिन्न अलकारो के माध्यम से नवीन रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। इससे अनेक स्थलो पर पुनरुक्ति दोष आ गया है। किन्तु इससे कवि की कला पर विशेष आच नही आई है, क्योकि प्राय सभी नाटक नाटिकाकारो ने नायिका के अग प्रत्यगो का कल्पनाभेद से पुन-पुन वर्णन किया है।

यो तो गद्य का प्रयोग कवि ने किया ही नही, जहॉ कही अल्पमात्रा मे भी गद्य है वहॉ भी अनुप्रास और उपमा अलकारो का सन्निवेश है[३] किन्तु वहॉ सरलता और स्व.भाविकता पर कोई आघात नही पहुँचा।

महाकवि बिल्हण की इस नाटिका मे प्राय निम्नलिखित २५ प्रकार के अलकारो का प्रयोग है—

अनुप्रास, शब्दश्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, दृष्टान्त, काव्यलिग, विभावना, विशेषोक्ति, अनुमान, उदात्त, परिकर, अपह्नुति, दीपक, समासोक्ति, व्यतिरेक, प्रतीप, सन्देह, निदर्शना, प्रतिवस्तूपमा, स्वभावोक्ति, अर्थान्तरन्यास, सकर और सस्सृष्टि।

काश्मीरी कवियो मे ऐतिहासिक महाकाव्यकार के रूप मे बिल्हण ने जहॉ सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया वही दृश्यकाव्य क्षेत्र मे गेय नाटिका प्रस्तुत कर एक पुरानी रूढिवादिता का परित्याग कर नवीनता स्थापित की। इसका काव्यत्व भावी नाटिकाकार, रूपककार और सभी साहित्यकारो पर पडा यह निर्विवाद है।

इस प्रकार ऐतिहासिक महाकाव्य मे रूप मे जहॉ विक्रमाकदेव मूर्ध्न स्थान रखता है वही अलकृत काव्य शैली की प्रमुख नाटिका के रूप मे कर्ण सुन्दरी परवर्ती नाटिकाओ का प्रेरणास्रोत बनी, यह बिल्हण की कला का ही वैशिष्ट्य है।

उषारागोदया—१२वी शती के अन्त मे दक्षिण भारत के कवि रुद्र चन्द्रदेव ने पौराणिक पात्र अनिरुद्ध और उषा से सम्बद्ध उषारागोदया नामक नाटिका की रचना की थी, जिसका मूलाधार हर्ष की नाटिकाएं है। राजशेखर एव बिल्हण का भी प्रभाव इस नाटिका पर स्पष्ट है; फिर भी कलात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से इस नाटिका का स्थान सस्कृत साहित्य मे महत्त्वपूर्ण है।

१ वही ३/५
२ वही ५/६.
३ कर्ण०, पृष्ठ ४७।

नाटिका की मृदु प्रकृति और श्रृगार रस की अविच्छिन्न परम्परा का विघात न हो एतदर्थ कवि ने प्रायश उपमा मूलक अर्थालकारो का ही बाहुल्येन प्रयोग किया है। जहॉ कही इस परम्परा का उच्छेद हुआ है वहॉ भी वर्णनीय विषय, पात्रादि के औचित्य की रक्षार्थ ही कवि ने ऐसा किया है।

शब्दालकारो मे अनुप्रास व श्लेष का ही भूयसा प्रयोग है, कष्ट साध्य यमक अलकार का प्रयोग कवि की इस कृति मे सामान्यत उपलब्ध नही है।

रत्नावली आदि नाटिकाओ के समान नान्दी,[१] प्राकृतिक दृश्यो[२] और युद्धादि[३] वर्णनो मे ही अनुप्रास का भूरिश प्रयोग उपलब्ध होता है, किन्तु अन्य नाटिकाओ की अपेक्षा इसमे नायिका रूपवर्णन[४] आदि प्रसगो मे भी अनुप्रास का मधुरोपन्यास है।

रीतिकालीन कवियो के प्रभाव के फलस्वरूप कवि ने शब्द सौन्दर्य के प्रति विशेष अभिरुचि दिखाई, जिससे नाटिका का प्रत्येक पद्य प्राय अनुप्रास से समलकृत होने के कारण श्रुतिमधुर हो गया है।

बिल्हण की कर्णसुन्दरी के समान सम्पूर्ण नाटिका मे श्लोको का ही भूरिश निबन्धन कर रुद्रचन्द्रदेव ने नाटिका की अभिनेयता पर कुठाराघात नही किया है किन्तु उनकी अलकृत शैली से वे अवश्य ही प्रभावित प्रतीत होते है।

उषारागोदया के कुछ अश जिनमे अलकार सौन्दर्य निखरा है, यहॉ प्रस्तुत कर रुद्रचन्द्रदेव की कला का परिचय प्रस्तुत करना नितान्त अपेक्षित है।

ग्रीष्मकाल मे प्रात कालीन सूर्य भी सन्तापदायक होता है, इसका वर्णन करने के लिए कवि ने ऐसे पदो का सन्निवेश किया है जिनसे सूर्य के साथ-साथ कथानायक अनिरुद्ध के मच पर आने की भी सूचना प्राप्त हो सके, यथा—

बाणादिह परिमुक्तो लोहितमध्ये स्थितोऽतिशल्य इव
अयेऽनिरुद्धो गिरिणा सहसोषारागरंजितोऽभ्येति ॥[५]

यहॉ बाण, लोहित, शल्य, अनिरुद्ध, गिरिणा, उषारागरजित शब्द श्लिष्ट है जिनसे सूर्य के पक्ष मे यह अर्थ निकलता है कि बाण नामक वृक्षो[६] से बाहर निकला हुआ मध्य मे लाल वर्ण वाला तीर के समान पर्वतो से न रोका गया, प्रभात कालीन लालिमा से युक्त सूर्य उदित हो रहा है।

१ उषा० १/१
२ वही १/१५, २/६-७
३ वही २/२४-२७
४ वही ३/३२.
५ उषा० १/३.
६ स० हिन्दी कोश, पृष्ठ ७१२;
विकच बाण दलावलयोऽधिक
रुचिरता रुचिरेक्षण विभ्रमा। —शिशु० ६/४६

अनिरुद्ध के पक्ष मे—बाण नामक राक्षसराज से मुक्त हुआ लोहित नामक नगरी मे कर्णसारथी शल्य के समान गिरिवर नामक अपने मित्र के साथ उषा (बाण पुत्री) के प्रति अनुरागवान् अनिरुद्ध (नायक) सहसा आ रहा है।

यहाँ शब्द श्लेष के प्रयोग से दो अर्थ वाच्य हो गये है इससे अनिरुद्ध मार्तण्ड के समान है यह अलकार ध्वनित होता है।

अमात्य उद्धव कुमार अनिरुद्ध को उषा प्राप्ति के विषय मे चिन्तित होकर कह रहे है—'जब तक राक्षसराज बाण का विनाश नही हो जाता, तब तक कुमार की मुक्ति कैसी ? मुक्ति भी मिल जाय तो उससे क्या लाभ यदि लोकोत्तर सौन्दर्यशालिनी उषा नही मिलती। उषा भी प्राप्त हो जाय तो उससे क्या लाभ यदि वे पूर्णरूपेण प्रसन्न नही है। इस प्रकार वे कैसे है ? कहाँ है ? इत्यादि चिन्ता से मेरा हृदय अत्यन्त सशयालु है।'[१] यहाँ एकावली अलकार[२] के माध्यम से नायिका विषयक उत्काण्ठा व्यक्त की गईहै।

नायिका सौन्दर्य वर्णन नाटक व नाटिकाओ मे रूढि सा बन गया है। अपह्नुति अलकार के माध्यम से कवि नायिका क अग सौन्दर्य के साथ केशो की प्रशसा करता हुआ कहता है—'प्रिये ! देखो तुम्हारे अग सौन्दर्य के द्वारा जिसकी कान्ति लूट ली गई है, ऐसी यह विद्युत आकाश मे भी अपने पैर नही टिका पा रही है, और तुम्हारे केशकलाप से पराजित हो जाने के कारण ये नीलमेघ प्रभूत जलके बहाने अश्रु प्रवाहित कर रहे है।[३]

यहाँ पूर्वार्द्ध मे उत्प्रेक्षा और उत्तरार्द्ध मे अपह्नुति[४] अलकार का प्रयोग है। प्रकृत का निषेध कर अप्रकृत (उपमान) की स्थापना रूप अपन्हुति यहाँ मिषेण शब्द के माध्यम से प्रकृत प्रभूत जल का निषेध कर अप्रकृत अश्रु की स्थापना करने के कारण घटित होती है और जिससे नायिका के केशो और शारीरिक सुषमा की उत्कट प्रतीति होने के कारण श्रृगार रस पुष्ट होता है।

श्लेषालकार यद्यपि अपेक्षाकृत क्लिष्ट है फिर भी इस नाटिका मे उसका बाहुल्येन प्रयोग हुआ है किन्तु उसकी चारुता मे कोई न्यूनता नही है। उदाहरणार्थ वसन्त ऋतु मे वृक्षो और लताओ[५] का इस प्रकार श्लिष्ट वर्णन किया गया कि

---

१ बाणोन्मूलनमन्तरेण कियती वत्सस्य मोक्षप्रथा
मोक्षोऽप्यस्य न कीदृशो यदि न ता प्राप्नोति लोकोत्तराम्।
प्राप्ताप्यस्य विदर्भराजतनया शुद्धप्रसादादृते
कीदृक् क्वेति तु चिन्तयैव हृदय दोलाधिरोहायते॥ —उषा० १/६.

२ पूर्वं पूर्वं प्रति विशेषणत्वेन पर पर
स्थाप्यतेऽपोह्यते वा चेत्स्यात्तदेकावली द्विधा। —सा० द० १०/७८.

३ पश्य त्वदगसुषमामुषिता क्रियेव वध्नाति न स्थिरपद गगनेऽपि विद्युत्।
मुचन्ति केशनिचयेन पराजिताश्च नीलाम्बुदा बहलवारि मिषेण चास्त्रम्॥
—उषा० १/२९.

४ प्रकृत प्रतिषिध्यान्यस्थापन स्यादपह्नुतिः। —सा० द० १०/३९.

५ उषा० २/९-१०.

उससे नायक नायिका का व्यवहार ध्वनित होने से समासोक्ति अलकार[१] का अवसर मिला। इससे लता वृक्षो का उद्दीपक रूप उत्कटतया अनुभूत होने लगा।

इसी प्रकार नायक के द्वारा वसन्तोत्सव वर्णन[२] मे उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अलकारो के माध्यम से प्रकृति के उद्दीपक स्वरूप का सफल चित्रण है। इस वर्णन मे सर्वत्र अनुप्रास के प्रयोग से पद्यो मे श्रुतिमाधुर्य की अनूठी सर्जना हुई है।

रुक्मवती रानी के मधुर गीत को सुनकर विह्वल हुआ नायक और अधिक उतकण्ठित हो जाता है, उस भाव को भरते समय रुद्रचन्द्रदेव ने विशेषोक्ति अलकार की योजना की है। 'नायक गीतरस का पान करके और अधिक तृष्णाकुल हो जाता है।'[३]

यहॉ पान करके भी-प्यास का लगना कारण के रहते हुए भी कार्य का न होना रूप विशेषोक्ति[४] अलकार है।

नायक के वियोग मे सन्तप्तागी नायिका के उपचार हेतु जो नलिनीपत्र का शयन बनाया गया था, वह उस नायिका के तप्ताग शरीर के स्पर्श से पूर्णत जल गया था और जब वह नायिका उठकर वहॉ से चली तो परिश्रम के कारण उसके हाथो से गिरे हुए पसीने की बूदो से ही मानो इस पत्र-शय्या मे शिम-शिम की ध्वनि उत्पन्न हो रही है।[५]

यहॉ कवि ने नायिका के अतिशय ताप को चित्रित करते हुए उत्प्रेक्षा अलकार का सहारा लिया है। जला हुआ अगार जब पानी से बुझाया जाता है। तो उससे बहुत देर तक शिम-शिम इस प्रकार की ध्वनि निकला करती है। उसी प्रकार कवि ने जैसे यहॉ शिम- शिम ध्वनि से उत्प्रेक्षा कर नायिका के उत्कट सन्ताप की अभिव्यजना की है, वैसे ही पदो मे ध्वन्यात्मकता के कारण ध्वनिचित्र भी उपस्थित कर दिया है।

कालिदास ने भी यद्यपि नायिका की शय्या का वर्णन[६] कर उसके सन्ताप का चित्रण किया है किन्तु शिम शिम ध्वनि की उत्प्रेक्षा से जो सौन्दर्य यहॉ उत्पन्न हुआ है वह वहॉ नही है और न नायिका के इतने अधिक सन्ताप की ही वहॉ अभिव्यक्ति होती है।

किन्तु इसका अर्थ यह नही कि कालिदास किसी भी रूप मे इनसे घटकर है। कचुकी अपनी वृद्धावस्था का सकेत करते हुए औपचारिकता के कारण धारण

१ समासोक्ति· समेर्यत्र कार्यलिंगविशेषणे।
व्यवहार समारोप· प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुन॥ —सा० द० १०/५६-५७

२ उषा० २/११-१२

३ उषा० २/१७.

४ सा० द० १०/६७

५ इदमचिरोज्झिततल्प मन्ये स्मरतापतप्ताया.।
करगलितघर्मसलिलैर्भवति शिमशिमध्वनिर्यदिह॥ —उषा० ३/२१.

६ अभि० शा० ३/२३ (पृष्ठ ११४ सा० म० मेरठ)

की गई यष्टि को अब सहारे की लकडी मानता है जिसके बिना अब चल पाना सम्भव नही।[१] कालिदास के इस भाव को रुद्रचन्द्रदेव ने ज्यो का त्यो अपनी इस नाटिका मे अवतरित करने का उपक्रम किया है।[२] किन्तु उतनी सफलता प्राप्त न हो सकी, यहाँ यष्टि को धारण करने मे दोबारा धारण कर अभ्यास करने की उत्प्रेक्षा की गई है। जिस यष्टि को जीवन के एक बहुत बडे भाग मे निरन्तर धारण किया अब वृद्धावस्था मे उसके धारण करने का अभ्यास कुछ उचित प्रतीत नही होता। अत यहाँ उत्प्रेक्षाऽलकार यद्यपि अपने आप मे पूर्ण है किन्तु किसी विशेष चमत्कार को उत्पन्न नही कर पाता।

विविध अलकारो के माध्यम से नवीन कल्पना जाल मे ग्रथित करने की लालसा नाटिका मे पदे-पदे दृष्टिगोचर होती है। शायद ही ऐसा कोई श्लोक हो जिसमे कोई अलकार न हो। फिर भी कवि को पर्याप्त सफलता मिली है।

कवि ने प्रेम की उत्कृष्टता और पवित्रता के प्रति अपने उदात्त भाव रखे है इसीलिये स्वप्न मे भी जब विदूषक नायक से कहता है कि उसकी भुजा नागपाश से निगडित हो गई है तो नायक प्रसन्न होकर कहता है कि राहु ने तो अमृतपान के लिए अपना शीर्ष कटवा दिया था, प्रेम के कारण मेरी तो भुजा का ही बन्धन हुआ है मै तो अपना शिर भी समर्पित करने मे महत्त्व समझता हूँ।[३]

वस्तुत यहाँ कवि ने राहु का दृष्टान्त देकर प्रेम की महत्ता का प्रति पादन किया है। उसकी दृष्टि मे इस बाह्य शरीर का कोई मूल्य नही क्योकि वह आगे के पद्य मे पुन कहता है कि—यदि अन्तरात्मा शुद्ध है तो तीर्थ आदि से शुद्धि करने का प्रयत्न जैसे व्यर्थ है, उसी प्रकार जब उषा का अनुराग हृदय मे है ही तो उषाराग से सगम की क्या उपेक्षा।[४]

कवि ने विरोधाभास का भी यत्र-तत्र प्रयोग किया है—'नायक कहता है कि मै उन कुलीन वक्र भौ वाली स्त्रियो के चरित्र को धन्य मानता हूँ जो क्रोध के रहने पर भी विनय और प्रेम मे धैर्य को धारण करती है।'[५]

यहाँ आपातत क्रोध के रहने पर भी विनय का रहना विरुद्ध धर्म है इसी प्रकार प्रेम के रहते हुए भी धैर्य का रखना विरुद्ध धर्म प्रतीत होता है किन्तु कुलीन स्त्रियो मे ऐसा भी सभव होने के कारण दोष का परिहार हो जाता है अत यहाँ विरोधाभास अलकार है।[६]

---

१ अभि० शा० ५/३ (पृष्ठ १६४ सा० म० मेरठ)

२ उषा० ३/३३

३ उषा० ४/३.

४ वही ४/४.

५ विनय. सत्यपि क्रोधे सत्यपि प्रेम्णि धीरता।
चरित सर्वथा धन्य मन्ये कुलनतभ्रुवाम्॥
—उषा० ४/१५

६ विरुद्धमिव भासेत विरोधाभास उच्यते। —सा० दर्प० १०/६९.

'विदूषक नीलमेघ का वर्णन करते समय मेघ मे सूकर का आरोप करता है जो कामी लोगो के वध के लिए इधर-उधर घूम रहा है।'[१]

यहाँ मेघ पर सूकर का आरोप असमान हीन आरोप है जिससे सौन्दर्य सृष्टि की अपेक्षा दीन भावना का उदय होता है विदूषक की बुद्धि पर, क्योकि सूकर आकार और प्रज्ञा दोनो दृष्टियो से ही हीन होता है। अत घन पर उसका अभेद आरोप उचित प्रतीत नही होता है। विदूषक हसोड और निम्न श्रेणी का पात्र है ऐसा मानकर उसका औचित्य स्वीकार किया जा सकता है।

कवि ने जहाँ पद्य मे इन विविध प्रकार के (लगभग ३०) अलकारो का प्रयोग किया है, वही गद्य मे भी अनेक अलकार प्रयुक्त है जिनमे प्रायश उपमा, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक और दीपक आदि है।

इस प्रकार अलकारो के प्रति इतना अधिक व्यामोह रखने के पश्चात् भी नाटिका मे कही भी कृत्रिमता या अस्वाभाविकता नही आने पायी है और यह नाटिका अपने युग के सस्कृत साहित्य मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है तथा सर्वोत्तम नाटिका की दृष्टि मे अगुलि गणनीय है।

चन्द्रकला—रत्नावली नाटिका के पश्चात् शास्त्रीय क्षेत्र मे यदि कोई नाटिका प्रसिद्धि पा सकी तो वह है विश्वनाथ कविराज प्रणीत चन्द्रकला नाटिका। दशरूपक और साहित्यदर्पण जैसे प्रसिद्ध लाक्षणिक ग्रन्थो मे इन्ही दोनो नाटिकाओ के उदाहरण सर्वाधिक मात्रा मे समुपलब्ध होने से यह कहा जा सकता है कि इन नाटिकाओ मे प्राय समस्त लाक्षणिक रूढियो का पालन किया गया है।

कथावस्तु, घटनाओ और पात्रो की दृष्टि से रत्नावली से अत्यधिक साम्य रखते हुये भी इस नाटिका मे अलकारो का मधुर विन्यास और शब्द-सौन्दर्य अपनी पृथक् सत्ता रखता है। स्वय लक्षणकार होने के कारण विश्वनाथ ने इसकी रचना मे विविध उदाहरणो को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

अन्य नाटिकाकारो की भाँति विश्वनाथ कविराज ने भी प्रायश प्रकृति[२] को सजीव एव मूर्त रूप देने के लिए अनुप्रास जैसे श्रुति मधुर अलकार का प्रयोग कर भाषा को समलकृत किया है किन्तु स्तुति[३] और स्त्रीसौन्दर्य चित्रण[४] मे भी उनकी अनुप्रास प्रियता कम नही है।

भगवान् शकर के शिर पर नृत्य के समय गगा तरगो की अपूर्व छटा[५], के प्रति अपना प्रणति भाव व्यक्त करते हुए जहाँ कविने श, ख, त्र, भ, क और ग प्रभृति वर्णो के छेक और वृत्ति रूप अनुप्रास के दोनो भेदो का प्रयोग किया है वही उत्प्रेक्षा, अपन्हुति और रूपक आदि अर्थालकारो की भी मधुर अभिव्यजना करते हुए अर्थ सौन्दर्य का अभिवर्द्धन किया है।

---

१ उषा० ३/१२

२ चन्द्र० १/३; २/१, ६,७; ३/१३.

३ वही ४/५.

४ वही १/७, १३, १५, २/१.

५ वही १/१.

भाषा-सौन्दर्य के लिए कोमल वर्णावृत्ति मूलक श्रुतिमधुर अनुप्रास अलकार का प्रयोग तो सर्वत्र ही नाटिका मे उपलब्ध है, उसके साथ साधर्म्यमूलक अलकारो का भी सयोजन कवि की विदग्धता है।

अपने आश्रयदाता नि शकभानुदेव की प्रशसा मे कवि ने रूपक, उपमा और अतिशयोक्ति के माध्यम से राजा के ओजस्वी व्यक्तित्व की सफल अभिव्यक्ति की है।[१]

प्रकृति चित्रण करते हुए विश्वनाथ कविराज के द्वारा बसन्त की मन्द-मन्द बयार का नाटिका की प्रस्तावना मे किया गया वर्णन काव्य के माधुर्य गुण को जहॉ सम्पूर्णत समाविष्ट किये है वही उनकी उदात्त साहित्यिक रुचि को भी व्यक्त करता है, यथा—

लताकुजं गुंजन् मदवदलिपुंज चपलयन्।
समालिङ्गन्नङ्ग द्रुततरमनङ्गं प्रबलयन्।
मरुन्मन्द मन्दं दलितमरविन्दं तरलयन्
रजोवृन्दं विन्दन् किरति मकरन्द दिशि दिशि॥[२]

यहॉ ञ और ज, ग और ङ, न और द आदि तृतीय और पचम वर्णो की सयुक्त आवृत्ति तथा द, त, म, न आदि व्यजनो की पृथक्-पृथक् आवृत्ति मे अनुप्रास अलकार है। जिससे माधुर्य गुण का सम्यक् परिपाक हुआ है।[३]

गद्य मे भी अनेक स्थानो पर अनुप्रास का स्पृहणीय प्रयोग है। इस नाटिका का प्रभाव परवर्ती नाटिकाओ पर पडा। आधुनिक कवि मथुरादास ने वृषभानुजा नाटिका लिखते समय विश्वनाथ कविराज की अनुप्रास विशिष्ट शब्द रचना और भाषा माधुर्य को ध्यान मे रखा था क्योकि वृषभानुजा मे भी गद्य और पद्य दोनो मे ही कोमल वर्णात्मक अनुप्रास के माध्यम से भाषा सौष्ठव बढा है।

अतिशयोक्ति अलकार के माध्यम से नायिका के सौन्दर्य का प्रतिपादन करने हेतु कवि उसके विभिन्न अगो मे अनेकानेक उपमानो का आरोप कर अपनी कल्पना शक्ति का इस प्रकार परिचय देता है—

'वह (नायिका) ब्रह्मा के निर्माण नैपुण्य की पराकाष्ठा है क्योकि उसकी दृष्टि अभिनव कमलो की वृष्टि है, उसका मुख सम्मोहन मन्त्र या यन्त्र है जो सम्पूर्ण भूमण्डल के लोगो के चित्त को आकृष्ट कर लेता है। उसकी भ्रूलता कामदेव का धनुष और उसका शरीर अमृतपूर्ण सागर है।[४]

यहॉ नायिका के शरीर मे अमृतसिन्धु का और अगो मे नीलनीराज वृष्टि आदि का अभेदारोप करने के कारण रूपकालकार तथा नायिका को विधाता की परासृष्टि बतलाने के कारण अतिशयोक्ति नामक अलकार है।

१ चन्द्र० १/२.
२ वही १/३.
३ का० प्र० ८/७४.
४ चन्द्र० १/७

नायक की नायिका विषयक प्रगाढ रति का चित्रण करते समय कवि की प्रतिवस्तूपमालकार प्रयोगविधि द्रष्टव्य है।[१]

निरन्तर खाद्य पदार्थो मे अभिरुचि रखने वाला विदूषक प्रकृति के मनोहर दृश्यो मे भी खाद्य-वस्तुओ को ही देखता है। उसे आम्रपुष्प श्रीखण्ड के समान तथा अशोक के पुष्पगुच्छ गुड से बने हुए लड्डुओ के समान प्रतीत होते है।[२] यद्यपि इन उपमानो मे हीनोपमा नामक दोष माना जा सकता है, किन्तु पात्रानुकूलता के कारण इसे दोष नही कह सकते।

अनुक्त निमित्ता विशेषोक्ति का सुन्दर प्रयोग नायिका की अन्यमनस्क स्थिति का चित्रण करते समय हुआ है, जब वह अपनी सखी के साथ बातचीत करते समय असगत उत्तर देती है, प्रसन्न न होने पर भी हसती है और देखी जाने पर भी कुछ नही देखती।[३]

अन्त्यानुप्रास जिसका विकास परवर्ती काल मे हुआ है, का प्रयोग भी विश्वनाथ ने इस नाटिका मे बडी चतुरता के साथ किया है। स्वय उन्होने अपने लक्षणग्रन्थ साहित्यदर्पण मे इस अलकार की परिभाषा कर पदान्त और पादान्त दो भेद किये है।[४] इस नाटिका मे पदान्त अन्त्यानुप्रास का प्रयोग करते हुए कवि ने चन्द्र का उद्दीपक वर्णन किया है।[५]

इसी पद्य मे लुप्तोपमा और रूपक आदि अर्थालकारो के माध्यम से चन्द्र के व्यापारानुसार भिन्न-भिन्न उपमान प्रस्तुत किये गये है।

पल्लव पुष्पादि समलकृत लता को देखकर उसमे नायिका की भ्रान्ति का सुन्दर चित्रण करते हुए कवि ने पद्य के बीच मे गद्यात्मक कुछ शब्द भी दिये है जिनसे नायिका के विविध अगो का सादृश्य लता के अग मे स्फुट हो गया है।[६]

लक्ष्मी के आगमन का गद्य मे वर्णन करते हुए अनुप्रास आदि अलकारो का सुन्दर चित्रण स्पहृणीय है।[७]

इस प्रकार सम्पूर्ण नाटिका मे लगभग ३० प्रकार के विविधालकारो के प्रयोग मे सिद्धहस्त कवि की कला अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त कर सकी है और कर्णसुन्दरी जैसी काव्यपक्ष प्रधान नाटिकाओ की अपेक्षा सम्वादात्मक अभिनेयता को प्रस्तुत करने वाली मधुर नाटिका की परम्परा को पुन स्थापित किया जो श्रीहर्षवर्द्धन के समय से प्रचलित हुई थी।

१ वही १/८.
२ चन्द्र० १/१२
३ वही १/१४
४ सा० द० १०/६.
५ चन्द्र० २/१
६ वही ३/७
७ चन्द्र०, पृष्ठ ८०।

अलकार प्रयोग मे कवि ने वर्णनो की अनुकूलता और रसगुण आदि के औचित्य पर विशेष ध्यान रखा है तथा नाटिका की मृदु प्रकृति को अक्षुण्ण रखने का श्रेय अर्जित किया।

वृषभानुजा—अन्य नाटिकाकारो की भॉति मथुरादास ने भी शब्दालकारो मे अनुप्रास अलकार का ही प्रयोग किया इसी प्रकार अर्थालकारो मे प्रायश उपमामूलक अलकार ही प्रयुक्त हुए है।

कर्णसुन्दरी आदि नाटिकाओ के समान इसमे भी नान्दी पदो मे अनुप्रास के साथ प्रतीप, उपमा और उत्प्रेक्षा रूप अर्थालकारो का भी प्रयोग है।[१]

अन्य नाटिकाओ की अपेक्षा अधिक गद्य और गद्य मे अलकारो का अधिक प्रयोग इस नाटिका की अपनी विशेषता है। जैसे—

वृन्दा के द्वारा नन्द गोप के भवन[२] का विस्तृत एव उदात्त वर्णन उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति और रूपक अलकारो के प्रयोग से कादम्बरी के समान रुचिकर बन गया है।

महाकवि कालिदास के रघुवश द्वितीय सर्ग मे राजा दिलीप के वन मे पहुँचने पर वन के लता वृक्षो के द्वारा किये गये स्वागत का जिस प्रकार वर्णन है,[३] ठीक उसी प्रकार कवि ने यहॉ कृष्ण के वन जाने पर किया है। रूपकाऽलकार समलकृत यह अश द्रष्टव्य है—

कृष्ण का कथन है—'हे मित्र । भ्रमरियो की यह मधुर गीति, मयूरो का नृत्य, कोयलो का कोलाहल, और लतारूपी नववधुओ का किसलयो की लालिमा रूप अनुराग प्रकट करने के कारण ऐस प्रतीत हो रहा है, मानो यह वन मेरे आने के लिए मगल कार्य कर रहा है।[४]

यहॉ लताओ मे नववधू का अभेद आरोप करने के कारण रूपक और वन के द्वारा मगलकार्य की सम्भावना मे उत्प्रेक्षाऽलकार है, साथ ही प्रत्येक चरण मे अनुप्रास अलकार भी।

कवि प्रकृति के अचेतन रूप मे चेतनता का आरोप करता हुआ स्पष्ट कहता है—

'ये वृक्ष निमेष रहित भ्रमर रूपी अपने नेत्रो के द्वारा दूर से ही मुझको आया हुआ देखकर गिरते हुए पराग के बहाने आनन्दाश्रु बहा रहे है तथा मलयानिल से हिलने वाले शाखाग्र रुपी हाथो के द्वारा मुझे बुला रहे है और प्रेम पूर्वक फलो को भेट देकर मेरा स्वागत कर रहे है।[५]

१ वृष०, पृष्ठ १/१-४
२ वृष०, पृष्ठ ७-८.
३ रघु० २/९-१३.
४ वृष० १/१६
५ वृष०, १/१७

यहाँ भौरो मे नेत्रो का शाखाग्र मे हाथो का और फलो मे उपायन का आरोप है तथा माध्वीक बिन्दु का अपह्नवकर आनन्दाश्रु की स्थापना करने के कारण अपह्नुति अलकार है। प्रत्येक पद मे अनुप्रास के सयोजन से श्रुति माधुर्य आ गया है।

लालित्य की दृष्टि से नाटिका साहित्य मे इस नाटिका का प्रथम स्थान माना जा सकता है। सन्देहालकार का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कवि ने नायिका की रूपमाधुरी का जितनी चतुरता के साथ चित्रण किया है, वह अनुपम है—

'वृन्दावन मे आती हुई राधा के नूपुरो की ध्वनि को सुनकर कृष्ण को सन्देह होता है, कि क्या यह वासन्ती लता के मधु का पान करने वाले भ्रमरो का स्वर है ? या कि कही दूर हस समुदाय कलरव कर रहा है ? किन्तु दूसरे ही क्षण अनुमान लगा कर वह कहता है, कि अरे समझ मे आ गया' यह मेरी प्रेयसी के मणिनूपुरो की ध्वनि है क्योकि ये दिशाये उसके शरीर की कान्ति से ही मानो स्वर्णरस सिक्त प्रतीत हो रही है।[१]

यहाँ आरम्भ मे कृष्ण को सन्देह होता है किन्तु अन्त मे दिशाओ की पीताभा को देखकर उसे निश्चय हो जाता है कि यह मेरी प्रेयसी के नूपुरो की ध्वनि है अत निश्चयान्त सन्देह अलकार है।[२] चतुर्थ चरण मे उत्प्रेक्षा अलकार है। दिशाओ की पीताभा को देखकर प्रेयसी के मणिनूपुरो का ज्ञान होने के कारण अनुमान अलकार भी है।[३]

स्वाभावोक्ति अलकार के माध्यम से प्रकृति का चित्रण करते हुए कवि ने मध्याह्न का स्वाभाविक वर्णन किया है—

यह सर्प ग्रीष्म सन्तप्त होकर अपने स्वाभाविक वैर को छोड़कर तरु मूल मे मयूर पख की छाया का आश्रय ले रहा है, प्यास से आकुल सारिकाएँ लता गुल्मो मे पानी की याचना करती है तथा भ्रमर उष्ण जल मे कमलो को छोड़कर लताओ का आश्रय ले रहे है।[४]

सूर्यास्त का स्वाभाविक वर्णन भी स्पृहणीय है जहाँ कवि ने स्वाभावोक्ति अलकार का प्रयोग कर पशु-पक्षियो की आवासोन्मुख प्रवृत्ति का वर्णन किया है।[५]

'नायिका राधा अपने वियोग दु.ख को प्रकट करती हुई अपनी सखी से कहती है कि हे सखि यह वशी ध्वनि कृष्ण के साथ अमृत के समान और कृष्ण से वियुक्त होने पर विष के समान प्रतीत होती है, यही मेरे जीने और मरने का हेतु है।'[६]

---

१ वही, २/६.
२ ससन्देहस्तु भेदोक्तौ तदनुक्तौ च सशय। का० प्र० १०/९२ (सूत्र १३७)
३ अनुमान तु विच्छित्या ज्ञान साध्यस्य साधनात्।१०/६३
४ वृष०, ३/४
५ वही, ३/६
६ वृष० ४/११.

यहाँ यथासख्य नामक अलकार है क्योकि यहाँ वशीरव सयोग मे अमृत के समान और वियुक्तावस्था मे विष के समान होकर मृत्यु का हेतु है। इसलिये सयोग और वियोग, अमृत और विष, तथा जीवन और मरण इन सब मे यथाक्रम अन्वय होने के कारण यथासख्य नामक अलकार है।[1]

नायिका राधा कृष्ण के हाथ मे चित्रफलक को देखकर और यह अनुमान कर कि यह किसी अन्य स्त्री का है, अत्यन्त निराश होकर अपनी सखी से कहती है, कि—'हे सखि, मे ऐसा मानती हूँ कि यह दुर्लभ व्यक्ति अब दूसरे जन्म मे ही मेरे नेत्रो के समक्ष या तो आयेगा अथवा चित्र मे। यह तो अनेक स्त्रियो के हृदय मे प्रविष्ट हो गया, अत इसके लिए मेरा मन अब निराश हो गया है।[2]

यहाँ दूसरे जन्म मे प्रेमी को देखने एव उसके प्रति निराश होने का कारण उसका अनेक स्त्रियो के हृदय मे प्रविष्ट होना है। यह हेतु एक ही पद मे वर्णित होने के कारण पदार्थ हेतुक काव्यलिग अलकार है।[3]

कवि ने सम्पूर्ण नाटिका मे शब्दालकारो मे केवल अनुप्रास का और अर्थालकारो मे उपमा, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, रूपक, काव्यलिग, निदर्शना, विभावना, विशेषोक्ति, भ्रान्तिमान्, व्यतिरेक, अतिशयोक्ति, अनुमान, सन्देह और विषम आदि का ही मुख्यत प्रयोग किया है। इन अलकारो मे भी साधर्म्यमूलक अलकारों का ही भूयशा प्रयोग है।

नायिका वर्णन के साथ-साथ प्रकृति चित्रण मे भी कवि की अलकार प्रतिभा का अच्छा विकास हुआ है।[4]

इस प्रकार वृषभानुजा नाटिका का सम्पूर्ण कलेवर, नवीन सम्भावनाओ, अभिनव उपमानो की अभिव्यजनो से कैशिकी वृत्तिमूलक शृगाररस पूर्णता को प्राप्त हो सका। कथानक अत्यन्त लघु होते हुए भी अभिनव कल्पनाओ के कारण नाटिका का कोई भी अश ऐसा नही है, जो अध्येता या दर्शक के मन मे अरुचि उत्पन्न कर सके।

इस प्रकार प्रतिनिधि नाटिकाओ मे अलकारो की प्रवृत्तियो और उनके प्रयोग की सक्षिप्त विवेचना तथा औचित्यानौचित्य की मीमासा की गई।

अन्य सभी नाटिकाओ में इसी भाँति अलकारो का भूयसा प्रयोग है, क्योकि कवि की कल्पना का परिपाक रस, अलकार और छन्द की मधुर संयोजना मे होता है। अत अलकार विन्यास मे कवियो का विशेष प्रयत्न रहा है।

परवर्ती काल की नाटिकाओ मे अलकार की दृष्टि से कमलिनी कलहस और नवमलिका का नाम आदर के साथ लिया जा सकता है।

---

१ यथासख्य क्रमैणेव क्रमिकाणा समन्वय (का० प्र० १०/ १०८)

२ वृष०, ४/१६

३ का० प्र० १०/११४,

४ वृष०, २/१-२, ३ / ६

छन्दो विधान

सस्कृत साहित्य की प्रमुख धारा दृश्यकाव्य मे गद्य-पद्य दोनो का समालम्बन कर सर्वजनाह्लादक रसास्वादन योग्य बनाया गया। सभी दृश्यकाव्यकारो ने रागात्मक और कल्पनाशील भावनाओ के प्रयोग मे प्राय पद्य का एव सवाद सयोजन के लिए गद्य का प्रयोग किया है।

पूर्वत स्पष्ट किया जा चुका है कि नाटिकाओ मे प्रणयानुमूलकता होने के कारण रागात्मकता अधिक होती है। अतएव उनका अभिनय रात्रि के प्रथम प्रहर मे करने का विधान था।[१] फलत नाटिकाओ मे पद्यो का बाहुल्येन प्रयोग किया गया है। पद्य छन्द का पर्यायवाची है।[२]

आदि नाट्याचार्य भरत ने तो यहाँ तक लिखा है कि छन्द से रहित कोई भी शब्द नही है और न छन्द ही शब्द रहित। अत नाटक का वृत्त उभय सयुक्त अर्थात् गद्यपद्यमय होता है।[३]

नाट्यरचना के सम्बन्ध मे नाट्यदर्पणकार का स्पष्ट निर्देश है कि नाट्य मे पद्य स्वल्प, गद्य लघु, प्रधान फल साधिका अवान्तर कथा की ही योजना हो किन्तु समुद्र, सूर्य, चन्द्र आदि का अधिक वर्णन न हो।[४] यहाँ स्वल्प पद्य का तात्पर्य सरल शब्दात्मक वर्णनानुकूल पद्यो से है[५] अन्यथा नाटिका लक्षण मे श्रृगार का बाहुल्य बतलाते हुए उन्होने जो यह लिखा है कि 'तत एव गीत नृत्त वाद्य हास्यादीना श्रृगारागाना प्राचुर्यम्'[६] कथन असगत हो जाने से वदतो व्याघात होगा।

इस व्याख्यान से यह स्पष्ट हो गया कि नाटिका मे पद्यो का प्रयोग करते समय इतना ध्यान अपेक्षित है कि उनमे अप्रसिद्ध पद व दीर्घ छन्द प्रयोग आदि के द्वारा क्लिष्टता नही होनी चाहिए। अपितु लघु एव सरल शब्दात्मक छन्दो का ही प्रयोग मुख्यत अभीप्सित है।

आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र के १४वे व १५वे अध्याय मे नाट्योपयोगी छन्दो का विस्तृत विवेचन किया है किन्तु वहाँ यह स्पष्ट नही किया कि श्रृगार रस मे किन छन्दो का मुख्यत प्रयोग करना चाहिए। वीर, करुण और रौद्र रसो मे प्रयोज्य छन्दो का निर्देश करने के बाद भरत ने स्पष्ट कहा—

---

१ (अ) कैशिकी वृत्ति सयुक्त श्रृगाररस सश्रयम्।
नृत्तवादित्र गीताढ्य प्रदोषे नाट्यमिष्यते। —ना० शा० २७/९३

(ब) 'ए प्ले इन दि कैशिकी स्टाइल डीलिंग विद् श्रृगार रस एण्ड प्लेण्टी आव म्यूजिक एण्ड सिंगिग इज टु बी स्टेज्ड अर्ली एट नाइट
(इमीडिएटली आफ्टर सनसेट) ड्रामा इन स० लिट०, पृष्ठ १३६

२ छन्दोबद्धपद पद्यम्। —सा० द० ६/३१४.

३ छन्दो हीनो न शब्दोऽस्ति न छन्द: शब्दवर्जित.।
तस्मात्तूभय सयुक्ते नाट्यस्योद्योतके स्मृते॥ —ना० शा० १४/४०

४ स्वल्पपद्य लघुगद्य श्लिष्टावान्तर वास्तुकम्।
सिन्धु सूर्येन्दु कालादि वर्णनाधिक्य वर्जितम्॥ —ना० द०, सू० ११.

५ 'सुष्ठु प्रसन्नार्थे प्रसिद्ध शब्द अल्प परिमित पद्य यत्र'
—ना० द० सूत्र ११ की वृत्ति

६ ना० द०, पृष्ठ २१४ (सूत्र १२१ की वृत्ति)

'शेषाणामर्थ योगेन छन्द कार्य तथा रस'[1]

अर्थात् शेष सभी (श्रृगार हास्य, भयानक, वीभत्स और अद्‌भुत) रसो मे वर्णनानुकूल छन्दो का प्रयोग करना चाहिए।

यहाँ यह कहना अत्युक्ति न होगी कि श्रृगार, हास्य आदि कोमल रसो मे कवि स्वभावत मृदु भावना सवलित होने के कारण लघु आकारात्मक छन्दो का प्रयोग करना ही उचित समझेगा। शार्दूल-विक्रीडित, स्रग्धरा जैसे क्लिष्टोच्चारणीय छन्दो का प्रयोग तो रौद्र वीर भयानक आदि मे ही करना चाहिए।

महाकवि क्षेमेन्द्र ने 'सुवृत्ततिलकम्' नामक अपने ग्रन्थ मे वर्णनानुकूल छन्दो के प्रयोग का विवरण देकर समीक्षको का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। उनके अनुसार सर्ग के आरम्भ मे, कथाविस्तार को कम करने के लिए, उचित उपदेश देने मे सज्जन पुरुष अनुष्टुप् का प्रयोग करे। श्रृगार आलम्बन, नायिका सौन्दर्य व अगो सहित वसन्त वर्णन मे उपजाति छन्द का, चन्द्रोदयादि उद्दीपन विभाव मे रथोद्धता का, षाड्गुण्य नीति मे वशस्थ का, वीर, रौद्र के सयोग मे वसन्ततिलका का, सर्गान्त मे मालिनी का, परिच्छेद विभाजन मे शिखरिणी का, उदाहरण, रुचि व औचित्य मे हरिणी का , राजाओ के द्वारा आक्षेप, क्रोध, धिक्कार, वर्षा, प्रवास और दुख मे मन्दाक्रान्ता का, राजाओ के शौर्यवर्णन मे शार्दूल विक्रीडित का, आधीवर्णन मे स्रग्धरा तथा दोधक का एव सूक्तियो तथा मुक्तक के लिए तोटक तथा नर्कुटक छन्दो का प्रयोग करना चाहिए।[2]

छन्दो की भेद प्रभेदो सहित सख्या स्वल्प नही है। स्वय भरत ने दो अध्यायो[3] मे छन्दो की विस्तृत विवेचना कर सख्या बाहुल्य का स्पष्ट निर्देश कर दिया है।

छन्द शास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ वृत्त रत्नाकरम् मे ही 184 छन्दो के लक्षणोदाहरण प्रस्तुत किये गये है। इस छन्द बाहुल्य से जहाँ सस्कृत साहित्य की विशालता का ज्ञान होता है वही उन मनीषियो की विविधविध छन्द रचनात्मिका प्रज्ञा का भी परिचय प्राप्त होता है। फिर भी जिन थोडे से छन्दो के प्रयोग का नियम क्षेमेन्द्र ने बनाया वह सर्वथा नवीन होने के कारण स्तुत्य है।

सस्कृत नाटिका साहित्य मे भी कवियो ने मुक्तहृदय से छन्दो का प्रयोग किया है। यहाँ सक्षिप्तत उनका परिचय दे देना अपेक्षित है।

सस्कृत नाटिका साहित्य का समग्र रूप से पर्यवेक्षण करने पर ज्ञात होता है कि नाटिकाकारो ने मात्रिक छन्दो मे केवल आर्या व उसके भेदो का तथा वर्णिक छन्दो मे शार्दूल विक्रीडित, स्रग्धरा, शिखरिणी, वसन्ततिलका, मालिनी, उपजाति और अनुष्टुप् आदि का बाहुल्येन प्रयोग किया है।

---

१ ना० शा० १७/११५

२ अभि० ना० शा०, पृष्ठ ५०६ पर उल्लिखित।

३ ना० शा० अध्याय १४-१५।

यद्यपि नाटिका की प्रकृति पर ध्यान देने से शार्दूल विक्रीडित और स्रग्धरा के प्रयोग क्लिष्ट होने के कारण अनुचित माने जा सकते है किन्तु वर्णनीय विषय विशेष के कारण अथवा रूढि परिपालनार्थ भी उनका प्रयोग किया जा सकता है।

नाटिका साहित्य भी पर्याप्त विस्तृत है अत सभी नाटिकाओ की छन्दयोजना का प्रतिपादन कर पाना सम्भव नही। यहॉ मुख्य नाटिकाओ की छन्दयोजना का ही विवरण दिया जा रहा है जिसके अनुसार सभी नाटिकाओ की छन्दयोजना का परिज्ञान सक्षेपेण किया जा सकता है।

रत्नावली एवं प्रियदर्शिका—उपलब्ध नाटिकाओ मे सर्वप्राचीन स्थान श्रीहर्ष विरचित प्रियदर्शिका एव रत्नावली नाटिकाओ का है। हर्ष उच्चकोटि के कवि थे, उन्होने प्रियदर्शिका मे आठ तथा रत्नावली मे १३ प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया है। इन छन्दो का पृथक् पृथक् विवेचन इस प्रकार है—प्रियदर्शिका मे शार्दूल विक्रीडित २१, आर्या १०, स्रग्धरा ८, बसन्ततिलका ५, उपजाति २, और शिखरिणी, मालिनी तथा गीति छन्दो का एक एक बार प्रयोग किया है। यद्यपि सम्पूर्ण नाटिका मे पद्यो की सख्या अतिन्यून केवल ४९ ही है, तो भी ८ प्रकार के छन्दो का प्रयोग उनकी काव्यप्रतिभा का प्रमाण है।

ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने सर्वप्रथम प्रियदर्शिका नाटिका की रचना करते समय नाट्यदर्पण के इस निर्देश 'स्वल्प गद्य लघुपद्य शिलष्टावान्तर वास्तुकर्म'[1] को पालन करने का प्रयत्न किया था, अतएव इसमे पद्यो की सख्या अल्प है। किन्तु सम्भवत उन्हे ही यह रुचिकर न लगा, क्योकि इससे काव्य का सम्यक् परिपाक न हो सका।[2] इसीलिए रत्नावली मे उन्होने इसका स्वय सुधार कर अधिक पद्यो व उनमे विविध अन्य छन्दो का प्रयोग भी किया। रत्नावली मे प्रयुक्त छन्दो की सख्या इस प्रकार है—शार्दूलविक्रीडित—२४, स्रग्धरा-१०, बसन्ततिलका, आर्या व अनुष्टुप्-९, शिखरिणी-६, मालिनी-३, पृथ्वी-२, तथा उपजाति, पुष्पिताग्रा, प्रहर्षिणी, शालिनी और हरिणी का एक बार प्रयोग किया है।

प्राकृत भाषा के माध्यम से लिखे गये पद्यो मे प्रयुक्त छन्दो की गणना यहॉ नही की गई है। क्योकि उसमे अनेको मे अस्पष्टता है।

प्रियदर्शिका और रत्नावली मे प्रयुक्त छन्दो की मीमासा करने से स्पष्ट है कि हर्ष का सबसे प्रिय छन्द शार्दूलविक्रीडित है। प्रियदर्शिका के कुल ४९ पद्यो मे से २१ पद्य शार्दूल विक्रीडित छन्द मे है और रत्नावली मे २४। इस प्रकार दोनो

१ ना० द०, सू० ११

२ **'प्रियदर्शिका की अन्तर्वस्तु से उसकी अप्रौढता सूचित होती है, और उसकी छन्दोविषयक दरिद्रता से इस मत की पुष्टि होती है।' —स. ना पृष्ठ १८५**

नाटिकाओ के कुल पद्यो का छत्तीस प्रतिशत भाग शार्दूल विक्रीडित छन्द मे है। द्वितीय स्थान स्रग्धरा का है जिसके प्रत्येक चरण मे २१ वर्ण होते है।[१]

शार्दूल विक्रीडित के प्रथम तीन वर्ण और स्रग्धरा के चार वर्ण गुरु होने के कारण उच्चारण मे स्वत कठोरता आ जाती है, फलत· उनका प्रयोग प्रायश· वीर रौद्रादि गुण प्रधान काव्यो मे ही होना चाहिए। श्रृगार बहुला कैशिकी वृत्ति समलकृत मृदु प्रकृति नाटिका मे उनका भूयसा प्रयोग नाटिका मे काव्यपक्ष की प्रधानता का द्योतक है। किन्तु **ए. बी. कीथ** महोदय का यह कथन अत्यन्त उचित प्रतीत नही होता है कि, "उनकी छन्दोयोजना से सूचित होता है कि उनकी प्रवृत्ति पूर्ववर्ती नाटिककारो की सरलता के अस्वीकार की ओर है। वे अधिक जटिल छन्दो के प्रयोग का आग्रह करते है। वे छन्द अपने मे सर्वथा अनाटकीय है परन्तु वे वर्णन प्रतिभा के प्रदर्शन का अधिक अवसर प्रदान करते है।"[२]

कीथ महोदय ने रत्नावली और प्रियदर्शिका के छन्दो की जो सख्या निर्दिष्ट की है वह यहाँ उल्लिखित सख्या से भिन्न है। जैसे कीथ के अनुसार शार्दूल विक्रीडित २३ बार रत्नावली मे और २० बार प्रियदर्शिका मे प्रयुक्त है।[३] जबकि उपलब्ध रत्नावली मे २४ व प्रियदर्शिका मे २१ बार प्रयोग उपलब्ध होता है। हो सकता है कीथ को रत्नावली और प्रियदर्शिका की जो प्रतियाँ उपलब्ध हुई हो उनमे क्रमश २३ व २० बार ही प्रयोग हो।

उपर्युक्त विवेचन को ही आधार मानकर यह कहना उचित नही कि श्रीहर्ष का छन्द-प्रयोग सर्वथा अनाटकीय एव अव्यावहारिक है क्योकि उन्होने शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा आदि का प्रयोग प्रायश नान्दी,[४] नायक प्रशसा,[५] प्रकृति के उद्दाम रुप,[६] नायका के उत्कट सौन्दर्य,[७] कामपीड़ा[८] व युद्धादि के उत्कट[९] अवसरो पर ही किया है जिससे नाट्य की उपयोगिता पर उतना आघात नही हुआ जितना कि कीथ ने कहा है।

मित्र विदूषक के वचनो को सुनकर नायक नायिका के प्राणत्याग की सम्भावना करता हुआ जब स्वय के प्राण त्याग की कामना करता है तो वहाँ बसन्ततिलका छन्द का मधुर प्रयोग स्पृहणीय है।[१०]

१ वृत्त० ३/९९
२ स० नाटक पृ. १८५ (हिन्दी अनुवाद)
३ वही
४ रत्ना० १/१-२, प्रिय० १/२
५ रत्ना० १/१-५,९, प्रिय० १/३
६ रत्ना० १/११,१७,२३ ; प्रिय० १/११, १२, २/३
७ रत्ना० २/११, २१, प्रिय० २/७.
८ रत्ना० १/११, १७, २३, प्रिय० १/११-१२, २/३.
९ रत्ना० ३/१,३, प्रिय० ३/५.
१० रत्ना० ४/६.

इसके विपरीत जहॉ कवि ने गान विद्या के नियमो की व्याख्या की है वहॉ शार्दूल- विक्रीडित का प्रयोग कर अपने ज्ञान गौरव का परिचय देने के कारण वर्णनानुकूल छन्द प्रयोग मे सफलता प्राप्त की है।[१] अत· महाकवि श्रीहर्ष का छन्द प्रयोग यद्यपि नाट्य कर्म की अपेक्षा काव्यपक्ष की ओर अधिक है जिससे आलोचको को ॲगुली उठाने का अवसर मिला किन्तु तो भी विविध छन्द प्रयोग प्रतिभा की दृष्टि से प्रशसनीय है।

कवि इतिवृत्त मात्र का ही उपस्थापक नही होता[२] वह तो काव्य ससार मे कल्पनात्मक सृष्टि करने के कारण स्वय मे प्रजापति भी है।[३] फलत वह अपनी कल्पना को मूर्त रूप देने के लिए विविध छन्दो का आश्रय लेता है। कवि हर्ष ने भी वही किया।

विद्धशालभंजिका—हर्ष के पश्चात् राजशेखर ने विद्धशालभजिका मे रत्नावली की अपेक्षा कुछ नवीन छन्दो का प्रयोग किया , जिनमे औपच्छन्दसिक वैतालीय,[४] अपरान्तिका[५] वशस्थ[६] तथा इन्द्रवज्रा[७] प्रमुख है। आर्या के अनेक भेदो का भी, कवि ने प्रयोग किया है।[८]

सम्पूर्ण नाटिका मे कुल १६ प्रकार के छन्दो का प्रयोग है जिनकी सख्या इस प्रकार है—शार्दूलविक्रीडित ३८, आर्या १७, मालिनी १२, बसन्ततिलका ११, स्रग्धरा १०, शिखरिणी ८, पृथ्वी ७, उपजाति ५, मन्द्राक्रान्ता ३, अनुष्टुप् ३, पुष्पिताग्रा २ तथा इन्द्रवज्रा, वशस्थ, हरिणी, औपच्छन्दसिक वैतालीय एव अपरान्तिका छन्दो के एक-एक प्रयोग है।

राजशेखर की कथा मुख्यत विदग्ध जनग्राह्य है। श्रीहर्ष की अपेक्षा इन्होने अपनी नाटिका मे पद्यो की सख्या तथा छन्दो के अभिनव प्रयोग मे वृद्धि की किन्तु उनका भी सबसे प्रिय छन्द शार्दूलविक्रीडित है जो मृदुप्रकृति नाट्योपयोगी नहीं है। फिर भी कवि ने नायिका के सौन्दर्य, प्रकृतिचित्रण और विरह भावनाओ मे कामपीडा का चित्रण करते समय इसका भूयसा प्रयोग किया है। कन्दुक क्रीडा,[९] हिण्डोला,[१०] मध्याह्न,[११] प्रभात[१२] आदि वर्णनो मे छन्दो के प्रयोग उचित

१ प्रिय() ३/१०.
२ न हि कवेरितिवृत्तमात्र निर्वहिणात्मपद लाभः। —ध्वन्यालोक, पृष्ठ ३१२.
३ अपारे काव्य ससारे कविरेक प्रजापतिः
यथास्मै रोचते विश्व तथा विपरिवर्तते॥ —अग्निपुराण 339/10.
४ विद्ध० ४/६.
५ वही ४/११.
६ वही ३/१८
७ वही ३/५.
८ वही २/१५-१९.
९ विद्ध० २/६-८.
१० वही १/३२.
११ वही १/२२-२३
१२ वही १/११.

है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि राजशेखर ने हर्ष के अनुकरण पर ही छन्दो का भूयसा प्रयोग तथा शार्दूलविक्रीडित आदि क्लिष्ट छन्दो का तत्तत्स्थलो पर ही विशेषत प्रयोग किया।

हर्ष के पश्चाद्वर्ती कवियो ने सभवत नाटिका के रूढिमूलक इतिवृत्त का आश्रय लेकर अपनी काव्यकला का खुलकर प्रयोग करने के लिए प्रकृति के कामोद्दीपक रूप का बढा चढा कर वर्णन एव नायिकाओ की विविध उपमाये देकर अपनी कल्पनाशक्ति का अपव्यय किया है यही कारण है कि इन नाटिकाओ मे कृत्रिमता के साथ अनेकश पुनरुक्ति भी हुई है। एक नाटिका का इतिवृत्त शब्द भेद से दूसरी नाटिका मे भी प्रस्तुत किया गया।

राजशेखर छन्द प्रयोग मे पटु है यह झुठलाया नही जा सकता, किन्तु अनेक ऐसे भी स्थल है जहाँ उनके पद्य छन्द सौन्दर्य प्राप्त नही कर सके।

प्रथम अक का चतुर्थ व पचम पद्य छन्द की दृष्टि से विवादास्पद है। चतुर्थ अक के छठे श्लोक मे वैतालीय औपच्छन्दसिक और इसी अक के १५ से १९ तक के पद्यो मे आर्या के विविध अप्रसिद्ध रुपो की क्लिष्ट योजना पाठक व श्रो्ता दोनो को रसास्वाद से वचित करने वाली है।

आर्या और पुष्पिताग्रा के अन्य अनेक उदाहरणो मे छन्द विषयक दोष भी राजशेखर की छन्दयोजना मे बाधक है। फिर भी राजशेखर के स्रग्धरा,[१] बसन्ततिलका[२] और अनुष्टुप्[३] छन्दो के प्रयोग स्पृहणीय है। हिण्डोले का वर्णन करते समय प्रयुक्त पृथ्वी छन्द अत्यन्त मनोहर है जहॉ शब्द-ध्वनि से हिण्डोले की गति ध्वनित होती है।[४]

प्राकृत भाषा के माध्यम से जिन छन्दो का प्रयोग है वे भी अत्यन्त जटिल होने के कारण सर्वजन बुद्धिगम्य नही है। इस प्रकार प्रयोग से वे प्रतिभावान् कवि माने जा सकते है किन्तु कुशल नाटककार नही। ए बी कीथ महोदय का यह कथन किसी सीमा तक उपयुक्त ही है कि 'यदि शब्द मैत्री मे ही काव्यत्व माना जाय तो उन्हे कवि के रूप मे उच्च पद प्राप्त होना चाहिए।'[५]

नेपथ्य से दी गई सूचनाओ मे प्राकृत का ही प्रयोग उनकी प्राकृत भाषा के प्रति विशेष अभिरुचि का द्योतक है स्वय उन्होने कर्पूरमजरी की प्रस्तावना मे स्पष्ट किया है कि—'पुरुष की भॉति पुरुष सस्कृत की तुलना मे प्राकृत नारी की भॉति सुकुमार है।'[६]

१ विद्ध० १/२, १७, २७, २/८, ३/७, ४/२२-२५
२ वही १/१९, २१, ३४, २/४, ९, ३/२१
३ वही १/१३, ४/२१.
४ वही ४/२०.
५ कीथ—स() ड्रामा—स() ना() अनु() उदयभानुसिंह, पृष्ठ 249।
६ परुसा सकिअ बधा पाउद बन्धो वि होई सुअमारो।
पुरुस स महिलाणा जेत्तिअ मिहतर तेत्ति अभिमाण —कर्पूर. १/८

कर्ण सुन्दरी

जैसा कि वर्णन किया जा चुका है कि महाकवि बिल्हण पहले कवि है बाद मे नाटिकाकार। उनमे काव्यकला का मधुर परिपाक है, वे छन्द प्रयोग मे कुशल है। चार अको की लघु कलेवरात्मक इस नाटिका मे बिल्हण ने १५३ पद्यो की रचना की है। नाटिका की समाप्ति पर चार अन्य श्लोको मे कवि का परिचय है। शार्दूलविक्रीडित छन्द के प्रति विशेष अभिरुचि पूर्वनाटिकाकारो के प्रति कवि का आदरभाव व्यक्त करता है। साथ ही इससे यह भी प्रतीत होता है कि नायिका प्रकृति और प्रणय जैसे कोमल चित्रण मे इस छन्द के प्रयोग को अब अनुचित नही माना गया था अन्यथा एक के बाद एक उत्तरोत्तर कविगण इस छन्द के प्रयोग के प्रति ही अधिक उत्सुक क्यो होते?

कर्णसुन्दरी मे कवि की कला १४ प्रकार के छन्दो के प्रयोग के रूप मे विकसित हुई है जिसमे शार्दूलविक्रीडित ६६, वसन्ततिलका-२०, मालिनी-१८, स्रग्धरा व मन्दाक्रान्ता-११, ११, शिखरिणी-१०, हरिणी-७, आर्या-३ तथा वशस्थ, अनुष्टुप्, पृथ्वी, बनवासिका, प्रहर्षिणी, औपच्छन्दसिक और वैतालीय छन्दो का एक-एक बार प्रयोग हुआ है।

शार्दूलविक्रीडित का सर्वाधिक प्रयोग नान्दी,[१] कवि प्रशसा,[२] नायिका सौन्दर्य,[३] विप्रलम्भ[४] व प्रकृति-चित्रण[५] मे हुआ है। प्राय पूर्ववर्ती कवियो ने भी इन्ही स्थलो पर[६] इस छन्द का प्रयोग किया है।

इनका दूसरा प्रिय छन्द वसन्ततिलका और मालिनी है। ये दोनो छन्द कोमल प्रकृति के माने जाते है क्योकि वसन्ततिलका मे केवल १४ व मालिनी मे १५ वर्ण प्रत्येक चरण मे होते है साथ ही मालिनी के प्रथम ६ वर्ण लघु होने के कारण उनकी कोमलता स्पष्ट है। कामदेव ने मानो नायिका का मुख नायक के हृदय मे लिख दिया है, इस अर्थ की अभिव्यजना के लिए प्रयुक्त मालिनी छन्द का सौन्दर्य द्रष्टव्य है।[७]

बिल्हण ने स्रग्धरा का प्रयोग सपत्कर मत्री की प्रशसा,[८] प्रकृति चित्रण[९] तथा युद्ध वर्णन[१०] आदि अवसरो पर करके अपनी विदग्धता का परिचय दिया है।

---

१ कर्ण० १/१-३.
२ वही १/१०-११
३ वही २/१-३, ७, २३, २५, ३७
४ वही ३/१, ५, ७, १६
५ वही ३/१०, ११, १९.
६ द्र० रत्ना०, विद्ध०।
७ कर्ण० १/२८.
८ कर्ण० १/१६.
९ वही १/४२, ५०; ३/२०, २२.
१० वही ४/१७-१९.

लयात्मक छन्दो मे शिखरिणी और मन्दाक्रान्ता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। रागात्मक भावनाओ की अभिव्यजना के लिए कालिदास ने सभवत मन्दाक्रान्ता को सर्वश्रेष्ठ मानकर ही सम्पूर्ण मेघदूत मे उसका ही प्रयोग किया है। कविवर बिल्हण भी उसे भला कैसे भूल सकते थे। बिल्हण के मन्दाक्रान्ता अल्पमात्रा मे है किन्तु उनका काव्यसौन्दर्य अनल्प है।

नायिका को विविध स्थानो मे देखने का वर्णन करते समय[१] स्वप्न मे देखते समय[२] तथा साक्षात् नायिका का दर्शन कर उसकी प्रशसा करते समय[३] प्रयुक्त मन्दाक्रान्ता का सौन्दर्य अवलोकनीय है।

बानवासिका,[४] औपच्छन्दसिक[५] और वैतालीय[६] आदि अप्रसिद्ध छन्दो का प्रयोग कवि की विविध छन्द प्रयोग कुशलता का परिचायक मात्र है। इससे काव्यसौन्दर्य मे कोई वैशिष्ट्य नही आता, फिर भी राजशेखर की अपेक्षा बिल्हण का छन्दोविधान अधिक सुन्दर है।

उषारागोदया—१२वी शती के दाक्षिणात्य कवि रुद्रचन्द्रदेव ने उषारागोदया नामक नाटिका को अपने पूर्ववर्ती नाटिकाकारो की अपेक्षा अधिक मृदु और ललित बनाने का प्रयत्न किया, यह नाटिका की भाषा, रस एव छन्द योजना से स्पष्ट है। शार्दूलविक्रीडित छन्द का सभी नाटिकाकारो ने अपेक्षाकृत भूरिश प्रयोग किया है किन्तु इन्होने उसका तीसरा स्थान निर्धारित किया। सम्पूर्ण नाटिका के १२५ पद्यो मे आर्या ३४, बसन्ततिलका २३, शार्दूल विक्रीडित १९, अनुष्टुप् १४, उपजाति १३, मालिनी ४, स्रग्धरा ३, रथोद्धता ३, पुष्पिताग्रा, मन्दाक्रान्ता व बैतालीय दो-दो तथा द्रुत विलम्बित, पृथ्वी, प्रहषिणी, शिखरिणी, स्वागता और हरिणी का एक-एक बार प्रयोग हुआ है।

स्पष्ट है कि आर्या जो विषम पाद मात्रिक छन्द है का इसमे भूयसा प्रयोग होने से इसकी मृदु प्रकृति की रक्षा हुई है । शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग भी अन्य नाटिकाओ की अपेक्षा मृदु है, बैतालिको के द्वारा किया गया बसन्तवर्णन इस छन्द के माध्यम से अत्यन्त उत्कृष्ट रूप मे अभिव्यजित हुआ है।[७] पर्वत ऋषि के द्वारा असमय मे बसन्त ऋतु की उद्भावना किये जाने पर उपजाति छन्द का प्रयोग सुन्दर है।[८] सन्ध्या, मध्याह्न, प्रभात आदि प्राकृतिक वर्णनो एव

१ वही १/२२.
२ वही १/३५
३ वही २/६.
४ वही १/४५.
५ वही २/२२.
६ वही २/३३.
७ उषा० १/६.
८ उषा ३/५

नायक-नायिका की अनुराग भावना को व्यक्त करते समय कवि की छन्दोविधान प्रतिभा का अच्छा विकास हुआ है।

पौराणिक पात्र उषा और अनिरुद्ध की प्रणय-भावनाओ का चित्रण करते समय कवि ने प्रायश उपजाति, बसन्ततिलका और आर्या का प्रयोग किया है। किन्तु नायिका के अग-सौन्दर्य,[१] वर्षागम[२] व ग्रीष्म[३] आदि वर्णनो मे शार्दूल विक्रीडित छन्द का एव मेषद्वन्द्व के आगमन पर उसकी क्रियाओ के वर्णन मे स्रग्धरा का स्पृहणीय प्रयोग है।[४]

छन्द प्रयोग की कुशलता और कोमलता के आधार पर रुद्रचन्द्रदेव को हर्ष, कालिदास आदि के समीप रखा जा सकता है। इस कृति मे छन्दो मे जो लालित्य है, वह रसानुकूल होने के कारण अत्यन्त स्वाभाविक और हृदयग्राही है, जो इस नाटिका की पूर्ववर्ती नाटिकाओ मे प्राय नही है।

चन्द्रकला—लक्षणकार होने के कारण कविराज विश्वनाथ की उपलब्ध नाटिका चन्द्रकला मे छन्दो मे विविधता है। यद्यपि सम्पूर्ण नाटिका मे पद्यो की सख्या अपेक्षाकृत कम है फिर भी शार्दूल विक्रीडित १९, अनुष्टुप् १०, आर्या ८, शिखरिणी ७, बसन्ततिलका उपजाति और उपगीति चार, चार, मालिनी, रथोद्धता तीन तीन, स्रग्धारा, उद्गीति व स्वागता दो-दो बार तथा उपेन्द्रवज्रा, हरिणी, मन्दाक्रान्ता, मजुभाषिणी और पुष्पिताग्रा छन्दो का एक-एक बार प्रयोग हुआ है जो उनकी अभिनव छन्द प्रयोग के प्रति अभिरुचि का परिचायक है।

शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी और अनुष्टुप् जैसे सुप्रसिद्ध छन्दो के प्रयोग मे जहाँ विश्वनाथ ने कुशलता का परिचय दिया है, वही आर्या, उद्गीति व पुष्पिताग्रा के प्रयोगो मे अस्पष्टता व छन्द दोष भी है, अत विश्वनाथ को जहाँ विविधविध छन्द प्रयोग मे कुशल माना जा सकता है, वही कतिपय दोषपूर्ण छन्दो के प्रयोग के कारण अधिक सफल भी नही कहा जा सकता।

नायिका को सामने देखकर उसके प्रति अपने अनुराग को व्यक्त करते हुए कवि ने आर्या के विपरीत पूर्वार्द्धोत्तरार्द्ध रचनात्मक उद्गीति छन्द का प्रयोग किया है।[५] जिसके अनुसार उद्गीति के पूर्वार्द्ध मे २७ और उत्तरार्द्ध मे ३० मात्राएँ होनी चाहिए।[६] किन्तु यहाँ ऐसा नही है अपितु पूर्वार्द्ध मे २८ मात्राएँ है जिससे १ मात्रा की अधिकता होने के कारण छन्द अशुद्ध है।

---

१ उषा० ३/१९,२५.
२ वही १/११, २२
३ वही १/५.
४ वही ३/१०.
५ चन्द्र० १/१६.
६ वृत्त० २/१०.

इसी प्रकार दूसरे अक के ९वे व २७वे पद्य मे आर्या, तृतीय अक के १२वे व ४थे अक के ७वे पद्य मे उपगीति एव चतुर्थ अक के ८वे पद्य मे प्रयुक्त पुष्पिताग्रा छन्द भी दोषपूर्ण है।

ऐसा सम्भव है कि मूल प्रतियो की प्रतिलिपियो मे ये त्रुटियॉ हुई हो या मुद्रण आदि की अशुद्धि से यत्र तत्र कुछ भिन्नता आ गई हो। अतएव केवल इन त्रुटियो के आधार पर ही विश्वनाथ को छन्द प्रयोग मे हीन कवि की सज्ञा प्रदान नही की जा सकती।

नायिका के अगो का वर्णन करते समय[१] शार्दूलविक्रीडित की गत्यात्मकता प्रशसनीय है। बसन्त किस प्रकार विरही जनो को पीडित करता है,[२] इसका वर्णन एव अन्धकार के घनत्व की अभिव्यजना[३] मे भी शार्दूल विक्रीडित का सुन्दर प्रयोग है।

अपने पूर्ववर्ती कवियो के द्वारा दिखाये गये मार्ग को भी कवि भूला नही है, क्योकि उसने भी नायक की विप्रलम्भात्मक मनस्थिति का चित्रण करते समय शार्दूलविक्रीडित छन्द का मधुरोपन्यास[४] करके तद्वत् सफलता प्राप्त की।

अद्भुत दृश्य जैसे साक्षात् लक्ष्मी के उपस्थित होने का वर्णन[५] शार्दूलविक्रीडित मे अत्यन्त स्वाभाविक एव उचित है।

सस्कृत साहित्य मे प्रकृति के मधुरतम दृश्यो की योजना मे लयात्मक छन्द प्रयोग का सर्वाधिक श्रेय विश्वनाथ को मलयपवन की सुमधुर अवतारणा मे हुआ है।[६] जो न केवल साहत्य मे अपितु सम्पूर्ण नाट्यसाहित्य मे अद्वितीय है। शिखरिणी मे लयात्मकता तो स्वत ही है, कुशल कवि की लेखनी मे उतर कर वह गतिशील भी हो जाती है, इसका ज्ञान चन्द्रकला की सुन्दरता का चित्रण करते समय प्रयुक्त इस पद्य का अवलोकन करने से ही हो जाता है—

असावन्तश्चंचद्विकचवननीलाब्जयुगल-
स्तलस्फूर्जत्कम्बुर्विलसदलिसंघात उपरि।
विना दोषासंगं सततपरिपूर्णाखिलकलः
कुत प्राप्तश्चन्द्रो विगलितकलंक· सुमुखि ते॥[७]

---

१ चन्द्र० १/७, १३.
२ वही १/३-४.
३ चन्द्र० ३/१३-१४.
४ वही ४/१,३.
५ वही ४/११.
६ वही १/३.
७ वही १/१७

विश्वनाथ कुशल कलाकार है उन्होने एक भाव को एक ही पद्य मे जिस चतुरता के साथ सयोजित किया इसी प्रकार परस्पर विरोधी विभिन्न भावो को एक ही छन्द मे व्यक्त करने की भी क्षमता रखते है। प्रथम अक मे उन्होने शिखरिणी छन्द मे नायिका सौन्दर्य व मलय पवन जैसे कोमल भावो की अभिव्यजना की[१] वही द्वितीय अक मे उसी शिखरिणी छन्द मे क्रुद्ध तरक्षु की उद्धत चेष्टाओ की[२] भी उतनी ही सफलता के साथ स्वाभाविक अवतारणा की।

'चन्द्र की किरणे पहले भूमि पर उतरती है फिर धीरे-धीरे अन्धकार को हटा कर प्रकाश करती हुई लोगो के हृदय मे कामपीड़ा को जन्म देकर उनके हृत्कमलो को निमीलित कर देती है।'[३] इस भाव को मालिनी छन्द मे व्यक्त करते हुए कवि ने भाव और छन्द की एकात्मता स्थापित की है। चन्द्र किरणो का कार्य जैसे-जैसे उत्तरोत्तर उत्कट होता गया, वैसे वैसे छन्द के वर्णो मे भी उत्कटता अर्थात् गुरुता आती गई है क्योकि मालिनी के प्रथम ६ वर्ण लघु होते है और बाद के दीर्घ होते है।

कविराज विश्वनाथ की इस सूक्ष्मेक्षिका बुद्धि व प्रतिभा का उत्कर्ष स्पृहणीय है।

वृषभानुजा—आधुनिक युग के प्रसिद्ध कवि मथुरादास अपने युग के ललित नाट्यकारो मे जहॉ सर्वप्रमुख है वही प्राचीन रूढ़िवादिता के अन्ध उपासक नही। एक नायिकात्मिका वृषभानुजा नाटिका मे उन्होने कुल ७६ पद्यो की रचना की जिनमे शार्दूलविक्रीडित २०, अनुष्टुप् १६, बसन्ततिलका १३, शिखरिणी ८ आर्या ७, मालिनी ४, मन्दाक्रान्ता ३ वशस्थ २, तथा रथोद्धता, पृथ्वी और द्रुतविलम्बित छन्दो का एक बार प्रयोग किया है। स्पष्ट है कि इन ११ प्रकार के छन्दो मे सर्वाधिक सख्या शार्दूलविक्रीडित की है।

नान्दी मे राधाकृष्ण की रासलीला[४] की वन्दना करते हुए कवि ने पूर्ववर्ती कवियो की भॉति शार्दूलविक्रीडित छन्द मे जहॉ उनकी श्लिष्टानुकृति का चित्रण किया वही वृन्दावन के वृक्षो मे मानवीय व्यवहार का समारोप करते समय भी इसी छन्द का प्रयोग किया। वे वृक्ष कृष्ण का स्वागत करते प्रतीत हो रहे है।[५]

प्रकृति चित्रण[६] मे शार्दूलविक्रीडित जैसे क्लिष्ट छन्दो का प्रयोग उनकी औचित्यान्वेषण दृष्टि का परिचायक है।

---

१ चन्द्र० १/३, १७.
२ वही २/६.
३ वही २/७.
४ वृष० १/३-५.
५ वही १/१७.
६ वही २/२; ३/४; ४/२३.

तृतीय अक मे पुन नायिका के अग सौन्दर्य का वर्ण करते हुए कवि ने शार्दूल विक्रीडित छन्द का प्रयोग किया है किन्तु समस्त पदावली का प्रयोग न करने के कारण[१] किंचित् भी क्लिष्टता नही है जिससे माधुर्य गुण की स्फुट अभिव्यजना है। विमुक्तावस्था मे शारीरिक पीडा आदि की वर्णना मे भी शार्दूल विक्रीडित छन्द का प्रयोग है।[२]

नाटिकाकार का दूसरा प्रिय छन्द श्लोक (अनुष्टुप) है जिसका सम्पूर्ण नाटिका मे १६ बार प्रयोग किया गया है। इसके प्रत्येक चरण मे केवल ८ वर्ण होते है।

वृत्तरत्नाकार ने इसे पथ्यावक्त्र[३] कहा है। यह गेय नही होता। लघु कलेवरात्मक इस छन्द मे काव्यात्मक भावसौन्दर्य का सन्निवेश सामान्यत सम्भव नही इसीलिए प्राय कवियो ने वर्णनात्मक अवसरो पर या इतिवृत्त को गति देने के लिए इसका उपयोग किया है।

प्रथम अक मे नायक कृष्ण की मनस्थिति का चित्रण करने के लिए कवि ने एक साथ अनुष्टुप् का दो बार प्रयोग किया है।[४] 'वस्तुत राधा का प्रेम किसके प्रति है यह निश्चय न होने से कृष्ण का मन अशान्त है किन्तु सखी के द्वारा उसकी स्वप्नगत चेष्टाओ के वर्णन से कृष्ण को किंचित् धैर्य भी मिलता है' इस अर्थ की अभिव्यजना के लिए दो पद्यो का प्रयोग यह सूचित करता है कि अनुष्टुप् जैसा लघु आकारात्मक पद्य लघु भाव का ही अभिव्यजक हो सकता है।

कवि के वसन्ततिलका, शिखरिणी और आर्या के प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर माने जा सकते है।

राधा के वियोग जन्य दु:ख से अशान्त मन के बहलाव हेतु कृष्ण राधा का चित्र बनाते समय कहते है कि 'किसी प्रकार मैने तुम्हारा रूप तो लिख लिया है, पर तुम्हारे अपागो का विलास तथा अगो की मृदुता को कैसे लिखूँ ।'[५]

यहाँ मृदु प्रकृति बसन्ततिलका, का प्रयोग वर्णनानुकूल होने के कारण व्यावहारिक है। इसी प्रकार कवि ने भगवान् कृष्ण की शरण मे जाने के लिए जिस भक्ति भावना का चित्रण किया है, शिखरिणी मे होने के कारण वह अत्यन्त हृदयग्राही है।[६] शिखरिणी का इसी प्रकार स्तुत्य प्रयोग भरत वाक्य मे भी है जहाँ राधा और कृष्ण के मगलमिलन की कामना की गई है।[७]

---

१ वही ३/१०.
२ वही ४/६-७.
३ वृत्त० २/२२.
४ वृष० १/१९-२०
५ वही ३/५.
६ वही १/६.
७ वृष ० ४/२५.

मथुरादास के छन्दो मे वर्णनानुकूलता, गत्यात्मकता और माधुर्य है। जो मृदु प्रकृति नाटिका के सर्वथा अनुरुप है। इसीलिए यह नाटिका उषारागोदयां और रत्नावली के अधिक समीप है।

छन्दो की प्रयोग कुशलता एव उनके दोष गुणादिको की समीक्षा करते समय इन प्रमुख नाटिकाओ के अतिरिक्त-पारिजातमजरी, कमलिनी कलहस, मलयजा कल्याणम्, मृगाक लेखा और नवमालिका नाटिकाओ की भी उपेक्षा नही की जा सकती।

१३वी शती मे मदनलाल सरस्वती ने श्रीहर्ष आदि की प्रौढ़ छन्द प्रयोग परम्परा का निर्वाह किया था। उनकी पारिजातमजरी नाटिका जिसके केवल दो अक ही समुपलब्ध है, मे कुल ७६ पद्यो का प्रयोग है, जिनमे सर्वाधिक सख्या शार्दूलविक्रीडित की है २६, अनुष्टुप् २२, आर्या १५, बसन्ततिलका ३, उपजाति, मालिनी और मन्दाक्रान्ता दो-दो तथा स्त्रग्धरा, पृथ्वी, उपगीति और गीति छन्दो का एक-एक बार प्रयोग किया गया है।

पूर्ववर्ती कवियो की भॉति शार्दूलविक्रीडित छन्द के प्रति विशेष अभिरुचि का प्रदर्शन करते हुए कवि ने मदनोत्सव, नायिका सौन्दर्य, प्रकृति चित्रण, तथा हिन्दोलक आदि क्रीडाओ मे इस छन्द का प्रयोग किया जो अत्यन्त स्वाभाविक और हृदयग्राही है। आर्या के प्रयोग भी अपेक्षाकृत सुन्दर है।

बिल्हण के अनुकरण पर राजचूड़ामणि दीक्षित ने जहॉ नाटिका मे पद्यो का बाहुल्येन प्रयोग किया, वही छन्द प्रयोग मे कालिदास और हर्ष का अनुकरण किया। उनके छन्द दीर्घ और क्लिष्ट होने पर भी सुन्दर है। प्रयोग की दृष्टि से उन्होने हर्ष के समान प्रकृति चित्रण, नायिका सौन्दर्य और युद्धादिवर्णनो मे शार्दूलविक्रीडित का भूयसा प्रयोग किया है। सन्ध्या आदि के वर्णनो[१] मे शार्दूलविक्रीडित की सुन्दरता स्वत व्यक्त है। नायिका के अगो से ही कामदेव के ५ बाणो का जन्म हुआ, इस कोमल मधुर भाव की अभिव्यजना मे शिखरिणी का प्रयोग अत्यन्त भावानुकूल है।[२]

इस नाटिका मे शार्दूलविक्रीडित, स्त्रग्धरा, वसन्ततिलका, उपजाति, शिखरिणी, श्लोक, मालिनी, आर्या आदि सभी प्रमुख छन्दो का प्रयोग कर कवि ने अपनी छन्द-प्रयोग प्रतिभा का परिचय दिया है। १७वी शती के प्रौढ़ एवं विदग्ध कवियो मे राज चूड़ामणि दीक्षित का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

छन्दो मे समस्त पदावली तथा अनुप्रास, शब्दालकार का प्रायश प्रयोग करने वाले कवि वीरराघव ने मलयजा कल्याणम् नाटिका मे प्राय: उन सभी छन्दो को

१ कम० १/४६.
२ वही २/३३.

भावाभिव्यक्ति का साधन बनाया जो पूर्ववर्ती नाटिकाओ मे रूढिमूलक हो गये थे। शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, स्रग्धरा और मालिनी छन्दो की मार्मिक अभिव्यजना से उनकी छन्द-प्रयोग कुशलता का परिचय प्राप्त होता है। यद्यपि समस्त पदावली के प्रयोग से किचित् क्लिष्टता अवश्य आई है, पर अनुप्रास के भूयसा प्रयोग से माधुर्य नष्ट नही होने पाया है।

१८वी शती के पर्वतीय कवि विश्वेश्वर की नवमालिका नाटिका, नाटिका रुढि और पूर्ववर्ती नाटिकाओ के अनुकरण पर लिखी जाने के कारण छन्दादि विषयक कोई विशेष नवीनता न ही रखती।

सम्पूर्ण नाटिकाओ मे छन्द प्रयोग की मीमासा से स्पष्ट हो जाता है कि—

(१) नाटिकाओ मे अपेक्षाकृत काव्यात्मक दीर्घ छन्दो का प्रयोग किया गया है।

(२) पात्रो के औचित्य की परवाह न कर समान रूप से दीर्घ छन्दो का मध्यम एव निम्न पात्रो के द्वारा भी प्रयोग कराया गया।

(३) नायिका सौन्दर्य, कामपीडा व प्रकृति दृश्यो मे छन्द प्रयोग की विविधता है।

(४) नवीन कल्पनाओ के लिए छन्द को ही आश्रय बनाया गया है।

(५) सस्कृत की अपेक्षा प्राकृत मे छन्दो की सख्या स्वल्प है।

(य) प्रकृति पर्यवेक्षण—सस्कृत साहित्य की प्रत्येक विधा मे विद्वान् लेखको की अपनी मौलिक चिन्तन पद्धति रही है। काव्यक्षेत्र मे तो उनकी उर्वर कल्पनाओ का आधुनिक कवि स्पर्श भी नही कर सकते। दृश्यकाव्यो मे अभिनेयता और रग-विधान की प्रमुखता होती है, फिर भी उनमे प्रकृति के अनुसार और उद्दाम रूपो का स्वाभाविक एव विस्तृत वर्णन किया गया है। प्रकृति केवल जड पदार्थ न रहकर मानवीय चेतना समलकृत होकर मानवीय सुख-दु खो से स्वय सुखी और दु खी रूप मे चित्रित की गई है। महाकवि कालिदास के वृक्ष तपस्विनी शकुन्तला के लिए यदि वस्त्र और आभूषण दान करते है[१] तो लताएँ अश्रु प्रवाहित कर शकुन्तला के वियोगजन्य दु ख को प्रकट करती है।[२] इतना ही नही भवभूति तो राम की करुणदशा पर पत्थरो को भी रुला देते है।[३]

सस्कृत दृश्य काव्यो के अन्तर्गत उपरूपको मे नाटिका का साहित्यिक महत्त्व है। नाटिकाओ मे भी प्रकृति चित्रण पर्याप्त मात्रा मे है, किन्तु नाटिका की प्रकृति का, जैसा कि वर्णन किया जा चुका है, कि उनका कथानक केवल राजमहल और राजकीय उद्यान या अन्तपुर की वाटिका मे ही घूमता रहता है, अत नाटिकाओ के प्रकृति वर्णन पर भी उसका प्रभाव पडना स्वाभाविक है।

---

१ अभि० ४/५.
२ वही ४/१२
३ उत्तर० १/२८

वस्तुत नाटिकाओ की प्रकृति केवल मालियो द्वारा नियन्त्रित राजोद्यान की सीमा मे चहारदीवारी से घिरी हुई राजा एव रानियो के प्रेम व्यापारो की उद्दीपिका एव प्रणय क्रीडाओ की क्रीडास्थली होती है, अत स्वाभाविक या मुक्त प्रकृति क्षेत्र से यह सर्वथा भिन्न होती है। फिर भी यह कहना अनुचित न होगा कि अन्य नाट्यकारो की भॉति नाटिकाकारो ने भी प्रकृति के अत्यन्त स्वाभाविक, बिम्बात्मक और सचेतन रूपो का मार्मिक वर्णन करने मे पर्याप्त सफलता प्राप्त की है।

कतिपय प्रमुख नाटिकाओ की प्रकृति पद्धति का परिचयात्मक विवरण ही यहॉ दिया जा रहा है, किन्तु अवसरानुकूल उन कवियो की अपनी मान्यताओ और नवीनताओ की ओर भी यथासम्भव सकेत कर दिया गया है।

रत्नावली-प्रियदर्शिका—श्रीहर्ष की रत्नावली और प्रियदर्शिका दोनो नाटिकाओ मे प्रकृति का प्राय उद्दीपन रुप मे चित्रण है। दोनो नाटिकाओ का अभिनय बसन्तोत्सव मे हुआ था इसका स्पष्टोल्लेख दोनो नाटिकाओ मे एक ही शब्दावली का प्रयोग कर दिया गया है।[१]

वसन्तोत्सव, वसन्त ऋतु के आगमन पर राज्य-शासन की ओर से मनाया जाता था, इसका सकेत प्रस्तावना मे नायक को रगमच पर प्रस्तुत करते समय कवि ने 'निज महोत्सव दर्शनाय' पद का प्रयोग कर किया है।[२]

वसन्तोत्सव का दूसरा नाम मदनोत्सव भी है। **मदन कामदेव का पर्यायवाची है।**[३] इससे यह स्पष्ट है कि कामभावना को और अधिक उद्दीप्त करने या कामभावना के वशीभूत होने के लिए ही यह उत्सव मनाया जाता था।

न केवल राजा रानी अपितु समस्त जनसमुदाय प्रेममद से झूम रहा है, क्योकि दक्षिण पवन व मजरी समलकृत आम्रवृक्ष,[४] मौलसिरी और अशोक के पुष्पस्तवक[५] तथा चैत्रमास, प्रकृति के सभी अग तो मादक है। इस स्थिति मे नृत्यशीला किसी कामिनी की करधनी और केशपाश से पुष्प यदि अनजाने ही गिर कर बिखर जाये[६] तो इसमे उसका क्या दोष। कोमलागी का सुकोमल हृदय चैत्रमास की मनोहर छटा ने पहले ही मृदुतर कर दिया है, फिर भला काम अपने पुष्प बाणो से उसे क्यो न भेद दे।[७]

---

१ रत्ना०, पृष्ठ ८ (मोती ला० १९७० प्रथम संस्क०) ; प्रिय० पृष्ठ २ (अद्याहं वसन्त समये सबहुमान माहूय०)

२ रत्ना० १/२८.

३ मदनोमन्मथो मारः प्रद्युम्नोमीनकेतनः
कन्दर्पो दर्पकोऽनगः कामः पचशर. स्मरः —अमरकोष १/१/२५, पृष्ठ १४

४ रत्ना० १/१३

५ वही १/१४.

६ वही १/१६.

७ वही १/१५

स्पष्ट है कि चैत्र मास, आम्र, अशोक आदि पुष्पित वृक्ष तथा मलयपवन आदि प्रकृति के विभिन्न रूप राजा और प्रजा, रानी और दासी सभी के मन मे काम को उद्दीप्त कर रहे है। रसराज श्रृगार की पुष्टि मे यह प्रकृति दृश्य कितना उपयोगी है यह सहृदय हृदयगम्य है।

धीरललित नायक उदयन की कामाविष्ट मनस्थिति का प्रतिबिम्ब प्रकृति के वृक्ष रूपो मे स्पष्ट है जहॉ वे मदिरापायी मदाविष्ट पुरुष की भॉति झूम-झूम कर शाखाओ, पल्लवो और पुष्पो के माध्यम से अपने अनुराग और भ्रमर झंकार से अस्पष्ट प्रलाप को व्यक्त कर रहे है।[१]

इस प्रकार के बिम्बात्मक चित्रण मे सिद्धहस्त कवि हर्ष प्रकृति के आलम्बन रूप के प्रयोग मे भी सफलता प्राप्त कर सके।

नायक उदयन लता का कामिनी स्त्री की भॉति वर्णन कर जहॉ स्त्री और प्रकृति के सौन्दर्य मे अभेद स्थापित करता है वही देवी नायिका वासवदत्ता के क्रोध का आलम्बन भी उसी लता को बना देता है, क्योकि उसमे उसे सपत्नी की प्रतीति जो होती है।[२]

प्रकृति के एक सश्लिष्ट चित्रण से अनेकानेक भावो और रूपो की अभिव्यजना कर चतुर हर्ष ने जहॉ लता के इस वर्णन मे मानव और प्रकृति का तादात्म्य स्थापित किया, क्रोध का आलम्बन बनाया, वही उन्होने यह सूचना भी इसी वर्णन मे दी कि उदयन किसी अन्य (सागरिका) के प्रति अनुरागवान है, और भविष्य मे वासवदत्ता की अपेक्षा उसे अधिक चाहेगा।

विगत और भावी घटनाओ की सूचना देने वाले प्रकृति के अन्य अनेक वर्णन भी उपलब्ध होते है। उदाहरणार्थ—सन्ध्या का वर्णन करते समय नायक कहता है कि—'हे कमल नयने । यह मेरे जाने का समय हो गया, मैं जा रहा हूँ, तुम सो जाओ, प्रातकाल मै ही आकर तुम्हे जगाऊगा—ऐसा कहता हुआ अस्ताचल शिखर पर करन्यास कर सूर्य अस्त हो रहा है।'[३]

यहॉ सूर्य और कमलिनी के भावी मिलन के वृत्त से सागरिका और उदयन का भावी मिलन होगा यह सूचना प्राप्त होती है।

प्रकृति मानवीय सृष्टि की अपेक्षा अधिक सुन्दर होती है, तभी तो उपमान रूप मे कवियो ने प्रायश प्रकृति को ही उपादान बनाया। स्वय श्रीहर्ष ने नायिकाओ के चित्रण मे मुख, बाहु, ऊरु युगल आदि के उपमान क्रमश. चन्द्र, मृणाल और रम्भा-स्तम्भ आदि दिये है,[४] किन्तु हर्ष की दृष्टि मे प्रकृति कही कही नारी सौन्दर्य से पराजित भी हो गई है। उदाहरणार्थ—रत्नावली नाटिका

---

१ (उद्यामोत्कलिका विपाण्डुररुचिम्०) रत्ना० २/१४
२ रत्ना० १/१७
३ रत्ना० ३/६ (यातोऽस्मि पद्मनयने समयो०)
४ वही ३/११ (शीताशुर्मुखत्पले०)

की नायिका 'सागरिका के मुख के समक्ष चन्द्र न केवल हीन अपितु व्यर्थ है। इसलिये नायिका के रहते हुए चन्द्रोदय का कोई प्रयोजन नही।'[१]

स्वभावसुन्दर प्रकृति के भाव मानवीय भावनाओ से तादात्म्य रूप मे वर्णित करते हुए कवि ने सुख दु खात्मक स्थितियो का कुशलता पूर्ण चित्रण किया है। प्रात कालीन सन्ध्या के समय प्राची दिशा की वर्णना मे कवि कहता है कि 'यह पूर्व दिशा विरहपीडिता नारी की भॉति पीतवर्णा होकर भी अपने हृद्गत प्रेमी (चन्द्र) को सूचित कर रही है।'[२]

सच्ची प्रेमिका अपने प्रेमी का निरन्तर ध्यान किया करती है, जैसे—प्राची दिशा, अपने प्रेमी चन्द्र को अपने हृदय मे छिपाये हुए है, इसी प्रकार दिन भर अपने प्रेमी चन्द्र से वियुक्त रहने के कारण वह वियोगिनी की भॉति पीतवर्णा है। यहॉ प्रथमाश मे नायक की वासवदता के साथ सयुक्तावस्था का तथा उत्तराश मे विमुक्तावस्था का स्पष्ट आभास हो रहा है।

प्रकृति के आलम्बन व उद्दीपन दोनो रूपो का सूक्ष्म निरीक्षण कवि ने किया था। वर्षाकाल का वर्णन करते समय रक्त वर्ण वन्धूक पुष्प भूमि पर गिरे हुए ऐसे प्रतीत हो रहे है जैसे इन्द्र गोपिकाएँ हो।[३] इसी प्रकार अन्धकार के द्वारा ससार को ढकने का क्रम अत्यन्त सूक्ष्म और सुन्दर रूप मे उत्प्रेक्षित किया गया है। कवि की वर्णना पद्धति यहॉ अति उदात्त है।

'भगवान् शकर की कण्ठद्युति की चोरी कर लेने वाला अत्यन्त कृष्णवर्ण अन्धकार पहले पूर्वदिशा को ढकता है, फिर पर्वतो, वृक्षो और नगरो को ढकता हुआ लोगो के नेत्रो के दर्शन रूपी फल को छीन लेता है अर्थात् लोगो के देखने पर भी कुछ देखने नही देता।'[४]

रत्नावली की प्रकृति योजना भले ही राजोद्यान मे ही केन्द्रित हो, फिर भी हर्ष के हृदय का प्रकृति प्रेम असीम है।

'सागरिका के प्रथम दर्शन के समय चित्रगता राजहसी से उसकी उपमा देते हुए नायक उसका अपने प्रति अधिक पक्षपात बतलाता है।'[५]

यहॉ राजहसी के लिए राजहस के समान नायक उस नायिका के योग्य स्वयं अपने आपको ही उचित मानता है। इस प्रकार सर्वत्र प्रकृति के विविध रूपो मे मानव से तादात्म्य स्थापित करने के कारण उसमे चेतना का स्फुरण स्पष्टत· दृष्टिगोचर है।

---

१ वही ३/१३ (किं पद्मस्य रुचिं न हन्ति०)

२ वही १/२४ (उदयतटान्तरित०)

३ प्रियद० २/३.

४ रत्ना० ३/७

५ वही २/९ (लीलापधूतपद्मा)

प्रकृति के दृश्य लतावृक्षो के साथ अभौतिक सूर्य, चन्द्र और अन्धकार आदि का बिम्बात्मक, आलम्बनात्मक और उद्दीपक वर्णन करने के कारण हर्ष को केवल राजोद्यानप्रकृति का पारखी ही नही माना जा सकता अपितु उन्हे एक स्वतत्र प्रकृति पर्यवेक्षक की सज्ञा दी जा सकती है।

विद्धशालभंजिका—सस्कृत नाटिकाओ मे प्रकृति के जिस सीमित क्षेत्र की परम्परा को श्रीहर्ष ने जन्म दिया, परवर्ती काल मे अन्य नाटिकाकारो ने उसका परिपालन बडी तत्परता के साथ किया। पशु-पक्षियो के वही रूप, वही वृक्ष लताएँ एव वही उद्दीपक, बिम्बात्मक चित्रण जैसे नाटिका के प्रकृति-चित्रण मे आवश्यक बन गये। फिर भी कवियो ने यत्र तत्र अपनी प्रतिभा का प्रयोग कर दृश्यो मे नवीनता स्थापित करने का प्रयत्न किया है। राजशेखर इस प्रकार के कवियो मे अन्यतम है।

चन्द्र, कमल, कोकिल कूजन आदि सभी उद्दीपक होते है, किन्तु कवि की दृष्टि मे प्रात कालीन पवन इन सभी की अपेक्षा अधिक उद्दीपक है। कवि कहता है—'मानिनी स्त्रियॉ, जिनके मान को चन्द्रमा की किरणे, कोयल की मधुर कूक भी नष्ट न कर सकी वे स्त्रियॉ प्रात कालीन पवन का सस्पर्श पाते ही अपने पतियो के समक्ष आत्मसमर्पण कर रही है।[१]

प्रभातकालीन वर्णन मे कवि की कल्पना अत्युदात्त है। 'आकाश के तारे जो मणि मोतियो की भाति थे, सम्प्रति तेजहीन है, रातभर चन्द्रिका पान करने मे थकी हुई चकोरी अब सो गई है। चन्द्र बिम्ब भी मधुमक्खी के छत्ते की भॉति लाल रग का होकर अस्ताचल पर पहुँच गया है और प्राची दिशा बिडाल बालक के नेत्रो के समान लाल रग की हो गई है।[२] यहॉ प्रभातकाल के स्वाभाविक चित्रण के साथ-साथ कवि की सूक्ष्मेक्षिका बुद्धि का भी परिचय प्राप्त होता है।

इसी प्रकार मध्याह्न का स्वाभाविक चित्रण जिसमे विविध पशु-पक्षियो को सन्ताप से बचने की क्रियाओ का वर्णन किया गया है, सुन्दर है,[३] किन्तु उससे भी कही अधिक स्पृहणीय है प्रकृति का वह दृश्य जहॉ तालाबो का जल मृगनयनी स्त्रियो के पृथुल जघन प्रदेश की टक्कर से पीछे हटा हुआ पुन उनकी नाभि मे कुहू शब्दोच्चारण कर प्रविष्ट हो रहा है।[४]

यहॉ जल की क्रियाओ से नायिका के जघन स्थलो का गुरुत्व और नाभि का गाम्भीर्य ध्वनित होता है।

---

१ **विद्ध0 1/10.**
२ **विद्ध० १/११.**
३ **वही १/४३**
४ **वही १/४४**

राजशेखर कालिदास से अत्यधिक प्रभावित है तभी तो उनके प्रकृति चित्रण पर भी कालिदास का स्पष्ट प्रभाव है। ग्रीष्म वर्णन मे वही स्वाभाविकता एव क्रम है तथा वही वर्णनपद्धति है जो कालिदास मे। कवि कहता है—कि-यह ग्रीष्मकाल रात्रि के चतुर्थ प्रहर मे सुरत क्रीडा को प्रेरणा देता है, नारिकेल फल को पकाकर कठोर बना देता है तथा ग्रीष्म का सायकाल ही उपभोग योग्य होता है।[१]

कालिदास ने भी तो कहा था कि ग्रीष्म दिनो मे जल मे स्नान करना अच्छा लगता है, विकसित पाटल पुष्पो से पवन सुरभित हो जाता है, घनी छाया मे निद्रा सरलतया आ जाती है और दिन का अन्त रमणीय होता है।[२]

सन्ध्या आदि के वर्णनो मे कवि की निजी कोई मौलिकता नही है, यत्र तत्र सम्भावनाओ मे चमत्कृति अवश्य है।[३]

प्रकृति चित्रण की दृष्टि से नाटिका का प्रथम एव तृतीय अक महत्त्वपूर्ण है। सामान्य प्रकृति की अपेक्षा प्रकृति के वैयक्तिक उपादानो का आकर्षक रूप चित्रित करने मे कवि ने अधिक सफलता प्राप्त की है।

नायक कहता है कि 'मालती पुष्पो की माला वैसे ही मसलने योग्य नही होती जैसे नया प्रेम व्यवधान नही सह पाता। मौलसिरी की माला मुरझा भी जाये तो भी उसका परित्याग नही किया जा सकता।'[४]

यहाँ नायिका विद्धशालभजिका, जिसके प्रति राजा का नवीन प्रेम हुआ है, उसी प्रकार विरह को नही सह सकती जैसे मालतीदाम को मसला नही जा सकता। वस्तुत 'मालती' एक सुकुमार लता होती है जिसका कोमल पुष्प थोडे से भी हाथ के दबावजन्य ताप से मुरझा जाता है। उसी प्रकार नवीन प्रेम निरन्तर मिलते रहने से ही पुष्ट होगा, अन्यथा वह क्षीणता को प्राप्त हो जायेगा।

दूसरी ओर केसर पुष्पो की माला है जो मुरझा जाने पर भी अपनी सुगन्धि का परित्याग नही करती जिससे उसका परित्याग उचित प्रतीत नही होता। महारानी उसी प्रकार धीर, गम्भीर और गुणवती है। अत: उनका परित्याग या प्रेम विच्छेद नही किया जा सकता।

एक ही पद्य मे मालतीदाम और केसर स्रग की भिन्न-भिन्न प्रकृतियो का चित्रण कर कवि ने दोनो नायिकाओ के गुणो की अभिव्यजना बड़ी ही कुशलता के साथ की है। मालतीदाम से जहाँ नायिका की सुकुमारता और सौन्दर्य पर प्रकाश पड़ता है वही केसर स्रग से देवी नायिका के धीर, गम्भीर और उदात्त

---

१ वही ४/२

२ सुभग सलिलावगाहा पाटल संसर्ग सुरभि बनवाता।
प्रच्छाय सुलभनिद्रा दिवसाः परिणाम रमणीयाः। —शाकु० १/३.

३ विद्ध० २/२२.

४ वही ३/५.

स्वभाव की उत्कृष्टता ध्वनित होती है। इस प्रकार कवि ने प्रकृति के एक उपादान के द्वारा द्विविध भावस्थितियो का चित्रण करने मे प्रकृति को सहायिका रूप मे चित्रित किया है।

विदूषक, जो एक विदग्ध किन्तु मध्यम श्रेणी का पात्र होता है, के द्वारा किया गया अन्धकार का वैदुष्यपूर्ण चित्रण[१] भले ही पात्रानुकूल न हो, पर राजशेखर की प्रकृति के सूक्ष्म रूप को देखने की अद्‌भुत क्षमता का परिचायक अवश्य है।

प्रकृति के उद्दीपक रूप की सफल अवतारणा चन्द्रवर्णन मे है जहाँ वियोगी नायक कालिदास के दुष्यन्त[२]-की भाँति शीतल चन्द्रकिरणो से सन्तप्त हो रहा है। किन्तु वह इतने से ही विरत नही हो जाता वह तो चन्द्र के उत्पत्तिस्थान, भाई-बहन और मित्रादि सभी के शीतल होने का[३] स्मरण दिला कर उसके इस विपरीत आचरण का उलाहना भी देता है। इतने पर भी जब चन्द्र उसकी प्रार्थना नही सुनता तो चकोरो से अभ्यर्थना करता है कि वे ही चन्द्रकिरणो का पान कर ले, जिससे वह निस्तेज हो जाये और विरही जनो की प्राणरक्षा हो सके।[४]

राजशेखर ने प्रभात, सन्ध्या और मध्याह्न तथा बसन्त वर्णनो मे प्रकृति के स्वाभाविक स्वरूप की मधुर अभिव्यक्ति की है, फिर भी उनके लता, वृक्ष आदि के चित्रण मे उद्यान की सकीर्णता का स्पष्ट आभास होता है। कलात्मक सौन्दर्य मे प्रकृति की विविध सम्भावनाएँ स्पृहणीय है।

कर्णसुन्दरी—महाकवि बिल्हण ने कर्णसुन्दरी नाटिका लिखते समय यद्यपि प्रमुख रूढियो का पालन किया है किन्तु फिर भी उन्होने अपेक्षाकृत मौलिकता अपनाई है। प्रकृति चित्रण मे भी चन्द्र, बसन्त और सूर्योदय के ही दृश्य यत्र तत्र अल्प मात्रा मे प्रस्तुत किये है जो प्राय उद्दीपक रूप मे है। इनके प्रकृति दृश्यो मे अनेकश पुनरुक्ति है।

बिल्हण ने जहाँ कही नायिका के अगो और उसकी बिरह भावनाओ के चित्रण मे प्रकृति के जिन रूपो का अवलम्बन किया है, प्रायश प्रकृति हीन या समान स्तर की वर्णित की गई है भले ही इससे नायिका सौन्दर्य की विशिष्टाभिव्यक्ति हुई हो, पर प्रकृति की सुषमा का सम्यक् निखार नही हो पाया है।

नाटिका के आरम्भ मे नान्दी के तुरन्त बाद सूत्रधार आकर 3 श्लोको मे प्रभात का उद्दीपक वर्णन करता है जिसमे चन्द्रमा के अस्त होने का कारण

---

१ विद्ध०, पृष्ठ ७१।

२ शाकु० ३ ३.

३ विद्ध० ३/१३.

४ विद्ध० ३/१५

विरहिणी स्त्रियो के द्वारा दिया गया शाप है और प्राची दिशा की लालिमा क्रुद्ध चकोरी के नेत्र ज्योतिवत् है।[१]

चेतन प्रकृति के प्रतीक चकोर और पारावत भी तो मानवीय भावनाओ को पहचानते है तभी तो चकोर चुपके से स्वर्णगवाक्षो के अन्दर से चन्द्रिका कणो को पी रहे है और पारावत चुपचाप बैठे है जिससे कि रतिथकित प्रेमियो की प्रात कालीन निद्रा भग न हो जाय।[२]

इसी प्रकार अस्त होता हुआ चन्द्र निस्तेज होने के कारण पश्चिम दिशा मे कस्तूरी मृग के नेत्र के समान रक्तवर्ण तथा उदित होता हुआ सूर्य अनार पुष्प के समान प्रतीत होता है।[३]

इस प्रभात वर्णन मे सूर्य, चन्द्र, पूर्व और पश्चिम दिशा आदि के उपमानो मे कोई नवीनता नही है प्रायश सभी कवियो ने उनके निस्तेज एव लाल वर्ण की उसी प्रकार किसी न किसी के नेत्रो से सम्भावनाएँ की है। कवि की निजी कल्पना पारावतो की मूकता से प्रेमी प्रेमिकाओ की निधुवन सुख निद्रा की अभिव्यक्ति है जिसमे प्राकृतिक सुषमा कम किन्तु आलकारिक चमत्कृति अधिक है।

बसन्त वर्णन मे प्रकृति के उद्दीपक रूप मे कोकिला, आम्रमजरी और अन्यान्य पुष्पो का वर्णन हृदयग्राही है। कवि का कथन है कि जो यह कामदेव कोकिला का कलरव कर रहा है, जो आम्रमजरी को धनुष के बाण रूप मे प्रयोग करता है और जो पुष्पो के विकास के माध्यम से मुस्करा रहा है वह सब विरहाग्नि को जीवित रखने के लिए है।[४] विदूषक के द्वारा किया गया गद्यात्मक बसन्त वर्णन कवित्व की दृष्टि से प्रशसनीय है।[५] वह बकुल पुष्पो को शल्य की उपमा देकर उनसे वियोगिनिओ को कपा देने की बात कहता है।[६]

कवि की कल्पना मे यत्र तत्र नायिका-सौन्दर्य द्योतनार्थ चन्द्रादिको का हीनोपमात्मक वर्णन प्रकृति के प्रतीको को स्पर्श करने का प्रयत्न है। यद्यपि बिल्हण को प्रकृति के सर्वागीण चित्रण मे बहुत अधिक सफलता नही मिली यह माना जा सकता है फिर भी उद्दीपक रूप मे किया गया प्रकृति वर्णन सहज, स्वाभाविक और प्रभावोत्पादक है।

---

१ कर्ण० १/४.
२ कर्ण० १/५
३ वही १/६.
४ वही १/४८
५ वही, पृष्ठ १२-१३।
६ वही, १/४९

उषारागोदया—महाकवि कालिदास, हर्ष और भवभूति की सरणि का अवलम्बन कर चलने वाले कवि रुद्रचन्द्रदेव ने प्रकृति के सन्ध्या, मध्याह्न प्रभात, ग्रीष्म तथा वर्षा आदि के रूपो का सुन्दर चित्रण किया है। सूर्य और चन्द्र के बिम्बात्मक चित्रणो एव पात्रानुकूल उपमानो मे प्रकृति के प्रयोग अत्यन्त स्पृहणीय एव उचित है।

वर्षा का वर्णन करता हुआ विदूषक मेघ को सूकर की उपमा देकर उसे कामी पुरुषो की मृत्यु का हेतु मानता है।[१]

सूकर जो मेघ के उपमान रूप मे प्रस्तुत है यद्यपि हीन है, फिर भी विदूषक के कथन मे उसका औचित्य है साथ ही, हिसा रूपी निन्द्य कार्य करने के कारण भी मेघ की सूकर के माध्यम से निन्दा करना उचित है। दूसरी ओर नेपथ्य से बेतालिको द्वारा किया गया वर्षा-वर्णन अत्युत्कृष्ट है। यहाँ वर्षा ऋतु का उपमान अच्युत को बनाने के कारण उसका उदात्त रूप अभिव्यक्त हो सका है।[२]

विदूषक जो एक हसोड़ पात्र होता है, अत्यन्त चतुर और विदग्ध भी होता है। सस्कृत नाट्यशास्त्र मे इसीलिये तो इसे राजा का सहायक माना गया है। यहाँ विदूषक के द्वारा किया गया कमलिनी और भ्रमर की क्रियाओ का बिम्बात्मक वर्णन अत्यन्त हृदयग्राही है—'रति के विरह से क्रुद्ध कमलिनी मौन धारण किये है, तुम कितने पुण्यो से हे भ्रमर यहाँ आ गये हो, अब अपने मन की इच्छा को पूर्ण करो।'[३]

यहाँ भ्रमर नायक का और बिसिनी नायिका का बिम्ब रूप है जिससे उन दोनो की क्रियाओ की प्रतीति हो रही है।

बसन्तोत्सव मे नागरिको की मदविह्वल अनुराग भावना की अभिव्यजना के लिए वृक्ष, लताओ और भ्रमरो का बिम्बात्मक वर्णन किया गया है।[४]

नायक के द्वारा किया गया बसन्त वर्णन इतना सजीव है कि वृक्ष और नागरिक पुरुषो मे तथा लताओ और स्त्रियो मे कोई अन्तर ही प्रतीत नही होता। वृक्षो, और लताओ मे वही मादकता है, वही अनुराग है जो अन्य स्त्री-पुरुषो मे है।[५]

इस प्रकार इस नाटिका मे प्रकृति जहाँ उद्दीपक और सहयोगी है, वही वह चेतन सृष्टिवत् प्रसन्न और मनोहारी भी है। उद्यान के वृक्षो को देखकर भला किसे ज्ञात नही होगा कि यह मदनोत्सव है। क्योकि ये वन्य वृक्ष कोकिला स्वर

१ उषा० १/१३
२ वही १/११
३ उषा० २/३
४ वही २/५-६
५ वही २/९-१०

के माध्यम से यह व्यक्त करते है कि यह कामोत्सव का आरम्भ हो गया है, अत. मन्दपवन से पटवास को मानो बिखेर रहे है।[१]

नाटिका मे सन्ध्या और बसन्त वर्णनो की भरमार है किन्तु कोई नवीन कल्पना या विशेषता नही है। फिर भी उषा और कुमारकृत वर्णनो मे प्रकृति का उद्दीपक रुप अत्यन्त स्फुट है।[२] लता मण्डप आदि के वर्णनो मे भी कवि प्रतिभा का वैसा ही परिपाक है।

वस्तुत रूद्र चन्द्रदेव ने भाषा और भावो की रुचिर कल्पना करने मे जितनी सफलता प्राप्त की है उतनी प्रकृति वर्णन मे नही। नाटिका प्रकृति के अनुसार उनकी प्रकृति भी मालियो द्वारा नियत्रित चहार दीवारी से घिरे उद्यान मे घूमती रहती है।

चन्द्रकला—कवि का काव्यसौष्ठव उसकी कोमल कल्पनाओ मे, प्रकृति और पुरुष के तादात्म्य स्थापन मे तथा नूतन अभिव्यजनाओ मे व्यक्त हुआ करता है। विश्वनाथ कविराज इसी प्रकार की ललित नाटिका प्रणेता थे जिससे उनका काव्य-सौष्ठव स्फुटतया सहृदय हृदयानुग्राह्य हो सका।

प्राकृतिक उपादान भगवान् शकर के शीर्ष पर विद्यमान गगा की स्तुति करते हुए कवि ने नाटिका का शुभारम्भ कर प्रकृति के प्रति अपने प्रगाढ़ प्रेम का परिचय दिया है। 'स्वर्गगा की वे लहरे जिनमे अर्द्धचन्द्र एक मछली के समान तथा कमिनी से पृथक् हुआ भ्रमर समुदाय नीलवस्त्र के समान एव पार्वती का ईर्ष्यालु कटाक्ष जिस गगा मे यमुना की प्रतीति कराने से सगमस्थल की छटा बिखर रही है, वे गगा की लहरे आपको विजय प्रदान करे।'[३]

यहाँ गगा की लहरो का स्वाभाविक वर्णन पार्वती के कटाक्ष और चन्द्र की अभिनव उत्प्रेक्षाओ से अत्यन्त आह्लादक एव वैदुष्यपूर्ण है।

विश्वनाथ कविराज तो स्वय एक लक्षणकार भी थे, नाटिका की सकीर्ण प्रकृति के चित्रण के पक्षपाती नही थे। यही कारण हे—उनके प्रकृति दृश्य असीम सौन्दर्य के प्रतिनिधि है।

मलय पवन के स्वाभाविक उद्दीपक स्वरूप का वर्णन करते समय कवि की असाधारण प्रतिभा का परिचय प्राप्त होता है, जो साहित्य जगत मे अनुपम है।

मलय पवन यहाँ केवल लताकुजो को ही विकम्पित नही करता, सचेतनों का स्पर्श करते ही उन्हे रोमाचित कर देता है। भ्रमर तो प्रकृति के दीवाने होते ही है, मनुष्य भी क्षणभर मे ही कामाविष्ट हो जाते है मलय पवन का स्पर्श

---

१ **वही** २/१५.
२ **उषा,** ३/१३-१९
३ **चन्द्र०** १/१.

पाकर। खिले हुए कमलो की धूलि को दिक् दिगन्तरो मे प्रसारित करता हुआ यह पवन चारो ओर रागात्मक वातावरण की सृष्टि जो कर देता है।[१]

प्रकृति का जहाँ एक ओर मानवीकरण करने मे कवि सिद्धहस्त है वही प्रकृति के माध्यम से अनेक भावी घटनाओ की भी सूचना देने मे निपुण है।

'यह भ्रमर जिसने चिरकाल तक कुन्दलता का उपभोग किया है सम्प्रति सुगन्धपूर्णा आम्रमजरी के प्रति अधिक सतृष्ण होकर कुन्दलता का बिना परित्याग किये हुए चुम्बन कर रहा है।'[२]

यहाँ नटी की यह उक्ति नायक का देवी नायिका की अपेक्षा कन्या नायिका (चन्द्रकला) मे अधिक अनुराग होगा इस भावी घटना की सूचक है।

प्रकृति का बिम्बात्मक चित्रण भी अन्त्यन्त मधुर है—देवी नायिका के क्रोध से बचने के लिए स्पष्टीकरण देने की भावना से प्रकृति का नायक कृत वर्णन कि पुष्पित चमेली के रसपान का लोभी भ्रमर क्या दूसरी भी लता की कामना करता है, अर्थात् नही, बस मेरा भी मन एक मात्र देवी नायिका (बसन्त लेखा) का प्रणयी है किसी अन्य का नही।[३] उसकी हृद्गत भावना का प्रतिबिम्बन करता है।

पात्रानुकूल प्रकृति के स्वरूप का चित्रण करते हुए कवि ने अत्यन्त भोजन भक्त विदूषक को आम्रपुष्प श्रीखण्डराशि (चावल के ढेर) की भाँति तथा विकासशील अशोक के पुष्प गुच्छ गुड़ के लड्डुओ के समान प्रतीत हो रहे है।[४]

विदूषक को आगे भी चन्द्रमा मक्खन के पिण्ड के समान तथा चन्द्रकिरणे दुग्धधारा के सदृश दिखाई पड़ती है।[५]

चन्द्र का उद्दीपक रूप मे वर्णन प्राय सभी कवियो ने समान रूप मे ही किया है, किन्तु विश्वनाथ की इस विषय मे अपनी एक कला है कि वे प्रकृति चित्रण पद्धति का पिष्ट पेषण नही करते।

'नायक चन्द्रमा को वियोगियो के लिए यमजराज की सज्ञा देता है, युवा पुरुषो के धैर्य को लुप्त करने वाला, कामक्रीड़ा का सम्वर्धक, आकाश सिन्धु का राजहस, शिव के भाल का आभूषण और कुमुदो की तन्द्रा को नष्ट करने वाला मानता है।'[६] साथ ही एक चन्द्र के अनेक उपमानो की झड़ी लगाकर प्रत्येक की साभिप्रायता स्थिर रखना कवि विश्वनाथ की अपनी प्रतिभा है। कविवर

---

१ लताकुज गुजन् मदवदलिपुज चपलयन् ०। —चन्द्र० १/३
२ चन्द्र० १/४
३ चन्द्र० १/८.
४ वही १/१२.
५ वही २/८
६ वही २/१

के माध्यम से यह व्यक्त करते है कि यह कामोत्सव का आरम्भ हो गया है, अत मन्दपवन से पटवास को मानो बिखेर रहे है।[१]

नाटिका मे सन्ध्या और बसन्त वर्णनो की भरमार है किन्तु कोई नवीन कल्पना या विशेषता नही है। फिर भी उषा और कुमारकृत वर्णनो मे प्रकृति का उद्दीपक रुप अत्यन्त स्फुट है।[२] लता मण्डप आदि के वर्णनो मे भी कवि प्रतिभा का वैसा ही परिपाक है।

वस्तुत रूद्र चन्द्रदेव ने भाषा और भावो की रुचिर कल्पना करने मे जितनी सफलता प्राप्त की है उतनी प्रकृति वर्णन मे नहीं। नाटिका प्रकृति के अनुसार उनकी प्रकृति भी मालियो द्वारा नियत्रित चहार दीवारी से घिरे उद्यान मे घूमती रहती है।

चन्द्रकला—कवि का काव्यसौष्ठव उसकी कोमल कल्पनाओ मे, प्रकृति और पुरुष के तादात्म्य स्थापन मे तथा नूतन अभिव्यजनाओ मे व्यक्त हुआ करता है। विश्वनाथ कविराज इसी प्रकार की ललित नाटिका प्रणेता थे जिससे उनका काव्य-सौष्ठव स्फुटतया सहृदय हृदयानुग्राह्य हो सका।

प्राकृतिक उपादान भगवान् शकर के शीर्ष पर विद्यमान गगा की स्तुति करते हुए कवि ने नाटिका का शुभारम्भ कर प्रकृति के प्रति अपने प्रगाढ़ प्रेम का परिचय दिया है। 'स्वर्गगा की वे लहरे जिनमे अर्द्धचन्द्र एक मछली के समान तथा कमिनी से पृथक् हुआ भ्रमर समुदाय नीलवस्त्र के समान एव पार्वती का ईर्ष्यालु कटाक्ष जिस गगा मे यमुना की प्रतीति कराने से सगमस्थल की छटा बिखर रही है, वे गगा की लहरे आपको विजय प्रदान करे।'[३]

यहाँ गगा की लहरो का स्वाभाविक वर्णन पार्वती के कटाक्ष और चन्द्र की अभिनव उत्प्रेक्षाओ से अत्यन्त आह्लादक एव वैदुष्यपूर्ण है।

विश्वनाथ कविराज तो स्वय एक लक्षणकार भी थे, नाटिका की सकीर्ण प्रकृति के चित्रण के पक्षपाती नही थे। यही कारण है—उनके प्रकृति दृश्य असीम सौन्दर्य के प्रतिनिधि है।

मलय पवन के स्वाभाविक उद्दीपक स्वरूप का वर्णन करते समय कवि की असाधारण प्रतिभा का परिचय प्राप्त होता है, जो साहित्य जगत मे अनुपम है।

मलय पवन यहाँ केवल लताकुजो को ही विकम्पित नही करता, सचेतनो का स्पर्श करते ही उन्हे रोमाचित कर देता है। भ्रमर तो प्रकृति के दीवाने होते ही है, मनुष्य भी क्षणभर मे ही कामाविष्ट हो जाते है मलय पवन का स्पर्श

१ वही २/१५
२ उषा, ३/१३-१९
३ चन्द्र० १/१

पाकर। खिले हुए कमलो की धूलि को दिक् दिगन्तरो मे प्रसारित करता हुआ यह पवन चारो ओर रागात्मक वातावरण की सृष्टि जो कर देता है।[1]

प्रकृति का जहाँ एक ओर मानवीकरण करने मे कवि सिद्धहस्त है वही प्रकृति के माध्यम से अनेक भावी घटनाओ की भी सूचना देने मे निपुण है।

'यह भ्रमर जिसने चिरकाल तक कुन्दलता का उपभोग किया है सम्प्रति सुगन्धपूर्णा आम्रमजरी के प्रति अधिक सतृष्ण होकर कुन्दलता का बिना परित्याग किये हुए चुम्बन कर रहा है।'[2]

यहाँ नटी की यह उक्ति नायक का देवी नायिका की अपेक्षा कन्या नायिका (चन्द्रकला) मे अधिक अनुराग होगा इस भावी घटना की सूचक है।

प्रकृति का बिम्बात्मक चित्रण भी अन्त्यन्त मधुर है—देवी नायिका के क्रोध से बचने के लिए स्पष्टीकरण देने की भावना से प्रकृति का नायक कृत वर्णन कि पुष्पित चमेली के रसपान का लोभी भ्रमर क्या दूसरी भी लता की कामना करता है, अर्थात् नही, बस मेरा भी मन एक मात्र देवी नायिका (बसन्त लेखा) का प्रणयी है किसी अन्य का नही।[3] उसकी हृद्गत भावना का प्रतिबिम्बन करता है।

पात्रानुकूल प्रकृति के स्वरूप का चित्रण करते हुए कवि ने अत्यन्त भोजन भक्त विदूषक को आम्रपुष्प श्रीखण्डराशि (चावल के ढेर) की भाँति तथा विकासशील अशोक के पुष्प गुच्छ गुड़ के लड्डूओ के समान प्रतीत हो रहे है।[4]

विदूषक को आगे भी चन्द्रमा मक्खन के पिण्ड के समान तथा चन्द्रकिरणे दुग्धधारा के सदृश दिखाई पड़ती है।[5]

चन्द्र का उद्दीपक रूप मे वर्णन प्राय· सभी कवियो ने समान रूप मे ही किया है, किन्तु विश्वनाथ की इस विषय मे अपनी एक कला है कि वे प्रकृति चित्रण पद्धति का पिष्ट पेषण नही करते।

'नायक चन्द्रमा को वियोगियो के लिए यमजराज की सज्ञा देता है, युवा पुरुषो के धैर्य को लुप्त करने वाला, कामक्रीड़ा का सम्वर्धक, आकाश सिन्धु का राजहस, शिव के भाल का आभूषण और कुमुदो की तन्द्रा को नष्ट करने वाला मानता है।'[6] साथ ही एक चन्द्र के अनेक उपमानो की झड़ी लगाकर प्रत्येक की साभिप्रायता स्थिर रखना कवि विश्वनाथ की अपनी प्रतिभा है। कविवर

१ लताकुंज गुंजन् मदवदलिपुज चपलयन् ०। —चन्द्र० १/३.
२ चन्द्र० १/४.
३ चन्द्र० १/८.
४ वही १/१२.
५ वही २/८.
६ वही २/१

कालिदास और हर्ष की कला से अत्यन्त प्रभावित होने के कारण कविराज विश्वनाथ के प्रकृति दृश्यो मे पिष्टपेषण या उबा देने जैसी कोई बात नही है।

चन्द्र का एक बार वर्णन करने के पश्चात् पुन उसकी किरणो का वर्णन करते समय उसने सर्वथा नवीन भाव सजोया है। नायक कहता है—"ये चन्द्रमा की किरणे पुष्प समुदाय से युक्त होकर काम को उद्दीप्त करती है तो घने अन्धकार के साथ धैर्य को ही नष्ट कर देती है और जब यही किरणे कमल समुदाय के साथ होती है तो हृदयो को ही निमीलित कर देती है इस प्रकार चन्द्रमा की किरणे चारो ओर फैल रही है।"[१]

नायिका चन्द्रकला को चन्द्रमा ऐसा लग रहा है जैसे प्रिय विरह की चोट से घायल उसके हृदय पर यह एक और चोट है।[२] फिर भी जब धैर्य नही मिलता तो वह चन्द्र से पूछ ही बैठती है कि हे चन्द्र ! तुम तो भगवान् पशुपति के सिर पर रहते हो, फिर तुम स्त्रियो के जीवन का हरण क्यो करते हो।[३]

रसाल वृक्ष और कोकिल की कुहू ध्वनि का उद्दीपक वर्णन करते हुए कवि ने अनेक हेतुओ की उद्भावना की है।[४]

प्रकृति के चेतनस्वरूप की वर्णना मे उसने नाटिका की सीमित प्रकृति से बाहर निकलने का स्तुत्य प्रयास किया है।

"वियोगी नायक अपनी प्रेयसी के सम्बन्ध मे अशोक वृक्षो और भ्रमरादिको से प्रश्न करता है कि क्या उन्होने उसे देखा है।[५] और भ्रमर की झकार जब उसे उसके प्रश्न के अनुकूल उत्तर के रुप मे ज्ञात होता है तो वह उसकी कुशलता, स्थान आदि की भी जानकारी उनसे करना चाहता है।'[६]

हिन्दी साहित्य की आत्मा तुलसीदास ने वियोगी राम के द्वारा इसी प्रकार का प्रश्न खग, मृग और मधुकरो से करा कर सस्कृत साहित्य के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है।[७]

विश्वनाथ की प्रकृति यदि मानवीय गुणो की उत्कर्ष साधिका है तो वह मानवीय दोषो की दर्शिका भी है। चन्द्रकला की सखी रतिकला उसे धैर्य दिलाती हुई कहती है—"सखि ! पुरुष भ्रमराणा स्वभाव एष यत्किल नव

१ चन्द्र० २/७
२ वही २/१२
३ वही २/१३
४ वही ३/३-४
५ वही ३/८.
६ चन्द्र० ३/९
७ हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी, तुम देखी सीता मृगनयनी।
—रामच०, पृष्ठ ६७९, तुलसी ग्रन्था० भाग १.

नवमेवानुधावन्ति"[१] यहाँ बडी चतुरता के साथ भ्रमर के माध्यम से पुरुषो के चचल स्वभाव की आलोचना की गई है।

इस प्रकार सम्पूर्ण नाटिका प्रकृति के सुकुमार भावो से समलकृत है जिसमे प्रभात, चन्द्र एव बसन्त लक्ष्मी का विविधविध चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक और हृदयग्राही है।

वृषभानुजा—परवर्ती काल की नाटिकाओ मे मथुरादासकृत वृषभानुजा नाटिका अपना विशिष्ट महत्व रखती है। कवि ने अनेक रुपो मे जहाँ श्रीहर्ष, राजशेखर आदि की कला का अनुकरण किया है, वही अनेक रुपो मे अपनी नवीनता भी प्रदर्शित की है।

प्रकृति चित्रण मे भी वे अपेक्षाकृत स्वतन्त्र है क्योकि नाटिका का इतिवृत्त यमुना पुलिन और वृन्दारण्य की पवित्र भूमि मे ही घटित होता है।[२]

गोकुल की भूमि मे कही वेदूर्यमणि का तो कही मुक्ता कान्ति का सादृश्य है।[३] वहाँ गोवत्स यमुना तट पर निशक हरिणो के साथ चरते है[४] और पक्षियो के साथ खेलते है।

सचेतन सृष्टि के समान प्रकृति कृष्ण के स्वागत मे सलग्न है। क्योकि एक ओर वृन्दावन भ्रमरियो के गुजन रूपी गीत गाकर, मयूरो के माध्यम से नृत्य और पिक कूजन से प्रसन्नता व्यक्त कर रहा है तो दूसरी ओर लता रूपी बधुओं के साथ किसलयो की रक्तिमा से अनुराग भी प्रकट कर रहा है।[५] इतना ही नही वह अतिथि का स्वागत कैसे करना चाहिए यह भी जानता है जब उसके वृक्ष भ्रमररूपी नेत्रो से कृष्ण को आता हुआ देखते है तो प्रसन्नता से उनकी ऑखो मे परागबिन्दु रूपी अश्रु छलक पड़ते है वे अपनी शाखाग्र रूपी हाथो से कृष्ण को बुला कर फलो का उपहार प्रदान करते है।[६]

वृन्दावन के इस वर्णन मे भारतीय आतिथ्य भावना का जो रुप मूर्तिमान हुआ है वह अत्यन्त स्वाभाविक है। कालिदास ने भी रघुवश मे राजा दिलीप के वन जाने पर इसी प्रकार का वर्णन किया है[७] अत कवि पर कालिदास का प्रभाव स्पष्ट है।

पद्यो मे विविध अलकारो के माध्यम से ही प्रायश. कवियो ने प्रकृति का चित्रण किया है, किन्तु मथुरादास ने गद्य मे भी उतनी ही सफलता प्राप्त की

१ चन्द्र० पृष्ठ ६२
२ वृष० पृष्ठ २ (सूत्रधारोक्ति)
३ वही, १/११.
४ वही, १/१२
५ वही, १/१६.
६ वही, १/१७.
७ रघु०, २/९-१३

जितनी पद्य मे। कृष्ण के द्वारा किया गया यमुनातीर के लता निकुजो का वर्णन किस सहृदय हृदय को आकृष्ट नही करेगा।[१] यद्यपि समास बाहुल्य से नाटिका के कोमल स्वरूप पर कुछ आघात अवश्य लगा है किन्तु प्रकृति के उदात्त चित्रण मे वह नगण्य है।

नाटिका के प्रभात,[२] मध्याह्न[३] और सन्ध्या[४] वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक एव मार्मिक है। तमाल आदि के चित्रण[५] मे यत्र तत्र बिम्बात्मकता स्पृहणीय है।

इस प्रकार प्रकृति के अनेकविध रूपो के ललित विन्यास की नाट्य परम्परा का सभी सस्कृत नाटिकाकारो ने परिपालन किया है।

इन प्रसिद्ध नाटिकाओ के प्राकृतिक वर्णनो की पद्धति समकालीन और परवर्ती नाटिकाओ मे भी विद्यमान है।

१३वी शती के कवि मदनबाल सरस्वती की पारिजातमजरी मे प्रभात वर्णन उद्दीपक, एव अत्यन्त रमणीक है।[६] तमाल, सहकार आदि वृक्षो के साथ कोकिला, राजहस और चकोर आदि को उपादान रूप मे ग्रहण किया गया हे।

प्रकृति के ललित और उद्दाम दोनो रूपो की सफल अभिव्यजना मे १७वी शती के विद्वान् कवि राज चूडामणि दीक्षित अत्यन्त कुशल है। उनकी कला का उत्कर्ष मध्याह्न,[७] सन्ध्या,[८] चन्द्र ज्योत्स्ना[९] और चन्द्र[१०] के वर्णनो मे द्रष्टव्य है। कतिपय उदाहरण इस दृष्टि से अवलोकनीय है—सन्ध्याकालीन सूर्य मे मानवव्यापार, यथा—

"पश्चिम दिशा मे आलक्तक की शोभा बिखेरता हुआ सन्ध्याकालीन सूर्य का प्रतिबिम्ब पानी मे ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो वह अपनी प्रेयसी कमलिनी से प्रवास पर जाते समय आलिगन कर रहा है।"[११]

उद्यान वर्णन मे रूढिमूलकता रहते हुए भी निजी कल्पना कम नही। एक ओर जहाँ कवि वृक्ष व लता के परस्पर सयोग मे आलिगनात्मक मानवीय व्यवहार का समारोप कर रूढि या परम्परा का पालन करता है[१२] वही दूसरी ओर उद्यान

---

१ वृष० पृष्ठ १२-१३।
२ वही, २/१-२
३ वही, ३/४.
४ वही, ३/६.
५ वही, ३/९.
६ पारि०, १/१७-१८
७ कम०, १/१०.
८ वही, १/४६
९ वही, २/११
१० वही, २/११-१३, १५
११ वही, १/४६.
१२ वही, २/१७.

को कामदेव की सेना का शिविर बतला कर सर्वथा नवीन कल्पना को भी जन्म देता है।[१]

सुख की स्थिति मे जहाँ नायक को उद्यान की प्रत्येक वस्तु मधुर और अनुरागपूर्ण लगती है, वहाँ वियोग मे शल्यवत् कष्टकर वर्णित कर भावानुकूलता का ध्यान रखा है।[२]

१८वी शती के कवि वीरराघव ने मृगया प्रसग मे प्रकृति के उद्दाम और तीक्ष्ण चित्रण कर वर्णनानुकूल प्रकृति का स्वरूप प्रतिपादित किया है तो दूसरी और मलयजा के प्रति अनुराग भावना के चित्रण मे रूढिमूलक रागात्मक चित्रण पूर्वकवियो के प्रति आदरभाव को व्यक्त करता है। इस नाटिका की सबसे बडी विशेषता प्रकृति च्रित्रण मे यही है कि इसमे उद्यान की सीमित परिधि का प्रकृति रूप नही अपितु व्यापक, विस्तृत एव सर्वागीण प्रकृति के प्रतिमान है, उपादान है।

इसी शती के एक और कवि विश्वनाथ देव ने मृगाकलेखा नामक नाटिका की रचना की, जिसमे पुन प्रकृति को राजोद्यान की सीमित परिधि से घेर कर परम्परावादी बना दिया गया और मलय पवन से लेकर प्रियाल, सहकार, कोकिल ओर मयूर आदि की विविध क्रियाओ मे ही केन्द्रित हो गया। इस प्रकार चेतन स्वरूप के रूढिमूलक चित्रण के अतिरिक्त प्रकृति का निजी कोई वैशिष्ट्य प्रकाश मे न आने से कवि का इस दृष्टि से पृथक् स्थान निर्धारित नही किया जा सकता। फिर भी सस्कृत नाटिकाओ के अवनतिकाल की प्रतिनिधि रचना होने के कारण परम्परावादी वर्णनो मे भी यत्र तत्र प्राकृतिक सौन्दर्य स्तुत्य है, जैसे—चन्द्र के उद्दीपक वर्णन मे जहाँ कवि ने "चन्द्रकिरणो का अमृत पूर्ण होना, शिव का आभूषण बनना आदि चित्रित है, वही उसके सम्बन्ध मे यह कह देना कि चन्द्र जो लोगो को जलाता है वह ठीक ही है क्योकि जो मलिन हृदय होते है उनका ऐसा ही मलिन कार्य भी होता है।"[३] चमत्कृत्याधायक है क्योकि यहाँ कवि ने मलिन हृदय शब्द से जहाँ चन्द्रमा के कलक का सकेत किया है वही ससार मे 'विषकुम्भ पयोमुखम्' के समान बाहर से सुन्दर किन्तु हृदय से दुष्ट पुरुषो की कलई भी खोल दी है। इस प्रकार के बिम्बात्मक चित्र कवि की कला के उत्कृष्ट नमूने है।

अवनति काल की नाटिकाओ मे इसी शती के पर्वतीय कवि विश्वेश्वर पण्डित की 'नवमालिका' और १९वी शती के कवि गोपाल कृष्ण की चन्द्रप्रभा

---

१ वही, २/१६.
२ वही, २/३५.
३ मृगा० २/४०.

आदि नाटिकाओ मे भी प्रकृति का इसी प्रकार रूढि मूलक चित्रण है। यो तो प्रत्येक कवि अपनी कुछ न कुछ विशिष्ट वर्णन पद्धति रखता है, किन्तु यदि युगानुकूल प्रकृति से भिन्न निजी कोई स्थापना नही तो उसे इस क्षेत्र मे कोई महत्त्व नही दिया जा सकता, हॉ कवि के रूप मे उसकी कल्पनाशक्ति और भावोपन्यास पद्धति की समीक्षा की जा सकती है।

इस प्रकार यह कहना अत्युक्ति न होगी कि सस्कृत नाटिकाओ के सीमित क्षेत्र मे भी प्रकृति अपने ललित रूप मे सर्वथा मानवीय व्यवहारो से भिज्ञ एव सहयोगी रूप मे चित्रित है तथा मानवीय सुख दु ख से सुखी एव दु खी बना कर सर्वथा अचेतन से चेतन रूप मे अवतरित की गई है।

नाटिका मे श्रृगार रस की प्रमुखता के कारण चन्द्र, प्रभात, बसन्त आदि के वर्णन उद्दीपन होकर नायक नायिकाओ के विप्रलम्भ को पुष्ट करने वाले वर्णित किये गये है जो सर्वथा वर्णनानुकूल एव उचित है।

पंचम अध्याय

नाट्यशास्त्रीय समीक्षा

(अ) नाट्यशास्त्रीय समीक्षा

(ब) भारतीय रगमच विधान

(स) अभिनेयता

(द) आधुनिक नाट्यशास्त्रियो द्वारा निर्धारित मानदण्डो के अनुसार नाटिकाओ की समीक्षा

नाटक और प्रकरण के सयोग से जन्म लेने के कारण[१] सस्कृत नाटिकाओ को सकीर्ण नाट्य[२] या उपरूपक[३] कहा जाता है। पूर्वत स्पष्ट किया जा चुका है कि नाटिका का इतिवृत्त प्रकरण के अनुसार कविकल्पित[४] और नायक नाटक के समान प्रख्यात होता है।[५] अत नाटक और प्रकरण की वे सभी रूढ़ियॉ जो उनमे आवश्यक मानी गई है, नाटिका मे भी रहनी चाहिए। लक्षणकारो ने नाटिका के कुछ विशिष्ट लक्षण निर्धारित किये है जो प्रमुख शास्त्रकारो के अनुसार निम्नलिखित है।

आदि नाट्याचार्य भरत ने नाटी नाम से नाटिका का उल्लेख करते हुए निर्दिष्ट किया कि नाटिका मे स्त्री पात्रो का बाहुल्य, चार अक, ललित अभिनय, गीत-नृत्य, वाद्य की अधिकता, सम्भोग श्रृंगार अगीरस, राजकीय आचार व्यवहार, प्रसन्नता, क्रोध, अहकार आदि भाव तथा नायक की दूतियॉ एव देवी से सम्बद्ध नायिका आदि पात्र होते है।[६]

---

१ (अ) अनयोश्च बन्धयोगादन्यो भेदः प्रयोक्तृभिर्ज्ञेयः।
प्रख्यातस्त्वितरो वा नाटी संज्ञाश्रिते काव्ये॥ —ना0 शा0 18/109.
(ब) ना० द० २/७०.

२ दश0 3/43.

३ सा0 द0 6/6.

४ दश0 3/43.

५ वही 3/43.

६ ना० शा० १८/११०-१११.

नाटक लक्षण रत्नकोशकार सागर नन्दिन ने इस सिद्धान्त को स्वीकार कर नाटिका के चारो अको मे कैशिकी के चारो भेदो की आवश्यकता का प्रतिपादन किया।[१]

भरत और सागरनन्दिन के लक्षणो को स्वीकार करते हुए धनजय ने नायक की प्रकृति व नायिका के गुण-स्वभाव आदि का किचित् विस्तार से विवेचन किया। इनके अनुसार नाटिका मे नायक प्रख्यात किन्तु धीरललित होता है[२] एव जोष्ठा नायिका महारानी प्रगल्भा, गम्भीरा, मानिनी तथा कन्या नायिका अत्यन्त रूपवती, केवल अन्तपुर से सम्बद्ध, होती है। कन्या नायिका के गीत को सुनकर या उसे देखकर नायक का उसके प्रति अनुराग जागृत होता है, किन्तु वह सदैव ज्येष्ठा नायिका से भयभीत रहता हुआ ही कन्या नायिका के प्रेम व्यापार मे प्रवृत्त होता है।[३]

नाट्यदर्पणकार ने इन विशेषताओ के अतिरिक्त कुछ अन्य विशेषताओ का निर्देश करते हुए लिखा—(१) नाटिका का फल स्त्री अथवा पृथ्वी लाभ होता है। (२) नाटिका की समाप्ति पर देवी नायिका के द्वारा नायक का कन्या नायिका से विवाह कराया जाता है, तथा (३) कन्या और देवी-नायिकाओ के प्रसिद्ध, अप्रसिद्ध दो रूपो मे होने से नाटिका के चार भेद होते है।[४]

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ कविराज ने नाट्यविषयक विवेचना मे यद्यपि धनंजय का भूयसा अनुकरण किया है, फिर भी उनकी निजी मान्यताएँ यत्र तत्र स्वत· उद्‌भूत हुई है। नाटिका के विषय मे उन्होने पूर्ववर्ती लक्षणकारो की अपेक्षा एक नवीन बात कही कि इसमे विमर्श सन्धि स्वल्प होती है।[५]

उपर्युक्त समस्त सिद्धान्तो का सकलन करने से नाटिका के विशिष्ट नियम निम्नलिखित ज्ञात होते है—

(1) नाटिका का इतिवृत्त कल्पित किन्तु नायक प्रख्यात धीरललित प्रकृति का होता है।

(२) नायिकाएँ दो होती है। जिनमे प्रथम राजा की विवाहिता महारानी जो नृपवशजा होती है किन्तु वह क्रोधी तथा मानिनी स्वभाव की ईर्ष्यालु होती है। कन्या नायिका-महारानी की ही सम्बन्धिनी, मुग्धा एव रूपवती होती है।

(३) सम्पूर्ण नाटिका मे स्त्री पात्रो का बाहुल्य होता है।

(४) सभोग श्रृगार अगीरस होता है।

---

१ ना० ल० र० कारिका-३५१।

२ दश० ३/४४.

३ वही ३/४५-४७.

४ ना० द० २/७०-७२ (सूत्र स० १२१-१२३)

५ सा० द० ६/२६९-२७२

(५) कैशिकी वृत्ति के चारो अगो का प्रयोग होता है।

(६) साहित्यदर्पण के अनुसार विमर्श सन्धि स्वल्प तथा शेष सभी सधियाँ होती है।

(७) नायक का विवाह देवी नायिका के आधीन होने के कारण नायक सदैव देवी नायिका से डरता हुआ कन्या नायिका से प्रेम करता है।

(८) नाटिका मे कुल चार अक होते है।

(९) नाटिका का फल स्त्री अथवा पृथ्वीलाभ होता है।

(१०) नाट्यदर्पण के अनुसार देवी तथा कन्या दोनो नायिकाएँ प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध होती थी।

नाटिका की इन विशिष्ट रूढियो के अतिरिक्त प्राय सभी आचार्यों ने उन सभी नियमो को नाटिका मे आवश्यक माना है जो इतिवृत्त और नायक आदि के सम्बन्ध मे नाटक प्रकरण आदि के लिए निर्धारित किये गये है। नाट्य दर्पणकार का इस सम्बन्ध मे स्पष्ट निर्देश है कि—

'एतद्द्वयोत्थि तत्वेन चावस्था - सन्धि - सन्ध्यगबीज - बिन्दु - पताका - प्रकरी - पताकास्थानक - अक- प्रवेशक - विष्कम्भक - इतिवृत्त भेदादीनि उभयभेद - साधारणानि लभ्यन्ते।'[१]

इस कथन से स्पष्ट है कि नाटिका मे भी समस्त सन्धियाँ, उनके 64 अंग, बीज आदि 5 अर्थ-प्रकृतियाँ, पताका-स्थानक, अकविभाजन एव विष्कम्भक-प्रवेशक आदि अर्थोपक्षेपक, सभी होने चाहिए।

अभिनव नाट्य शास्त्रकार ने यह लिखकर कि-'कुछ लोगो का मत है कि इसमे एक, दो या तीन अक भी होते है[२] एक नवीन मत का सकेत किया, किन्तु इस मत के समर्थको का आधार क्या है या वे कौन हैं ? आदि का उल्लेख न होने से इस मत को मान्यता नही दी जा सकती।

दशरूपककार ने सस्कृत नाटको के विविध भेदो का कारण वस्तु नेता और रस की भिन्नता मानी है।[३] इसी नियम के आधार पर नाटिका की पृथक् सत्ता तथा उसके चार अको का निर्धारण हो सका, अन्यथा एक अक वाले व्यायोग, भाण, उत्सृष्टिकाक, वीथी, दो अको वाले प्रहसन, व प्रस्थानक तथा तीन अंको वाले समवकार आदि को नाटिका से पृथक् मानना असम्भव हो जायेगा।

नाटिका मे चार ही अक होते है, न कम न अधिक। इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि 'कैशिकी वृत्ति के चारो अग नाटिका के चारो अकों में

१ ना० द०, पृष्ठ २१४।
२ अभि० ना० शा० पृष्ठ ५८०।
३ दश० १/११ (वस्तु नेता रसस्तेषां भेदक)

होने चाहिए'[१] यह नियम है। जो स्वत नाटिका मे चार अको की अनिवार्यता सिद्ध कर देता है।

सस्कृत साहित्य मे नाट्य का प्रधान तत्व इतिवृत्त है जिसके सम्बन्ध मे नाट्यशास्त्रियो ने विविध नियम निर्धारित किये जो निम्नलिखित है—

प्रथमत इतिवृत्त के दो भेद किये गये—आधिकारिक व प्रासगिक।[२] सूच्य, श्रव्य और दृश्य भेद से वह पुन ३ प्रकार का होता है। फिर इतिवृत्त का तीन रुपो मे विभाजन किया गया—(१) अर्थप्रकृतियो, (२) अवस्थाओ और (३) सधियो के रूप मे। अर्थप्रकृतियॉ पॉच होती है—बीज, विन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य।[३] अवस्थाओ के भी ५ भेद है—आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम।[४] अवस्थाओ को नायक का व्यापार मानने के कारण इसे इतिवृत्त से पृथक् रुप मे कार्यावस्था की सज्ञा भी दी गई।

अर्थप्रकृतियो व कार्यावस्थाओ के योग से इतिवृत्त मे 5 सन्धियॉ बनती है जो मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श या अवमर्श तथा निर्वहण कहलाती है।[५]

इन पॉचो सन्धियो मे प्रत्येक के अलग-अलग अग है जिन्हे सन्ध्यग कहा जाता है। इनकी कुल सख्या 64 है।[६] प्रत्येक सन्धि के अनुसार इनका विवेचन इस प्रकार है—

संधियॉ	अग			योग
मुख सन्धि	१ उपक्षेप	५ युक्ति	९ परिभावना	
	२. परिकर	६ प्राप्ति	१० उद्भेद	
(१२)	३ उपन्यास	७ समाधान	११ भेद	
	४ विलोभन	८ विधान	१२ करण	१२

१ प्रत्यंकोपनिबद्धाभिहितलक्षणकैशिक्यग चतुष्टय वती नाटिकेति—
—दश० ३/४८ की धानिक वृत्ति

२ वस्तु च द्विधा। तत्राधिकारिक मुख्यमग प्रासगिक विदु।
—दश० १/११.

३ दश०, १/१८.

४ वही, १/१९.

५ सा० द०, ६/७४-७५

६ ना० शा०, १९/५५-६५

सधिया	अंग			योग
प्रतिमुख सधि	१ विलास	६ नर्मद्युति	११ पुष्प	
	२ परिसर्प	७ प्रगमन	१२ उपन्यास	
(१३)	३ विधूत	८ निरोध	१३ वर्णसहार	
	४ शम	९ पर्युपासन		
	५ नर्म	१० वज्र		२५

सधियॉ	अंग			योग
गर्भ सन्धि	१ अभूताहरण	५ क्रम	९ अधिबल	
	२ मार्ग	६ सग्रह	१० उद्वेग	
(१२)	३ रूप	७ अनुमान	११ सभ्रम	
	४ उदाहरण	८ तोटक	१२ आक्षेप	३७

सधियॉ		अग		योग
विमर्श या अवमर्श	१ अपवाद	६ द्युति	११ प्ररोचना	
	२ सफेट	७ प्रसग	१२ विचलन	
(१३)	३ विद्रव	८ छादन	१३. आदान	
	४ खेद	९ व्यवसाय		
	५ शक्ति	१० विरोधन		५०

सन्धियॉ		अंग		योग
निर्वहण	१ सन्धि	६ प्रसार	११ उपगूहन	
	२ विवोध	७ आनन्द	१२ पूर्वभाव	
(१४)	३. ग्रथन	८. समय	१३. उपसहार	
	४ निर्णय	९ कृति	१४. प्रशस्ति	
	५ परिभाषण	१० भाषा		६४

इन सभी सन्ध्यगो का प्रयोग नाट्य मे आवश्यक नही है। स्वय भरतमुनि का निर्देश है कि कुशल कवि कार्य और अवस्था को देखकर कार्य करे और आवश्यकतानुसार इन सन्ध्यगो का प्रयोग करे। दो तीन के योग से भी कार्य चल सकता है।[१] यद्यपि साहित्यदर्पणकार यथासभव इनकी अनिवार्यता के ही पक्ष मे है क्योकि उनका यह कथन कि—

'अंगहीनो नरोयद्वन्नैवारम्भक्षमो भवेत।
अग हीनं तथा काव्य न प्रयोगाय युज्यते।'[२]

इस बात का स्पष्ट सकेत है। यद्यपि यह उनका ही नही आचार्य भरत का भी अभिमत है।

भरतमुनि, शारदातनय, शिगभूपाल और सागरनन्दिन ने नाट्य मे ६४ सन्ध्यगो के अतिरिक्त २१ सन्ध्यन्तर भी स्वीकार किये है, किन्तु धनजय, रामचन्द्रगुणचन्द्र और विश्वनाथ ने इनकी आवश्यकता नही समझी। इस विषय मे नाट्यदर्पणकार का स्पष्ट कथन है कि—'कुछ विद्वान् जो २१ सन्ध्यन्तर मानते है वे पृथक् नही है। क्योकि कुछ का अन्तर्भाव गर्भसन्धि मे, कुछ का व्यभिचारी भावो मे, कुछ कथा रूप है तो कुछ का अन्तर्भाव उपक्षेप आदि सन्ध्यगो मे ही हो जाता है। अत इनके पृथक् परिगणन की कोई आवश्यकता नही है।'[३]

आधुनिक विद्वान् डा एस एन शास्त्री भरत आदि प्राचीन आचार्यो से अपनी सहमति व्यक्त करते हुए कथानक के विकास हेतु इनकी अनिवार्यता स्वीकार करते है।[४]

भरतमुनि के अनुसार इन 21 सन्ध्यन्तरो के नाम निम्नलिखित है—

१. साम, २ दान, ३ भेद, ४ दण्ड, ५ प्रत्युत्पन्नमति, ६ वध, ७ गोत्रस्खलित, ८ ओजस्, ९ ह्री, १० क्रोध, ११ साहस, १२ भय, १३ माया, १४ सवरण, १५ भ्रान्ति, १६ दूत्य, १७ हेत्ववधारण, १८ स्वप्न, १९ लेख, २० मद और २१ चित्त।[५]

नायक के व्यापारानुसार नाट्य मे ४ प्रकार की वृत्तियाँ स्वीकार की गई है—भारती, सात्वती, कैशिकी और आरभटी।[६]

---

१ सर्वांगानि कदाचित्तु द्विात्रियोगेन वा पुन।
ज्ञात्वा कार्यमवस्था च योज्यान्यगानि सन्धिषु॥ ना० शा० १९/१०३

२ सा० द० ६/११८

३ ना० द०, पृष्ठ १६८।

४ लाज एण्ड प्रेक्टिस आव स० ड्रा०, पृष्ठ १५१।

५ ना० शा०, १९/१०४-१०७

६ दश० २/४७; सा० द० ६/१२२-२३

इन वृत्तियो मे भी प्रत्येक के अनेक भेद है जो इस प्रकार है—

वृत्तियों के भेद—

वृत्ति नाम	भेद	
भारती	१. प्ररोरचना	
	२ वीथी	
(४)	३ प्रहसन	
	४ आमुख	
कैशिकी	१ नर्म	३ नर्मस्फोट
(४)	२ नर्मस्फिज	४ नर्म गर्भ
आरभटी	१. सक्षिप्ति	३ वस्तूत्थापन
(४)	२ सफेट	४ अवपात
सात्वती	१ सलापक	३ साघात्य
(४)	२ उत्थापक	४ परिवर्तक

नाट्य मे जो वृत्त दिखलाने योग्य नही होता उसे सूच्य कहा जाता है। यह सूच्य वृत्त भी ५ प्रकार का होता है—१ विष्कम्भक, २ प्रवेशक, ३ चूलिका, ४ अकावतार, और ५ अकमुख।

भरतमुनि आदि प्रमुख प्राचीन शास्त्रकारो एव साहित्यदर्पणकार आदि अर्वाचीन विद्वानो ने नाट्य मे ३६ प्रकार के नाट्यलक्षण स्वीकार किये है जो भरतमुनि के अनुसार निम्नाकित हैं[१]—

१ भूषण	१३ विशेषण	२५ दाक्षिण्य
२ अक्षर सघात	१४. गुणातिपात	२६ गर्हण
३ शोभा	१५ अतिशय	२७ अर्थापत्ति
४ उदाहरण	१६ तुल्यतर्क	२८ प्रसिद्धि
५ हेतु	१७ पदोच्चय	२९. पृच्छा
६ सशय	१८ दृष्ट	३० सारूप्य
७ दृष्टान्त	१९ उपदिष्ट	३१ मनोरथ
८ प्राप्ति	२० विचार	३२ लेश
९ अभिप्राय	२१ विपर्यय	३३. क्षोभ
१० निदर्शन	२२ भ्रश	३४ गुणकीर्तन

१ ना० शा०, १६/१-५.

११ निरुक्त	२३ अनुनय	३५ अनुक्त सिद्धि
१२ सिद्धि	२४ माला	३६ प्रियोक्ति

नाट्यशास्त्र मे इनका दूसरा नाम नाट्यविभूषण भी दिया गया है।[१]

सागरनन्दिन और विश्वनाथ ने ३६ नाट्य लक्षणो का निरूपण करने के पश्चात् ३३ नाट्यालकार पृथक् रूप मे स्वीकार किये है।[२] जो इस प्रकार है—

१ आशी.	१२ प्रोत्साहन	२३ परिहार
२ आक्रन्द	१३ आशसा	२४ उद्यम
३. अभिमान	१४ गर्व	२५ अहकार
४ कपट	१५ नीति	२६ गुणानुवाद
५ याचा	१६ आख्यान	२७ अध्यवसाय
६ प्रहर्ष	१७ विसर्प	२८ आश्रय
७. पश्चाताप	१८. उल्लेख	२९ युक्ति
८ प्रवर्तन	१९ उत्तेजन	३० अनुवृत्ति
९ स्पृहा	२० निवेदन	३१ साहाय्य
१० क्षोभ	२१ परीवाद	३२ अक्षमा
११ अर्थविशेषण	२२ उपपत्ति	३३ उत्कीर्त्तन

शारदातनय ने उपरिलिखित नाट्यालकारो की सख्या बढ़ाकर ५४ तक कर दी है।[३]

सम्वादात्मकता के आधार पर इतिवृत्त को सर्वश्राव्य, अश्राव्य, नियतश्राव्य तथा आकाशभाषित भेद से चार रूपो मे विभक्त कर सकते है। सर्वश्राव्य को प्रकाशम् तथा अश्राव्य को स्वगतम् सज्ञा दी गई है। नियतश्राव्य जनान्तिक एव अपवारित रूप दो प्रकार का होता है। आकाशभाषित एक ही पात्र आकाश की ओर मुख कर स्वय प्रश्न करता है और स्वय ही उत्तर दे लेता है। यह भी इतिवृत्त के लिए एक निर्धारित सरणि है।[४]

नाटिका के लिए जिन विशेष नियमो या रूढ़ियो का आरम्भ मे उल्लेख किया गया, वे तो प्रत्येक नाटिका मे सामान्यत. रहते ही है, क्योकि इनको आधार मानकर ही नाटिका को नाटक, प्रकरण, व्यायोग आदि दस रुपक भेदो एव त्रोटक, गोष्ठी आदि उपरूपको से पृथक् स्वीकार किया गया है। अत इन नियमो के

१ ना० शा०, १६/४२
२ ना० ल० र० कारिका १८७ व १८८ की वृत्ति; सा० द० ६/१९५-१९८.
३ स० ना० कला, पृष्ठ ६२।
४ दश० १/६३-६७

अतिरिक्त नाट्य के अन्य सामान्य इतिवृत्त आदि सम्बन्धी नियमो का नाटिका मे कहाँ तक प्रयोग होना चाहिए और कितने नियमो का किस नाटिका मे प्रयोग किया गया है इत्यादि का विचार कर लेना अपेक्षित है।

स्त्रीपात्र बाहुल्य एव श्रृगाररस की प्रधानता के कारण नाटिका की मृदु प्रकृति स्वाभाविक है अत नाटिका मे उन्ही नियमो का सन्निवेश किया जा सकता है जो उसकी मृदु प्रकृति मे बाधक न हो। सन्धियो के विषय मे साहित्यदर्पणकार का यह निर्देश विचारणीय है कि 'नाटिका मे विमर्श या अवमर्श सन्धि स्वल्प होती है।'[१]

आचार्य भरत ने विमर्श सन्धि का लक्षण करते हुए लिखा कि 'गर्भ सन्धि मे उद्भिन्न बीज जब विलोभन, क्रोध आदि विघ्नो से युक्त फलोन्मुख प्रतीत हो तो उसे विमर्श सन्धि कहते है।'[२] दशरूपककार,[३] नाट्यदर्पणकार[४] आदि ने भी इसी से मिलता जुलता लक्षण किया। स्वय साहित्यदर्पणकार ने विमर्श सन्धि की परिभाषा करते हुए कहा है कि 'जहाँ मुख्यफल का उपाय गर्भसन्धि की अपेक्षा अधिक उद्भिन्न हो किन्तु शापादि के द्वारा विघ्न युक्त हो जाय उसे विमर्श सधि कहते है।'[५]

साहित्यदर्पण की इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि विघ्न युक्तता विमर्श सन्धि का प्राण है। सभी नाटिकाओ के चतुर्थ अक मे प्राय इस प्रकार का द्वन्द्व वर्णित किया जाता है कि उसमे फलप्राप्ति मे कोई न कोई विघ्न अवश्य ही आ जाता है, जिसके कारण स्वत. ही विमर्श की स्थिति आ जाती है। नाट्य दर्पणकार का इस सम्बन्ध मे स्पष्ट कथन है—'विमृशति बलवदन्तराय हेतु सम्पात प्रत्यासन्नमपि साध्य प्रति सन्देग्धिनेताऽस्मिन्नाति विमर्शः। नियत फलाप्त्यवस्थया व्याप्तत्वेऽप्यस्य सन्धे सम्भावनानन्तर सन्देहस्याप्राप्तावपि च फल प्रति जनक विघातकयोस्तुल्य बलत्वात् सन्देहात्मकत्वम्।'[६]

प्राय कोतूहल को बढ़ाने और द्वन्द्व की उद्भावना के लिए इस सन्धि का प्रयोग नाट्यो मे होता ही है और उचित भी है, फिर साहित्यदर्पणकार का 'स्वल्पविमर्श' कहने का प्रयोजन विचारणीय है। ऐसा प्रतीत होता है कि विश्वनाथ स्वत समागत विघ्नो की अपेक्षा शाकुन्तल आदि के समान प्राय शापादि जन्य

---

१ सा० द० ६/२७२.

२ गर्भनिर्भिन्न बीजार्थो विलोभन कृतोऽपिवा।
क्रोध व्यसनजो वापि स विमर्श इति स्मृत॥ —ना० शा० १९/४२.

३ दश० १/४३

४ ना० द० (सू०) ४७।

५ सा० द० ६/७९-८०.

६ ना० द०, पृष्ठ ९९।

व्यवधान को ही प्रमुख मानते होगे और नाटिकाओ मे प्रायश इस प्रकार का विघ्न वर्णित न होने के कारण वे उसमे सन्धि का अभाव या स्वल्पता स्वीकार करते हो। इसीलिए सम्भवत उन्होने रत्नावली आदि नाटिकाओ का एक भी उदाहरण विमर्श सन्धि के अगो मे नही दिया।

इसके आधार पर यह भी नही कहा जा सकता कि वे इस सन्धि का नाटिका मे सर्वथा अभाव मानते है क्योकि उन्होने स्वविरचित प्रभावती नाटिका से प्रतिषेध नामक विमर्श सन्धि के अग का उदाहरण दिया है।[१] यथार्थ दृष्टि से तो साहित्यदर्पण का यह मत मान्य नही होना चाहिए और नाटिका मे विमर्श सन्धि स्वीकार करनी चाहिए।

नाट्यशास्त्रीय नियमो की विविधता और बाहुल्य को ध्यान मे रखते हुए यह सर्वथा असभव है कि समस्त नाटिकाओ की इन नियमो के परिप्रेक्ष्य मे समीक्षा की जा सके, अत कुछ नाटिकाओ को ही परीक्षित किया गया है।

रत्नावली प्रियदर्शिका—हर्ष की दोनो नाटिकाओ मे रत्नावली नाट्यशास्त्रीय नियमो की दृष्टि से अधिक सफल नाटिका है। प्रसिद्ध लक्षण ग्रन्थो दशरूपक और साहित्यदर्पण मे इसी के सर्वाधिक उदाहरण इस बात के प्रमाण है।

रत्नावली को नाटिका की श्रेणी मे लाने वाले तत्वो का विचार करने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि इसमे वे सभी रुढियॉ है जो एक नाटिका के लिए निश्चित की गई थी। जैसे इसमे—

"'नायक वत्सराज उदयन है जो प्रख्यात'[२] और धीरललित है। अत नाटकानुसारी है, इतिवृत्त जो कल्पित कथासग्रह—'कथा सरित् सागर' से लिया गया है, स्वय कल्पित होने के कारण प्रकरणानुसारी है। नायिकाएँ दो है, प्रथम ज्येष्ठा वासवदत्ता, जो राजा उदयन की विवाहिता पत्नी एव महारानी है, ईर्ष्यालु, मानिनी, क्रोधी किन्तु कुलीन नृप वशजा है।[३]

द्वितीया कन्या नायिका सिहलद्वीप के राजा की पुत्री है तथा अत्यन्त रूपवती, मुग्धा एव अन्तपुर की परिचारिका के रूप मे है। जिसके प्रथम दर्शन मे ही नायक आकृष्ट हो जाता है। यह देवी नायिका वासवदता की ममेरी बहिन है। नायक उदयन वासवदता के भय से डरता डरता सागरिका से प्रेम करता है।[४]

---

१ सा० द०, पृष्ठ १९४।

२ रत्ना० १/५.

३ यान्त्याऽऽभिजात्यान्निगूढो न लक्षितस्त्वया देव्याः कोपानुबन्धः भ्रूभगे सहसोद् गतेऽपि वदन ——प्रश्रय। —रत्ना० २/२१.

४ विदूषक (सभय दिशा वलोक्य) भो व अस्स मा एव उच्च मतेहिं कदावि कोवि देवीए एत्थ सचरदि। —रत्ना०, पृष्ठ १३८.

नाटिका मे सम्भोग श्रृगार अगी और कैशिकी वृत्ति के चारो अगो का क्रमश प्रयोग है। सम्पूर्ण नाटिका मे स्त्री पात्रो का बाहुल्य एव सागरिका प्राप्ति रूपी फल है।

चतुर्थ अक मे विमर्श सन्धि भी है जिसकी सम्यक् विवेचना आगे की जायेगी। नाटिका मे कुल चार अक एव नायक का नायिका से मिलन देवी नायिका के अधीन है। इस व्याख्यान से स्पष्ट है कि रत्नावली समस्त नाटिका रूढियो से समलकृत है।

अन्य नाट्य शास्त्रीय नियमो की दृष्टि से भी इसे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है क्योकि इसमे प्राय वे सभी नियम भी यथास्थान घटित हो जाते है जो लाक्षणिको ने इतिवृत्त व सन्ध्यग आदि के रूप मे निर्धारित किये है।

इतिवृत्त के विकास मे यथास्थान पाचो अर्थप्रकृतियो, पॉचो कार्यावस्थाओ व अगो सहित पॉचो सन्धियो का श्री हर्ष ने प्रयोग किया है।

प्रथम अक के 'द्वीपादन्यस्मादपि०[१] से लेकर 'प्रारम्भेऽस्मिन् स्वामिनो वृद्धि हेतौ०'[२] इत्यादि यौगन्धरायण के कथन तक बीज[३] नामक अर्थप्रकृति है जिसमे कवि ने नायक का नायिका सागरिका से विवाह सम्पन्न कराने के लिए सागरिका को अन्तपुर तक पहुँचाने रूप मूल उद्देश्य का साधक उपाय बीज रूप मे प्रस्तुत किया है तथा उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए कार्यारम्भ करने की उत्सुकता होने के कारण इसी मे आरम्भ नामक कार्यावस्था[४] भी है।

रत्नावली के प्रथम अक मे मुख नामिका सन्धि है।[५] क्योकि इसमे बीज का विकास, उद्देश्य का परिचय और फल के लिए प्रोत्साहन आदि का वर्णन है।

मुखसन्धि के १२ अगो मे से अनेक अग भी रत्नावली नाटिका मे विद्यमान है। यह स्पष्ट किया जा चुका है कि एक ही नाट्य मे समस्त सन्ध्यगो का होना आवश्यक नही। प्रस्तावना के पश्चात् यौगन्धरायण के कथन मे[६] उपक्षेप नामक सन्ध्यग है।[७] अनगोऽयमनगत्वम्०[८] मे बिलोभन[९] नामक मुखसन्धि का अग है। 'अस्तापास्त समस्त०'[१०] इत्यादि पद्य मे भी विलोभन सन्ध्यग हो सकता है।

---

१ रत्ना० १/६.
२ वही १/७.
३ स्तोकोद्दिष्टः फलप्रान्तो हेतुर्बीज प्ररोहणात्। —ना० द० सू० २६.
४ भवेदारम्भ औत्सुक्यं यन्मुख्यफल सिद्धये। —सा० द० ६/७१
५ मुख प्रधानवृत्तांशी बीजोत्पत्ति रसाश्रयः। —ना० द० (सू०) ४४.
६ रत्ना०, पृष्ठ १० (एवमेतत् क. सन्देहः । —युक्तमेवानुष्ठितम्)
७ काव्यार्थस्य समुत्पत्तिरुपक्षेप इति स्मृतः। —सा० द० ६/८३.
८ रत्ना० १/२२.
९ गुणाख्यानं विलोभनम्। —सा० द० ६/८४
१० रत्ना०, १/२३

सागरिका के इस कथन 'कध पच्चक्खो एव्व भवअ कुसुमाउ हो इह पूआ पडिच्छदि। अम्हाण तादस्स अन्ते उरे उण चित्त गदो अच्ची अदि।[१] मे परिभावना नामक अग है।[२] सागरिका के इस कथन के पश्चात् ही वैतालिको द्वारा गाये गये इस पद्य 'अस्तापास्त समस्त0'[३] को सुन कर सागरिका का यह कथन कि 'कध अअ सो राआ उदअणो जस्स अह ता देण दिण्णा।' सागरिका के प्रति अनुराग को सूचित करता है जिससे कथा का विकास होने से बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति है।[४] द्वितीय अक के आरम्भ मे ही सागरिका नायक दर्शन से कामाविष्ट होकर जब उसको पुन दर्शन नही पाती है तो वह अपने मन बहलाव के लिये चित्र बनाती है—'तस्स जणस्स अण्णो दसणो वाओ णत्थित्ति जधा तधा आलिहिअ ण पेक्खिस्स।'[५] सागरिका द्वारा अति शीघ्रता मे लिखित यह चित्र ही आगे दोनो के परस्पर मिलन का हेतु बनता है अत फल प्राप्ति के लिये चित्र लेखन एक प्रयत्न है, जिससे यहाँ प्रयत्न नामक कार्यावस्था है।[६]

द्वितीय अक मे प्रतिमुख नामक सन्धि है।[७] क्योकि इसमे बीज का उद्‌भेद कही लक्षित व कही अलक्षित होता है। रत्नावली के प्रथम अक मे बसन्त आदि वर्णन से लक्ष्य अलक्षित हो गया था, वह पुन सुसगता के द्वारा सागरिका और राजा को मिलाने की योजना[८] से द्वितीय अक मे उद्‌भिन्न हो गया है। ध्यान रहे कि साहित्यदर्पणकार ने अर्थप्रकृति और कार्यावस्था के परस्पर मिलन मे सन्धि की स्थिति स्वीकार की है,[९] तदनुसार यहाँ बिन्दु और प्रयत्न की भी स्थिति है जिसका वर्णन किया जा चुका है।

प्रतिमुख सन्धि के कुछ अग भी इसमे उपन्यस्त किये गये है।

सागरिका नायक के वियोग मे कामसन्तप्त है और अब उस सन्ताप की शान्ति का उपाय केवल अपनी मृत्यु मानती है।[१०] अत यहाँ नायक के प्रति अति अनुराग से रतीच्छा के प्रकट होने से विलास नामक अग है।[११] विदूषक

---

१ रत्ना०, पृष्ठ ३६.

२ कुतूहलोतरा वाचः प्रोक्ता तु परिभावना। —सा० द० ६/८६.

३ रत्ना० १/२३

४ अवान्तरार्थ विच्छेदे विन्दुरच्छेद कारणम्।, —सा० द० ६/६६.

५ रत्ना०, पृष्ठ ४४।

६ प्रयत्नो व्यावृतो त्वरा। —ना० द० (सू०) ३९;
प्रयत्नस्तु फलावाप्तौ व्यापारोऽति त्वरान्वित। —सा० द० ६/७२.

७ फल प्रधानोपायस्य मुखसन्धि निवेशिनः लक्ष्यालक्ष्य इवोद्‌भेदो यत्र प्रतिमुखं च तत्।—सा० द० ६/७७-७८.

८ रत्ना०, पृष्ठ ७३, ७४।

९ सा० द० ६/७४

१० रत्ना० २/९.

११ समीहा रति भोगार्था विलास इति कथ्यते। —सा० द० ६/८९.

के द्वारा सागरिका और सुसगता रचित चित्रफलक को राजा को दिखलाते समय[१] उत्तर प्रत्युत्तर मे प्रगमन नामक सन्ध्यग है।[२] साहित्यदर्पणकार ने परिहासात्मक नर्म[३] सन्ध्यग का उदाहरण रत्नावली का यह अश दिया है—'सुसगता-सहिजस्स किदे तुम आअदा सो अअ दे पुरदो चिट्ठदि। सागरिका-कस्स किदे अह आ अदा। सुसगता-अल अण्ण सकिदेण ण चित्तफल अस्स।[४] नाट्यदर्पण मे उदाहृत 'सारिका के कथन को सुनकर विदूषक का यह कथन कि'—भो व अस्स, एहि। पलाअम्ह। राजा किमर्थम् ? विदूषक-भो एदस्सि बउल पाअवे कोवि भूदो पडिवसदि। यदि मे न यत्ति यसि ता अग्गदो भविय सय य्येव आयन्नेहि।[५] अत्यन्त स्पृहणीय है।

साहित्यदर्पण और नाट्यदर्पणकार ने प्रतिमुख सन्धि का एक अग तापन[६] भी माना है जो नाट्यशास्त्र मे नही है। रत्नावली मे 'दुल्लह जण अणुरा ओ०' इत्यादि पद्य मे[७] तापन नामक अग है।

परिहास जन्य श्रुति को नर्मद्युति कहा जाता है।[८] इसका उदाहरण नायक के पास सागरिका को पहुँचाने पर भी जब वह लज्जावश राजा की ओर उन्मुख नही होती तो सुसगता कहती है—'सहि अदि णिट्ठुरा दाणि सि तुम जा एत्व भट्टिणा हत्थे व लम्बिदा वि कोवण मुचेसि'[९] यह है।

नाट्यदर्पणकार ने नर्मद्युति की इससे भिन्न परिभाषा देते हुए कहा कि—'दोषो को छिपाने के लिए हास्ययुक्त वचनो का विन्यास नर्मद्युति कहलाता है, परिहास मे प्रयुक्त नही है।[१०]

तदनुसार रत्नावली का वह अश उदाहरण है जहाँ 'विदूषक सारिका की बाणी सुनकर चतुर्वेदी ब्राह्मण की सज्ञा देता है तो राजा उसकी मूर्खता दोष को छिपाने के लिए हसी मे कहता है—'भवन्त महाब्राह्मण मुक्त्वा कोऽन्य एव ऋचामभिज्ञ।'[११] इस पर नाट्यदर्पणकार की टिप्पणी है—'अत्र मौर्ख्य दोष छादयितु यत् विदूषकेणोक्त तद्राज्ञो हास्य हेतुत्वात् नर्मद्युति।'[१२]

---

१ रत्ना०, पृष्ठ ६४, ६६।
२ प्रगमन वाक्यं स्यादुत्तरोत्तरम्। सा० द० ६/९२.
३ सा० द० ६/९० की वृत्ति।
४ रत्ना०, पृष्ठ ७४।
५ ना० द० (सू०) ६८ एवं उसकी वृत्ति।
६ उपायादर्शनं यत्तु तापन नाम तद्भवेत्। —सा० द० ६/९०.
७ रत्ना० २/१.
८ द्युतिस्तु परिहासजा नर्मद्युतिः।—सा० द० ६/९१।
९ रत्ना०, पृष्ठ ८०।
१० ना० द० (सू०) ६९.
११ रत्ना०, पृष्ठ ६२।
१२ ना० द० पृ. १३६

विदूषक के उच्च हास्य और हस्तताल से सारिका के उड जाने पर राजा के क्रुद्ध वाक्य को सुनकर विदूषक अनुनयपूर्वक कहता है—'भो मा कुप्य एषा हि कदली घरन्तर गदा'[१] अत क्रुद्ध राजा के प्रति अनुनय विनय करने से यहाँ पर्युपासन सन्ध्यग है।[२]

अनुरागातिशय से जब कोई व्यक्ति विशेष कथन करता है तो उसे पुष्प नामक सन्ध्यग कहा जाता है।[३] रत्नावली मे नायक सागरिका के प्रति अत्यन्त रागवान् होकर कहता है—

'श्रीरेषा पाणिरप्यस्या पारिजातस्य पल्लव।
कुतोऽन्यथा स्रवत्येष स्वेदच्छद्मामृतद्रव.॥'[४]

इस कथन मे पुष्प नामक सन्ध्यग है।

देवी की परिचारिका सुसगता राजा के समक्ष उसके चित्रावलोकन की बात को देवी नायिका से बता देने की बात कहती है[५] जो राजा के लिए अप्रिय होने के कारण अत्यन्त कठोर है। अत यहाँ कठोरतापूर्ण वचनोपन्यासात्मक बज्र[६] नामक सन्ध्यग है।

इष्टवस्तु के नष्ट हो जाने पर पुन उसका अन्वेषण परिसर्प सन्ध्यग होता है।[७] जो रत्नावली मे 'नायक के समीप से नायिका के चली जाने की सूचना पर नायक के इस कथन मे स्पष्ट है—क्वासौ ? क्वासौ ?[८] वस्तुत यहाँ सागरिका का पुनरन्वेषण करना ही क्वासौ से अभिप्रेत है।

लक्षण मे 'नष्ट' शब्द का प्रयोग अदर्शन है विनाश या मृत्यु नही। अन्यथा उसका पुनरन्वेषण कैसे सम्भव होगा।

उपन्यास नामक प्रतिमुख सन्धि के अग की स्वरूपस्थिति मे नाट्यशास्त्र और साहित्य- दर्पण मे पर्याप्त अन्तर है। नाट्यशास्त्र के अनुसार इसकी परिभाषा है—

'उपपत्ति कृतो योऽर्थ उपन्यासस्तु स स्मृत.।'[९]

जबकि साहित्यदर्पण के अनुसार—उपन्यास प्रसादनम्[१०] है। इन दोनो ही परिभाषाओ के उदाहरण रत्नावली मे प्राप्त हो जाते है।

---

१ रत्ना०, पृष्ठ ६४।
२ सा० द० ६/९२
३ सा० द० ६/९३
४ रत्ना० २/१८
५ रत्ना(), पृष्ठ 74 (भट्टा ण केवल तुम अऊ चित्तफल एण सह सव्वो वुत्तत्तो गए विण्णदो। ता देवीए गदुऊ णिवेदहस्स)
६ वज्र प्रत्यक्ष निष्ठुरम्। —ना० द० (सू०) ७३,
प्रत्यक्ष निष्ठुर वज्रम्। —सा० द० ६/९३.
७ इष्ट नष्टानुसरण परिसर्प इति स्मृत.। —ना० शा० १९/७४.
८ रत्ना०, पृष्ठ ७६।
९ ना० शा० १९/७९.
१० सा० दा० ६/९३

'सुसगता देवी परिचारिका के द्वारा चित्रफलक वृत्तान्त को देवी से कह देने की बात जानकर विदूषक राजा से कहता है कि 'भो वअस्स सव्व सम्भावीअदि। मुहुरा क्खु एसा गव्भदासी। ता पारितोसिएण सपीणेहि ण।'[१]

यहाँ विदूषकोक्ति मे युक्तियुक्तता होने के कारण नाट्यशास्त्र के अनुसार उपन्यास सन्ध्यग है। साहित्यदर्पण के अनुसार सुसगता के निम्नलिखित कथन मे यह उपन्यास अग है—'सुसगता—भट्टुण अल सकाए। मए वि भट्टिणीए पसादेण कीलिद जेव्व एदिहि । ता कि कण्णभरणेण । अदो वि मे गरुअरो पसादो एसो, ज तए अह एत्थ आलिहिदत्ति कुविदा मे पियसही साअरिआ। एसा जेव्व पसादीअदु।'[२]

'वर्णसहार' नामक प्रतिमुख सन्धि का लक्षण करते समय भरत, धनजय और विश्वनाथ ने वर्णसहार शब्द का अर्थ ब्राह्मण-क्षत्रिय, वैश्यादि चारो वर्णो का सम्मिलन माना है।[३] किन्तु नाटिकाओ मे इस प्रकार के अर्थ को औचित्यपूर्ण नही माना जा सकता। चारो वर्ण किसी कार्य से एकत्र सम्मिलित हो यह नाट्य मे अरुचिकर होगा। सम्भवत इसीलिये नाट्यदर्पणकार ने इससे भिन्न लक्षण करते हुए कहा—'पात्रौघो वर्णसहृति'।[४] यहाँ वर्ण का अभिप्राय अनेक पात्र है और उनका एक स्थान पर कार्यविशेष से एकत्र होना ही वर्णसहार है। यह उचित प्रतीत होता है।

रत्नावली मे सुसगता के प्रयत्न से सागरिका का राजा से मिलन कराने पर राजा, सागरिका, विदूषक और सुसगता इन चार पात्रो की एक साथ उपस्थिति मे यह वर्णसहार नामक सन्ध्यग घटित होता है। जैसा कि नाट्यदर्पणकार ने स्वत कहा—'अत्र राजा—सागरिका—विदूषक्—सुसगतानामेकत्र योजनम्'।[५]

धनजय ने हितकर वस्तु की प्राप्ति मे रुकावट पड़ने को निरोधन नामक सन्ध्यग माना है[६] किन्तु नाट्यशास्त्र मे व्यसन सम्प्राप्ति[७] को निरोधन कहा गया। साहित्य दर्पणकार ने यद्यपि नाट्यशास्त्रीय लक्षण स्वीकार किया किन्तु उन्होने[८] इसके नाम मे परिवर्तन कर निरोधन के स्थान पर विरोध नाम दिया। साहित्यदर्पणकार से पहले सागरनन्दिन ने इसे विरोध की सज्ञा दी थी।[९]

---

१ रत्ना, पृष्ठ ७६।
२ सा० द०, पृष्ठ १८९।
३ ना० शा० १९/८०; दश० १/३५; सा० द० ६/९४
४ ना० द० (सू०) ६७।
५ ना० द०, पृष्ठ १३१-१३२।
६ हितरोधो निरोधनम्। —दश० १/३४.
७ ना० शा० १९/७७
८ सा० द० ६/९२
९ ना० ल० र०, पृष्ठ ६९।

'नायक नायिका से गुप्त रुप मे एकान्त मे मिलता है किन्तु विदूषक की मूर्खता से वासवदता का नाम लेते ही नायिका के चली जाने पर' हितावरोध होने से वह कहता है—

'प्राप्ता कथमपि दैवात् कण्ठमनीतैव सा प्रकट रागा।
रत्नावलीव कान्ता मम हस्ताद् भ्रंशिता भवता॥[१]

अत यहाँ निरोधन नामक प्रतिमुख सन्ध्यग है।[२]

तीसरी और चौथी अर्थ प्रकृतियाँ पताका और प्रकरी है जो प्रासगिक इतिवृत्त कहलाती है। नाटिका के अत्यन्त लघु इतिवृत्त मे इन अर्थप्रकृतियो का सयोजन सम्भव नही इसीलिए नाटिका मे इनका अभाव दोष नही।[३] फिर भी रत्नावली के चतुर्थ अक मे 'विजय वर्मा द्वारा वर्णित रुमण्वान् सेनापति द्वारा कोसलो का उच्छेद करना' प्रकरी है।[४] क्योकि इसमे नायक के उत्कर्ष से सम्बन्धित कथाश है।

तृतीय अक मे प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था है क्योकि इसमे नायक नायिका का वेश परिवर्तन द्वारा मिलन मे वासवदता की उपस्थिति से विघ्न आता है जिससे नायक निराश होता है किन्तु लतापाश से मुक्त करने मे अचानक वासवदता वेश मे प्रियासमागम से प्रसन्न नायक कहता है—'सखे इयमनभ्रा वृष्टि' किन्तु विदूषक के द्वारा आशका प्रकट करने पर नायक को भी उसकी प्राप्ति मे आशका होती है।[५]

इस अक मे गर्भ सन्धि है।[६] क्योकि इसमे सागरिका और नायक उदयन के मिलन मे कभी विघ्न आते है तो कभी नायिका को बन्धन मे डाल देने की बात से अत्यन्त दुखी राजा उसकी मुक्ति का उपाय सोचता है और अन्त मे देवी नायिका को प्रसन्न करना ही एकमात्र उपाय ढूढ़ पाता है जिससे कि वह अपनी प्रिया सागरिका को मुक्त करा सके।

प्राय शास्त्रकारो ने गर्भसन्धि के १३ अग माने है किन्तु धनजय १२ भेद ही मानने के पक्ष मे है।

---

१ रत्ना० २२१९

२ वत्सराजस्य सागरिका समागमरुप हितस्य वासवदता प्रवेश सूचकेन विदूषक वचसा निरोधान् निरोधनमिति।—दश०, पृष्ठ ३३३.

३ गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषण मुहु।
द्वादशांग पताका स्यान्न वा स्यात्प्राप्ति सभव। —दश० १/३६.

४ रत्ना०, पृष्ठ १४०, १४२.

५ वही, पृष्ठ १२२।

६ उद्भेदस्तस्य बीजस्य प्राप्ति रप्राप्तिरेव वा।
पुन श्चान्वेषण यत्र स गर्भ इति संज्ञितः॥ —ना० शा० १९/४१.

नाट्यदर्पणकार यद्यपि इस सन्धि के १३ अग मानने वालो मे है किन्तु उन्होने ८ और ५ अगो के दो वर्गो का निर्धारण कर प्रथम को गौण और द्वितीय को प्रधान अग की सज्ञा दी।[१]

गौण और प्रधान शब्दो को स्पष्ट करते हुए उन्होने लिखा कि—'गुणत:' इति गुणभावेन, गुणमुपकारमपेक्ष्य वा, तेन फलोद्भेद दर्शनार्थ सग्रहोऽवश्य निबन्धनीय। आक्षेपादीनि तु मुख्यानि।'[२]

इस व्याख्यान के अनुसार गर्भसन्धि के आक्षेप, अधिबल, मार्ग, असत्याहरण और तोटक इन पॉच अगो का प्रयोग नाट्य मे अनिवार्य है शेष ८ का भी आवश्यकतानुसार प्रयोग करना चाहिए।

'अभूताहरण या असत्याहरण[३] कपटयुक्त कथन है।[४] नाट्यशास्त्र के अनुसार कपटोक्ति अधिबल नामक सन्ध्यग है।[५]

विदूषक की वासवदता के वेष मे सागरिका को राजा से मिलाने की योजना सुनकर देवी परिचारिका काचनमाला की निम्नाकित कपटोक्ति मे यह सन्ध्यग है—'साहु रे अमच्च वसन्तअ साहु। अदि सहदो तुए अमच्च जो अन्धरा अणो वि इमाए सन्धि विग्गह चिन्ताए'[६] तात्विक अर्थ कथनात्मक मार्ग[७] नामक सन्ध्यग-विदूषक के द्वारा नायक से सागरिका के वासवदता के रूप मे मिलने की यथार्थ स्थिति के कथन मे है।[८]

नायक के द्वारा चचल मनस्थिति के तर्कयुक्त कथन मे वितर्कयुक्त वाक्य कथनात्मक रूपनामक अग है।[९]

नाट्यदर्पणकार ने 'रूप' की परिभाषा 'रूप नानार्थ सशय·'[१०] लिखकर अनेक रुपो मे निश्चय न कर पाना ही रुप सन्ध्यग माना है। उनके अनुसार रत्नावली के 'प्रणयविशदा दृष्टि वक्त्रे ददाति'[११] इत्यादि नायक कथन के पश्चात्

१ सग्रहो रुपममुना प्रार्थनोदाहृति· क्रम·।
उद्वेगो विप्लवश्चैतद् गुणत· कार्यमष्टकम्।
आक्षेपोऽधिबलं मार्गो सत्याहरण तोटके॥
पंचैतानि प्रधानानि गर्भेऽङ्गानि त्रयोदश॥ —ना० द० (सू०) ७६

२ ना० द० सू० ७६ की वृत्ति

३ अभूताहरण के लिये नाट्यदर्पण मे असत्याहरण नाम दिया गया है। —ना० द० (सू०) ८८.

४ अभूताहरण छद्म।—दश० १/३८.

५ कपटेनाभिसंन्धान ब्रुवतेऽधिबल बुधा। —ना० शा० १९/८६.

६ रत्ना०, पृष्ठ ८८।

७ मार्गस्तत्वार्थ कीर्तनम्। —दश० १/३८.

८ रत्ना०, पृष्ठ ९६।

९ रूपं वाक्यं वितर्कवत्। —सा. द. ६/९६

१० ना० द० (सू०) ७८.

११ रत्ना० ३/९.

उसका यह कहना 'अये, कथ चिरयति वसन्तक । तत्कि नु खलु विदित स्यादय वृत्तान्तो देव्या'[१] मे यह सन्ध्यग है क्योकि यहाँ नायिका समागम मे देवी की शका के वितर्क से निश्चय नही हो सका।

'उदाहृति या उदाहरण' उत्कर्षयुक्त वचन को कहते है।[२] उत्कर्ष शब्द की व्याख्या नाट्यदर्पण के अनुसार इस प्रकार है—'लोक प्रसिद्ध वस्त्वपेक्षया य समुत्कर्ष समुत्कृष्टोऽर्थ स उत्कर्षाहरणादुदाहृति ।'[३] उन्होने इसका उदाहरण रत्नावली का मनश्चल प्रकृत्यैव0 इत्यादि पद्य देते हुए कहा कि—'अत्रेतर धन्विभ्यो मन्मथस्य युगपत् सर्वै शरै स्वभाव चपल दुर्लक्ष मनोवेगेन समुत्कर्ष'[४] इससे यह उदाहृति का उदाहरण उचित है, किन्तु आचार्य भरत के लक्षण को ध्यान मे रखने से यह सगत नही है।

आचार्य भरत ने 'सातिशय वाक्य को उदाहरण' की सज्ञा दी है।[५] सातिशय शब्द का अर्थ औद्धत्यपूर्ण अतिशयोक्तिमय कथन होता है, यही कारण है कि दर्पणकार को इस नाटिका मे इस सन्ध्यग का उदाहरण नही मिला।

नाट्यशास्त्र और साहित्यदर्पण मे क्रम नामक गर्भसन्धि के अग का लक्षण है—'भाव अर्थात् अभिलाषा का यथार्थ ज्ञान'[६] जबकि दशरूपककार अभिलषित वस्तु की प्राप्ति को क्रम[७] मान कर रत्नावली का निम्नलिखित अश उदाहरण रूप मे प्रस्तुत करते है—

तीव्र स्मरसतापो न तथादौ बाधते यथाऽऽसन्ने।
तपति प्रावृषि नितरामभ्यर्णजलागमो दिवस ॥[८]

वस्तुत यहाँ अभिलषित वस्तु अभी प्राप्त नही हुई है, प्राप्ति के अति समीप की स्थिति का चित्रण है। अत दशरुपक के अनुसार भी यह उदाहरण समीचीन नही है यद्यपि धनजय ने क्रम सन्ध्यग के लक्षण के साथ 'भावज्ञानमथापरे' जोडकर आचार्य भरत की ओर सकेत किया है।

नाट्यदर्पण मे क्रम का लक्षण है—'क्रमो भावस्य निर्णय'[९] भाव के दो अर्थ हैं—'पराभिप्राय एव भाव्यमान अर्थ। 'प्रतिभा आदि के माध्यम से यथा स्थिति का ज्ञान प्राप्त करना ही नाट्यदर्पण के अनुसार क्रम है।[१०] जैसे रत्नावली

---

१ वही, पृष्ठ १०६।
२ उदाहरणमुत्कर्षयुक्त वचन मुच्यते। —सा० द० ६/९७.
३ ना० द०, पृष्ठ १५१.
४ वही, पृष्ठ १५१।
५ यत्तु सातिशय वाक्य तदुदाहरण स्मृतम्। —ना० शा० १९/८२
६ भावतत्वोपलब्धिस्तु क्रम इत्यभिधीयते। —ना० शा० १९/८३, सा० द० ६/९७
७ क्रमः सचिन्त्यमानाप्तिः। —दश0 1/39.
८ रत्ना0 3/10.
९ ना0 द0 (सू0) 82।
१० वही, पृष्ठ 151 (भावस्थ पराभिप्रायस्य अथवा भाव्य मानस्यार्थस्य अह प्रतिभादिव शान्तिर्णयो यथावस्थित रूप निश्चयः क्रम)

मे नायक, नायिका की विकलता का वर्णन करते समय उसकी समस्त क्रियाओ का उल्लेख करता है।[१]

विभिन्न शास्त्रकारो के द्वारा एक ही सन्ध्यग के भिन्न-भिन्न लक्षण करने पर भी प्रत्येक के अनुसार प्राय उदाहरणो का रत्नावली मे उपलब्ध हो जाना कवि की नाट्यशास्त्रिय नियमो के प्रति अतिशय सचेष्टता का परिचायक है।

वासवदत्ता के वेश मे सागरिका की राजा के पास आने की योजना विदूषक के मुख से सुनकर नायक स्वर्ण कटक के द्वारा उसे सन्तुष्ट करता है[२] अत यहाँ साम दानोक्तिरूप सग्रह नामक सन्ध्यग है।[३]

चिह्न विशेष से किसी बात का अनुमान लगाना अनुमा या अनुमान नामक सन्ध्यग है। विदूषक के कथन से राजा के द्वारा वासवदता के प्राणत्याग का अनुमान लगाना इसका उदाहरण है।[४]

नाट्यशास्त्र मे रति हर्षोत्सवादि के लिए की गई अभ्यर्थना प्रार्थना नामक एक सन्ध्यग है[५] जिसको विश्वनाथ ने भी स्वीकार किया है।[६] जो रत्नावली मे राजा के द्वारा सागरिका के लिए 'शीताशुर्मुखमुत्पले०'[७] इत्यादि स्थल मे घटित होता है।

क्रोधपूर्ण वचनोपन्यासात्मक तोटक सन्ध्यग[८] का उदाहरण रत्नावली मे वासवदत्ता वेश मे सागरिका के नायक के साथ आलिगन को देखकर देवी नायिका द्वारा क्रोधपूर्वक यह कथन करना 'आर्यपुत्र युक्तमेतत् सदृशमेतत्'[९] है।

गर्भसन्धि के १३ अगो मे प्रायश सभी अगो का प्रयोग इस नाटिका मे उपलब्ध होने से इसकी नाट्यशास्त्रीय महत्ता स्वत· सिद्ध है। यही कारण है कि लक्षणंकारो ने इसी नाटिका के प्रायश उदाहरण चुने है।

नाट्य मे इतिवृत्त के अपेक्षित ५ विभागो मे तृतीय और चतुर्थ अर्थप्रकृतियॉ क्रमश पताका और प्रकरी है। यह पूर्वत स्पष्ट किया जा चुका है कि ये दोनो

---

१ · ह्रिया सर्वस्यासौ हरति विदितास्मीति वदन
द्वयोदृष्टाऽऽलाप कलयति कथामात्मविषयाम्।
सखीषु स्मेरासु प्रकटयति वैलक्ष्यमधिक
प्रिया प्रायेणास्ते हृदयनिहितातंकविधुरा। —रत्ना० ३/४.

२ रत्ना०, पृष्ठ ९६।

३ सग्रह. सामदानोक्ति·। —दश० १/४०.

४ अभ्यूहो लिंगतोऽनुमा। —दश० १/४०.

५ ना० शा० १९/८४.

६ रति हर्षोत्सवानां तु प्रार्थन भवेत्। —सा० द० ६/९८.

७ रत्ना० ३/११.

८ सरब्ध तोटकं वचः।—दश० १/४०.

९ रत्ना०, पृष्ठ १२४, १२६।

अर्थप्रकृतियाँ वस्तुत प्रासगिक इतिवृत्त रुप होती है। रत्नावली मे यद्यपि पताका नही है फिर भी चतुर्थ अक मे—'रुमण्वान द्वारा कोशलेन्द्र को मार कर नायक के राज्य का विस्तार करने की अल्प अवान्तर कथा मे प्रकरी[१] नामक अर्थ प्रकृति है।

चतुर्थ अक मे नियताप्ति नामक कार्यावस्था है। क्योकि देवी नायिका के द्वारा सागरिका और विदूषक को बन्धन से बॉध लेने पर राजा को देवी प्रसादन के अतिरिक्त अन्य कोई भी उपाय नही सूझता। नायक को विश्वास है कि देवी की प्रसन्नता से निश्चयेन सागरिका की उपलब्धि हो सकेगी। इस सम्भावना के आधार पर ही दशरूपक एव दर्पणकार, दोनो ने इस अश मे नियताप्ति नामक कार्यावस्था स्वीकार की है।[२]

वस्तुत नियताप्ति के लक्षणानुसार 'विघ्नो के निवारण हो जाने पर फल प्राप्ति की निश्चयात्मकता' ही नियताप्ति है तदनुसार यह साहित्यदर्पण और दशरूपक मे उदाहृत रत्नावली का उदाहरण समीचीन नही।

चतुर्थ अक मे ऐन्द्रजालिक प्रदर्शन मे जब आग से सागरिका को निकालकर राजा वासवदत्ता के समक्ष कहता है—'देवि इय त्वद्वचनादस्माभि रिहानीता सागरिका'[३] तो यहाँ राजा के वचनो मे देवी नायिका के प्रति जो विनम्र निवेदन व्यक्त हुआ है उससे राजा को यह आशा है कि रानी प्रसन्न हो जायेगी और सागरिका की उसे उपलब्धि हो सकेगी।

वस्तुत· यहाँ समस्त विघ्नो के विनाश हो जाने पर तथा सागरिका को आग से बचाकर रानी के आदेश का पालन कर देने से रानी के प्रसन्न हो जाने पर नायक को नायिका प्राप्ति रूप फल के प्रति पूर्ण विश्वास जाग्रत होता है, अत यही नियताप्ति का उदाहरण समीचीन प्रतीत होता है।

धनजय ने 'रत्नावली के चतुर्थ अक मे ऐन्द्रजालिक की घटना से जब गडबड़ी मचती है तो वहाँ तक विमर्श या अवमर्श नामक चतुर्थ सधि स्वीकार की है।[४] इसमे वासवदत्ता के निर्देश से निर्विघ्न रत्नावली को बचाने का कार्य विमर्शात्मक होने से विमर्श सन्धि है।[५]

---

१ फलं प्रकल्प्यते यस्या· परार्थं केवल बुधै:।
अनुबन्ध विहीन स्यात् प्रकरीमिति निर्दिशेत्।। —ना० शा० १९/२६

२ अपाया भावत: प्राप्ति नियताप्ति. सुनिश्चिता।। —दश० १/२१.

३ रत्ना० पृष्ठ १६४।

४ क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्।
गर्भनिर्भिन्न बीजार्थ सोऽवमर्शोऽङ्गसग्रह.।। —दश० १/३९

५ यथा रत्नावल्यां चतुर्थेऽङ्के अग्निविद्रवपर्यन्तो वासवदता प्रसक्तया निरुपाय रत्नावली प्राप्त्यवमायात्मा विमर्शो दर्शित। —दश० १/३९ की धनिक वृत्ति

ध्यान रहे कि यहाँ नियताप्ति नामक कार्यावस्था और प्रकरी नामक अर्थप्रकृति भी है। धनजय ने इस विमर्श सन्धि के १३ अगो मे से ८ के तथा नाट्यदर्पणकार ने ५ उदाहरण रत्नावली से दिये है।

एक पात्र के द्वारा किसी अन्य पात्र के दोषो का कथन करना 'अपवाद' नामक विमर्श सन्ध्यग[१] होता है। जैसे रत्नावली मे सुसगता मुख से सागरिका को उज्जयिनी भेज देने के प्रवाद को सुनकर विदूषक का 'अतिणिग्घिण क्खुदेवीए किद'[२] यह कथन है। इसी प्रकार नायक का यह कथन 'अहो निरनुरोधा मयि देवी'[३] भी इसका उदाहरण है, जहाँ रानी की अप्रशसा है।

चतुर्थ अक मे आग लगने पर वासवदता के द्वारा सागरिका के बन्धन की बात बतलाने[४] मे विद्रव सन्ध्यग है।[५] नाट्यदर्पणकार इसे विरोध नाम से मानते है।[६] विरोध का शान्त हो जाना शक्ति अग होता है।[७] रत्नावली मे वासवदत्ता के क्रोध के शान्त हो जाने का कथन करने मे यह घटित होता है।[८]

अपने से श्रेष्ठ पुरूषो के गुणो का कथन करना प्रसग नामक सन्ध्यग है।[९] जैसे वसुभूति कचुकी के द्वारा सिहलेश्वर की यह कहकर प्रशसा करना कि वासवदत्ता के लावणक मे जल जाने की सूचना से ही उसने अपनी पुत्री रत्नावली को आपके लिए दे दिया था।[१०]

एक पात्र के द्वारा दूसरे का अपमान करना अवमानन[११] तथा अपनी शक्ति का स्वत कथन करना व्यवसाय सन्ध्यग[१२] होते है। जो रत्नावली मे राजा के इस कथन मे 'अहो निरनुरोधा मयि देवी'[१३] तथा ऐन्द्रजालिक के स्वसामर्थ्य कथन मे क्रमश है।[१४]

---

१ दोषप्रख्यापवाद. स्यात्। —दश० १/४५.
२ रत्ना(), पृष्ठ 130।
३ वही, पृष्ठ 138।
४ रत्ना०, पृष्ठ १५८।
५ विद्रवो बधबन्धादि:। —दश० १/४५
६ ना० द० (सू०) ९८।
७ विरोध शमन शक्ति:। —दश० १/४६.
८ रत्ना० ४/१
९ गुरु कीतन प्रसंग। —दश० १/४६.
१० रत्ना०, पृष्ठ १५६.
११ छलन चावमाननम्। —दश० १/४६.
१२ व्यवसाय· स्व शक्तयुक्ति·। —दश० १/४७.
१३ रत्ना०, पृष्ठ १३८।
१४ रत्ना०, पृष्ठ ४।८

योगन्धरायण के द्वारा 'देव्या मद्वचनाद्०'[१] इत्यादि अश मे की गई आत्मश्लाघा मे विकत्थना नामक अग है।[२]

दशरूपक मे 'आदान कार्य सग्रह'[३] लिखकर रत्नावली का वह अश इसका उदाहरण रुप मे दिया गया है जहाँ सागरिका अपने चारो ओर प्रज्ज्वलित अग्नि देखकर उसमे अपनी प्राणाहुति से समस्त दु खो की समाप्ति रूप कार्य की पूर्णता मानती है।[४]

वस्तुत दशरूपक मे उदाहृत रत्नावली का यह अश इसका सही उदाहरण नही है। नाट्यदर्पणकार ने इस अग का नाम छादन रखकर यही उदाहरण दिया है।[५] जिससे सागरिका अपने अपमान का परिमार्जन अग्नि के द्वारा मानती है, अत इस रूप मे ही यह उदाहरण उचित प्रतीत होता है।

अपने पूज्यो की उपेक्षा या तिरस्कार करना द्रव नामक सन्ध्यग है।[६] जिसका उदाहरण रत्नावली मे वह अश है जहाँ वासवदत्ता अपने पति उदयन के समक्ष होते हुए भी उसकी उपेक्षा कर सागरिका और विदूषक का बन्धन करने की आज्ञा देती है।[७]रत्ना०, पृष्ठ १२६।[५]

नाट्यदर्पण मे विमर्श सन्धि का एक अग व्यवसाय है[८] जो ऐन्द्रजालिक के प्रवेश से लेकर एक खेल अवश्य देखे इस कथन तक[९] घटित होता है। क्योकि यहाँ ऐन्द्रजालिक की योजना मे यौगन्धरायण की योजना की पूर्ति होती है।

नाटिका के चतुर्थ अक मे कार्य नामक[१०] अर्थ प्रकृति है। कथा का बीज 'नायक उदयन और नायिका सागरिका का विवाह तथा चक्रवर्तित्व प्राप्ति है।' यही नाटिका का फल है, यही कार्य है। इस कार्य की पूर्ति यौगन्धरायण के इस कथन 'इदानी सफल परिश्रमोऽस्मि सवृत्त तथा राजा के—'नीतो विक्रमबाहुरात्मसमताम्0' इत्यादि कथन मे है।

---

१ रत्ना० ४/२०.
२ विकत्थना विचलनम्। —दश० १/४८
३ दश० १/४८
४ रत्ना०, पृष्ठ १६०।
५ छादन मन्युमार्जनम्। —ना० द० पृष्ठ १६५।
६ द्रवः पूज्य व्यतिक्रमः। —ना० दा० (सू०) ९१।
७ रत्ना०, पृष्ठ १२६।
८ व्यवसायोऽर्थहेतुक्। —ना० द० (सू०) १०२.
९ रत्ना०, पृष्ठ १४४-१५०।
१० अपेक्षित तु यत्साध्यमारम्भो मन्निबन्धनः।
समापन तु यत्सिद्धये तत्कार्यमिति संमतम्।। —सा० द० ६/६९-७०.

दशरूपककार ने धर्म अर्थ और काम को फल या कार्य माना है[१] इसके अनुसार यहाँ काम (सागरिका प्राप्ति) और अर्थप्राप्ति (चक्रवर्तित्व प्राप्ति) रूप दो फल है।

नाट्यदर्पणकार ने 'साध्ये बीज सहकारी कार्यम्'[२] लिखकर बीज के सहकारी सैन्य, कोश, दुर्ग-द्रव्य-गुण-क्रिया आदि को कार्य माना है। तदनुसार यहाँ चक्रवर्तित्व गुण और सागरिका रुप द्रव्य की प्राप्ति हुई है।

वासवदत्ता के कथन—'अज्जउत्त पडिच्छ एद०' से लेकर यौगन्धरायण के कथन 'इदानी सफल परिश्रमोऽस्मि सवृत्त'[३] तक के अश मे फलागम नामक कार्यावस्था है क्योकि इससे नायक को अभीष्ट की प्राप्ति हो सकी है।[४]

चतुर्थ अक मे ऐन्द्रजालिक प्रयोग मे आग लगने की घटना से लेकर अन्त तक निर्वहण सन्धि है[५] क्योकि सागरिका, यौगन्धरायण वासवदत्ता और उदयन ये सभी पात्र इस अश मे एकत्र होकर कार्य के साधक बने है।

शास्त्रकारो ने निर्वहण सन्धि के 14 अग स्वीकार किये है जिनमे अनेको अग इस नाटिका मे घटित होते है। जैसे सागरिका को देखकर वसुभूति और वाभ्रव्य द्वारा उसको पहचानने मे[६] बीज की उद्भावना होने से सन्धि नामक निर्वहण सन्ध्यग है।[७]

वसुभूति के द्वारा सागरिका प्राप्ति विषयक प्रश्न किये जाने पर 'यौगन्धरायण के द्वारा रत्नावली अन्त·पुर मे स्थापित की गई है' यह जानकर नायक तर्क करता है कि मत्री यौगन्धरायण ने मुझे बिना बतलाए ऐसा क्यो किया ?[८] यहाँ कार्यान्वेषण करने के कारण विबोध नामक अग है।

'यौगन्धरायण राजा से निवेदन करता है—' देव क्षम्यता यन्मयाऽ-निवेद्य कृतम्।[९] इस कथन मे उपायो का उपसहार करने के कारण ग्रथन नामक सन्ध्यग है।[१०]

---

१ कार्यं त्रिवर्ग तच्छुद्धमेकानुबन्धि च। —दश० १/१६.
२ ना० द० सू० ३५.
३ रत्ना०, पृष्ठ १७२।
४ समग्र फल सपत्ति. फलयोगो यथोदित। —दश० १/२२.
५ बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्।
एकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहण हि तत्॥ —दश० १/४८-४९.
६ रत्ना०, पृष्ठ १६४।
७ सन्धिर्बीजोपगमनम्। —दश० १/५१.
८ रत्ना०, पृष्ठ १६६।
९ रत्ना०, पृष्ठ १६८।
१० ग्रथन तदुपक्षेप.। —दश० १/५१

अनुभूत अर्थ के कथन मे निर्णय नामक अग स्वीकार किया गया है।[१] यहाँ यौगन्धरायण के द्वारा सागरिका की प्राप्ति सम्बन्धी कथन मे यह घटित होता है।[२]

सागरिका के बन्धन काटने के लिये वासवदत्ता का राजा से निवेदन करने आदि[३] मे परस्पर बातचीत रूप परिभाषा[४] नामक अग है।

यौगन्धरायण के द्वारा क्षमा माँग लेने पर नायक की प्रसन्नता द्योतित होने मे प्रसाद नामक सन्ध्यग है।[५] इसी प्रकार देवी की आज्ञा से अभिलषित वस्तु सार्गारिका को स्वीकार करने पर प्रसन्नता का अनुभव होता है।[६] अत वहाँ आनन्द नामक सन्ध्यग है।[७]

दु खो का दूर हो जाना समय नामक अग है।[८] जो रत्नावली मे सागरिका को वासवदत्ता द्वारा धैर्य दिलाने 'समस्सस्स बहिणीए समस्सस' मे है।[९]

उपलब्धि योग्य वस्तु की प्राप्ति होने पर शान्ति मिलती है। अत वहाँ कृति नामक अग होता है,[१०] जैसे रत्नावली मे सागरिका प्राप्ति पर राजा उदयन को।[११]

दशरूपककार ने मान् प्रतिष्ठा आदि की प्राप्ति को भाषण नामक अग माना है[१२] किन्तु दर्पणकार ने तो साम दान आदि को 'भाषण' नामक अग स्वीकार किया है।[१३] जो नाट्यदर्पणकार के द्वारा भी ग्रहण किया गया था।[१४] दशरूपक के अनुसार 'नीतो विक्रम बाहु0' इत्यादि स्थल मे यह अग है।[१५]

कार्य के दर्शन को पूर्वभाव और अद्भुत वस्तु की उपलब्धि मे 'उपगूहन' नामक अग होता है।[१६] वासवदत्ता के इस कथन—'अज्ज फुड एव्व कि ण

---

१ अनुभूताख्या तु निर्णय। —दश० १/५१.
२ रत्ना०, पृष्ठ १७०।
३ वही, पृष्ठ १६८।
४ परिभाषा मिथो जल्प। —दश० १/५२
५ प्रसाद पर्युपासनम्। —दश० १/५२
६ रत्ना०, पृष्ठ १७२
७ आनन्दो वाछितावाप्ति। —दश० १/५२
८ समयो दु ख निर्गम। —दश० १/५२
९ रत्ना०, पृष्ठ १६६।
१० कृतिलब्धार्थ शमनम्। —दश० १/५३.
११ रत्ना०, पृष्ठ १७२।
१२ मानाद्याप्ति श्चभाषणम्। —दश० १/५३
१३ सामदानादि भाषणम्। —सा० द० ६/११३.
१४ भाषण साम दानोक्ति। — ना० द० (सू०) ११४
१५ रत्ना० ४/२१
१६ कार्यदृष्ट्यद्भुतप्राप्तो पूर्वभावोयगूहने। —दश० १/५३.

भर्णसि जघा पडिवादेहि से रअणावली त्ति।'[१] मे पूर्वभाव नामक अग घटित होता है।

श्रेष्ठ वस्तु की उपलब्धि काव्य सहार कहलाती है[२]। यहॉ यौगन्धरायण राजा से कहता है—'देव तदुच्यता कि ते भूय करोति।[३] इससे श्रेष्ठतम वस्तु की उपलब्धि हो जाने की सूचना से यह अग घटित होता है।

दशरूपककार ने शुभाशसनात्मक प्रशस्ति नामक अग माना है।[४] जो भरतवाक्य मे मगल कामना के रूप मे विद्यमान है।[५]

सन्धि सन्ध्यगो के अतिरिक्त नाट्य मे पताका स्थानको का भी कम महत्व नही है। 'किसी अन्य अभिलाषा से किया गया प्रयोग सादृश्य आदि के कारण अचिन्तित भावी (अभीष्ट) फल का प्रयोजक हो जाय उसे पताका स्थानक कहते है[६] ये कुल चार होते है।[७] प्रथम वहॉ होता है जहॉ अचानक उपचार से अधिक गुणयुक्त वस्तु की उपलब्धि हो जाये।[८]

द्वितीय पताका स्थानक वह होता है जहॉ श्लिष्ट वचनो से अनेक अर्थ व्यक्त हो।[९] तृतीय—अन्यार्थोपक्षेपक, अव्यक्तार्थक किन्तु विशेष निश्चयात्मक श्लिष्ट प्रत्युत्तरात्मक कथन होता है।[१०] तथा चतुर्थ—श्लिष्ट, द्व्यर्थक किन्तु अन्याभिप्राय से प्रयुक्त वचनो से प्रधान अर्थ की सूचना मिलने पर होता है।[११]

सस्कृत नाटक समीक्षाकार ने नाट्यशास्त्र और साहित्यदर्पण मे ५ प्रकार के पताका स्थानको का सकेत किया है जो सम्प्रति उपलब्ध पुस्तको मे नही है।[१२]

दशरूपककार पताका स्थानक की परिभाषा दूसरे रूप मे देते है। उनका कथन है कि 'जहॉ जिस कथा का प्रकरण चल रहा हो उससे आने वाली घटना

---

१ रत्ना०, पृष्ठ १७०।
२ वराप्ति काव्य सहार। — दश० १/५४.
३ रत्ना० पृष्ठ १७२
४ प्रशस्ति शुभाशसनम्।— दश० १/५४
५ रत्ना० ४/२३
६ यत्रान्यस्मिन्युज्य माने तल्लिगोऽन्य प्रयुज्यते।
आगन्तुकेन भावेन पताकास्थानक तु तत्॥
—ना० शा० १९/३१, सा० द० ६/४५, ना० द० सू० २८।
७ ना० शा० १९/३२-३५; सा० द० ६/४६-४९; ना० द० (सू०) २९-३२
८ ना० शा० १९/३२
९ सा० द० ६/४७
१० ना० शा० १९/३४.
११ सा० द० ६/४९.
१२ 'नाट्यशास्त्र मे पॉच प्रकार के पताका स्थानकों का उल्लेख है। आचार्य विश्वनाथ ने भी कुछ अन्तर से पॉच प्रकार के ही पताका स्थानक माने है।
—स० ना० स०, पृष्ठ ११९

की सूचना मिल जाना ही पताका स्थानक है और वह—समान इतिवृत्त और समान विशेषण भेद से दो प्रकार का होता है।[१]

तात्विक दृष्टि से विचार करने पर दोनो मे कोई विशेष अन्तर प्रतीत नही होता, क्योकि दोनो ग्रन्थो (सा० द० व दशरूपक) मे एक अर्थ से दूसरे अर्थ की प्रतीति या सूचना मे ही पताका स्थानको की सत्ता निश्चित की गई है। दोनो ग्रन्थकारो ने रत्नावली के उदाहरण भी दिये है। साहित्यदर्पणकार ने चारभेदो का उल्लेख कर उनका विस्तार अवश्य किया है।

साहित्यदर्पण के अनुसार वासवदत्ता वेश मे 'अचानक वासवदता के भ्रम मे सागरिका की प्राप्ति हो जाना'[२] 'सहसैवार्थ सम्पत्ति' रूप प्रथम पताका स्थानक का उदाहरण है।[३]

द्वयर्थक श्लिष्ट वचनात्मक चतुर्थ पताकास्थानक[४] का उदाहरण द्वितीय अक का 'उद्दामोत्कलिका०'[५] इत्यादि पद्य दिया जा सकता है। जहॉ लता की वर्णना से प्रेमातुरा नायिका की स्थिति का भी वर्णन हो जाता है। धनजय के अनुसार यहॉ समान विशेषणात्मक (समासोक्तिरूप) पताका स्थानक है।

साहित्यदर्पण मे निर्दिष्ट द्वितीय और तृतीय पताका स्थानको के उदाहरण रत्नावली मे उपलब्ध नही होते।

सम्पूर्ण नाटिका को ४ अको मे उपनिबद्ध किया गया है जिनमे प्रथम अक मे एक पात्र प्रयोजक शुद्ध विष्कम्भक है शेष तीनो अको मे नीच पात्र प्रयोजित प्रवेशको का प्रयोग है।[६]

नाटिका मे वृत्तियो की स्थिति का पूर्वत विवेचन किया जा चुका है जिसके अनुसार कैशिकी वृत्ति का ही प्राधान्य होता है किन्तु प्राय सभी नाटिकाओ मे भारती वृत्ति[७] भी आरम्भ मे होती है। प्ररोचना, वीथी, प्रहसन और आमुख नामक उसके ४ भेद होते है।[८] रत्नावली मे आरम्भ मे ही 'श्रीहर्षो० इत्यादि पद्य[९] मे प्ररोचना नामिका भारती वृत्ति है। इसके द्वारा कवि की प्रशसा कर श्रोता व दर्शको को आकृष्ट करने का उपक्रम होता है।[१०]

---

१ दश० १/१४.
२ रत्ना०, पृष्ठ १७४।
३ सा० द० ६/४६.
४ सा० द० ६/४७
५ रत्ना० २/४
६ सा० द० ६/५४-५६.
७ वही ६/५७.
८ भारती सस्कृत प्रायो वाग्व्यापारो नराश्रयः। —सा० द० ६/२९.
९ तस्याः प्ररोचना वीथी तथा प्रहसनामुखे। अगान्यत्रोन्मुखीकारः—। —सा० द० ६/३०
१० रत्ना० १/५ ह

भारती वृत्ति के आमुख भेद के पुन ५ भेद होते है,[१] जिनमे कथोद्घात[२] का प्रयोग रत्नावली मे हुआ है क्योकि सूत्रधार के 'द्वीपादन्यस्मादपि०'[३] वाक्य को पढते हुए यौगन्धरायण मच पर प्रवेश करता है।[४]

इस प्रकार सम्पूर्ण प्रस्तावना भाग मे पुरुष पात्रो द्वारा सस्कृत बहुल वाक् व्यापार होने के कारण भारती वृत्ति है।

कैशिकी वृत्ति—मनोरजक वेशविन्यास से अतिशय चमत्कारिणी, स्त्रीजनो से व्याप्त, नृत्यगीत आदि से परिपूर्ण, कामजन्य सुखोपभोग की उत्पादिका, एव रमणीय विलासो से युक्त होती है।[५]

इस वृत्ति के भी नर्म, नर्मस्फूर्ज, नर्म स्फोट और नर्मगर्भ नामक चार भेद होते है।[६] नाट्यदर्पणकार के अनुसार कैशिकी के हास्य, श्रृगार, नाट्य और नर्म ये ४ भेद होते है।[७]

कैशिकी वृत्ति के चारो अक नाटिका मे होते है। इनमे प्रथम नर्म चातुर्यपूर्ण क्रीडा रूप होता है।[८] जिसके केवलहास्य, श्रृगारपूर्ण हास्य और भययुक्त हास्य ये तीन भेद होते है जिन्हे दशरुपक तथा दर्पणकार दोनो ही स्वीकार करते है।[९]

नाटक-लक्षण-रत्नकोशकार ने शुद्ध नर्म और छद्मगर्भ नर्म भेद से दो प्रकार का बतलाया है।[१०] नाट्यदर्पण मे परिहासजन्य नर्म ही है किन्तु उसका कारण वाक्, वेष, चेष्टा आदि है तथा कही मान के कारण, कही हास्य के कारण, कही श्रृगार जनक हास्य के लिए, कही भयजन्य हास्य के लिए, कही अपराधी प्रिय के प्रति भेदनार्थ और कही पूर्वनायिका के भय आदि के कारण अनेक प्रकार का बतलाया गया है।[११]

रत्नावली मे नर्म के प्रथम भेद शुद्ध हास्य का उदाहरण, जैसे—राजा के हाथ मे चित्रफलक को देखकर रानी वासवदत्ता के इस कथन मे है—'अज्ज उत्त, एसावि जा अवरा तुह समीवे आलिहिदा ता किं अज्ज वसन्त अस्स विण्णाणम्'।[१२]

---

१ उद्घातक· कथोदघात. प्रयोगातिशयस्तथा।
प्रवर्तकावलगिते पच प्रस्तावना भिदाः ॥ —सा० द० ६/३३.

२ सूत्रधारस्य वाक्य वा समादायार्थमस्यवा, भवेत्पात्र प्रवेशश्चेत्कथोद्घातः स उच्यते।
—सा० द० ६/३५.

३ रत्ना० १/६.

४ वही, पृष्ठ १०।

५ सा० द० ६/१२४, दश० २/४७; ना० ल० र० १३२-३३।

६ सा० द० ६/१२५.

७ ना० द० (सू०) १६१.

८ सा० द० ६/१२५.

९ वही ६/१२६

१० ना० ल० र० १३४।

११ ना० द०, पृष्ठ २८७-८८।

१२ रत्ना०, पृष्ठ ८४।

श्रृगारहास्य का उदाहरण, जैसे—'सुसगता-भट्टा अदिकोपणा क्खु एसा। ता हत्थे गेण्हिअ पसादेहि ण।'[१] भयपूर्ण हास्य का उदाहरण सुसगता का निम्न कथन है—

'सुसगता—जाणिदो मए एसो वुत्तन्तो सम चित्तफलएण ता देवीए गदुअ णिवेदइस्स।'[२]

यहॉ नायक के हृदय मे देवी विषयक भय उत्पन्न हो गया है।

आरम्भ मे सुखकर किन्तु अन्त मे भयदायक नवीन समागम को नर्मस्फूर्ज कहते है।[३] इसे दशरुपक मे नर्मस्फिज की सज्ञा दी गई है।[४]

रत्नावली मे प्रथम बार कदलीगृह मे सागरिका के मिलने पर राजा 'श्रीरेषा पाणिरप्यस्या०'[५] कहकर जब प्रशसा कर रहा है तभी विदूषक के द्वारा 'एसा क्खु अवरा देवी वासवदत्ता' कहने पर तुरन्त ही राजा उसका हाथ छोड देता है। (राजा सचकित सागरिकाया हस्त मुचति)[६] यहॉ राजा व सागरिका दोनो को वासवदता का भय है अत· हाथ छोडते ही सागरिका उसके पास चली जाती है।

'ह्रिया सर्वस्यासौ०'[७] पद्य मे नर्मस्फोट नामक कैशिकी वृत्ति का अग है जहॉ नायिका की दशाओ के वर्णन से उसकी नायक के प्रति अभिलाषाओ का किचित परिचय प्राप्त होता है।[८]

प्रच्छन्न रूप मे वर्तमान नायक का व्यवहार नर्मगर्भ कहलाता है।[९] जिसका उदाहरण रत्नावली मे उपलब्ध नही है किन्तु उनकी दूसरी कृति प्रियदर्शिका मे इसका उदाहरण प्राप्त होता है जहॉ गर्भाक मे वत्सराज के वेश मे आई मनोरमा के स्थान पर स्वय वत्सराज ही आ जाता है। और नायक की भूमिका ग्रहण करता है।[१०]

कैशिकी बहुल नाटिका के कलेवर मे जहॉ आरम्भ मे प्रस्तावना आदि स्थलो मे भारती वृत्ति है वही चतुर्थ अक मे ऐन्द्रजालिक की क्रियाओ व वाग्व्यवहारो मे आरभटी वृत्ति का लक्षण भी घटित होता है।[११]

---

१ वही, पृष्ठ ७८।

२ रत्ना०, पृष्ठ ७४।

३ नर्मस्फूर्जो सुखारम्भ भयान्तो नव सगम। —सा० द० ६/१२७

४ दश० २/५१.

५ रत्ना० २/१८.

६ वही, पृष्ठ ८०।

७ रत्ना० ३/३

८ सा० द० ६/१२७.

९ प्रिय0, पृष्ठ 52-54।

१० मायेन्द्र जाल सग्राम क्रोधोद्भ्रान्तादि चेष्टितै।
सयुक्ता वध बन्धाद्यैरुद्धताऽऽरभटी॥ —सा० द० ६/१३२-३३.

११ सा० द० ६/१३३

लाक्षणिको ने आरभटी के चार अग बतलाए है—1 वस्तूत्थापन, 2 सम्फेट, 3 सक्षिप्ति और 4 अवपातन।[१]

इनमे माया (इन्द्रजाल) आदि से उत्पन्न वस्तु प्रथम प्रकार की आरभटी (वस्तूत्थापन) कहलाती है,[२] जैसे रत्नावली मे आग का लगना एक ऐन्द्रजालिक प्रदर्शन है।[३]

क्रोधपूर्ण त्वरायुक्त पुरुषो का सघर्ष सम्फेट होता है।[४] रत्नावली मे रुमण्वान और कोशलेन्द्र का परस्पर युद्ध वर्णन इसका उदाहरण माना जा सकता है।[५]

अवपातन जो आरभटी वृत्ति का चतुर्थ अग है—प्रवेश, त्रास, निष्क्रमण, हर्ष और विद्रव की उत्पत्ति रूप होता है।[६] जैसे—रत्नावली मे अश्वशाला से बन्धन तुडाकर भगे हुए बन्दर से अन्तपुर मे एक साथ भय की लहर दौड जाती है और नपुसक, बामन, किरात आदि झुककर डरते हुए भागने लगते है।[७]

हर्ष की प्रथम नाटिका प्रियदर्शिका मे भी यह अग उपलब्ध है जहॉ विन्ध्यकेतु की मृत्यु के बाद उनकी स्त्रियो आदि मे भय दिखलाया गया है, जैसे—'विजयसेन-' देव । इदमपि विज्ञापयामि एव सबन्धु परिवारे हते विन्ध्यकेतो, तमनुसृतासु सहधर्मचारिणीषु विन्ध्यशिखराश्रितेषु.............................इत्यादि ।

इस प्रकार हर्ष की दोनो कृतियो मे भारती, कैशिकी और आरभटी वृत्तियो का प्रयोग है किन्तु भूयसा कैशिकी का।

नाटिका के नाम नायिका के ही नाम पर होने चाहिए।[८] इस नियम का पालन प्राय सभी नाटिकाओ मे किया गया है तदनुसार हर्ष की दोनो रत्नावली और प्रियदर्शिका नाटिकाएँ लक्षणानुसारी है।

नाटिका का आरम्भ नान्दी से होता है। नान्दी की परिभाषा साहित्यदर्पण के अनुसार इस रूप मे है कि—

आशीर्वचन संयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते
देव द्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता।[९]

इसके अनुसार आशीर्वादात्मक स्तुति यदि देव, द्विज अथवा नृप की हो तो वह नान्दी कहलाती है। आगे दर्पणकार ने 'पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत'[१०]

---

१ रत्ना० ४/११, १४, १५
२ सा० द० ६।१३५
३ रत्ना० ४।५-६
४ सा० द० ६।१३५
५ रत्ना० २?२-३
६ प्रिय० पृष्ठ १२-१३
७ सा० द० ६/२४.
८ सा० द० ६।१४३
९ वही ६/२४
१० वही ६/२५.

लिखकर उसमे ८ या १२ पदो की सख्या निर्धारित की। वस्तुत नान्दी मे 'पद' शब्द का अर्थ स्पष्ट नही है। 'नाट्यप्रदीप' ग्रन्थ मे पद के सम्बन्ध मे यह उल्लेख है कि—

श्लोकपादः पदं केचित् सुप्तिङन्तमथापरे।
परेऽवान्तरवाक्यैक स्वरूपं पदमूचिरे।[१]

श्रीहर्ष की नाटिकाओ मे प्रियदर्शिका मे ३ पद्यो मे नान्दी की गई है अत ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होने श्लोकपाद को ही पद मानकर द्वादशपदा नान्दी की रचना की किन्तु रत्नावली मे ४ पद्यो मे नान्दी प्रस्तुत करने के कारण यह कौन सी नान्दी है यह ज्ञात नही हो पाता, ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष के समय तक नान्दी मे पदो की सख्या की या तो अनिवार्यता नही थी। या पदो की सख्या मे वृद्धि कर दी गई थी।

विश्वनाथ ने नान्दी के सम्बन्ध मे अपना दृष्टिकोण रखते हुए स्पष्ट किया है कि नान्दी पूर्वरग से भी पहले की जाती है जिसमे सभी अभिनेता वेष सज्जा के बिना ही भाग लेते है अत· यह नाटक का अग नही है। इसीलिए विश्वनाथ ने अनर्घ राघव और पुष्पमाला के जिन दो उदाहरणो को नान्दी कहा उनमे स्पष्ट कर दिया—कि यह मेरी सम्मति मे नान्दी नही है—

'एतन्नान्दीति कस्यचिन्मतानुसारेणोक्तम्। वस्तुतस्तु पूर्वरगद्वाराभिधानमगम् इत्यन्ये'[२]

विश्वनाथ ने इसीलिए 'नान्द्यते' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा कि कालिदास के प्रबन्धो की प्राचीन पुस्तको मे नान्द्यन्ते इस वाक्य के पश्चात् 'वेदान्तेषु यमाहु०' इत्यादि पद्य प्राप्त होता है कि जिसके अनुसार यह स्पष्ट है कि यह पद्य नान्दी नही है। जहॉ उक्त पद्य के पश्चात् 'नान्द्यन्ते' ऐसा उल्लेख है वहॉ नान्दी का अभिप्राय सूचित होता है।

सस्कृत रूपको की अपनी एक विशेषता है कि इसमे मनोरजन के साथ-साथ आदर्शो का भी परिपालन किया गया है। वे सभी भाव जो अनुचित हो सकते है नाट्य के लिये वर्जनीय कर्म माने गये है।[३] उनका अभिनय रगपीठ पर वर्जित होता है , ये इतिवृत्त के मुख्य अंग न होकर गौण होते है अतः उनकी विष्कम्भक प्रवेशक आदि के द्वारा सूचना दी जाती है।[४]

---

१ प्रिय० पृष्ठ २ पद टीका में उल्लेख (टीकाकार अभिनवभट्ट बाण कृष्णसूरि)

२ सा० द०, पृष्ठ १७३।

३ यत्स्यादनुचित वस्तु नायकस्य रसस्य वा।
विरुद्ध तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत्॥ —सा० द० ६/५०.

४ अकेष्वदर्शनीया या वक्तव्यैव च सम्मता।
या च स्याद्वर्षपर्यन्त कथा दिन द्वयादिजा॥
अन्या च विस्तरा सूच्या सार्थोपक्षेपकैर्बुधैः।
वर्षादूर्ध्वं तु यद्वस्तु तत्स्याद्वर्षादधो भवम्॥
दिनावसाने कार्यं यद्दिने नैवोपपद्यते;
अर्थोपक्षेपकैर्वाच्यमंकच्छेद विधाय तत्॥ — सा० द० ६/५१-५३.

साहित्यदर्पणकार ने इन वर्जनीय कर्मो मे—दूराह्वान, बध, युद्ध, राज्य या देशविप्लव, विवाह भोजन, शाप,- उत्सर्ग, मृत्यु, रति, दन्तच्छेद, नखच्छेद आदि लज्जाजनक कर्म, शयन, अधरपान, नगरावरोध, स्नान और अनुलेपन आदि की गिनती की है।[१]

भरत के समय अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्रता थी क्योकि भरत ने केवल युद्ध, राज्यभ्रश, मरण, और नगरोपरोध को ही प्रत्यक्ष प्रयोज्य नही माना है।[२] क्रोध, प्रमाद, शाप, २उत्सर्ग, अध्वविद्रव, उद्वाह, अद्‌भुत सश्रयदर्शन आदि को वे अक मे, प्रत्यक्ष प्रयोज्य मानते है।[३] जिन्हे दर्पणकार ने निषिद्ध किया है।

नाट्यदर्पणकार भी भरत की अपेक्षा अधिक कठोर है क्योकि उन्होने नाट्य मे—'दूराध्वयान, नगरावरोध, राज्यदेशादि विप्लव (पतन), सम्भोग, मृत्यु, और हस्त पादादि का छेदन' प्रत्यक्ष दिखलाने योग्य न मानकर विष्कम्भक आदि के द्वारा प्रयोज्य माना है।[४]

इससे स्पष्ट है कि साहित्यदर्पणकाल तक नाटको के रूप उत्तरोत्तर विकृत हो गये थे, जिसके कारण ही विश्वनाथ ने इन अर्थो के प्रदर्शन पर प्रतिबन्ध लगाया।

इन वर्जनीय कार्यो की सूचना देने वाले नाट्यधर्म सूच्य या अर्थोपक्षेपक कहलाते है, जैसा कि दशरूपककार ने स्पष्ट किया है—

नीरसोऽनुचितस्तत्र स सूच्यो वस्तु विस्तर.।
दृश्यस्तु मधुरोदात्त रसभाव निरन्तर ॥[५]

साहित्यदर्पणकार ने विष्कम्भक मे भी प्रधान के बध की सूचना देने का निषेध किया।[६]

अर्थोपक्षेपको की सख्या ५ है—(१) विष्कम्भक, (२) प्रवेशक, (३) चूलिका, (४) अकावतार, और (५) अकास्य।[७]

विष्कम्भक—'भूत, भविष्यत् और वर्तमान मे जो वृत्त अक मे दर्शनीय न हो, उसे सक्षिप्त कर अक के आदि मे मध्यम पात्रो द्वारा या नीच व मध्यम पात्रो द्वारा परस्पर वार्तालाप से सूचित करने मे होता है। केवल मध्यम पात्रो द्वारा सस्कृत मे ही सूचना देने पर शुद्ध और नीच मध्यम के योग से सस्कृत

---

१ सा० द० ६/१६-१८.
२ ना० शा० १८/२१
३ वही १८/२०
४ दूराध्वान पूरोधो राज्यदेशादि विप्लवः।
रत मृत्यु समीकादि वर्ण्य विष्कम्भकादिभिः॥ —ना० द० (सू०) १९.
५ दश० १/५७.
६ विष्कम्भकाद्येरपि नो वधो वाच्योऽधिकारिणः।
अन्योन्येन तिरोधानं न कुर्याद्रस वस्तुनोः॥ —सा० द० ६/३३-३४.
७ सा० द० ६/५४; दश० १/५८.

व प्राकृत के मिश्रित प्रयोग से सूचना देने पर मिश्र या सकीर्ण विष्कम्भक होने के कारण यह दो प्रकार का होता है।[१]

रत्नावली मे प्रस्तावना के पश्चात् 'यौगन्धरायण यानभग' आदि से बचकर आई हुई सिहलेश्वर पुत्री रत्नावली को प्रयोजन विशेष से रानी वासवदता के अन्त पुर मे पहुँचा दी गई इस अतीत की सूचना सस्कृत भाषा मे ही देता है[२] स्वय यौगन्धरायण मत्री की भूमिका मे होने के कारण मध्यम श्रेणी का पात्र है अत यहॉ शुद्ध विष्कम्भक है।

इस विष्कम्भक मे समुद्र मे यानभग की ऐसी घटना है जिसे रगमच पर प्रत्यक्षत नही दिखलाया जा सकता था। अत उसकी सूचना दी गई है।

साहित्यदर्पणकार ने इस विष्कम्भक का प्रयोजन नीरस वस्तु का परित्याग माना है। 'यहॉ यौगन्धरायण के प्रवेश के सम्बन्ध मे उन्होने यह नियम भी निर्दिष्ट किया है कि प्रथम अक के आदि वाले विष्कम्भक के पात्र की सूचना प्रस्तावना मे ही कर देनी चाहिए जैसा कि इसमे यौगन्धरायण की सूचना देकर किया गया है।[३]

द्वितीय अक के आरम्भ मे पूर्वकथा को अग्रिम कथा से जोड़ने के लिए सुसगता और निपुणिका दो निम्न श्रेणी के पात्रो द्वारा केवल प्राकृत मे सूचना दिलाने[४] के कारण प्रवेशक है।[५] तृतीय[६] और चतुर्थ[७] अको मे भी इसी प्रकार प्रवेशको का प्रयोग है।

द्वितीय अक मे अश्वशाला से भागे हुए बानर की सूचना[८] नेपथ्य से दी जाने के कारण चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक है।[९] नाट्यदर्पण मे 'उद्यान स्थित नायक की सूचना' वन्दी जनो के द्वारा दी जाने पर[१०] चूलिका माना गया है।

सस्कृत रूपको की रचना सम्बन्धी कुछ अन्य विशेषताएँ भी है जिनमे नान्दी, आमुख और भरतवाक्य प्रमुख है। सस्कृत भाषा मे निबद्ध सभी श्रेणियो के रूपको व उपरुपको का आरम्भ पूर्वरग (नान्दी) से होता है और उसके बाद

---

१ अकानर्हस्य वृत्तस्य त्रिकालस्यानुरजिना।
सक्षिप्य सस्कृतेनोक्तिरकादौ मध्यमैर्जने ॥
शुद्धो विष्कम्भकस्तत्र———। —ना० द० (सू०) २०.

२ रत्ना०, पृष्ठ १०, १२।

३ अपेक्षित परित्यज्य—पात्रक·। —सा० द० ६/६१-६२.

४ रत्ना०, पृष्ठ ४०-४२।

५ सा० द० ६/५७.

६ रत्ना, पृष्ठ ८८, ९०, ९२।

७ वही, पृष्ठ १२८, १३०, १३२।

८ रत्ना० २/२.

९ अन्तर्जवनिका संस्थै· सूचनार्थस्य चूलिका। —सा० द० ६/५८.

१० ना० द०, पृष्ठ ५९-६०

सूत्रधार या उपस्थापक के द्वारा कवि-प्रशसा के साथ किसी पात्र को रगमच पर लाया जाता है।[१] यह प्रस्तावना या आमुख का कार्य है, तत्पश्चात् आवश्यकतानुसार विष्कम्भक का प्रयोग होता है। नाट्य की समाप्ति पर भरत वाक्य की योजना होती है जिसमे सुख समृद्धि, राज्य प्राप्ति, सज्जनो का सम्पर्क, एव दुरितक्षय आदि की मगलकामना की जाती है।

नान्दी—किसी भी नाट्य का आरम्भ करने के पूर्व विघ्न विघातार्थ देव, द्विज, नृप आदि की आशीर्वचनात्मक स्तुति के द्वारा किया गया मगलाचरण नान्दी कहलाता है।[२] साहित्यदर्पणकार नान्दी मे शख, चन्द्र, चक्रवाक और कुमुदादिको का वर्णन आवश्यक मानते है उसी प्रकार वे नान्दी मे १२ या ८ पदो का होना भी आवश्यक मानते है।[३]

रत्नावली मे भगवान् शिव और पार्वती की विविध श्रृगारिक चेष्टाओ एव भगवान् शिव की क्रुद्ध दृष्टि का वर्णन करते हुए कवि ने आशीर्वादात्मक स्तुति की है।[४] किन्तु यहाँ दर्पणकार का अष्टपदा या द्वादशपदा का लक्षण घटित नही होता। क्योकि यहाँ १६ पदो का प्रयोग है।

लाक्षणिको ने नान्दी के पश्चात् प्रस्तावना या आमुख का निर्देश किया है।[५] जिसमे नटी, व सूत्रधार विदूषक या पारिपार्श्विक आदि के साथ वार्ता करते हुए चित्र विचित्र कथन से मूलकथा की सूचना देते है।[६]

प्रस्तावना के उद्घातक, कथोद्घात, प्रयोगातिशय, प्रवर्तक और अवलगित रुप ५ भेद है।[७] दशरूपककार वस्तुबीज, मुख और पात्र की सूचना के अनुसार अप्रत्यक्षत इसके ४ भेद स्वीकार करते है।[८]

सूत्रधार के वाक्य को दुहराते हुए जब कोई पात्र प्रवेश करे तो उसे दर्पणकार कथोद्घात नामक प्रस्तावना भेद मानते है।[९] तदनुसार ही यहाँ यौगन्धरायण 'द्वीपादन्यस्माद्' इस सूत्रधार के कथन का पुन कथन करता हुआ प्रवेश करता है[१०] अत रत्नावली मे कथोद्घात नामक प्रस्तावना का द्वितीय भेद है।

---

१ सा० दा० ६।२१,
२ वही ६/२२-२
३ सा० द० ६/२५.
४ रत्ना० १/१-४.
५ दश० ३/२.
६ सा० द० ६/३१-३२.
७ वही ६/३३.
८ दश० ३/३ (दिव्य मर्त्ये स तद्रूपो मिश्रमन्यतरस्तयोः। सूचयेद्वस्तु बीजं वा मुख पात्रमथापि वा)
९ सा० द० ६/३५.
१० रत्ना०, पृष्ठ १०।

इस प्रकार रत्नावली नाटिका मे अपेक्षित सभी नाट्य नियमो का परिपालन किया गया है।

विद्धशालभंजिका—नाटिका की सामान्य रूढियाँ इस नाटिका मे भी उपलब्ध हैं। जैसे—

(१) नाटिका का इतिवृत्त सर्वथा कविकल्पित होने के कारण प्रकरणानुसारी है।

(२) नायक विद्याधरमल्ल प्रख्यात धीरललित प्रकृति का है अत नाटकानुसारी है।

(३) कुल चार अक है।

(४) स्त्री पात्रो का बाहुल्य है।

(५) नाटिका के इतिवृत्त मे नायक विद्याधर मल्ल की विविध प्रणयक्रीडाओ का वर्णन होने के कारण श्रृगाररस अगी और कैशिकी वृत्ति की प्रमुखता है।

(६) देवी नायिका राजा की विवाहिता पत्नी राजमहिषी है, औरर

(७) मृगाकावली जो लाटेन्द्र चन्द्र वर्मा की पुत्री है इसकी नायिका है।

(८) नाटिका का मुख्य फल नायक को नायिका प्राप्त होना है। साथ ही चक्रवर्तित्व लाभ भी।

इस प्रकार इस नाटिका मे जहॉ नाटिका के लिए अनिवार्य विशिष्ट नियमो का पालन किया गया है वही इतिवृत्त सम्बन्धी विशिष्ट नियम भी बाहुल्येन प्राप्त होते हैं।

नाटिका का आरम्भ भगवान् कामदेव की स्तुति से होता है। यह स्तुति आशीर्वादात्मक नान्दी है जो द्वादश पदा है।[१] तत्पश्चात् कवि ने भारती वृत्ति के माध्यम से कवि राजशेखर की प्रशसा करते हुए[२] भारती वृत्ति के प्ररोचना भेद[३] का उदाहरण प्रस्तुत किया, साथ ही सूत्रधार आकाश भाषित करता हुआ आमुख मे कथा को प्रस्तुत करता हुआ प्रस्तावना के कथोद्घात[४] भेद के माध्यम से हरदास को प्रस्तुत करता है।

वस्तुत. यहॉ नखकुट्ट के अनुसार नेपथ्य से सुनकर सूत्रधार विद्धशालभजिका के अभिनय तथा हरदास के रगमच पर आने की सूचना देकर प्रस्तावना को पूर्ण करता है और स्वय चला जाता है।[५]

---

१ विद्ध०, १/१-३.

२ वही, १/६-७.

३ सा० द०, ६/३०

४ सा० द०, ६/३५.

५ नेपथ्योक्त श्रुत यत्र त्वाकाश वचन तथा
समाश्रित्यापि कर्तव्यमामुख नाटकादिषु।
एषामामुखभेदानामेक कचित् प्रयोजमेत्।
तेनार्थमथ पात्र वा समाक्षिप्यैव सूत्रधृक्
प्रस्तावनान्ते निर्गच्छेत्ततो वस्तु प्रयोजयेत्॥ —सा० द०, ६/३९-४१.

नाटिका का इतिवृत्त प्रासगिक इतिवृत्त से रहित है। प्रथम अक के मिश्र विष्कम्भक[१] मे प्रयोजन को पूर्ण करने वाली प्रथम अर्थ प्रकृति बीज[२] की स्थापना की गई[३] भागुरायण मन्त्री के द्वारा चन्द्र वर्मा की पुत्री को सफल ढग से विद्याधर मल्ल के यहाँ मँगा लेने मे की गई उत्सुकता[४] ही प्रथम आरम्भ नायक कार्यावस्था है।[५]

नाटिका के इस प्रथम अक मे मुखसन्धि[६] एव उसके अनेकानेक अग भी विद्यमान है। नायक स्वप्न मे नायिका को देखकर उसके सम्बन्ध मे विविध प्रकार से वार्तालाप करता है और विद्धशालभजिका के रूप मे, स्फटिकभित्ति मे देखकर अत्यन्त उत्सुक हो जाता है बाद मे वह वनदीर्घिका के किनारे उसे देखता है। इस प्रकार उत्तरोत्तर बोज के प्रति उत्सुकता बढने के कारण इस प्रथम अक मे मुख सन्धि है।

मुखसन्धि के १२ अग है[७], जिनमे नाट्यदर्पणकार ने ६ अंगो का मुख सन्धि मे होना अनिवार्य कहा है।[८] ये ६ अग है—१ उपक्षेप, २. परिकर, ३ परिन्यास, ४ समाधान, ५. उद्भेद और ६ करण। इनमे विद्धशालमजिका के प्रथम अक मे मुखसन्धि के ८ अगो के उदाहरण प्राप्त होते है।

प्रथम अक के आरम्भ मे ही 'महाराज सन्दर्शनार्थम्' लिखकर बीज का उपक्षेप करना ही[९] उपक्षेप नामक अग है।[१०] आगे नायक स्वप्नदृष्टा प्रेयसी की स्थिति का वर्णन करता है[११] अत वहाँ परिकर नामक अग है।[१२] स्वप्नदृष्टा प्रेयसी का निश्चयात्मक वर्णन करने मे[१३] परिन्यास नामक अग है।[१४]

१ सकीर्णो नीचमध्यमकल्पित ।

—सा० द०, ६/५६.

२ सा० द०, ६/६५-६६.

३ विद्ध०, १/९. तथा
'अत्र किंचन मत्रबीजमस्ति, तत् कार्यासिद्धावाविर्भविष्यति।'

—विद्ध०, पृष्ठ ५.

४ विद्ध०, १/९.

५ सा० द०, ६/७१.

६ वही, ६/७६-७७.

७ वही, ६/८१-८२

८ उपक्षेपः परिकरः परिन्यास. समाहितिः।
उद्भेदः करण चैतान्यत्रैवाथ विलोभनम्॥

—ना० द० सू० ४९.

९ विद्ध० १/९.

१० ना० द० (सू०) ५०.

११ विद्ध० १/१५.

१२ ना० द० (सू०) ५१.

१३ विद्ध० १/१७-१८

१४ ना० द० (सू०) ५२.

नायक अन्तर्गृह की दीवार पर खोदे गये चित्र को देखकर पुन उसका वर्णन करता हुआ निश्चय करता है कि यह वही मेरी स्वप्नदृष्टा प्रेयसी है।[१] अत यहाँ बीज का आगमन होने के कारण समाहिति या समाधान नामक अग है।[२]

बीज का स्वल्प प्ररोह उद्‌भेद कहलाता है[३] जैसे यहाँ नायक के हृदय मे नायिका विषयक भाव 'सा दुग्ध मुग्ध०'[४] इत्यादि रूप मे स्वल्प जाग्रत हुआ है। नायक आगे अपनी प्रेयसी, जो वस्तुत मृगाकावली की ही प्रतिकृति है, को देखकर उसकी प्रशसा करता है।[५] अत यहाँ विलोभन नामक अग है।[६]

सुख व दुख की प्राप्ति विधान नामक अग है।[७] यहाँ नायक को स्वप्न मे देखी गई नायिका आरम्भ मे प्राप्त न होने पर दुःख होता है[८] किन्तु बाद मे बसन्त मे हिडोले के दृश्य[९] व खूँटी मे आकृति के अवलोकन से[१०] सुखानुभूति होती है अत. यहाँ विधान नामक अग है।

स्वप्न मे देखने के पश्चात् नायक जब उसे प्रत्यक्ष नही देख पाता तो उसे अत्यन्त विस्मय होता है कि क्या यह स्वप्न है या साक्षात् सत्य अथवा कोई मिश्रित स्थिति[११] अत यहाँ विस्मयात्मक परिभावना अग है।[१२]

द्वितीय अक मे विदूषक के अलीक विन्नाहादि प्रसग मे बीज उच्छिन्न हो गया था पश्चात् कन्दुक क्रीडा करती हुई नायिका को देखकर पुन प्रकट हो जाता है अतः यहाँ बिन्दु नामक अर्थप्रकृति है।

मृगाकावली के चली जाने पर नायक उसकी विहार भूमि आदि का अवलोकन करता है, अतः यहाँ रत्न नामक कार्यावस्था मानी जा सकती है किन्तु यह कार्यावस्था इस नाटिका मे अत्यन्त स्फुट नही है। नायक की अपेक्षा विदूषक अधिक वाचाल और उत्साही प्रतीत होता है जबकि नायक केवल वर्णन करने मे चतुर ही चित्रित किया गया है। कवि का यह दोष ही हो सकता है।

---

१ सैवेयमस्मन्मन. सारगशशिलेखा। अहो रूपसपदेतस्या—चक्षुर्मेचक० —विद्ध० १/३३
२ सा० द० ६/८५.
३ ना० द० (सू०) ५४
४ विद्ध० १/३८.
५ वही १/४०-४१.
६ सा० द० ६/८४.
७ ना० द० (सू०) ६०
८ विद्ध० १/१५
९ वही १/३२.
१० वही १/३६
११ वही १/२०.
१२ ना० द० (सू०) ६१

नाटिका के द्वितीय अक मे प्रतिमुख सन्धि है।[१] क्योकि इसमे नायक नायिका को प्रत्यक्ष देखकर कही हर्ष तथा उसके चली जाने पर खेद का अनुभव करता है। इस सन्धि के १३ अग विद्वानो ने स्वीकार किये है [२]—जिनमे पुष्प, प्रगमन, बज्र, उपन्यास और उपसर्पण नामक ५ अगो को नाट्यदर्पणकार ने आवश्यक माना है।[३]

कन्दुक क्रीडा के पश्चात् अदृश्य नायिका का अन्वेषण करता हुआ नायक भूमि पर उसकी पदपक्ति, शिखामणि, एव माला आदि देखकर उसकी वहाॅ स्थिति की सभावना करता है।[४] अत यहाॅ परिसर्प[५] नाट्यदर्पण के अनुसार अनुसर्पण[६] नामक अग है।

नेपथ्य से नायिका की स्थिति सुनकर विदूषक के इस कथन 'भो सिहाबध मे करेहि, अमाणुसी वाणी सुणीअदि'[७] मे परिहास वचनात्मक 'नर्म'[८] नामक अग है।

नायिका के विषय मे विशिष्ट कथन करने के कारण 'उत्तालालकभजनानि'[९] इत्यादि वाक्य मे पुष्प[१०] नामक अग है। विदूषक और नायक के परस्पर प्रश्नोत्तर[११] मे प्रगमन[१२] नामक अग है जहाॅ राजा विदूषक के विवाह सम्बन्ध मे प्रश्न करता है।

विदूषक के अलीक विवाह की योजना से क्रुद्ध विदूषक कुरगिका दासी के प्रति कठोर वचनो का प्रयोग कर डण्डे से सिर तोड़ देने की बात कहता हे।[१३] अत यहाॅ बज्र नामक अग है।

देवी की परिचारिका को युक्तिपूर्वक समझाता हुआ नायक उसे चली जाने का निर्देश देता है।[१४] अत यहाॅ उपन्यास नामक अग है।[१५]

---

१ सा० द० ६/७७-७८.
२ वही ६/८७-८९.
३ ना० द० (सू०) ६२
४ विद्ध० २/१२-१३
५ सा० द० ६/९०.
६ ना० द० (सू०) ७५.
७ विद्ध०, पृष्ठ ५०।
८ सा० द० ६/९१.
९ विद्ध० २/५
१० सा० द० ६/९३.
११ विद्ध०, पृष्ठ ३८ (राजा—तामेव चिरन्तनब्राह्मणीम्)
१२ ना० द० (सू०) ७२।
१३ आ दुट्ठदासि। भविस्सकुट्टिणि ! तुम पि म उअहससि, ता अमुणा तुह्मदेसजणमणकुडिलेण दण्डकट्ठेण सीस तत्ति ताडइस्स। —विद्ध०, पृष्ठ ४२.
१४ कुरगिके ! देवीमनुवर्तस्व तत्परिवारे क्रुद्धश्चारायणः ॥ —विद्ध०, प-ष्ठ ४३
१५ ना० द० (उपपत्तिरुपन्यास) सू० ७४

तृतीय अक मे प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था[१] है क्योकि इसमे नायक को नायिका मिलती है किन्तु रानी के आ जाने से उसमे व्यवधान हो जाता है। इस प्रकार नायक की समागम रुप फल की प्राप्ति अनिश्चित होने के कारण प्राप्त्याशा है। इसी अक मे गर्भ सन्धि[२] भी है क्योकि यहाँ नायिका रुप बीज का पुन पुन अन्वेषण करने से विकास हुआ है।

गर्भ सन्धि के भी १३ अग होते है।[३] नाट्यदर्पणकार ने इस सन्धि के आक्षेप, अधिबल, मार्ग, असत्याहरण और तोटक इन पॉच अगो को प्रधान मानकर आवश्यक माना है।[४]

नायिका के वियोग मे नायक चन्द्र-किरणो को सह सकने मे असमर्थ है अत वह चकोरो से प्रार्थना करता है कि वे चन्द्रिका का पान कर ले।[५] यहाँ चकोरो के द्वारा चन्द्रिकापान मे तर्क प्रस्तुत करने के कारण रूप नामक सन्ध्यग है।[६] नाट्यदर्पणकार ने अनेक रूपो के सशय मे इसे स्वीकार किया है।[७]

सत्य, तत्वगर्भित वाक्य के कथन मे मार्ग नामक अग होता है।[८] जैसे कि यहाँ नायक देवी और मृगाकावली दोनो के प्रति अपने प्रेम की यथास्थिति का वर्णन करता हुआ कह रहा है—

नो मालतीदामविमर्दयोग्य
न प्रेम नव्य सहतेऽन्तरायम्।
म्लानापि मोच्या न हि केसरस्रग्
देवी न खण्डा प्रणया कथचित्॥[९]

अत यहाँ मार्ग नामक गर्भ सन्धि का अग है।

सन्ध्याकाल मे अभिसारिकाओ का उत्कृष्ट वर्णन करते हुए कवि ने उन्हे उनकी वेषरचना के आधार पर प्रगाढ़ तिमिर की प्रिया बतलाकर अभिन्नता द्योतित की है।[१०] अत यहाँ उदाहरण या उदाहृति नामक अग है।[११]

---

१ उपायापाय शकाभ्या प्राप्त्याशा प्राप्ति सभवः। —सा० द० ६/७२.
२ फलप्रधानोपायस्य प्रागुद्भिन्नस्य किंचन्।
गर्भो यत्र समुद् भेदो ह्रासान्वेषणान्मुहुः॥ —सा० द० ६/७८-७९.
३ सा० द० ६/९४-९५
४ पचैतानिप्रधानानि गर्भेऽङ्गानि त्रयोदश ॥ —सा० द० १/५२ (सू० ७६)
५ विद्ध० ३/१५
६ सा० द० ६/९६(रूप वाक्य वितर्कवत्)
७ ना० द० सू० ७८
८ दश० १/३८.
९ विद्ध० ३/५.
१० वही ३/७.
११ सा० द० ६/९७.

अभिलषित वस्तु की उपलब्धि[1] या किसी के भाव का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना[2] क्रम नामक अग है जो इस नाटिका मे नायक के अचानक नायिका मिलन के कथन मे घटित होता है।[3]

उद्यान मे पडे हुए लेख को देखकर राजा अनुमान करता है कि यह काम लेख ही है। क्योकि यह अत्यन्त कोमल ताड़पत्र है, स्तन के चन्दन की छाप इस पर है तथा कोमल कमल तन्तुओ से बधा है।[4] यहॉ कामलेख मे कोमलता चन्दनछाप आदि हेतु है। अत यहॉ अनुमान नामक अग है।[5]

नायक नायिका से रत्यात्मिका इच्छा करता है[6] अत यहॉ प्रार्थना नामक अग है।[7]

देवी नायिका के आगमन पर विदूषक डरता हुआ नायक से प्रार्थना करता है कि मृगाकावली को शीघ्र ही छोड़ दो अन्यथा हम लोग पक्षी के समान पिजडे मे बन्द कर लिए जायेगे।[8] अत यहॉ देवी नायिका से भयभीत होने के कारण उद्वेग नामक अग है।[9]

वस्तुत गर्भ सन्धि के १३ अगो मे अनेक ऐसे अग है जो एक दूसरे शास्त्रकार से भिन्नता रखते है। कुछ ऐसे भी है जिनके स्वरुपो मे भिन्नता है। फिर भी यदि अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ इन नाटिकाओ को देखा जाय तो प्रत्येक शास्त्रकार के अनुसार प्राय सभी सन्ध्यग उपलब्ध हो सकते है किन्तु यह प्रतिपाद्य विषय के अननुकूल ही होगा।

यहॉ हमारा मुख्य प्रतिपाद्य यही है कि इन नाटिकाओ मे इन नाट्य-रूढ़ियो का संयोजन किस प्रकार हुआ है। प्रत्येक सन्धि के प्रमुख अगो की विवेचना ही हमने नाटिकाओ मे की है सभी अगो के उदाहरण ढूढ़ने का प्रयास नही है।

चतुर्थ अक मे—देवी के द्वारा पुरुषवेष धारिणी मृगाकावली का स्त्रीवेश मे राजा से विवाह कर राजा को छलने की जो आलोचना की गई थी। उसकी सूचना राजा को प्राप्त हो गई थी। राजा को यह ज्ञात था कि वह स्त्री है पुरुष

१ दश० १/३९.
२ सा० द० ६/९७
३ विद्ध० ३/२६.
४ वही ३/२१.
५ अनुमा निश्चयो लिंगात्। —ना० द० (सू०) ७९.
६ विद्ध०, ३/२७.
७ ना० द० सू० ८०।
८ विद्ध०, पृष्ठ ९१ (त्वरित विसृज्यता——)
९ उद्वेगोभी। चौर नृप अरि नायिकादिभ्योभयमुद्वेगः। —ना० द० (सू०) ८३ एवं वृत्ति

नही। अत जब रानी की दासी कुरगिका राजा से विवाह हेतु चलने का निवेदन करती है तो राजा कहता है—'यथाह देवी। शान्तम्। यथा दिशति देवी[१] यहॉ तक नियताप्ति है क्योकि राजा को समस्त विघ्नो के समाप्त हो जाने से अब नायिका प्राप्ति का निश्चय है अत वह रानी की प्रार्थना को आदेश मानकर पालन करता है।

देवी नायिका को अपने मामा चन्द्रवर्मा के दूत से यह जानकर कि मृगाक वर्मा लडका नही लडकी है और उसका यथार्थ नाम मृगाकावली ही है, वह अत्यन्त विस्मित होती है और अपनी त्रुटि को सुधारने के लिए वह प्रत्यक्षत यह कथन करती है कि मैने मामा के सन्देश के बिना ही इसका विवाह कर दिया है। राजा इस पर विचार विमर्श कर उसकी प्रशसा करते हुए कहते है कि अनुकूल देव सबका कल्याण करता है।[२] यहॉ सभी के अनुकूल देवत्व के माध्यम से कवि ने अपने भी अनुकूल देव का कथन किया है अत यहॉ तक अवमर्श या विमर्श सन्धि है।[३]

इस सन्धि के भी १३ अग है। नाट्यदर्पणकार ने इन १३ मे शक्ति, प्ररोचना, दान और व्यवसाय रुप ४ अगो को प्रधान तथा शेष ९ को गौण अगो की मान्यता दी है.।[४]

नायक विदूषक के मुख से देवी नायिका का विदूषक की पत्नी के निर्देश पर और अधिक श्रृगार करना सुनकर राजा उन दोनो के दोषो का कथन चतुरता के साथ करता हुआ कहता है—'यदरिष्टमधिरुढा कारवल्ली-वल्लरी किमुच्यते कटुकत्व प्रति न कापि महती वार्ता।'[५] यहॉ 'एक तो करेला कडुवा दूजे नीम चढा, वाली कहावत से देवी नायिका का करेले के समान कडुवा होना तथा विदूषक पत्नी नीम के सदृश कडुवी से सम्पर्क रखना दोनो दोषाधायक है अत यहॉ दोष प्रख्याप नामक अपवाद अग है।[६]

देवी के द्वारा मामा के सन्देशानुसार नायक के प्रति ऋजुभाव धारण कर विवाह की अनुमति देने मे[७] विरोध की शान्ति होने से शक्ति नामक अग है।[८]

---

१ विद्ध०, पृष्ठ १०७।
२ वही, पृष्ठ ११५।
३ दश०, १/४०.
४ ना० द० (सू०) ९०।
५ विद्ध०, पृष्ठ १००।
६ दोषप्रख्यापवादः स्यात्। — दश० १/४५.
७ मादुल सन्देशमतरेण वि मए परिणाविदा एव्व एसा। —विद्ध०, पृष्ठ ११४.
८ विरोध शमन शक्ति।—दश० १/४६

नायक नायिका के लिए मानसिक रूप से पछताता हुआ श्रम का अनुभव करता है और कहता है कि उसके वीणावादन करने पर मैने कोयल का स्वर नही सुना, और उसके हावभाव युक्त हाथो से मदिरापान नही किया[१] यहाँ मानसिक खेद व्यक्त होने से उसका मानसिक श्रम अभिव्यजित होता है अत यहाँ श्रम नामक अग है।[२]

देवी नायिका की प्रशसा करने वाले दूत के इस कथन—'देवि, भवादृशीना बुद्धयो यदृच्छयापि प्रवृत्ता कार्यमनुरुन्धाना परिणमन्ति।'[३] मे प्रसग नामक विमर्श सन्धि का अग है क्योकि यहाँ गुरुकीर्तन है।[४]

इसी प्रकार देवी के मामा के दूत द्वारा अपने स्वामी के सन्देश कथन मे[५] निर्वहण सन्धि मे होने वाले प्रयोजन को पूर्ण करने का निर्देश है अत यहाँ प्ररोचना[६] नामक सन्ध्यग है जो नाट्य दर्पणकार की दृष्टि मे अवश्य होना चाहिए।

चतुर्थ अक मे कार्य नामक अर्थ प्रकृति है[७] क्योकि इसमे नायक को नायिका प्राप्ति एव चक्रवर्ती साम्राज्य का लाभ रूप फल प्राप्त हो जाता है। जैसा कि स्वय राजा का कथन है—,

'देवी क्रोध से युक्त नही हुई, मृगाकावली मुझे प्राप्त हो गई, मत्री के नीतिबल और सेनापति के पराक्रम से चक्रवर्ती की पदवी भी मिल गई अब क्या शेष है जिसके लिये प्रार्थना करूँ।'[८]

नायक के इसी कथन तक फलागम नामक अवस्था है।[९] साहित्यदर्पणकार ने सम्पूर्ण फलो की उपलब्धि मे फलागम अवस्था मानकर[१०] यह सकेत किया है कि नायिका या पृथ्वी आदि एक की प्राप्ति के साथ दूसरी वस्तु की उपलब्धि भी होनी चाहिए। सम्भवत उन्होने नाटिकाओ की प्रकृति पर विशेष ध्यान दिया है क्योकि सभी नाटिकाओ मे प्राय· दो फलो की उपलब्धि होती है। जैसे रत्नावली मे नायिका एव चक्रवर्तित्व की, इसी प्रकार इसमे भी नायिका एव चक्रवर्तित्व लाभ हुआ है।

---

१ विद्ध० ४/८.
२ सा० द० ६/१०५ (मनश्चेष्टा समुत्पन्नः श्रम. खेद इति स्मृत)
३ विद्ध०, पृष्ठ ११५।
४ सा० द० ६/१०४.
५ विद्ध०, ४/२०.
६ सा० द०, ६/१०६.
७ अपेक्षित तु यत्साध्यमारम्भो यन्निबन्धन.॥
समापन तु यत्सिद्ध्यै तत्कार्यमिति समतम्। —सा० द० ६/६९-७०.
८ विद्ध०, ४/२६.
९ ना० द० (सू०) ४२ (साक्षादिष्टार्थ सम्भूतिर्नायकस्य फलागम.)
१० सावस्था फलयोग. स्याद्य· समग्रफलोदय·।
—सा० द० ६/७३

शास्त्रकारो ने निर्वहण सन्धि के १४ अग स्वीकार किये है—

अनुभूत अर्थ का कथन करना निर्णय नामक निर्वहण सन्ध्यग है।[१] अनुभूत शब्द का अर्थ करते हुए नाट्यदर्पणकार ने लिखा—ज्ञेयेऽर्थे सन्दिहान अप्रतिपद्यमान वा प्रति पदानुभवस्यानुभूतस्यार्थस्य निर्णयार्थ कथन तत् ज्ञेयार्थ निर्णयात् निर्णय ।[२] इससे विद्धशालभजिका का वह अश जो सेनापति ने दूत भेजकर राजा को ज्ञात कराने हेतु लिखकर भेजा है, गृहीत हो जाता है क्योकि वहाँ की विजय का ज्ञान अभी तक राजा को न होने के कारण वह ज्ञेय अर्थ है अत यहाँ[३] निर्णय नामक अग है।

अभीष्ट अर्थ की उपलब्धि को 'आनन्द' कहा जाता है।[४] नायक के द्वारा 'देवी कोपकषायित'[५] इत्यादि कथन करने मे यह अग घटित होता है।

वरदान की प्राप्ति का नाम 'काव्यसहार' है[६] जो यहाँ मत्री भागुरायण के 'आ गगापात पूत से लेकर' कि ते भूय प्रियमुपहरामि[७] अश तक है। नाट्यदर्पणकार ने 'वरेच्छा काव्यसहार[८] लिखकर और अधिक स्पष्ट किया कि 'वर' अर्थात् वरदान (ईप्सित दातुमभिलाषो वरेच्छा) देने की इच्छा ही वरेच्छा है।

प्राय सभी नाटिकाओ मे भरतवाक्य का प्रयोग कर उसमे राजा एव जगत् के कल्याण की मगल कामना की जाती है अत नायक के इस कथन—'वामाग पृथुल स्तन०'[९] मे प्रशस्ति[१०] नामक निर्वहण सन्धि का अग घटित होता है।

विद्धशालभजिका नाटिका मे भरतमुनि प्रभृति प्राचीन आचार्यों के अनुसार अनेक नाट्यालकारो का प्रयोग स्थान-स्थान पर प्राप्त होता है किन्तु पताका स्थानको का स्पष्ट प्रयोग नही है।

नाटिका मे कैशिकी वृत्ति का बाहुल्येन प्रयोग होता है यह निर्दिष्ट किया जा चुका है तदनुसार इस नाटिका मे भी नायक की विविध क्रीडाओ मे, नायिका कृत विविध हास्यजनक घटनाओ मे यह वृत्ति है। कैशिकी के 4 अग नर्म, नर्मस्फूर्ज, नर्मस्फोट और नर्मगर्भ का यथास्थान प्रयोग प्राप्त होता है। सामान्य

---

१ ना० द० (सू०) १०७।

२ वही, पृष्ठ १८१।

३ विद्ध०, पृष्ठ ११८-११९।

४ सा० द०, ६/११२.

५ विद्ध०, ४/२६

६ वरप्रदानसम्प्राप्तिः काव्यसहार इष्यते। —सा० द० ६/११४.

७ विद्ध०, पृष्ठ ११९-२०।

८ ना० द० (सू०) ११५ (एव वृत्ति)

९ विद्ध०, ४/२७.

१० सा० द० ६/११४. ना० द० स० ११६

हास्य, श्रृगारयुक्त हास्य और भययुक्त हास्य जब चातुर्यपूर्ण होता है तो वह नर्म नामक कैशिकी वृत्ति का अग होता है।[१]

केलि कैलाश की अन्तर्भित्ति पर अकित विदूषक के चित्र को जब नायक उसे दिखा रहा है तो विदूषक कहता है कि मेरी पत्नी मुझे साक्षात् कामदेव कहती है, इस पर राजा हास्य करता हुआ कहता है कि 'अए किमुपवने शुको वदति'[२] यहॉ शुद्ध हास्य है।

नेपथ्य से नायिका की स्थिति का कथन सुनकर विदूषक कहता है—'भो सिहाबध मे करेहि, अमाणुसी वाणी सुणीअदि।'[३] यहॉ विदूषक हृदय मे भय है अत भयात्मक हास्य होने के कारण यहॉ भी नर्म नामक कैशिकी का अग है।

विदूषक का अलीक विवाह प्रकरण स्वत श्रृगारात्मक हास्य का उदाहरण है, उसमे भी मुख्य रूप से देवी नायिका द्वारा विदूषक के लिए यह कथन 'मेहले । तुरिद देवावेसु भामरीओ, जेण प्पज्जलिदे हुदवहे लाअजलीआ मुचेदि।'[४] श्रृगारात्मक हास्य होने के कारण कैशिकी वृत्ति के नर्म अग का उदाहरण है।

तृतीय अक मे नायिका मृगाकावली को नायक से मिलने का सुअवसर मिलता है और वह रात्रि से प्रार्थना करती है 'अवदि मअकमडणे जामिणि। सजामा होहि'[५] (भगवति मृगाकमण्डने यामिनी। सयामा भव।) कि वह दीर्घ हो जाये तभी क्षणभर बाद नेपथ्य से देवी नायिका के माधवीमण्डप को देखने हेतु आने की सूचना प्राप्त कर उसकी सखी विचक्षणा कहती है—'भट्टा विसज्जीअदु प्पिअसही'[६] इससे उसका समागम जहॉ आनन्दात्मक है वही अन्त भययुक्त हो गया है। अत यहॉ नर्म स्फूर्ज नामक सन्ध्यग है।[७]

नायक नायिका की स्थिति का चित्रण करते हुए कहता है कि—'इस नायिका की चचल भौह, ऊपर को उठी हुई अगुलियॉ, लक्ष्यहीन नेत्र और खिला हुआ अधरोष्ठ यह सूचित कर रहा है कि इसका मन किसी कार्य मे लीन है।'[८]

यहॉ नायिका के भावो से उसकी श्रृगार चेष्टा का अल्प आभास होने के कारण नर्म स्फोट नामक कैशिकी वृत्ति का अग है।[९]

---

१ सा० द० ६/ १२४-१२६
२ विद्ध०, पृष्ठ २२-२३।
३ वही, पृष्ठ ५०।
४ वही, पृष्ठ ४०।
५ वही, पृष्ठ ८९।
६ विद्ध०, पृष्ठ ९०।
७ सा० द० ६/१२७ (नर्मस्फूर्ज· सुखारम्भो भयान्तो नवसंगमः)
८ विद्ध०, पृष्ठ ७७।
९ सा० द० ६/१२७

तृतीय अक मे मृगाकावली के विस्रब्धालाप को सुनने के लिये नायक कदलीकुज मे छिपता है[१] अत प्रच्छन्नवर्ती होने के कारण यहाँ नर्म गर्भ नामक कैशिकी वृत्ति का चतुर्थ अग है।

इन चार अगो के अतिरिक्त भी इसमे स्त्री पात्रो के बाहुल्य, प्रणयालाप, और भूयसा विरहोक्तियो के कारण प्रारम्भ से अन्त तक कैशिकी वृत्ति है।

नाटिका के आरम्भिक पद्यो मे भारती वृत्ति का विवेचन किया जा चुका है। यह वृत्ति वाचिक वृत्ति मानी गई है।[२]

सात्वती और आरभटी वृत्तियो का प्रायश अभाव है।

सूच्य इतिवृत्त को प्रदर्शित करने के लिए जहाँ प्रथम अक मे मिश्र विष्कम्भक का प्रयोग किया गया है वही शेष तीनो अको मे निम्न पात्रो द्वारा सूचना दी जाने के कारण प्रवेशको का प्रयोग है।

तृतीय अक के अन्त मे नेपथ्य से देवी के माधवी मण्डप देखने हेतु आने की सूचना दी गई है[३] अत यहाँ चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक है।[४]

नाटिका का नाम नायिका के नाम पर होना चाहिए ऐसा विश्वनाथ का स्पष्ट मत है।[५] किन्तु इस नाटिका की नायिका मृगाकावली होते हुए भी नाटिका का नाम मृगाकावली न होकर विद्धशालभजिका है। इससे राजशेखर के विषय मे किसी प्रकार का आक्षेप नही किया जा सकता कि उन्होने नाटिका की इस रूढि का पालन नही किया। क्योकि नायक स्वप्न मे जिस नायिका को देखता है जगकर उसकी मूर्ति शालभजिका के ही रूप मे उसे प्रत्यक्ष होती है और वह उसी को माला समर्पित करता है। वस्तुत· यही शालभजिका जो यथार्थ मे मृगाकावली की ही प्रतिभा है नायक की प्रीति का आलम्बन है। मृगाकावली तो मृगाक वर्मा नाम से पुरुषवेष मे ही अन्त तक रहती है। चतुर्थ अक मे उसके पिता के दूत के समागम पर उसका रहस्योद्भेद होता है। अत नाटिका का विद्धशालभजिका यह नाम नायिका के नाम पर ही माना जाना चाहिए।

नाट्य के लिए निर्दिष्ट समस्त अपेक्षित रूढ़ियो का पालन राजशेखर ने उतनी ही तत्परता से किया है जितनी तत्परता से श्रीहर्ष ने।

---

१ विद्ध०, पृष्ठ ७७।
(राजा—तत कदलीलतान्तरितावेव शृणुवस्तावदस्या विश्रम्भजल्पितानि।)

२ 'दि वर्बल वृत्ति इज अदरवाइज नोन ऐज भारती'
—लाज एण्ड प्रेक्टिस आफ सं० ड्रामा०।

३ विद्ध०, पृष्ठ ९०।

४ अन्तर्जवनिकासस्थ सूचनार्थस्य चूलिका। —सा० द० ६/५८.

५ नाटिकासट्टकादीना नायिकाभिर्विशेषणम्।
—सा० द० ६/१४३.

आचार्य भरत सागरनन्दिन एव विश्वनाथ ने इन रुढियो के अतिरिक्त रसपोष की दृष्टि से नाटक मे ३६ नाट्य लक्षण, ३३ नाट्यालकार १३ वीथी के अग एव १० लास्य के अगो के यथासम्भव प्रयोग का उल्लेख किया है।[१]

नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से नाटकादि के सविधानक मे जो महत्वपूर्ण स्थान सन्धि सन्ध्यगो का है उतना इनका नही। यही कारण है कि अनेक शास्त्रकार नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र गुणचन्द्र, धनजय, धनिक आदि ने इनका उल्लेख नही किया। वीथी तो स्वय मे एक नाट्य भेद तथा भारती वृत्ति का अग है अत उसके १३ अगो को तो सभी ने स्वीकार किया ही है।

नाटक लक्षण रत्नकोश मे सागरनन्दी ने स्पष्ट कहा है कि सभी नाट्यलक्षण और सभी नाट्यालकार एक साथ एक रचना मे नही आ सकते। इनके न आने से नाट्य मे दोष नही आता अपितु इनकी योजना से सौन्दर्य वृद्धि होती है।[२]

नाटिका के सम्बन्ध मे स्पष्ट किया जा चुका है कि चार अको की लघुकलेवरात्मिका कथावस्तु मे नाट्य की वे समस्त रूढियॉ जो नाटक या प्रकरण के इतिवृत्त मे होती है—(जिनका अभी उल्लेख किया गया है), नही निविष्ट की जा सकती है। फिर भी नाट्य लक्षणो और नाट्यालकारादिको के अनेक अग इन नाटिकाओ मे उपलब्ध होते है।

प्रस्तुत नाटिका विद्धशालभजिका मे नाट्यलक्षणो की स्थिति इस प्रकार है—

शयनोत्थित नायक स्वप्नदृष्टा नायिका का वर्णन करता हुआ कहता है—'तद्वक्त्र यदि मुद्रिता शशि-कथा० इत्यादि।[३] यहॉ व्यतिरेक अतिशयोक्ति आदि अलकार तथा समता आदि गुणो की स्थिति होने के कारण भूषण नामक लक्षण है।[४]

नायक के द्वारा नायिका मृगाकावली के रूपसौन्दर्य की प्रशसा करने पर विदूषक कहता है—'यादृशश्चित्रकरस्तादृशी चित्रकर्मरूपशोभा, यादृश कविस्तादृशी काव्य-बन्धच्छाया' नायक पुन इसका उत्तर देता हुआ कहता है—'युज्यते, आकृतिमनुगृह्णन्ति गुणाः'[५] यहॉ परिमित वर्णो मे विचित्रार्थ की वर्णना होने से अक्षरसघात नामक लक्षण है।[६]

नायिका के विरह से खिन्न नायक जब चन्द्र की निन्दा करते समय अचानक नायिका को देखता है तो वह कहता है—'सैवेय मृगाकावली' तो विदूषक कहता

---

१ सा० द० ६/१७०-७१.

२ लक्षणान्यप्यलकाराः कार्त्स्न्येनैकत्रदुर्लभाः।
एतेषामप्यसाकल्य शोभा सृजति नाटके॥
अकानि सालकृति लक्षणादि कार्याणि कार्याणि हि नाटकेषु।
अतोऽन्यथावृत्तिषु पण्डितेषु न दण्डमाकर्षति शास्त्रकारः॥ —ना० ल० र० को० १८७-८८.

३ विद्ध०, १/१४.

४ ना० ल० र० को० १५१।

५ विद्ध०, पृष्ठ २५।

६ सा० द० ६/१७६.

है 'भो मृगाकावल्येवेषा। न खल्वेकस्य चन्द्रस्य एतावन्मात्र कान्ति-विस्तार'[१] यहाँ मृगाकावली शब्द का समानार्थक मृगाक-अवली चन्द्रमा की पक्ति अर्थ कर समर्थन करने के कारण उदाहरण नामक लक्षण है।[२]

अपने प्रिय मित्र विदूषक के आग्रह पर उसके सन्तोष के निमित्त नायक कहता है—'सखे। कथ न कथयामि, लघूभवत् सुहृत्सचारितरहस्य हि चेत सविभक्तचिन्ताभारमिवभविष्यति।'[३]

यहाँ युक्ति पुरस्सरात्मक कथन उद्देश्यपूर्ण है अत हेतु नामक लक्षण है।[४]

अपनी स्वप्नगता प्रेयसी को देखकर नायक विदूषक से बतला रहा है कि यह नायिका किसी पुराने बह्मा की कृति हो सकती है क्योकि चन्द्रमा जड, कदली अत्यन्त शीतल, और इन्दीवर विसूत्रित है। अत ये इसके निर्माता नही हो सकते। ऐसा भी क्या कभी होता है कि सूर्य चन्द्रिका को उत्पन्न करे।[५]

यहाँ दृष्टान्त[६] नामक अग है।

इस प्रकार सभी अगो उपागो का यथासम्भव कवि ने सन्निवेश करने का प्रयत्न किया है।

कर्णसुन्दरी—

उपलब्ध सस्कृत साहित्य मे कालक्रम मे कर्णसुन्दरी का तृतीय स्थान है। नाट्य-रूढियो की दृष्टि से जहाँ हर्ष की रत्नावली परवर्ती नाट्यकारो के लिए व्यापक रूप से प्रेरणा स्रोत है वही बिल्हण के लिए विशेषत. राजशेखर की विद्धशालभजिका आदर्श है। क्योकि कथानक का आरम्भ और घटनाओ की योजना लगभग एक जैसी ही है। दोनो नाटिकाओ के नायक स्वप्न मे प्रथमत नायिका को देखकर बाद मे उसकी अनुकृति रूप मे नायिका का अवलोकन करते है तथा उसके प्रति कामाभिभूत होते है।

नाट्यशास्त्रीय नियमो के अन्तर्गत मुख्यत इतिवृत्त के भेद, सन्धि, सन्ध्यग, सन्ध्यन्तर और नाट्य लक्षण आदि ही मुख्यतः परिगणनीय है। यह स्पष्ट किया जा चुका है। नाटिका की मूल विशेषताएँ तो उसकी सत्तात्मक आवश्यकता होने से अनिवार्य है ही, अत यहाँ कर्णसुन्दरी को इतिवृत्तादि सम्बन्धी विशिष्ट शास्त्रिय नियमो की परिधि मे परीक्षित किया जा रहा है।

---

१ विद्ध०, पृष्ठ ७७।
२ सा० द० ६/१७७.
३ विद्ध०, पृष्ठ ९।
४ ना० शा० १६/१०
५ विद्ध०, २/४.
६ सा० द० ६/१७९.

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि महाकवि बिल्हण पहले कवि बाद मे नाटिकाकार है। यही कारण है कि इसमे पद्यो का बाहुल्य और वर्णनो का आधिक्य है। कथानक अत्यन्त सीमित एव लघु है।

दशरुपक के अनुसार इतिवृत्त के द्विविध भेदो[१] मे प्रासगिक इतिवृत्त (पताका, प्रकरी) नही है।

नाट्य के प्रयोजन की पूर्णता के लिये कारणभूत[२] इतिवृत्त को ५ भागो मे विभाजित किया गया—बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य।[३] इनका शास्त्रीय नाम अर्थप्रकृतियॉ रखा गया।

कर्णसुन्दरी मे बीज, बिन्दु और कार्यरूप तीन अर्थ प्रकृतियॉ स्पष्ट है। चतुर्थ अक मे सेनापति वीरसिह के द्वारा किया गया युद्ध-वर्णन[४] नायक के एकच्छत्र साम्राज्य प्राप्ति का अग होने के कारण प्रकरी[५] रूपा अर्थप्रकृति मानी जा सकती है।

प्रस्तावना के मध्य नेपथ्य से भ्रमर की कुन्दलता के प्रति उपेक्षा एव नवमाधवी के प्रति आकर्षण का वर्णन करने मे नायक का देवी नायिका की अपेक्षा किसी अन्य के प्रति विशिष्ट प्रेमभाव की सूचना प्राप्त होती है[६] साथ ही "विद्या धरेन्द्र तनयाम्०" इत्यादि पद्य मे नायक का विद्याधर राजपुत्री से विवाह और भुवनत्रय के साम्राज्य प्राप्ति का स्पष्ट विवरण है।[७] जो इतिवृत्त का बीज रूप है।[८]

प्रथम अक के अन्त मे नायक देवी के क्रुद्ध हो जाने के कारण उसे मनाने के बाद पुन द्वितीय अक के आरम्भ मे अपनी प्रेयसी कर्णसुन्दरी का उत्कण्ठापूर्वक स्मरण करता है।[९] अत. यहॉ बिन्दु नामक[१०] अर्थप्रकृति है। तृतीय अक मे भी यही प्रकृति जल मे तेल बिन्दु की भॉति प्रसृत है।

चतुर्थ अक मे नायक के द्वारा नायिका की प्राप्ति या नायक नायिका का विवाह हो जाने मे कार्य नामक अर्थ प्रकृति है।

---

१ दश० १/११-१३

२ बीज पताका प्रकरी विन्दु कार्यं यथारुचि।
फलस्य हेतवः पंच चेतनाचेतनात्मकाः ॥ —ना० द० (सू०) २५.

३ ना० शा० १९/२२.

४ कर्ण० ४/१७-२१

५ दश० १/१३.

६ कर्ण० १/९.

७ वही १/१३.

८ ना० द० (सू०) २६.

९ कर्ण० २/१४.

१० सा० द० ६/६६.

अर्थप्रकृतियो के पश्चात् पच कार्यावस्थाएँ-आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम नायक आदि के प्रधान व्यापार माने गये है। जिनमे नाटिका का फल पूर्ण हो सके।[१] इन कार्यावस्थाओ का नाट्य मे प्रयोग नितान्त आवश्यक है क्योकि नायक आदि के व्यापार है।

नेपथ्य से विश्रामावसर की सूचना मिलने के उपरान्त महामात्य प्रणिधि नायक को नायिका प्राप्ति के लिए उचित कार्य करने हेतु उत्साह का प्रदर्शन करता है[२] अत यहाँ आरम्भ नामक कार्यावस्था है।[३]

द्वितीय अक मे अत्यन्त विरहोत्कण्ठायुक्त नायक परेशान होकर कहता है—'तत्क्वायमात्मा विनोदयितव्य' तो विदूषक के निर्देश पर चित्राकित रूप मे उसे देखने का प्रयत्न करता हुआ कहता है—'सखे, युक्तमुक्तम्। तदुपदिश पन्थानम्'।[४] अत यहाँ 'यत्न' नामक कार्यावस्था है।

तृतीय अक मे देवी नायक की परीक्षा के लिए कर्णसुन्दरी के वेश मे नायक के समक्ष आती है और नायक उसके प्रति अनुरागपूर्ण कथन करता है तो देवी उस पर क्रुद्ध हो जाती है। राजा अनुनय विनय करता हुआ पादपतन तक करता है। किन्तु देवी क्रुद्ध होकर चली जाती है।[५] यहाँ देवी के क्रुद्ध हो जाने से नायिका प्राप्ति के प्रति सन्देह[६] हो जाने के कारण प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था है।

चतुर्थ अक मे देवी के द्वारा राजा को वचित करने के लिये अलीक विवाह का आयोजन किया गया जिसमे देवी अपनी बहिन के पुत्र को कर्णसुन्दरी के वेश मे लाकर राजा को धोखा देना चाहती थी किन्तु महामात्य की योजना से वह स्वय धोखा खा गई और वह साक्षात् कर्णसुन्दरी को ही समर्पित कर देती है।[७] राजा उस समय अपनी विरहाग्नि की समाप्ति का कथन करता है।[८] अत यहाँ नियताप्ति नामक कार्यावस्था है।

दशरूपक आदि मे उदाहृत रत्नावली के प्रसग के अनुसार[९] यदि नियताप्ति का अर्थ 'वह कारण माने कि जिससे फल प्राप्ति का निश्चय हो' जैसा कि रत्नावली के उदाहरण मे है तो तृतीय अक की समाप्ति पर विदूषक के इस कथन कि—'भो कि अरण्ण रोदणेण। देवी एव्व अणुसरीअदु' के तुरन्त बाद

१ सा० द० ६/७०-७१

२ 'यत्पुनदेवो——यथोचित विरचयामि।' —कर्ण०, पृष्ठ ६.

३ दश० १/२०.

४ कर्ण०, पृष्ठ २४।

५ वही, पृष्ठ ४५-४६।

६ कर्ण० ४/६

७ वही, पृष्ठ ५०-५२।

८ वही, ४/१६

९ दश० १/२१ की वृत्ति।

राजा का यह कथन 'एवमिति'[1] इस अवस्था का उदाहरण हो सकता है किन्तु यह उचित प्रतीत नही होता क्योकि प्रकरी और नियताप्ति के सयोग मे विमर्श सन्धि की स्थिति का निर्देश विश्वनाथ ने किया है।[2] किन्तु वह सन्धि वहाँ नही है।

समग्र फल की प्राप्ति पर फलागम नामक अवस्था होती है।[3] समग्र फल का अभिप्राय स्त्रीलाभ एव चक्रवर्तित्व या पृथ्वीलाभ इत्यादि दोनो की प्राप्ति होना है। यहाँ नायक (राजा) को दोनो वस्तुओ की प्राप्ति होने पर 'दृष्ट देव्या किमपि०'[4] इत्यादि स्थल मे फलागम नामक कार्यावस्था है।

सस्कृत नाट्यो मे सधियो का सर्वतो विशिष्ट महत्व है। सन्धियो की सख्या ५ और सन्ध्यगो की ६४ है।

प्रथम अक मे बीज की सूचना दी जाने के कारण इसमे प्रथम 'मुख' सधि है।[5] इस सन्धि के १२ अग होते है।[6] जिनमे इस नाटिक मे ९ अगो का प्रयोग प्राप्त होता है।

बीज के न्यास मे उपक्षेप अग होने के कारण 'णवमाहवीए०'[7] इत्यादि पद्य मे उपक्षेप अग है। इस बीज की पुष्टि रुप बाहुल्य विद्याधरेन्द्रतनयामित्यादि पद्य[8] मे होने के कारण इसमे परिक्रिया या परिकर नामक अग है।[9]

मन्त्री प्रणिधि को विश्वास है कि देवी के अत्यन्त चतुर होने पर भी मेरे द्वारा बारम्बार कर्णसुन्दरी का दर्शन नायक को कराने से परस्पर अनुराग की वृद्धि होने पर कार्य की पूर्णता होगी ही।[10] अत यहाँ परिन्यास नामक अग है।

नायिका के गुणो का कथन स्वय नायक कर रहा है।[11] यद्यपि यहाँ सीधा नायिका का वर्णन नही है फिर भी नायिका का ही माना जा सकता है क्योकि

---

१ कर्ण०, पृष्ठ ४६।

२ यथासख्यमवस्थाभिराभिर्योगात्तु पंचभि।
पचधैवेतिवृत्तस्य भागा स्यु, पच सधय॥
—सा० द० ६/७४, दश० १/२२, २३.

३ अभिप्रेत समग्र च प्रतिरुप क्रियाफलम्।
इतिवृत्ते भवेद्यस्मिन् फलयोग. प्रकीर्तित॥ —ना० शा० १९/१४.

४ कर्ण० ४/२३

५ मुख बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा।
—दश० १/२४.

६ दश० १/२५-२६.

७ कर्ण० १/९.

८ वही १/१३

९ सा० द० ६/८३.

१० कर्ण० १/२१

११ वही १/२६-२९.

नायक ने स्वप्न मे जिसे देखा है, वह भी कर्णसुन्दरी ही है। अत यहाँ विलोभन नामक सन्ध्यग है।

नायक बसन्त की उन्मादक स्थिति का चित्रण करता हुआ करता है कि 'कोयल का कूजन, आम्र पर बौर का आरोप, पुष्पो का खिलना ये सभी विरहाग्नि के अहकार को जीवित रखने का उपक्रम है।'[१] इस पर विदूषक वहाँ नायिका की स्थिति का कथन करता है जिसका समर्थन विदूषक करता है, अत यहाँ युक्ति नामक सन्ध्यग है।

चित्र मे लिखी हुई अपनी प्रेयसी को देखकर नायक उसकी प्रशसा करता हुआ सुखानुभूति प्राप्त करता है,[२] अत यहाँ प्राप्ति नामक सन्ध्यग है।

'आयास किमय'[३] इत्यादि पद्य के द्वारा राजा द्वारा की गई भित्ति मे चित्रित नायिका की प्रशसा को सुनकर देवी ने प्रश्न किया 'कस्स कदे अज्जउतो एव मन्तेदि'[४] तो नायक देवी की ही प्रशसा का कथन करता है किन्तु आगे स्वय जब देवी चित्र मे कर्णसुन्दरी को देखती है तो अपनी सखी हारलता से कहती है—'हारलदे पेक्ख---------तुम तु मम ण पत्तिज्जसि०' इत्यादि।[५] यहाँ देवी नायिका के द्वारा बीज का युक्तिपूर्वक उपस्थापन करने के कारण समाधान नामक अंग है।

नायक चन्द्रकलाओ का वर्णन करता हुआ विरह वेदना की स्वानुभूति को प्रकट कर अपने दुख की अभिव्यक्ति कर देता है।[६] अत. यहाँ पर विधान नामक अग है।

प्रथम अक की समाप्ति पर देवी क्रुद्ध होकर जाते समय राजा से कहती है—'अज्जउत्त, इद णअणविणोदण मए आगदुअ विनिवट्टिव जेव्व। सपद पेक्खिदव्वम्'[७] यहाँ देवी का अग्रिम अक मे क्रुद्ध होकर नायक के विपरीत कार्य करने की अभिव्यजना होने से करण नामक अग है।

द्वितीय अक मे नायक कृत विरह वर्णनो से जिस अलक्षित नायिका का ज्ञान हुआ था तथा देवी के क्रोध से जिसका क्षणभर प्रकरण ही समाप्त हो गया था बाद मे उसी नायिका के द्वारा स्वकीय सन्तप्तावस्था का परिचय देने के कारण उद्भेद हो गया है, अत इस द्वितीय अक मे प्रतिमुख नामक सन्धि

---

१ वही १/४८
२ वही १/५२-५३
३ वही १/५४
४ कर्ण०, पृष्ठ १७।
५ वही, पृष्ठ १८।
६ वही, १/४६.
७ कर्ण०, पृष्ठ १८।

है। इस सन्धि के १३ अग होते है[१] जिनमे स्पष्टत इस नाटिका मे १० अगो का प्रयोग प्राप्त होता है।

नायक देवी के क्रुद्ध हो जाने पर भी नायिका को भूल जाने के लिये तैयार नही है अपितु वह आग मे कूदने एव कृपाणधारा पर गिर जाने को तैयार है,[२] इससे नायक की नायिका के प्रति रति भावना का ज्ञान होने के कारण विलास नामक प्रतिमुख सन्ध्यग है।

नायक नायिका की खोज कर रहा है। यह विदूषक के कथन से स्पष्ट है कि—'भो, कि एत्थ सुण्णदेउले। एहि। लीलावणव्मन्तरे परिव्ममामो। कदा वि कथ वि कुसुमाओ उच्चिणन्ती लदाओ सिचन्ती वा सरसीजलम्मि णहाणविधि करन्ती वा सा हुविस्सदि।'[३] यहाँ दृष्ट बीज नायिका की खोज करने के कारण परिसर्प नामक अग है।[४]

चन्द्र इत्यादि शीतल पदार्थो से कामपीड़ा के अत्यन्त उद्दीप्त होने के कारण इनके प्रति नायिका के द्वेष्यभाव मे[५] विद्युत नामक अग है।

नायक का मिलन होने पर नायिका के 'हिअअ, मणोरहाण वि उपरि वट्टसि' कथन से सन्ताप की शान्ति का आभास प्राप्त होता है।[६] अत यहाँ शम नामक प्रतिमुख सन्ध्यग है।

नायक के समागम पर नायिका की सखी उसे उसके समीप बिठाने का प्रयत्न करती है किन्तु नायिका कहती है—'अवेहि पडिहास शीले'।[७] यहाँ नायिका के हृदय मे धैर्य का सचार होने के कारण **नर्मद्युति** नामक अग है।

नायिका का अपनी सखी के साथ किये गए प्रश्नोत्तरात्मक वार्तालाप[८] मे **प्रगमन** नामक अग है। क्योकि यहाँ उत्तरोत्तर नायक नायिका का एक दूसरे के प्रति अनुरागरूप बीज प्रकट होता है। किन्तु नायक जब नायिका का आलिंगन करना चाहता है तो विदूषक के 'भोदि, एसा देवी आगदा' कथन से देवी की उपस्थिति की सूचना मिलते ही नायिका उसे छोड़ कर चली जाती है।[९] अतः यहाँ **निरोधन** नामक अग है।[१०] क्योकि देवी के समागम की सूचना से नायक नायिका के मिलन मे अवरोध उत्पन्न हो गया है।

---

१ दश० १/३०

२ कर्ण० २/९.

३ वही, पृष्ठ २५

४ इष्टनष्टानुसरण परिसर्पश्च कथ्यते।

—सा० द० ६/९०.

५ कर्ण० २/२९.

६ वही, पृष्ठ ३५।

७ कर्ण०, पृष्ठ ३५।

८ वही, पृष्ठ ३०-३१।

९ वही, पृष्ठ ३५-३६

१० हितरोधो निरोधनम्। —दश० ६/३४.

नायक द्वारा नायिका की विशिष्ट प्रशसा[१] मे **पुष्प** नामक अग है।

कामावेग और विरहोत्कण्ठा से अत्यन्त पीडिता नायिका जब अधीर होकर रोदन करने लगती है तो उसकी सखी उसे धैर्य देती हुई उपाय का कथन करती है—'कि एव्व रोदिअदि। एसा भअवदी भवाणी पणदजणवच्छला णिच्चिअ तुह इच्छ पूरइस्सदि।'[२] यहॉ उपायभूत वाक्य का कथन करने के कारण **उपन्यास** नामक अग है।

वर्ण सहति या वर्णसहार नामक प्रतिमुख सन्धि का अग नाट्यदर्पण के अनुसार पृथक् पृथक् स्थित पात्रो के एकत्र मिलन मे होता है।[३] तदनुसार यहॉ द्वितीय अक की समाप्ति के अवसर पर नायिका, उसकी सखी, नायक, विदूषक, देवी और देवी की परिचारिका आदि अनेक पात्रो की एकत्र स्थिति मे[४] घटित होता है। दशरूपक या साहित्य दर्पण के अनुसार चतुर्वर्ण (ब्राह्मणादि) के एकत्र स्थिति रूप वर्णसहार का उदाहरण यहॉ नही माना जा सकता।

द्वितीय अक की समाप्ति पर नायिका के चली जाने पर तृतीय अक मे नायक कभी विरहाकुल होता है, कभी विदूषक की योजनानुसार प्राप्ति की आशा बढती है। इस प्रकार नायिका प्राप्ति के उपाय की खोज के कारण इस तृतीय अक मे गर्भ सन्धि है। इसके भी शास्त्रकारो ने १२ अग निर्दिष्ट किये है।

यद्यपि प्राप्त्या और पताका के सयोग मे गर्भसन्धि की स्थिति होती है किन्तु नाटिकाओ या ऐसे नाट्यो मे जिनमे पताका नही होती वहॉ गर्भ सन्धि की स्थिति का निर्देश करते हुए दशरूपककार ने लिखा—

गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहु।
द्वादशाग पताका स्यान्न वा स्यात्प्राप्तिसभव॥[५]

इससे स्पष्ट हो गया कि पताका के अभाव मे भी गर्भसन्धि हो सकती है। गर्भ सन्धि के १२ अगो मे इस नाटिका मे प्राय· ५ अगो का प्रयोग प्राप्त होता है।

तृतीय अक के आरम्भ मे ही वकुलावली अपनी सखी मन्दोदरी से इस रहस्य का आख्यान करती है कि राजा से कुपित रानी आज कर्णसुन्दरी के वेष मे राजा को छलेगी।[६] यहॉ कपट होने के कारण **अभूताहरण**[७] नामक अग है।

१ कर्ण०, २/१४

२ वही, पृष्ठ २९।

३ पात्राघेघो वर्णसहति। —ना० द० (सू०) ६७.

४ कर्ण०, पृष्ठ ३५-३६.

५ दश०, १/३६.

६ कर्ण०, पृष्ठ ३७।

७ अभूताहरण छद्म। —दश० १/३८.

विदूषक नायक नायिका को सकेत स्थान पर मिलाने की योजना रूप वस्तुस्थिति का परिचय कराने के लिए नायक से कहता है—'दिट्ठिआ वड्ढसि कज्जसिद्धिए। राजा-कथमिव। विदूषक-एव्वमेव्व'[१] यहाँ वस्तुस्थिति का निवेदन होने के कारण **मार्ग**[२] नामक गर्भाग है।

दूसरे के अभिप्राय को जान लेना क्रम नामक गर्भ सन्ध्यग होता है।[३] कर्ण सुन्दरी का वेष धारण कर आई देवी नायक के निम्न कथन से[४] उसकी कर्णसुन्दरी के प्रति प्रीति का ज्ञान प्राप्त करती है अत यहाँ क्रम नामक अग है। यद्यपि दशरूपककार 'क्रम सचिन्त्यिमानाप्ति'[५] लिखकर चिरात् चिन्तित अभीष्ट वस्तु की उपलब्धि मे यह अग स्वीकार करते है।

क्रोध युक्त वचन तोटक अग[६] कहलाता है।

यहाँ कर्णसुन्दरी वेषधारिणी देवी क्रुद्ध होकर विदूषक के प्रति कहती है—'हदास, तुज्झ एसो सव्वो एव्व परिप्फन्दो'[७] अत यहाँ तोटक अग है।

देवी के क्रुद्ध हो जाने पर उसके प्रति राजा के दीन वचनो[८] मे अधिबल नामक अग है।[९] यद्यपि दशरूपककार स्वय 'अधिबलमभि सधि' लिखकर किसी पात्र के द्वारा नायक नायिकादि के अभिप्राय को जान लेने पर यह अग स्वीकार करते है।[१०] इसीलिए उन्होने पूर्वप्रतिपादित अधिबल के लक्षण मे बुधा शब्द का प्रयोग कर आचार्य भरत[११] की ओर सकेत किया है।

चतुर्थ अक मे देवी के द्वारा कपट विवाह तक विमर्श नामक सन्धि है।[१२] क्योकि यहाँ नायक, विदूषक और मन्त्री की योजना पर विचार विमर्श कर नायिका प्राप्ति का प्रयत्न करता है। यद्यपि यह विमर्श अत्यन्त स्पष्ट नही है इस सन्धि के १३ अगो मे से २ अग इस नाटिका मे उपलब्ध होते है।

---

१ कर्ण०, पृष्ठ ३९-४०।
२ दश० ६/९६
३ क्रमो भावस्य निर्णय। —ना० द० (सू०) ८२.
४ कर्ण०, ३/२९-३०
५ दश० १/३९
६ दश० १/४०
७ कर्ण०, पृष्ठ ४५।
८ त्वा प्रत्येव मयापि नर्म कृतमित्युक्ते कुतो मन्यसे
निर्दोषोऽहमिति ब्रवीमि सहसा दृष्टव्यलीक कथम्।
क्षन्तव्य मयि सर्वमित्यपि भवेदंगीकृतोऽय विधि
किं वक्तु मम युक्तमित्यनुगुण देवि त्वमेवादिश॥ —कर्ण०, ३/३२
९ तोटकस्यान्यथाभाव ब्रुवतेऽधिबल बुधा।
सरब्धवचन यत्तु तोटक तदुदाहृतम्॥ —दश० १/४१.
१० अधिबलमभि सन्धि। —दश० १/४०
११ ना० शा० १९/८६
१२ दश० १/४३

अमात्य (प्रणिधि) देवी की 'अमच्च जुत्त कदम्' इस उक्ति के उत्तर मे उसकी प्रशसा करता हुआ उसके कुल का राजा का और राजवश के गुणो का आख्यान करता है अत यहाँ प्रसग नामक विमर्शांग है।[१]

विदूषक के द्वारा यह कहने पर कि विवाह सम्पन्न हो गया अब स्वस्तिवाचन का अवसर है, रानी कहती है—'हदास, पेक्खिस्ससि विआहम्'[२] इस कथन से यह स्पष्ट है कि देवी इस विवाह के द्वारा राजा को छलना चाहती है। अत यहाँ छलन नामक विमर्शांग है।

साहित्यदर्पणकार ने स्वल्प विमर्शा लिखकर नाटिका मे विमर्श सन्धि के स्वल्पत्व का कथन किया है जो सभवत इसी प्रकार की नाटिकाओ को देखकर उन्होने यह कहा होगा। क्योकि इस नाटिका मे विमर्श का रुप स्वय अत्यन्त स्फुट नही है साथ ही उसके १३ अगो मे से केवल दो अगो का ही प्रयोग उपलब्ध होता है।

कर्णसुन्दरी के चतुर्थ अक मे अमात्य के द्वारा 'अवसर प्रकाशनस्य'[३] इस कथन से अन्त तक निर्वहण सन्धि है।[४] क्योकि इसमे कार्य की समाप्ति की ओर इगित किया गया है।

निर्वहण सन्धि के शास्त्रकारो ने १४ अग माने है। देवी नायिका मन्त्री के द्वारा उसके भागिनेय को अपने घर रखने की बात सुनकर यह समझ जाती है कि यह कर्णसुन्दरी ही है जिसको मैने अपना भागिनेय अर्थात् भाज्ज समझ रखा था। यह भाव उसके इस कथन से स्पष्ट हो रहा है—'हा, हदम्हि मन्दमाइणी। मए कधिद जेव्व केदव त्ति पच्चक्ख सेव्व एसा ति। ता वचिदम्हि। कि कीरदि।[५] इस प्रकार यहाँ बीज की उद्‌भावना करने के कारण सन्धि नामक निर्वहणाग है।

जहाँ नायक आदि को सम्मान, साम्राज्य आदि की उपलब्धि होती है वहाँ भाषण नामक निर्वहणाग होता है।[६] यहाँ नायक के द्वारा 'दृष्ट देव्या किमपि०' इत्यादि कथन[७] मे यह अग घटित होता है।

वरप्रदानादि या वरदान प्राप्ति आदि मे काव्यसहार नामक अग होता है[८] जैसे कर्णसुन्दरी मे अमात्य राजा से कहता है—'कि ते भूय प्रियमुपकरोमि'[९] अत: यहाँ काव्यसहार अग है।

१ कर्ण० ४/१५.
२ दश० १/४०
३ कर्ण०, पृष्ठ ५३।
४ दश०, १/४९.
५ कर्ण०, पृष्ठ ५३।
६ मानाद्याप्तिश्च भाषणम्।—दश० १/५३.
७ कर्ण० ४/२३.
८ वराप्ति काव्यसहार। —दश० १/५४.
९ कर्ण०, पृष्ठ ५५।

नायक के द्वारा भरतवाक्य मे कवियो के लिये शुभ कथन करना[१] प्रशस्ति नामक अग का उदाहरण है।

इस प्रकार सम्पूर्ण नाटिका मे अर्थप्रकृतियो, कार्यावस्थाओ सन्धि एव सन्ध्यगो का समुचित प्रयोग है।

नाट्य के आरम्भ करने के लिये कुछ आवश्यक नियम एव क्रम निर्धारित है। जिसके अनुसार सर्वप्रथम नान्दी या पूर्वरग फिर सभापूजा, तदनन्तर कवि व नाटक की सज्ञा तथा इसके बाद आमुख (प्रस्तावना) का प्रयोग कर कथाबीज की स्थापना करनी चाहिए।[२]

तदनुसार यहाँ द्वादशपदा नान्दी[३] का प्रयोग है।[४] इसके पश्चात् सूत्रधार सभासदो का सम्मान करता हुआ नाटिका एव कवि का परिचय प्रस्तुत करता है।[५]

सूत्रधार सस्कृत भाषा के माध्यम से कवि की प्रशसा करता है, अत. यहाँ भारती वृत्ति का प्ररोचना नामक अग है।

साहित्यदर्पणकार ने प्रस्तावना के ५ भेद निर्दिष्ट किये नखकुट्ट के मत को उद्धृत करते हुए दर्पणकार ने एक छठा भेद भी निर्दिष्ट कर दिया।[६] कर्णसुन्दरी मे इन सबसे भिन्न किन्तु छठे भेद से कुछ साम्य रखने वाली प्रस्तावना का प्रयोग है। क्योकि यहाँ सूत्रधार आकाशभाषित कर कथाबीज की स्थापना करता है एव सामने देखकर अपने भाई को महामात्य के वेश मे रगमच पर आने की सूचना देकर स्वय चला जाता है।

इस प्रकार यहाँ पात्र की सूचना देकर पात्र का प्रवेश कराया गया है।

नाट्य मे इतिवृत्त को दृश्य एव सूच्य दो वर्गो मे भी विभक्त किया जाता है। सूच्य इतिवृत्त वह होता है जो अक मे दिखलाने योग्य नही होता। वह या तो अनुचित या विपरीत होता है या परित्याज्य होता है। इस अर्थ की सूचना अर्थोपक्षेपको के द्वारा दी जाती है।[७]

---

१ वही, ४/२४

२ तत्र पूर्व पूर्वरग. सभापूजा तत परम्।
कथन कविसज्ञादेर्नाटिकस्याप्यथामुखम्॥ —सा० द०, ६/२१

३ सा० द० ६/२४-२५

४ कर्ण० १/१-३.

५ वही, पृष्ठ ३

६ नखकुट्टस्तु—नेपथ्योक्त श्रुत यत्र त्वाकाशवचन तथा।
समाश्रित्यापि कर्तव्यमामुख नाटकादिषु। —सा० द० ६/३९-४०

७ यत्स्यादनुचित वस्तु नायकस्य रसस्य वा।
विरुद्ध तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत्॥
अकेष्वदर्शनीया या वक्तव्यैव च समता।
या च स्याद्वर्षपर्यन्त कथा दिनद्वयादिजा॥ —सा० द० ६/५०-५१.

कर्णसुन्दरी मे प्रथम अक मे नायक की पूर्व मनस्थिति एव घटनाचक्र की सूचना देने के लिए शुद्ध विष्कम्भक का प्रयोग है जिसमे अकेला प्रणिधि नामक महामात्य सस्कृत भाषा का प्रयोग करता है तथा नेपथ्य से भी सस्कृत मे ही सूचना प्राप्त होती है।

द्वितीय और तृतीय अक मे निम्न पात्रो द्वारा सूचना दी जाने के कारण प्रवेशको का प्रयोग है।

चतुर्थ अक के आरम्भ मे नेपथ्य से प्रभातकाल की सूचना[१] प्राप्त होने के कारण चूलिका हो सकती है किन्तु यह चूलिका का सम्यक् उदाहरण नही माना जा सकता क्योकि जवनिकान्तर से प्राप्त होने वाली सूचना मे किसी इतिवृत्त की घटना की ही सूचना होनी चाहिए न कि समय आदि की। जैसा कि दशरूपककार ने लक्षण मे 'अर्थस्य सूचना'[२] लिखकर स्पष्ट किया है। यहाँ नेपथ्य पुरुष प्रभात काल मे नायक की विरहभावना का वर्णन करता है अत उस काल की पूर्वसूचना के रुप मे नेपथ्य वचन स्वीकार कर लेने पर 'चूलिका' अर्थोपक्षेपक माना जा सकता है।

नाट्य मे इतिवृत्त के सम्वाद को प्रकट करने के लिए प्रयोजनानुसार सर्वश्राव्य, अश्राव्य और नियत श्राव्य रूप तीन भागो मे विभक्त कर सर्वश्राव्य को **'प्रकाशम्'** शब्द से अश्राव्य को **'स्वगतम्'** शब्द से सूचित किया जाता है।[३]

नियत श्राव्य को पुन **जनान्तिक** और **अपवारित** दो भागो मे विभक्त किया गया। जहाँ मच पर दो ही व्यक्ति आपस मे इस प्रकार वार्ता करे कि कोई अन्य पात्र उसे न सुन सके तो वह जनान्तिक होता है और उसमे हाथ की मुद्रा त्रिपताकाकार होती है।[४] किन्तु जब किसी एक पात्र की गुप्त वार्ता को मुख दूसरी ओर घुमाकर कोई पात्र कथन करता है तो वह अपवारित होता है।[५]

सस्कृत नाटको मे एक ही व्यक्ति की वार्ता मे भी सम्वाद की स्थिति निश्चित की गई यह आकाशभाषित कहलाता है। इसमे एकपात्र आकाश की ओर मुख कर स्वय प्रश्न की उद्भावना कर स्वय ही उसका उत्तर भी दे देता है।[६] इस प्रकार का सम्वाद प्राय अन्य भाषा के नाटको मे उपलब्ध नही होता।

नायक का व्यापार भारती सात्वती आदि चार वृत्तियो के माध्यम से व्यक्त होता है।[७] किन्तु नाटिका मे कैशिकी का प्राधान्य होता है फिर भी नाटिका के

१ कर्ण० ४/१-३.
२ अन्तर्जवनिकासस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना। —दश० १/६१, सा० द० ६/५८
३ दश० १/६३-६४
४ दश० १/६५-६६
५ वही १/६६
६ वही १/६७
७ तद्व्यापारात्मिका वृत्तिश्चतुर्धा, तत्र कैशिकी।
गीतनृत्यविलासाद्यैर्मृदु श्रृगारचेष्टितै ॥ —दश० २

आरम्भ मे भारती वृत्ति का प्राय सर्वत्र प्रयोग हुआ है। अत्यन्त सक्षिप्त क्षेत्र होने के कारण उसके अगो का विस्तार नही है।

श्रृगाररस बहुला कैशिकी वृत्ति नाटिका का प्राण है जो नायक-नायिका की उक्तियो मे पदे पदे विद्यमान रहती है। इसीलिये इसके विभिन्न भेदो का विस्तार नाटिका मे उपलब्ध होता है। नर्म, नर्मस्फिज, नर्मस्फोट और नर्मगर्भ ये चार इसके अग है।

नायक नायिका को प्रसन्न करने वाले हास्यात्मक नर्म को दशरुपककार ने १८ रुपो मे विभक्त कर जितना सूक्ष्म निरीक्षण किया है[१] वह मात्र सख्यात्मक परिगणन, और बुद्धि व्यायाम के कुछ नही कहा जा सकता। क्योकि किसी भी नाट्य मे इन भेदो के उदाहरण ढूँढ पाना अत्यन्त क्लिष्ट है या प्रत्येक पद और पद्य इन्ही के उदाहरण बन जायेगे। परवर्ती शास्त्रकार विश्वनाथ ने इसीलिये दशरुपक मे निर्दिष्ट १८ भेदो मे से केवल ३ भेदो का ही निर्वचन 'सारन्ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु' के आधार पर किया होगा।[२]

प्रथम अक मे तरगशाला मे कर्णसुन्दरी का चित्र देखकर राजा के द्वारा की गई प्रशसा को हारलता के कथनानुसार देवी स्वविषयक मानकर राजा के प्रति विनय भाव व्यक्त करती है किन्तु राजा रानी की मिथ्या प्रशसा करता हुआ[३] भययुक्त हास्य करता है क्योकि उसे भय है कि यदि देवी को यह पता चल गया कि वस्तुत राजा कर्णसुन्दरी के सम्बन्ध मे कथन कर रहा था, तो वह नाराज हो जायेगी। अत· यहाँ कैशिकी वृत्ति का नर्म नामक अग है।[४]

द्वितीय अक मे एकान्त मे नायिका मिलन पर सुखानुभूति करता हुआ राजा उसके आलिगन की अभिलाषा प्रकट करता है[५] किन्तु तभी विदूषक के इस कथन—'भोदि. एसा देवी आगदा' (भवति एषा देवी आगता) से भय की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और नायिका यह कहती हुई चली जाती है—'(अनभ्रे इद वज्रपतन प्रेक्षितम्) अणव्भए इद वज्जपडण पेक्खिदम्'।[६]

अत यहाँ प्रथम मिलन का आरम्भ सुखात्मक है किन्तु अन्त भयात्मक होने के कारण **नर्मस्फिज्ज्ञ नामक कैशिकी का अंग है।**[७]

---

१ दश० २/४८-५०.
२ सा० द० ६/१२५-२६.
३ कर्णा० १/५५
४ सा० द० ६/१२५-२६.
५ कर्णा० २/४१.
६ कर्णा०, पृष्ठ ३६।
७ दश० २/५१

नायक के विरह मे चेतना शून्य नायिका को जब नायक स्पर्श कर सज्ञा प्राप्त कराता है तो उसके उद्गत सात्विक भावो का किचिद् वर्णन करते हुए नायक ने नायिका की किचित् श्रृगार रसात्मक स्थिति का चित्रण किया है।[१] अत यहाँ नर्मस्फोट नामक कैशिक्यग है।

नायिका के विस्रम्भ कथन को सुनने के लिए नायक अपने मित्र विदूषक के साथ लतागहन की ओट मे छिपता है। अत यहाँ[२] छिपकर नायक का प्रवेश होने के कारण नर्मगर्भ नामक अग है।[३]

इस प्रकार नाटिका मे कैशिकी वृत्ति के चारो अगो का उचित विन्यास है।

भरतमुनि आदि प्राचीन आचार्यो एव विश्वनाथ आदि नवीन शास्त्रकारो के द्वारा इतिवृत्त मे नाट्य लक्षणो नाट्यालकारो, लास्यागो एव सन्ध्यन्तरो आदि के प्रयोग का जो विधान किया गया है उन सबका नाटिका के लघु कलेवर मे समावेश पूर्णत नही किया जा सकता। क्योकि नाटिकाओ के कल्पित इतिवृत्त मे एक निश्चित सरणि मे नायक का देवी नायिका से भिन्न देवी की ही सम्बन्धिनी किसी कन्या मे प्रेम, रानी का ईर्ष्याभाव, राजा एव कन्या का भयभीत होना, तथा अन्त मे किसी अद्भुत घटना या मन्त्री के बुद्धि चातुर्य से विवाह हो जाना मात्र कथानक होता है। फिर भी यह नही कहा जा सकता कि नाटिका मे नाट्यालकारो या नाट्य लक्षणो आदि का सर्वथा अभाव है। प्राय सभी नाटिकाओ मे उनके कुछ अशो का प्रयोग हुआ है किन्तु उनसे कथा मे या नायकादि पात्रो के व्यक्तित्व मे किसी विशेष प्रकार का सृजन या उत्कर्ष की वृद्धि न होने के कारण उनके प्रयोग स्थलो का निर्धारण यहाँ नही किया गया है।

नाट्यशास्त्रीय समीक्षा की दृष्टि से परवर्तीकाल की अन्य अनेक नाटिकाएँ-उषारागोदया, पारिजातमजरी, कमलिनी कलहस, नवमालिका आदि सफल सिद्ध होती है। उनमे इन समस्त नियमोपनियमो की विवेचना पिष्टपेषण ही होगा।

वृषभानुजा— कायस्थ कवि मथुरादास की नाटिका वृषभानुजा मे कुछ अशो मे नाटिका के लक्षणो की अवहेलना की गई। उदाहरणार्थ उसमे नायक धीर-ललित प्रख्यात राजवशीय है। इतिवृत्त कल्पित एव श्रृगार रस बहुल है। कैशिकी वृत्ति का भूयसा प्रयोग है। नाटिका का नाम नायिका के नाम पर है। किन्तु दो नायिकाओ की योजना नही है। परिणामत. नायक श्रीकृष्ण अपनी प्रेमिका वृषभानुजा (नायिका) से बिना भय के प्रेम-व्यापार करता है। राधा की माँ और

१ कर्ण० २/३६.

२ वही, पृष्ठ २९ (सखे, अस्यैव लतागहनस्य पश्चात्स्थित्वा शृणुवस्तावदस्या विश्रम्भभाषितानि।

३ दश० २/४२

गोपालको से स्थान स्थान पर विघ्न उपस्थित कर नाटिका के कुतूहल का सवर्धन किया गया है। किन्तु ज्येष्ठा नायिका का अभाव होने के कारण अनेक नाटिका सम्बन्धी नियमो का पालन नही हो सका। उदाहरणार्थ नायक मे भयातुर होकर प्रेम व्यापार मे प्रवृत्त न होना, नायक नायिका का विवाहायोजन न होना, नायक नायिका के गुप्त मिलन आदि रहस्यो का उद्‌भेद न होना आदि है।

अतएव अनेकानेक सन्ध्यगादिको का भी अभाव है। कृष्ण को किसी प्रकार की विजय सूचना प्राप्त न होने से नाट्यदर्पणोक्त उद्देश्यो की भी परिपूर्ति नही हो पाती।

मथुरादास की इस अवहेलना का उद्देश्य पौराणिक इतिवृत्त का चयन है। कृष्ण जो प्रसिद्ध पुराण पुरुष है, किसी अप्रसिद्ध नायिका से विवाह नही कर सकता अन्यथा वह ख्याति विरुद्ध होने के कारण दोषाधायक हो जाता।

गोपाल कृष्ण की हस्तलिखित चन्द्रप्रभा नाटिका मे भी यद्यपि पौराणिक पात्रो का प्रयोग है किन्तु उसमे नायक की दो पत्नियो का उल्लेख होने से किसी प्रकार की बाधा नही आ सकी। इसके इतिवृत्त मे समस्त नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्त क्रियान्वित होते है।

(ब) भारतीय रंगमच विधान

भारतीय साहित्य मे अभिनय स्थल एव दर्शको के बैठने का स्थान नाट्यगृह,[१] नाट्यशाला,[२] नाट्य मण्डप,[३] नाट्यवेश्म,[४] रगशाला,[५] रगभवन[६] एव प्रेक्षागृह आदि शब्दो से कहा गया है। अत नाट्य मण्डप मे रगमच (अभिनय स्थल) एव दर्शक कक्ष दोनो का समावेश होता है। नाट्यमण्डप मे सर्वाधिक महत्व रगमच का होता है, उसी के निर्माण की विविध विध व्याख्या शास्त्रीय ग्रन्थो मे उपलब्ध है। स्वय भरत ने द्वितीय अध्याय मे रचना विधान बताया है। यह उनके इस कथन से स्पष्ट है—

> **'भगवन् श्रोतुमिच्छामो यजनं रंग सश्रयम्।**
> **अथवा या· क्रियास्तत्र लक्षणं यच्च पूजनम्।**
> **भविष्यद्भिर्नरैः कार्यं कथं तन्नाट्य वेश्मनि॥'**[७]

अत यहॉ विशेषत. रगमच की रचना आदि के सम्बन्ध मे ही विचार किया जायेगा।

---

१ नाο शाο १/८०.
२ नाο कο, पृष्ठ २२७।
३ नाο शाο १/८२.
४ नाο शाο १/७९.
५ भाο पाο रगο, पृष्ठ ४५०।
६ रगο नाο भूमिο, पृष्ठ ७८।
७ नाο शाο, २/१-२

भारतीय नाट्यमण्डप के सम्बन्ध मे सर्वप्राचीन एव विस्तार से उल्लेख आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र मे किया है। यद्यपि यह सत्य है कि उनके व्याख्यान मे अनेक अस्पष्टताएँ है, जिसके परिणाम स्वरुप व्याख्याकारो ने अपनी-अपनी मान्यताओ को जोड़कर भारतीय मण्डप के स्वरूप मे अनेक रुपता स्थापित कर दी है। फिर भी वैज्ञानिकता और औचित्य की दृष्टि से तथा यत्र तत्र उपलब्ध नाट्यशालाओ के अवशेषो से भरत के व्याख्यान को ही सर्वप्राचीन एव प्रामाणिक माना जा सकता है।

आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र के द्वितीय अध्याय मे नाट्य मण्डप का विधान बतलाते हुए देव, राजा और सामान्य प्रजा को ध्यान मे रखकर ३ प्रकार की नाट्यशालाओ का निर्देश किया—१ ज्येष्ठ, २ मध्यम, और ३ कनिष्ठ।[१] आकार की दृष्टि से ये तीनो नाट्य मण्डप तीन-तीन प्रकार के होते है—१ विकृष्ट (आयताकार), २ चतुरस्र (वर्गाकार), और ३ त्रयस्र (त्रिभुजाकार)।[२] इस प्रकार मुख्यत ९ प्रकार के नाट्य मण्डप हुए।

ज्येष्ठ आदि नाट्यगृहो की लम्बाई चौडाई के विषय मे उनका निर्देश है कि-ज्येष्ठ १०८ हाथ लम्बा मध्यम ६४ हाथ लम्बा और कनिष्ठ ३२ हाथ लम्बा होना चाहिए।[३]

भरत ने ज्येष्ठ को छोड़कर मध्यम और अवर दोनो को मानवोपयोगी कहा।[४] ज्येष्ठ नाट्य मण्डप देवताओ के लिए होते है। उनका यह कथन उनके ही इस निर्देश से कि—

दिव्यानां मानुषी सृष्टिर्गृहेषूपवनेषु च।
यथाभावाभिनिर्वत्र्या सर्वे भावास्तु मानुषा ॥[५]

विरद्ध है। क्योकि जब देवताओ को इच्छानुसार मानसी शक्ति से ही गृह, उपवन आदि के निर्माण की सामर्थ्य प्राप्त है तो फिर उनके लिए ज्येष्ठ नाट्य मण्डप का कथन करना कहाँ तक सगत है।

ऐसा प्रतीत होता है कि भरत ने—ब्रह्मा के निर्देश पर विश्वकर्मा (देवी वास्तु कला शिल्पी) के द्वारा जिन तीन प्रकार के नाट्य मण्डपो के निर्माण का कथन कराया है उनमे ज्येष्ठ जिसकी लम्बाई १०८ हाथ बतलाई है, केवल देवताओ के लिए ही था, वे देवता इतने माप की नाट्यशाला सामान्यत. बनाते होगे।

---

१ वही, २/११.
२ ना० शा० २२८.
३ वही २/१०.
४ वही २/११
५ वही २/५.

इसीलिए भरत ने इसके निर्माण की विधि का उल्लेख नही किया।

यदि कोई देवताओ की अनुकृति पर इस प्रकार की नाट्यशाला का स्पर्धाभाव से उपयोग करना भी चाहे तो भी वह मनुष्य के लिए उपयोगी नही होगी क्योकि उसमे प्रयुक्त नाट्य के सम्वाद, गीत, भावमुद्रा तथा अभिनय का स्पष्ट अवलोकन दर्शक को न हो सकेगा।[१] इसलिए भरत ने स्पष्टत देव नाट्य गृहो और देवताओ से स्पर्धा की भावनाओ का निषेध किया है।[२] किन्तु आधुनिक विद्वान् श्री बाबूलाल जी शुक्ल इस मत को स्वीकार नही करते। वे कहते है कि जहॉ देव एव असुर सदृश नाटक एव प्रति नायक हो तो आरभटी वृत्ति प्रधान डिम आदि रुपको के लिए लम्बे चौडे रग मण्डप की अपेक्षा रहती है क्योकि इसमे (भाण्ड प्रवृत्ति) वाद्य वादन का अधिक उपयोग होता है। और चलने फिरने भागने आदि के लिए अधिक लम्बाई वाले एव ऊँचे नीचे स्थानो की आवश्यकता रहती है, जिनमे पात्रो के द्वारा भी दीर्घ परिणाम वाले तालानुसारी डग भरने आदि के विधान होने के कारण ज्येष्ठ मण्डप उपयुक्त रहता है। इन रूपको का अभिनय मध्यम प्रकार के या छोटे नाट्य मण्डपो मे ठीक से नही हो सकता।[३] ना० शा० के प्रसिद्ध टीकाकार अभिनव गुप्त ज्येष्ठ मण्डप मे देवताओ के प्रेक्षक रुप या अभिनेता रुप से सहमत नही है—उनके इस मत का उल्लेख करते हुए श्री बाबूलाल शुक्ल ने ना० शा० प्रथम भाग के परिशिष्ट पृष्ठ ४६० पर लिखा कि—'हमे तो दशरुपको के लिए उपयुक्त नाट्य मण्डप पर ही विचार करना इष्ट है क्योकि डिम जैसे रुपको मे भयकर दृश्य आदि दिखाना पडता है अतएव उनके लिए जेष्ठ मण्डप की आवश्यकता है इसका इतना ही आशय है कि ज्येष्ठ, मध्यम और अवर प्रकारो का सप्रभेद प्रतिपादन मनुष्यो के लिए ही किया गया है।'[४] इसको और अधिक स्पष्ट करते हुए प० सीताराम चतुर्वेदी ने लिखा कि 'नाट्य को सार्ववर्णिक बताकर भी भरत ने प्रेक्षागृह के लिये देवता, राजा और इतर जनो का भेद क्यो रखा। इसका समाधान करते हुए अभिनवगुप्त ने कहा कि समवकार के समान सग्राम, मारपीट आदि से भरे हुए नाटको के लिये बड़ा, सात्विक अभिनय प्रधान नाटक, प्रकरण तथा

---

१ ना० शा० २/२१-२३.

२ देवाना मानसी सृष्टि गृहेषूपवनेषु च
यत्न भावाभिनिष्पन्ना सर्वे भावाहि मानुषाः।
तस्माद्देव कृतैर्भावर्न विस्पर्द्धेत मानुष ॥ —ना० शा० २/२५-२६.

३ हि० ना० शा० (परि०), पृष्ठ ४५९-६०।

४ हि० ना० शा० (परि०), पृष्ठ ४६०।

नाटिका आदि के लिये मध्यम आकार का और भाण जैसे दो तीन अभिनेताओ वाले रुपको के लिये कनिष्ठ प्रेक्षागृह उचित प्रतीत होते है।'[१]

भरत निर्दिष्ट माप के अनुसार ९ प्रकार के भिन्न-भिन्न नाट्य मण्डपो की लम्बाई चौडाई (हस्त प्रमाण में) का विवरण अग्रलिखित है।

आकार के अनुसार	ज्येष्ठ		मध्यम		कनिष्ठ	
	लम्बाई/चौडाई		लम्बाई/ चौडाई		लम्बाई/चौडाई	
१ विकृष्ट—	१०८	६४	६४	३२	३२	१६
२ चतुरस्र —	१०८	१०८	६४	६४	३२	३२
३. त्रयस्र —	१०८	हाथ लम्बा	६४	हाथ	३२	हाथ

दण्ड प्रमाण के अनुसार भी इन्ही नाट्यशालाओ की रचना करने पर नाट्यशालाओ के कुल १८ भेद बनते है।

कुछ विद्वान् जिनमे श्री वाचस्पति गैरोला, प्रमुख है, ने विकृष्ट, चतुरस्र और त्रयस्र को ही ज्येष्ठ मध्यम और अवर मान कर विकृष्ट को दैवी नाट्य मण्डप कहा है। साथ ही उसके प्रयोग का निषेध भी किया है।[२] सभवत उन्होने भरत के निम्नलिखित पद्यो की व्याख्या इस प्रकार की कि—'विश्वकर्मा ने विकृष्ट, चतुरस्र और त्रयस्र, तीन प्रकार के नाट्यमण्डप बतलाए और विकृष्ट को ज्येष्ठ, चतुरस्र को मध्यम तथा त्रयस्र को अवर प्रमाण वाला कहा—

'इह प्रेक्षागृहं दृष्ट्वा धीमता विश्वकर्मणा
त्रिविध सन्निवेशश्च शास्त्रत· परिकल्पित।
विकृष्टश्चतुरस्रश्च त्रयस्रश्चैव तु मण्डपः,
तेषा त्रीणि प्रमाणानि ज्येष्ठं मध्यं तथावरम्॥"[३]

किन्तु निस्सन्देह यह उनकी सकीर्ण दृष्टि है, भरत ने आगे स्वत स्पष्ट किया कि—

'प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां त्रिप्रकारो विधिः स्मृत.
विकृष्टश्चतुरस्रश्च त्रयश्चैव प्रयोक्तृभिः॥'[४]

यहॉ 'सर्वेषाम्' पद निश्चय ही ज्येष्ठ, मध्यम और अवर भेदो का परिचायक है जिसके अनुसार ज्येष्ठ नाट्यमण्डप के तीन आकार विकृष्ट, चतुरस्र और त्रयस्र होते है। इसी प्रकार मध्यम और अवर के भी ३,३ भेद हो जाने से कुल ९ भेद तो स्वत. सिद्ध हैं।

१ भा० पा० रंग०, पृष्ठ ४५३।
२ हि० ना० शा० (परि०), पृष्ठ ४५९-६०।
३ हि० ना० शा० २/७-८
४ वही २/१३.

यह ९ प्रकार के नाट्य मण्डपो का समर्थक मत इस बात से और पुष्ट हो जाता है कि यदि भरत ३ ही भेद मानते होते तो केवल मध्यम (चतुरस्र) नाट्य मण्डप के ही निर्माण की विधि बतलाते विकृष्ट की नही क्योकि ज्येष्ठ होने के कारण वह तो केवल देवोपयोगी ही होता है।[१] उसमे प्रयुक्त नाट्य अव्यक्त हो जाने से मानवो के लिये अनुपयोगी है।[२] किन्तु भरत ने तीनो प्रकार के नाट्य मण्डपो का रचना विधान बतला कर यह स्पष्ट कर दिया है कि नाट्यशालाओ की ज्येष्ठ मध्यम और कनिष्ठ तीन श्रेणियॉ होती है तथा आकार की दृष्टि से प्रत्येक आयताकार वर्गाकार और त्रिकोणात्मक हो सकता है। अत भरत का निश्चित मत है कि विकृष्ट, चतुरस्र और त्रयस्र के ज्येष्ठ मध्यम और अवर ९ भेदो मे प्रत्येक के मध्यम आकार वाले तीन भेद ही श्रेयस्कर है क्योकि उनमे पाठ्य (और गेय) (वाद्य, नृत्य, गीत) आदि भली प्रकार देखे व सुने जा सकते है।[३] किन्तु रचना विधान बतलाते समय उन्होने इन तीनो का क्रम तोडकर विकृष्ट मध्यम, चतुरस्र कनिष्ठ एव त्रयस्र के मध्यम या कनिष्ठ भेदो का ही रचना क्रम निर्दिष्ट किया है। इसका कारण अस्पष्ट है।

नाट्यगृह की रचना का अध्ययन करने के लिए सम्पूर्ण नाट्यगृह को कुछ प्रमुख वर्गो मे विभक्त करना आवश्यक है जिससे प्रत्येक अग का सम्यक् विचार हो सके।

नाट्य गृह रचना में प्रमुख अग—

१ भूमि शोधन एव उसका विभाजन
२ भित्ति तथा स्तम्भ स्थापना
३ रगपीठ
४ रगशीर्ष
५ नेपथ्य
६ मत्तवारणी
७ द्वार एव वातायन
८ यवनिका
९. प्रेक्षागृह

विकृष्ट मध्यम नाट्यगृह

आचार्य भरत ने सर्वप्रथम विकृष्ट मध्यम नाट्यगृह की निर्माण विधि का उल्लेख किया है। तदनुसार सर्वप्रथम—

(1) **भूमि शोधन व उसका विभाजन**—द्रष्टव्य है। प्रत्येक प्रकार के नाट्यगृह का निर्माण करते समय सर्वप्रथम भूमि को शुद्ध करने के लिए हल कर्षण से

१ हि० ना० शा० २/११.
२ वही २/२१.
३ ना० शा० २/२४.

कील काटा झाडी आदि को साफ करे।[१] उत्तरा, विशाखा, रेवती आदि शुभ नक्षत्रो मे[२] बडी सावधानी के साथ नाप के निमित्त पूर्व की ओर से सूत्र रखकर ६४ हाथ लम्बा और ३२ हाथ चौडा भूखण्ड नाप लेना चाहिए।[३] धार्मिक भावना प्रधान होने के कारण इसमे सूत्र के भग्न होने से अनेक प्रकार के अनिष्टो का भी उल्लेख है। अत सूत्र प्रसारण मगलमय घडी मे बडी सावधानी के साथ करने का निर्देश है।[४]

इस आयताकार भूखण्ड को ३२ हाथ वाले दो वर्गाकार भूखण्डो मे विभक्त कर पीठ (पश्चिम) के भाग को पुन दो बराबर भागो मे विभक्त कर सबसे पीछे के भाग को नेपथ्य के लिए निर्धारित करे तथा उसके आगे वाले को रग शीर्ष के लिए।[५]

इस प्रकार भूमि का विभाग कर ब्राह्मण भोजन कराकर प्रत्येक दिशा मे भिन्न-भिन्न रगो की बलि देकर नीव की स्थापना करे।[६]

भूमि सशोधन एव नीव स्थापना आदि कार्यो के वर्णन मे भरत के मत का किसी ने भी प्रतिवाद नही किया। चतुरस्र व त्रयस्र व नाट्य मण्डपो के निर्माण मे भी भूमि सशोधन आदि अपेक्षित है चतुरस्र मण्डप का निर्माण करने के लिए भूमि को पूर्व से पश्चिम ३२ हाथ तथा उत्तर से दक्षिण ३२ हाथ नाप के दो भागो मे बॉटे और विकृष्ट की भॉति पश्चिम के भाग को पुन दो भागो मे विभक्त कर पश्चिम मे नेपथ्य और उसके पूर्व रग शीर्ष का निर्माण करे।

त्रयस्र मे ३२ हाथ की लम्बाई लेकर त्रिभुजाकार भूमि को नापकर बीच मे त्रिकोण रग पीठ बनावे।

भरत ने भूमि के विभाजन मे त्रयस्र का अधिक विवेचन नही किया किन्तु उन्होने चतुरस्र के समान ही त्रयस्र के निर्माण का उल्लेख अपने ग्रन्थ मे कर दिया है।[७]

(2) **भित्ति एवं स्तम्भ स्थापना—(क) भित्ति**—नाट्य मण्डप की भित्तियो का निर्माण करते समय भी मागलिक मुहूर्त आदि का ध्यान रखना चाहिए।[८] इसके बाद भित्तियो का निर्माण हो जाय तो उन पर लेप करना चाहिए।[९]

१ ही० ना० शा० २/२८-३०
२ वही २/३०-३१.
३ वही २/३२, ३७
४ वही २/३२-३६
५ हि० ना० शा० २/३७-३९
६ वही २/४०-४६.
७ ना० शा० २/११०
८ वही २/४७
९ हि० ना० शा० २/८७

इन भित्तियो के निर्माण मे किस वस्तु का प्रयोग होता है यह यहाँ[१] स्पष्ट नही है, फिर भी चतुरस्र नाट्यगृह निर्माण विधि मे ईटो से दीवाल निर्माण का स्पष्ट उल्लेख है।[२] अत भित्तियो मे ईटो का प्रयोग होता था उन पर लेप की वस्तुओ का उल्लेख भरत ने नही किया। सुधा शब्द चूने का वाचक है किन्तु वह बाहरी भाग मे पुताई (व्हाइट वाशिग) के कार्य मे आता था[३] अभिनव गुप्त ने बालू तथा सीप के प्लास्टर के लेप का उल्लेख किया है।[४] भरत ने इन भित्तियो को चिकनी करने के लिए घुटाई करने की व्यवस्था दी।[५]

भित्तियो के समतल और चिकनी हो जाने पर उन पर स्त्री पुरुषो के विविध मुग्ध आचरण एव लता आदि के चित्र अकित करने चाहिए।[६] भित्तियो की ऊँचाई के सम्बन्ध मे भरत का कोई उल्लेख नही। किन्तु डा० रायगोविन्द चन्द लिखते है कि 'रगपीठ तथा मत्तवारणी की ऊँचाई को देखते हुए ऐसा ज्ञात होता है कि भीत की ऊँचाई १८ फीट से कम नही होती होगी।'[७]

चतुरस्र एव त्रयस्र मे भी इसी प्रकार भित्तियो का निर्माण करना चाहिए और उन्हे विविध लेप चित्र आदि से अलकृत करना चाहिए।

(ख) **स्तम्भ**—भित्ति निर्माण के पश्चात् शुभ तिथि नक्षत्र मे तीन दिनो तक उपवास करने वाला आचार्य (नाट्याचार्य) सूर्योदय के समय स्तम्भो की स्थापना करे।[८] ये चार स्तम्भ लकडी के होते है जिनको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र स्तम्भ कहा जाता है।[९]

इन स्तम्भो की स्थापना दृढ रुप मे करनी चाहिए क्योकि इनके हिलने, कपने या टेढे हो जाने से अनेक प्रकार के अनिष्ट आ जाते है।[१०]

इन चारो स्तम्भो मे भरत मुनि ने केवल दो के स्थानो का निर्देश किया। तदनुसार वैश्य स्तम्भ पश्चिमोत्तर और शूद्र स्तम्भ पूर्वोत्तर दिशा मे होने चाहिए।[११] शेष दो स्तम्भो के स्थान विवादास्पद होते हुए भी प्राय. सभी ने इस प्रकार माने है—ब्राह्मण स्तम्भ पूर्व दक्षिण के कोण ईशान मे और क्षत्रिय

---

१ वही २/४७
२ वही २/९४ (बाह्यत सर्वत कार्या भित्ति श्लिष्टेष्टका दृढा)
३ वही २/८८
४ ना० क०, पृष्ठ २३४ पर उल्लिखित।
५ हि० ना० शा० २/८८
६ वही २/९०
७ भ० ना० शा० ना० शाला० रुप, पृष्ठ १३.
८ ना० शा० २/५०-५२
९ वही २२५३-५६
१० वही २/५७"६२
११ वही २/५५-५६.

स्तम्भ दक्षिण पश्चिम के आग्नेय कोण मे। पडित सीताराम चतुर्वेदी ने प० बल्लभ पन्त का मत उद्धृत करते हुए कहा कि उन्होने आग्नेय नैऋत्य वायव्य और ईशान मे क्रमश ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रो के स्तम्भ माने है।[१] इन स्तम्भो के मूल मे विविध प्रकार की धातुओ के रखने की भी व्यवस्था है।[२]

इन ४ स्तम्भो के अतिरिक्त विकृष्ट नाट्यमण्डप मे भरत ने केवल मत्तवारणी के लिए ४ स्तम्भो का विधान और किया है।[३]

यहाँ यह स्पष्ट है कि भरत ने अपेक्षित अन्य स्तम्भो का उल्लेख नही किया है जैसे कि उन्होने नाट्य गृह के अर्द्ध भाग प्रेक्षागार की निर्माण विधि ही नही बतलाई और न उसके स्तम्भो का ही निर्देश किया।

डा० ए० बी० कीथ ब्राह्मणादि चारो स्तम्भो की स्थिति प्रेक्षकोपवेश मे ही स्वीकार कर उनको चारो वर्णो के बैठने का प्रतीक मानते है।[४] किन्तु यह उचित प्रतीत नही होता। भरत ने इन्हे चारो कोनो मे स्थापित करने का निर्देश दिया है। जिससे स्पष्ट है कि ये चारो स्तम्भ आधार स्तम्भ है जो नाट्य मण्डपो को स्थिर रखते थे। चारो वर्णो का नाम देने का उनका विचार शायद उस समय प्रत्येक समाज को ब्राह्मण क्षत्रिय आदि चार वर्गो मे विभक्त माना जाना हे।

स्तम्भो के स्थान एव सख्या के सम्बन्ध मे भरत के अस्पष्ट विवेचन से विद्वानो मे पर्याप्त मतभेद है आचार्य भरत ने जहाँ विकृष्ट और त्रयस्र नाट्य मण्डपो मे स्तम्भो का विस्तृत उल्लेख नही किया वही उन्होने चतुरस्र नाट्य मण्डप मे २४ स्तम्भो का निर्देश किया किन्तु वहाँ भी स्थान के प्रति पर्याप्त अस्पष्टता रखी।[५] श्री बाबूलाल जी शुक्ल ने प्राचीन आचार्यो के विचारो का उल्लेख करते हुए अपना दृष्टिकोण यद्यपि प्रस्तुत किया है फिर भी उन्होने विकृष्ट एव त्रयस्र नाट्य मण्डपो की उपेक्षा करते हुए चतुरस्र का ही बाहुल्येन विवेचन किया है।

चतुरस्र नाट्य मण्डपो मे उन्होने स्तम्भो की स्थिति जिस प्रकार स्वीकार की है, उसे समझने के लिए प्रथमत उनके अनुसार भूमि विभाजन का ज्ञान अपेक्षित है, वे सम्पूर्ण चतुरस्र नाट्य मण्डप को 4×4 हाथ के ६४ वर्गो मे विभक्त कर बीच के चार भागो मे रगपीठ, रगपीठ के ठीक पश्चिम के 4×32 भाग मे रगशीर्ष और शेष 4×32 भाग मे नेपथ्य की रचना स्वीकार की है। अब इसमे स्तम्भो की योजना उनके अनुसार इस प्रकार है—

प्रथम दस स्तम्भ रग पीठ के लिए। रगपीठ के चारो कोणो पर एक-एक (कुल चार) फिर चारो कोनो से दक्षिण व उत्तर की ओर ४, ४ हाथ की दूरी

१ भा० पा० रग०, पृष्ठ ४५७.
२ ना० शा० २/५७-५९
३ वही २/७०
४ सस्कृत नाटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३८६।
५ हि० ना० शा० २/९७-९८

पर ४ स्तम्भ तथा रगपीठ के पूर्वी कोणो से ४,४ हाथ की दूरी पर स्थापित स्तम्भो से ठीक पूर्व की ओर दो स्तम्भ इस प्रकार कुल (4 + 4 + 2) = 10 स्तम्भ लग जाते है फिर प्रेक्षागृह मे पूर्वत ६ और फिर ८ स्तम्भ इस प्रकार लगाये कि दक्षिणी भित्ति से पश्चिम की ओर रगपीठ के कोणो के समक्ष ४,४ हाथ की दूरी पर दो तथा पूर्व की ओर दक्षिण दीवार से ४ हाथ पर तीसरा इसी प्रकार उत्तरी दीवार से ४ हाथ की दूरी पर ३ स्तम्भ लगावे फिर पूर्वी दीवार से प्रत्येक स्तम्भ के सामने १० स्तम्भ लगा देवे इस प्रकार कुल ६ + १० = २४ स्तम्भो की स्थापना चतुरस्र मे करनी चाहिए।[१]

श्री शुक्ल जी ने जो विभाजन चतुरस्र नाट्यमण्डप का किया वह श्री शकुक एव अभिनव गुप्त सम्मत ही है, अन्तर यह है कि श्री अभिनवगुप्त रगशीर्ष को रगपीठ के ही समान 8 × 8 हाथ का मानते है। जिससे नेपथ्य अन्त मे केवल 4 × 32 हाथ का ही रह जाता है।[२] जबकि श्री शुक्ल नेपथ्य को 8 × 32 हाथ का और रगशीर्ष को 8 × 32 हाथ का स्वीकार करते हैं।

स्तम्भो की क्रमिक स्थापना मे शुक्ल जी ने श्री शकुक के मत से तनिक भी भिन्नता नही रखी।[३] उन्होने आगे यह लिखकर कि 'इसी विधान को विकृष्ट तथा त्रयस्र नाट्यमण्डपो पर भी विचार कर ठीक से लागू करना चाहिए।' विकृष्ट और त्रयस्र मे भी २४ स्तम्भो की स्थापना का मत व्यक्त किया है।[४]

स्तम्भ विषयक विवेचना मे भट्टतोत के मत को तात्विक बतलाते हुए शुक्ल जी ने उनके अनुसार सम्पूर्ण नाट्यमण्डप को अधोभूमि, रगपीठ तथा रंगशीर्ष सहित नेपथ्य इन तीन भागो मे विभक्त कर भरत के आभ्यन्तर शब्द से अधोभूमि (प्रेक्षागार) ग्रहण कर उसमे १० स्तम्भ, रगपीठ पर छ स्तम्भ तथा ८ स्तम्भ रगशीर्ष पर लगाने का निर्देश किया।[५]

डा० रायगोविन्द चन्द्र जी ने भी प्रत्येक आकार की नाट्यशाला में २४ स्तम्भो की स्थिति स्वीकार की है, किन्तु वे स्तम्भो की स्थिति उपरिनिर्दिस्ट रूप मे स्वीकार नही करते। वे रगपीठ के ४ स्तम्भो को छोडकर शेष सभी स्तम्भ नाट्यमण्डप की उत्तरी दक्षिणी भित्तियो के भीतर की ओर उससे सटे हुये एक सीध मे कम से कम ४ हाथ की दूरी पर स्वीकार करते है तथा इस प्रकार की स्थापना मे भरत के 'कार्य शैलगुहाकार·' कथन को प्रमाण रुप मे प्रस्तुत करते है।[६]

---

१ हि० ना० शा० (परि०) , पृष्ठ ४७३-७४।
२ भा० पा० रग, पृष्ठ ४५८।
३ भा० पा० रग, पृष्ठ ४५९-६०।
४ हि० ना० शा० (परि०) , पृष्ठ ४७४।
५ वही, पृष्ठ ४७५-७६।
६ भा० ना० शा० ना० शाला० रुप, पृष्ठ १३-१५।

(3) **रंगपीठ**—आचार्य भरत ने रगपीठ को प्रेक्षकोपवेश के समीप स्थित माना तथा उसके पार्श्व मे पाठभेद[१] से पीछे रगपीठ की ऊँचाई के प्रमाण की मत्तवारणी बनाने का निर्देश दिया जो चार स्तम्भो से युक्त हो।[२] रगपीठ और रगशीर्ष के सम्बन्ध मे विद्वानो मे पर्याप्त मतभेद है—अनेक विद्वान रगशीर्ष और रगपीठ को एक ही मानते है। कुछ रगशीर्ष और नेपथ्य के बीच मे रगपीठ मानते है तो कुछ आगे। इसको समझने के लिए प्रथमत भरत के मत का अन्वेषण आवश्यक है।

भरत ने भूमि का विभाग करते समय पश्चिम के आधे भाग को दो भागो मे विभक्त कर पूर्व मे रगशीर्ष और पीछे मे नेपथ्य का निर्देश किया।[३] इसके बाद इस पूर्व भाग मे किसी प्रकार का भेद निर्देश किये बिना रगपीठ के पार्श्व (या पृष्ठ) मे मत्तवारणी का निर्देश कर दिया।[४] फिर आगे उन्होने कहा कि 'इसके बाद विधानानुसार रगपीठ का निर्माण किया जाय। रगशीर्ष को षडदारुक से युक्त बनाया जाय।[५]' इसके आगे उन्होने कही विकृष्ट प्रकरण मे रगपीठ का उल्लेख नही किया केवल रगशीर्ष का ही उल्लेख करते रहे।[६]

भरत के अस्पष्ट व्याख्यान से केवल इतना ही प्रतीत होता है कि वे रगशीर्ष और रगपीठ को यद्यपि पृथक् मानते है किन्तु मुख्य अभिनय स्थल रग पीठ को ही स्वीकार करते है रगशीर्ष तो उसका मूल भाग है, उसी मे षडदारुक का [illegible] होता है।[७] अभिनय के लिए भाषा और ध्वनि के नियत्रण हेतु इन [illegible]रुको का अधिक उपयोग है। रगशीर्ष रगपीठ और नेपथ्य के बीच होता [illegible] क्योकि नेपथ्य के दो द्वार इसी मे आकर खुलते है।[८]

डा० रायगोविन्द चन्द्र ने इसके विपरीत रग पीठ को नेपथ्य के बिलकुल [स]मीप मानते हुए भरत के इस कथन की 'रगपीठ पर प्रवेश के लिए नेपथ्य से [ए]क द्वार होना चाहिए।'[९] प्रमाण रूप मे प्रस्तुत किया है।

दूसरा कारण उन्होने रग देवता की पूजा को माना है। उनके अनुसार रगमण्डप मे यक्ष देवता की पूजा होती थी। यक्ष देवता का सिर प्रेक्षागृह की ओर होता था अत· रगशीर्ष प्रेक्षागृह की ओर और नेपथ्य की ओर पीठ होने

---

१ स० ना० (हिन्दी अनुवाद) ,पृष्ठ ३८६।
२ रगपीठस्य पार्श्वे (पश्चात्) तु कर्तव्या मत्तवारणी। —ना० शा० २/७०
३ हि० ना० शा० २/३७-३९.
४ वही २/६७-६८
५ रग पीठ ततः कार्यम् विधिदृष्टेन कर्मणा।
रंग शीर्षन्तु कर्तव्यं षड्दारुक समन्वितम्॥ —हि० ना० शा० २/७३.
६ हि० ना० शा० २/७७-७८.
७ वही २/७३.
८ हि० ना० शा० २/७४.
९ द्वार चैक भवेत तत्र रगपीठ प्रवेशने। —हि० ना० शा०, ४/१००.

के कारण रगपीठ पीछे। इसके समर्थन मे उन्होने सीतावेगा गुफा मे पूरी टागे फैलाये हुए उत्कीर्ण मानव मूर्ति को रग देवता की मान्यता दी है।[१]

वस्तुत यह उनका बौद्धिक विलास मात्र ही है। क्योकि उनकी अन्य अनेक व्याख्याये आदर्श नही मानी जा सकती जैसे उन्होने आगे लिखा कि—'जैसा कि पहले कहा जा चुका है—रगपीठ के हेतु चार खम्भो की व्यवस्था है (भरत २/६५), चतु स्तम्भ समायुक्ता रगपीठप्रमाणत ।'[२] यहॉ चार खम्भो की व्यवस्था मत्तवारणी के लिए है न कि रगपीठ के लिए। अत रगपीठ की ऊॅचाई आदि के विषय मे उनका व्याख्यान स्वत. अविचारणीय है।

डा० मनमोहन घोष रगशीर्ष और रगपीठ को पृथक् नही मानते।

इनके मत मे ये दोनो शब्द एक दूसरे के पर्याय है तथा अभिन्न भी। इनके मत मे नाट्य मण्डप का तीन चौथाई भाग प्रेक्षको के बैठने के लिए और $\frac{1}{4}$ क्षेत्र रगपीठ और नेपथ्य के लिये रखा जाता था। नेपथ्य गृह के द्वार के पर्दे को हटाकर पात्र मच पर प्रवेश करते थे। प्रो० डी० आर० मनकड ने इस मत की आलोचना की और भरत के २/७३ व २/१०४ श्लोको को उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया। डा० वेकटराघवन ने भी इसका समर्थन करते हुए रगपीठ और रगशीर्ष के बीच पर्दे की स्थिति मानकर दोनो को पृथक् ही माना, जैसा कि श्री अभिनव गुप्त का भी मत था।[३]

विकृष्ट मे रगपीठ का आकार भी आयत होता है क्योकि इसकी लम्बाई ३२ और चौड़ाई १६ हाथ होती है। चतुरस्र मे ४ × ४ हाथ की लम्बाई चौड़ाई का निर्देश करने के कारण वह वर्गाकार होती है।[४]

त्र्यस्र मे रगपीठ का आकार भी सम्पूर्ण नाट्यगृह के आकार के अनुसार त्रिकोणात्मक होना चाहिए।[५]

(4) **रंगशीर्ष**—रगशीर्ष और रगपीठ समान तल वाले रग-मच के दो भाग है। सम्भवत नेपथ्य से पूर्व के 16 × 32 हाथ वाले भाग को दो बराबर हिस्सो मे बॉटकर पूर्व को रगपीठ और पश्चिम वाले को रगशीर्ष नाम दिया गया। इस रगशीर्ष को शुद्ध काली मिट्टी से भरने का विधान[६] यह स्पष्ट करता है कि यह भाग अभिनय के भी काम आता था। इसी से यह भी स्पष्ट हो रहा है

---

१ भ० ना० शा० ना० शाला० पृष्ठ १६-१७।
२ वही, पृष्ठ १७।
३ हि० ना० शा०, पृष्ठ ४६४।
४ वही, २/१०२
५ वही, २/१०६
६ वही, २/७४-७६

कि रग शीर्ष और रगपीठ दोनो को प्रथमत एक चबूतरे के रुप मे मिट्टी का भराव कर अभिनय योग्य बनाया जाता था किन्तु विकृष्ट नाट्य मण्डप मे इसे कुछ ऊँचा कर दिया जाता था।[१] चूँकि रगपीठ की ऊँचाई मत्तवारणी के समान १$\frac{१}{२}$ हाथ होती थी।[२] अत विकृष्ट नाट्य मण्डप मे रगशीर्ष की ऊँचाई भूमि तल से १$\frac{१}{२}$ हाथ से अधिक लगभग २ हाथ होती होगी।

श्री वाचस्पति गैरोला ने रगशीर्ष के विषय मे लिखा कि 'रगशीर्ष (रगपीठ का ऊपरी भाग) को अनेक प्रकार के शिल्पो से सज्जित करना चाहिए। उसमे सूर्य सिह और हाथी आदि की आकृतियॉ चित्रित की जानी चाहिए।'[३]

इस कथन से एक तथ्य का आभास होता है कि रगशीर्ष की यह सजावट नेपथ्य की भित्ति पर होती होगी। जो प्रेक्षको को सामने से दिखलाई पड़ती होगी।

ए० बी० कीथ भी इसी विचार धारा के प्रतीत होते है क्योकि उन्होने लिखा—'रगपीठ के अन्त मे रगशीर्ष होता है शालभजिकाओ (पुत्तलिकाओं) से अलकृत रहता है। वही पर पूजा होती है।'[४]

भरत ने रगशीर्ष मे ६ दारु खण्डो के प्रयोग का उल्लेख किया। दारुखण्ड कहने से स्पष्ट है कि यह स्तम्भ नही है क्योकि लकड़ी के स्तम्भो के लिए उन्होने स्पष्टत स्तम्भ की सज्ञा दी है। इसीलिए डा० रायगोविन्द चन्द्र की उक्ति को महत्त्व नही दिया जा सकता।[५]

डा० रघुवश ने प्रो० सुव्वाराव का मत उद्धृत करते हुए निर्दिष्ट किया है कि वे रगशीर्ष और रग पीठ आदि के विभाजन को स्वीकार नही करते। और षड्दारुक का अर्थ वे लकड़ी के ढॉचे से बनी रगपीठ मानते है जो ढॉचा एक दूसरे को काटती हुई लकड़ियो से बनता है। तथा उसका ऊपरी भाग समतल लकडी का रहता है। डा० रघुवश ने स्वत उस मत की आलोचना की है।[६] षड्दारुक की योजना पर विद्वानो ने अपना अपना मत प्रस्तुत किया है, यहॉ सक्षिप्तत यही कहा जा सकता है कि रगशीर्ष को दारुखण्डो से जहॉ अलकृत करने का भाव इस शब्द से स्पष्ट है वही वैज्ञानिक दृष्टि से ध्वनि नियत्रण के

१ हि० ना० शा० २/१०४
२ वही २/६९.
३ भा० ना० परम्परा अभि० द०, पृष्ठ ७१।
४ कीथ-स० ड्रामा, स० ना० (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३८६।
५ भ० ना० शा० ना० शाला० रुप, पृष्ठ १७।
६ ना० क०, पृष्ठ २३३।

लिए भी इसकी अत्यपेक्षा है अब ये दारुखण्ड चाहे नेपथ्य की भित्ति पर लगते हो या द्वार पर या रगशीर्ष के पार्श्व मे। मेरे विचार से तो रगशीर्ष और नेपथ्य गृह के मध्य की भित्ति पर ही यह दारुकर्म होता था जिससे अलकरण के साथ ही ध्वनि नियत्रण भी सम्भव हो जाता है। चतुरस्र मे यह रगशीर्ष ऊँचाई व लम्बाई आदि मे रगपीठ के बराबर ही रहता है।[१] भरत ने त्र्यस्र नाट्य मण्डप मे रगशीर्ष का कोई उल्लेख नही किया। किन्तु यह निर्विवाद है कि उसमे भी इसी प्रकार समतल रगशीर्ष त्रिकोणात्मक ही होता होगा।

(5) **नेपथ्य**—नेपथ्य रचना के विषय मे भरत ने कोई उल्लेख नही किया केवल उसकी नाप अर्थात् ६४ हाथ का $\frac{1}{4}$ (16 × 32) पश्चिमी भाग बतलाया है।[२]

दूसरी बात उसके दो द्वार है जो रगशीर्ष पर खुलते है। इन द्वारो की ऊँचाई व उनमे अन्तर आदि का कोई उल्लेख नही है भरत ने इस नेपथ्य मे बाहर से आने के लिए किसी द्वार की योजना नही की।

डा० रायगोविन्द चन्द ने एक नवीनता स्थापित की, वह यह कि नेपथ्य मे एक सूचिका बनती थी जिसमे पात्र अपने को सजाते थे।[३] इसकी पुष्टि मे उन्होने नाट्यशास्त्र के २३ वे अध्याय का चतुर्थ श्लोक दिया है एव उसकी अर्द्धपक्ति का उल्लेख इस प्रकार किया है—'अगादिभिरभिव्यक्तिमुपगच्छन्त्ययलत'। किन्तु निर्णयसागर प्रेस से १९४३ मे प्रकाशित नाट्यशाला मे यह श्लोक २१ वे अध्याय का चतुर्थ है। वहाँ यह श्लोक इस प्रकार है—

'नानावस्था प्रकृतयः पूर्वनेपथ्य सूचिका·।
अंगादिभिरभिव्यक्ति मुपगच्छन्त्ययत्नतः।'

इसके **नेपथ्य सूचिका** पद का पाठान्तर **नेपथ्य साधिताः** भी वही निर्दिष्ट है। गायकवाड़ ओरिएण्टल सीरीज मे बड़ोदा से १९५४ मे प्रकाशित नाट्यशास्त्र स0 CXXIV मे यही बाद वाला पाठ है जो २१ वे अध्याय का द्वितीय पद्य है। इसमे साधिता· का पाठान्तर सूचिता· दिया गया है। स्पष्ट है कि निर्णय सागर के अनुसार डा0 राय ने सूचिका पद ग्रहण किया है किन्तु खेद है कि उन्होने अभिनय गुप्त की टीका पर दृष्टिपात नही किया। जहाँ उन्होने साधिताः

---

१ हि० ना० शा० २/१०४
२ वही २/३८-३९.
३ भ० ना० शा० ना० शाला० रुप, पृष्ठ १८।

का अर्थ 'नेपथ्येन साधिता प्रकाशिता' किया है।[१] सूचिका शब्द भी प्रकृतय का ही विशेषण होने से पृथक् सूचिका नामक नेपथ्य भाग का परिचायक नही माना जा सकता।

नेपथ्य वस्तुत वह स्थान है जहाँ अभिनेता वेशभूषा आदि के द्वारा स्वय को आहार्य अभिनय करने के योग्य बनता है। इसीलिए नेपथ्य शब्द वेष रचना या प्रसाधन के अर्थ मे रुढि हो गया फिर नेपथ्य मे भी किसी पृथक् नेपथ्य गृह की बात गले नही उतरती। भरत के नाट्यशास्त्र मे नाट्य मे स्त्री पुरुष दोनो के भाग लेने की सूचना मिलती है।[२] इसकी पुष्टि कौटिल्य ने भी की है।[३] इसके अनुसार नेपथ्य को दो भागो मे विभक्त माना जा सकता है जिससे एक ओर स्त्रियाँ और दूसरी ओर पुरुष वेषपर्वतनादि कर सके। इस प्रकार ८ × १६ हाथ के दो नेपथ्य भाग बन जायेगे।

सम्भवत इसीलिए दो द्वारो की भी व्यवस्था का भरत ने उल्लेख किया जिससे एक से पुरुष पात्र व दूसरे से स्त्री पात्र आ जा सके। कुछ विद्वान् नेपथ्य के इन दो द्वारो का प्रयोग वाद्यवादको के प्रवेशार्थ मानते है और चतुरस्र मे निर्दिष्ट तृतीय नेपथ्य द्वार को अभिनेता पात्रो के प्रवेश हेतु स्वीकार करते है।[४] खैर जो भी हो यह अवितथ है कि नेपथ्य से रगशीर्ष पर पात्रो के आने के लिए पार्श्ववर्ती दो द्वारो का औचित्य है तृतीय द्वार जो रगपीठ के ठीक सामने होता है सूत्रधार नट नटी आदि प्रस्तावना के पात्रो के लिए स्वीकार किया जा सकता है।

(6) **मत्तवारणी**—नाट्यगृह का यह सबसे विवादास्पद अग है। भरत ने 'रगपीठस्य पार्श्वेतु कर्तव्या मत्तवारणी' लिखा पार्श्वे का पाठभेद **पश्चात्** भी प्राप्त होता है।[५] दोनो पाठो के कारण स्वत· दो मत प्रकाश मे आये। एक के अनुसार पार्श्व अर्थात् रगपीठ के बगल मे मत्तवारणी बनती है दूसरे के अनुसार मत्तवारणी के पीछे। चूँकि पीछे रगशीर्ष है अत उसके अनुसार रगशीर्ष पर मत्तवारणी बनती है ऐसा उन लोगो का मन्तव्य है। बगल मे मत्तवारणी की स्थिति स्वीकार करने वालो ने भरत द्वारा आगे लिखे 'तयो:' पद[६] के आधार पर रगपीठ के दोनो और मत्तवारणी की स्थिति स्वीकार कर दो मत्तवारणियो का उल्लेख किया।

१ ना० शा० २१/२ (अभिनव गु० टीका, पृष्ठ १०९)
२ ना० शा० २०/३०
३ अर्थ शा० (अध्यक्ष प्रचाराधिकरण) अ० २७/४१.
४ हि० ना० शा० (परि०) , पृष्ठ ४७७।
५ हि० ना० शा० २/६७
६ उत्सेधेन तयोस्तुल्य कर्तव्य रङ्गमण्डयम्। ना० शा० ~/७

डा० रघुवश प्रो० सुव्वाराव का मत व्यक्त करते हुए मत्तवारणी की एक तीसरी स्थिति प्रस्तुत करते है कि मत्तवारणी रगपीठ के सामने के खम्भो मे बधे हुए मत्त हाथियो की अलकृत पक्ति होती है। 'आगे रघुवश जी ने लिखा कि यह विचार भी महत्त्वपूर्ण है।'[१] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि शायद डा० रघुवश भी इस मत से सहमत है। सभवत सुब्बाराव जी का मन्तव्य भूमि तल से रगपीठ की ऊँचाई वाली भित्ति पर यह अलकरण करना है।

प० सीताराम चतुर्वेदी त्रिविध नाट्य मण्डपो का विवरण देने के पश्चात् समीक्षा करते हुए स्वमत की स्थापना मे रगपीठ के पीछे रगपीठ से १ ॥ हाथ ऊँची मत्तवारणी मानते है और समरागण सूत्रधार की निम्नलिखित कारिका प्रस्तुत करते है—

मुखभद्रं भवेद् युक्त वेदिका मत्तवारणे ।
क्षेत्र भागोदयार्था भूराभूमिफलकान्तरम् ॥

(ऐसी मथवारी या अम्वारी से वेदिका का सामना सुहावना हो जाता है जो भूमि के एक छोर से उठकर भूमि के पूरे छोर तक के भाग को ढके रहे) राजगृह अध्याय ३०/९।[२] मे मत्तवारणी की आवश्कता का प्रतिपादन करते हुए शाकुन्तल के उस दृश्य को प्रस्तुत करते है जहॉ एक ओर मेनका है वही माधवी मण्डप मे राजा राजकर्म, चित्र निर्माण आदि कार्य करता है और फिर बाद मे विदूषक के आर्तनाद पर वहॉ से घूमकर प्रासाद मे जाता है, ये दोनो भाग (माधवी मण्डप और राजप्रासाद दोनो ओर की मत्तवारणियो मे अलग-अलग बने होते है जहॉ राजा घूमकर पहुँच जाता है।[३] इस प्रकार चतुर्वेदी जी लिखते है कि—'अत मत्तवारणी का रगशीर्ष पर दोनो ओर होना अनिवार्य है।'[४]

डा० रायगोविन्द चन्द ने मत्तवारणी को अटारी की सज्ञा देकर रग पीठ पर स्तम्भो पर खड़ी की जाती थी तथा इसके तोरण दो हाथियो के सिर की घोडियॉ उटाए रहती थी जिससे इसका नाम मत्तवारणी पडा, ऐसा उल्लेख किया है।[५] उन्होने श्री एम()एम() घोष महोदय के मत का उल्लेख करते हुए लिखा है कि सुबन्धु की वासवदता मे मत्तावारणी को एक वरण्डिका के रुप मे हम पाते है।[६]

---

१ ना० क०, पृष्ठ २३३।
२ भा० पा० रग०, पृष्ठ ४६३-६४।
३ वही, पृष्ठ ४६४।
४ वही, पृष्ठ ४६४।
५ भ० ना० शा० ना० शाला० रुप०, पृष्ठ १६।
६ वही, पृष्ठ १६।

डा० कीथ रगपीठ के पास दर्शक कक्ष के सामने मत्तवारणी मानते हुए उसका उपयोग प्रेक्षको के लिए भी निर्दिष्ट करते है।[१] किन्तु प्रेक्षको के उपयोग की बात तर्कसगत प्रतीत नही होती। यद्यपि उनका मूल मन्तव्य रगपीठ और दर्शक कक्ष के बीच मत्तवारणी की स्थिति निर्धारित करना है। सभवत इसका प्रयोजन उन्होने यह भी माना हो कि इस लकडी के वराण्डा (कटघरा) को बीच मे रखने से दर्शक मच तक न पहुँच सके और किसी प्रकार का विघ्न नाट्य प्रदर्शन मे न हो। श्री बाबूलाल शुक्ल ने प्रो० भानु के मत को निर्दिष्ट करते हुए ऐसा ही भाव व्यक्त किया है।[२]

मत्तवारणी के विषय मे दिये गये विविध तर्कों और मान्यताओ से इसकी उपयोगिता पर नि सन्देह प्रकाश पड़ता है। भरत और उनके प्रामाणिक टीकाकार अभिनव गुप्त के अनुसार मत्तवारणी की स्थिति निम्न प्रकार समझनी चाहिए।

'रगपीठ जो मुख्य अभिनय स्थल है ८×३२ हाथ का होने के कारण आयताकार हो जाता है। इसके उत्तर दक्षिण दोनो ओर से ८, ८ हाथ के वर्गाकार भागो मे यह मत्तवारणी बनाई जाती थी।' विकृष्ट नाट्यमण्डप मे ८×३२ हाथ के आयताकार रगपीठ पर दोनो ओर ८×८ हाथ के मत्तवारणी बन सकते है किन्तु भरत ने चतुरस्र मे ८×८ हाथ के रगपीठ के पार्श्वों मे उतनी नाप के मत्तवारणी तथा पीछे रगपीठ की ही नाप का रगशीर्ष बनाने का जो उल्लेख किया।[३] वह सम्पूर्ण नाट्य गृह को दो बराबर भागो (१६ × ३२) मे बाट कर १ भाग (१६×३२) मे नेपथ्य (८ × ३२ *या* ४ × ३२), रगशीर्ष (८×८) तथा रगपीठ (८×८) बना पाना सभव प्रतीत नही होता है। क्योकि 16 हाथ की लम्बाई मे ८ हाथ का रगपीठ और उतनी ही ८ हाथ की लम्बाई का रगशीर्ष बना लेने पर नेपथ्य के लिए स्थान नही बचता, इसलिए भूमि का उपर्युक्त प्रकार से विभाजन न कर अभिनव गुप्त व श्री शकुक आदि के अनुसार सम्पूर्ण भूमि भाग को ४×४ हाथ के 64 भागो मे विभक्त कर बीच के चार वर्गों मे रगपीठ उसके पीछे के 4 वर्गो मे रगशीर्ष और रगपीठ के दोनो ओर ८×८ की मत्तवारणी बनाने पर रग के पीछे ४×३२ के शेष भाग मे नेपथ्य बन सकेगा। मत्तवारणी के चार स्तम्भ इस प्रकार होते थे—1,1 स्तम्भ रगमच (रगपीठ) की बाहरी दीवार

---

१ दर्शक कक्ष के सामने रगपीठ के पास मत्तवारणी होती है जिसमे 4 खम्भे होते हैं ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेक्षकों द्वारा भी उसका उपयोग किया जाता था।
—सं० ना० (हिन्दी अनु०), पृष्ठ ३८६.

२ हि० ना० शा० (परि०), पृष्ठ ४६७।

३ वही, २/१०२-१०४

से प्रेक्षकोपवेश की ओर रगपीठ के चबूतरे से सटे हुए होते थे तथा उनसे 8,8 हाथ की दूरी पर उत्तर दक्षिण की ओर उन्ही की सीध मे स्थापित किये जाते थे। ये चारो स्तम्भ स्थायी होते थे क्योकि इनके मूल मे लोहा रखने का निर्देश है।[१] जिसका उद्देश्य सभवत लकडी के इन स्तम्भो के मूल भाग को सड़ने या नीचे धसने से रोकना था। इन स्तम्भो के ऊपरी भाग पर हाथियो की मुखाकृति होती थी और उनके शुण्डादण्ड दोनो स्तम्भो के बीच मेहराब बनाते हुए होते थे। अतएव इसका ऊपरी आकार मत्तवारणी शब्द का अन्वर्थक (मतवाला हाथी) साकार हो जाता है।

इस मत्तवारणी का तल प्रेक्षाभूमि से 1॥ हाथ ऊँचा होता था[२] तथा इसी की ऊँचाई के समान रगपीठ भी प्रेक्षाभूमि से 1॥ हाथ ऊँचा होता था। रगशीर्ष, रगपीठ से भी पीछे होने के कारण उसे और ऊँचा करने का विधान बतलाया जा चुका है।[३] अभिनव गुप्त विकृष्ट नाट्य मण्डप मे 32 हाथ की चौड़ाई से बाहर निकली हुई मत्तवारणी के दो आकार सम चतुरस्र एव आयताकार स्वीकार करते है।[४] (देखिए चि0 स0 3)

वस्तुत सस्कृत नाटको मे एक ही अक मे अनेक दृश्यो को दिखलाने एव परिभ्रमण गति आदि के अभिनय हेतु मत्तवारणी की अत्यन्त उपयोगिता एव अपेक्षा होती है।

(7) **द्वार एव वातायन**—नाट्यशाला मे द्वार एव खिडकियो (वातायनों) का भी विशिष्ट महत्व है क्योकि जहॉ एक ओर द्वार पात्र प्रवेश, प्रेक्षक प्रवेश आदि के लिए उपयोगी है वही ध्वनि गति सम्वाद आदि की उचित व्यवस्था भी अत्यन्त अपेक्षित है।

(क) द्वार—आचार्य भरत ने द्वारो का सीमित निर्देश करते हुए विकृष्ट नाट्यमण्डप मे केवल नेपथ्य गृह और रगशीर्ष के मध्य की दीवार मे दो द्वारो का उल्लेख किया है।[५] इसके अतिरिक्त विकृष्ट प्रकरण मे कही भी द्वार का निर्देश नही है किन्तु उन्होने 'स्तम्भ वा नागदन्त वा वातायनमथापि वा। कोण वा सप्रतिद्वार द्वारविद्धं न कारयेत्'। लिखकर यह स्पष्ट किया कि किसी द्वार के सामने दूसरा द्वार या स्तम्भ, नागदन्त, कोण आदि नही होने चाहिए।[६]

---

१ हि० ना० शा० २/७१.
२ वही २/६९.
३ दे० पृ० ३६८.
४ अभि० भा० पृ० २८८व २९६.
५ हि० ना० शा० २/७३.
६ वही २/८४-८५

इससे यह आभास होता है कि भरत ने अन्य भी अनेको द्वारो की योजना नाट्यगृह मे मानी होगी, जिससे उन्होने एक द्वार के सामने दूसरे द्वार का निषेध किया इस अस्पष्टता के कारण ही यहाँ चतुरस्र और त्रयस्र मे निर्दिष्ट द्वारो का भी विवेचन कर लेना चाहिए।

चतुरस्र नाट्यग्रह मे भरत ने नेपथ्यगृह से एक द्वार रगपीठ पर पात्रो को प्रवेश करने के लिए,[१] दर्शको के प्रवेशार्थ रगमच के सामने प्रेक्षागृह मे एक द्वार तथा रगमच की ओर मुख वाला प्रेक्षागृह का द्वितीय द्वार बनाना चाहिए,[२] इस प्रकार वे कुल ३ द्वारो का निर्देश करते है।

त्र्यस्र मे एक द्वार (प्रवेश द्वार) कोण मे तथा द्वितीय द्वार रगपीठ के पीछे करना चाहिए यह लिखा।[३]

इस प्रकार भरत ने (2 + 3 + 2) कुल 7 द्वारो का उल्लेख तीनो प्रकार के नाट्य मण्डपो के विवरण मे किया। किन्तु यह वर्णन अपर्याप्त है। क्योकि विकृष्ट नाट्य मण्डप मे दर्शको के प्रवेश आदि के लिए द्वार का निर्देशन न करना, इसी प्रकार चतुरस्र मे रगशीर्ष पर आने के लिए किसी द्वार का निर्देश न होना यह स्पष्ट करता है कि द्वारो के विषय मे तीनो प्रकार के नाट्यमण्डपो के द्वारो का यथास्थान निर्माण करने की स्वतत्रता भरत ने दी है।

प० सीताराम चतुर्वेदी ने चतुरस्र नाट्य मण्डप का वर्णन करते समय ५ द्वारो का उल्लेख करते हुए कहा कि—'कुल पॉच द्वार भी विकृष्ट नाट्य गृह के ही समान होते थे।[४] चतुर्वेदी जी के इस कथन से स्पष्ट है कि वे विकृष्ट मे भी 5 द्वार स्वीकार करते है। इन पॉचो द्वारो के स्थान का निर्देश उन्होने इस प्रकार किया है—रगशीर्ष के पार्श्वों मे दो द्वार, रगशीर्ष मे प्रवेश करने के लिए रगशीर्ष के उत्तर दक्षिण की ओर दो द्वार, और प्रेक्षागृह के ठीक पूर्व मे एक द्वार।

चतुर्वेदी जी ने चतुरस्र नाट्य मण्डप मे एक छठा द्वारप्रेक्षक प्रवेश द्वार के ठीक सामने रगपीठ की ओर जाने के लिए निर्दिष्ट किया जिसका उपयोग सूत्रधार एव नटी के लिये होता था। ऐसा लिखा।[५] इससे यह स्पष्ट नही हो रहा है कि यह द्वार कहाँ था।

इसी प्रकार रगशीर्ष के दोनो पार्श्वों मे उन्होने जिन दो द्वारो का निर्देश कर पुन रगशीर्ष मे प्रवेशार्थ रगशीर्ष के उत्तर दक्षिण दो द्वारों का स्थान निश्चित किया यह स्वत ही अत्यन्त अस्पष्ट है।

---

१ हि० ना० शा० २/१००.
२ वही २/१०१.
३ वही २/१०७.
४ भा० पा० रग०, ४६०।
५ भा० पा० रग, पृष्ठ ४६१।

डा० रायगोविन्द चन्द्र प्रेक्षागृह मे रगपीठ के दक्षिण व पूर्व भाग मे दो प्रवेश द्वार तथा नेपथ्य से रगपीठ पर आने के लिए दो द्वार मानते है।[१]

द्वार विषयक इन समस्त वर्णनो के अध्ययन व भरत के विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि विकृष्ट नाट्यशाला मे मुख्यत ५ द्वार होते होगे जिनमे नेपथ्य व रगशीर्ष के मध्य भित्ति मे दो द्वार, जो रगशीर्ष से होकर रगपीठ पर पात्रो के प्रवेश के काम आते थे किन्तु वे रगपीठ के ठीक सामने न होकर बगल मे हो। प्रेक्षागृह की उत्तरी व दक्षिणी भित्तियो मे दो द्वार हो जिनसे अभिनेता व आवश्यक वाद्य आदि उपकरण नेपथ्य के लिए आ जा सके, होने चाहिए। इन दो द्वारो का औचित्य स्त्री और पुरुष पात्रो की भिन्नता भी है। चतुरस्र नाट्यगृह मे रगपीठ के सामने नेपथ्य मे एक अन्य द्वार की योजना[२] के कारण विकृष्ट मे निर्दिष्ट ५ द्वारो के साथ ६ द्वारो की योजना उचित है।

त्र्यस्र नाट्य मण्डप मे एक द्वार प्रेक्षागृह के कोण मे दर्शक प्रवेशार्थ, दूसरा द्वार रगपीठ के पीछे अर्थात् नेपथ्य से रगपीठ पर आने के लिए[३] तथा नेपथ्यगृह की बाहरी दीवाल मे नटो व वाद्यादि सामग्री के प्रवेशार्थ एक द्वार होता होगा। चतुर्वेदी जी ने इस विषय मे अधिक सुस्पष्टता के साथ लिखा कि—एक द्वार रगपीठ पर नेपथ्यगृह के सामने और एक पार्श्व से हो।[४]

यद्यपि विविध नाट्य मण्डपो मे विविध विद्वानो के अनुसार विविध मत व्यक्त करने से वस्तु स्थिति का आज भी निश्चय नही हो सका है, फिर भी औचित्य को ध्यान मे रखकर ही यह विधान किया गया है।

(ख) वातायन—भरत ने नाट्य मण्डप की आकृति शैलगुह के समान बताकर[५] उसकी दीर्घता का स्वत सकेत किया है। जिससे स्वभावत उसमे प्रकाश व हवा की व्यवस्था अपेक्षित है। भरत ने मन्द वातायन (लघु खिडकियॉ) की व्यवस्था दी। किन्तु वही यह भी निर्दिष्ट किया कि नाट्य मण्डप निर्वात हो जिससे वाद्यो के स्वरो का गाम्भीर्य नष्ट न हो।[६] स्पष्ट है कि यहॉ निर्वात शब्द तेज हवा से बचाव के लिए प्रयुक्त हुआ है। क्योकि तेज हवा मे वाद्यो की ध्वनि तो विकृत होती ही है, सम्वाद भी भली भॉति सुनाई नही पड़ता।

इन वातायनो के स्थान का भरत ने काई उल्लेख नही किया जिससे अनुमान का सहारा लेकर प्रेक्षागृह मे ही इनकी स्थिति की सम्भावना विद्वानो ने की है।

---

१ भ० ना० शा० ना० शाला० रुप, पृष्ठ १९।
२ हि० ना० शा० २/१००
३ हि० ना० शा० २/१०७
४ भा० पा० रग०, पृष्ठ ४६५।
५ हि० ना० शा० २/८५.
६ वही २/८६.

रगमच पर जाली एव झरोखो का उल्लेख है।[१] जो सम्भवत रगमच की भीतरी दीवालो पर लकडी के बनाये जाते थे, और इनका मूल उद्देश्य रगमच को अलकृत करना था। क्योकि शालभजिका, निर्यूहकुहर (किनारो पर की गई कलाकृति) कपोतपाली आदि का उपयोग अलकरण के लिए ही होता है।[२]

(8) **यवनिका**—सस्कृत नाट्य साहित्य मे यवनिका व अपटी शब्द पर्दे के अर्थ मे प्रयुक्त हुए है। आचार्य भरत ने यवनिका का उल्लेख अपने नाट्यशास्त्र मे पूर्वरग वर्णन मे किया है।[३] किन्तु कही भी उन्होने यह निर्दिष्ट नही किया कि इसका प्रयोग नाट्यमण्डप मे कहाँ होना चाहिए। पूर्वरग क्रिया मे स्तुति पाठ को यवनिका के अन्दर निर्देश करने,[४] एव यवनिका को हटाकर नान्दी क्रिया मे गीत आदि की योजना से[५] यह बात लगभग स्पष्ट है कि भरत इस यवनिका को रगपीठ और रगशीर्ष के मध्य स्वीकार करते है। पूर्व रग मे बहिर्गीत रगशीर्ष पर यवनिका के अन्दर गाये जाते थे ऐसा मानना भी तर्क सगत है।

रगपीठ के मुखभाग पर यवनिका का कोई विवरण प्राप्त नही होता। किन्तु प्राचीन नाटको मे अनेक ऐसे दृश्य है जो पर्दा के बिना सज्जित नही किये जा सकते, जैसे मृच्छकटिक मे—तत' प्रविशति-मदनाकुला स्थिता बसन्त सेना[६] आदि प्रकरण मे बैठी हुई बसन्त सेना को दिखाने के लिए पूर्वत: यवनिका अपेक्षित है। इसी प्रकार भास कालिदास आदि के नाटको मे अनेक दृश्य है। डा० रायगोविन्द चन्द्र ने तो सीतावेगा गुफा मे चबूतरे के पास दो छिद्रो का उल्लेख करते हुए निर्दिष्ट किया है, ये छिद्र शायद खम्भे लगाकर पर्दा टॉगने के काम आते थे।[७] तीनो प्रकार के नाट्य मण्डपो मे इन्ही स्थलो पर यवनिका टागी जाती थी।

(9) **प्रेक्षागृह**—सस्कृत नाट्यशाला के निर्माण मे प्रेक्षागृह की अपेक्षा रगमच पर अधिक ध्यान दिया गया है। विकृष्ट नाट्य मण्डपो मे प्रेक्षागृह के लिए सम्पूर्ण नाट्यगृह का आधा भाग था[८] तो चतुरस्र मे वह घटकर 3/४ भाग मे रह गया[९] त्रयस्र मे वह कोण मे होने के कारण अत्यन्त छोटा हो गया।[१०]

---

१ हि० ना० शा० २/८२.
२ वही २/८०-८३.
३ वही ५/११-१२.
४ वही ५/११
५ वही ५/१२.
६ मृच्छ०, पृष्ठ २३६।
७ भ० ना० शा० ना० शाला० रूप, पृष्ठ २०।
८ हि० ना० शा० २/३७-३९.
९ वही २/९२-९४.
१० वही २/९५-९६.

भरत ने प्रेक्षको के बैठने के लिए ईटो व लकडी की सीढियो का निर्देश किया है जिनमे पक्ति भूमि तल से 1 हाथ ऊँची हो पीछे उत्तरोत्तर इतनी ऊँचाई हो कि पीछे के दर्शको को आगे वाले दर्शको से कोई रुकावट न हो सके।[१]

अभिनव गुप्त ने नाट्यशास्त्र के इस स्थल की टीका मे लिखा है कि 'रगपीठ के पीछे के द्वार तक कुल 1॥ हाथ ऊँचाई तक के बैठने' की सीढियॉ बनती थी, और इस क्रम से बनती थी कि पीछे के दर्शको को सामने वालो से आड़ न हो।[२] वस्तुत यह मत स्वीकार नही किया जा सकता क्योकि इससे प्रेक्षको के लिए स्थान अत्यन्त कम होगा। प० सीताराम चतुर्वेदी जी ने इस सम्बन्ध मे गणना करते हुए लिखा कि—'यदि छ छ इच भी पीछे की बैठके ऊँची हो तो कुल ५ पक्तियॉ लग पायेगी।'[३]

वस्तुत भरत ने प्रत्येक सीढ़ी की ऊँचाई का उल्लेख नही किया और न ही अन्तिम सीढी की ऊँचाई का ही।

यद्यपि उनके कथन से स्पष्ट है कि वे पीछे की सीढी इतनी ऊँची चाहते है जिससे अग्रिमस्थ दर्शको की आड न हो सके। सामान्यत यदि पीछे-पीछे की पक्ति छ. छ इच भी ऊँची कर दी जाये तो निश्चय ही दर्शको को कठिनाई नही होगी और यह व्यवस्था अन्तिम दीवार तक चलती जायेगी इसमे जितनी भी सीढियॉ बन सके ठीक है, भरत का १॥ हाथ की ऊँचाई का निर्देश केवल प्रथम पक्ति के लिए ही है, अन्तिम के लिए नही।

डा० रायगोविन्द चन्द्र का यह मत अधिक तर्कसगत नही कि—'प्रत्येक सीढी एक दूसरे से १ हाथ ऊँची रहती थी। इस प्रकार देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि सीढ़ियो की आठ पक्तियॉ प्रत्येक प्रकार के प्रेक्षागृह मे बन सकती थी।'[४] क्योकि इस प्रकार दर्शको के लिए अत्यन्त कम स्थान मिल पायेगा।

कुछ व्याख्याकारो का ऐसा ध्येय प्रतीत होता है कि उन्हे प्राचीनो के प्रत्येक कथन पर अपनी नवीनता या हस्तक्षेप योजित करना है चाहे वह कथन कितना ही स्पष्ट एव तर्क सगत हो। भरत ने विकृष्ट एव त्रयस्त्र नाट्य मण्डपो मे प्रेक्षास्थल का किसी प्रकार का वर्णन नही किया, इससे उनकी चतुरस्त्र मे की गई व्यवस्था ही सर्वत्र मान्य होनी चाहिए।

---

१ वही २/९५-९६.
२ भा० पा० रंग, पृष्ठ ४६३ पर उल्लिखित।
३ वही, पृष्ठ ४६३।
४ भ० ना० शा० शाला० रुप।

एक स्थान पर भरत ने 'द्विभूमिनटियमण्डप'[१] लिखा है जिसका अभिप्राय सम्भवत रगशीर्ष और रगपीठ के दो स्तर है किन्तु कुछ विद्वानो ने दूसरी मजिल अर्थ करके नाट्यशाला का दो खण्डो मे निर्माण माना है।[२] किन्तु यह उचित प्रतीत नही होता।

सम्पूर्ण नाट्य मण्डप को विविध प्रकार की चित्रकारी और काष्ठ कर्म से अलकृत करने का विधान स्वय भरत ने किया है नाट्य मण्डप की ऊपरी छत स्तम्भ और भित्तियो पर आधारित होती थी एव ध्वनि की सुरम्यता व सजावट के लिए लकडी का बाहुल्येन प्रयोग होता था।[३] विविध लेप व रगो से स्त्री पुरुषो की विविध क्रीडाये स्तम्भो, भित्तियो व छतो मे चित्रित की जाती थी।[४] अजन्ता, सीतावेगा और जोगीमारा की गुफाओ मे भित्तियो पर एक विशेष प्रकार का लेप एव रगो की चित्रकारी आज भी प्राप्त होती है।[५]

इस प्रकार भरत ने प्राचीन काल मे नाट्यशालाओ के विकसित रूप पर विस्तृत प्रकाश डालकर नाट्यकारो व समीक्षको का पर्याप्त मार्गदर्शन किया है। यह सत्य है कि ये नाट्यशालाएँ आदर्श थी जिनका सम्यक् परिपालन आगे नही हो सका किन्तु उनकी अनेक रुढियॉ आज के नाट्यगृहो और यूनान रोमन आदि नाट्यशालाओ मे विद्यमान है तथा इनका उत्तरोत्तर विकास भी हुआ है।

भरत ने जिस उच्च कलात्मक वास्तुशिल्प की उदात्तता से समलकृत नाट्यशाला का वर्णन किया है, कुछ लोगो का विचार है कि इस प्रकार की नाट्यशालाओ का स्थायी निर्माण कभी होता ही नही था। प० सीताराम चतुर्वेदी जी ने इस सम्बन्ध मे स्पष्टत लिखा है कि—'भरत ने जिन नाट्यशालाओ का विवरण दिया है उन रगशालाओ का या उनके अस्तित्व का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त नही होता। कुछ विद्वानो ने विन्ध्य की निर्जन पर्वत माला मे समवस्थित सीतावेगा और जोगीमारा गुफाओ के शिलावेश्मो को भूल से भारतीय नाट्यशाला का अवशेष मान लिया है। वास्तव मे भारतीय नाट्यशालाये स्थायी रूप से बनायी ही नही जाती थी।[६]

उन्होने आगे भारतीय नाट्यो का अभिनय राजप्रासादो व सरस्वती मन्दिरो आदि मे माना है। आवश्यकतानुसार यदि निर्माण होता भी था तो उन रगशालाओ को अभिनय के पश्चात् उजाड़ दिया जाता था ऐसा उल्लेख वही किया है।

---

१ १ हि० ना० शा० २/८५
२ रग० ना० भूमि०, पृष्ठ ६०-६१।
३ हि० ना० शा० २/९४-९९.
४ वही २/८७-९०.
५ भ० ना० शा० ना० शाला० रूप, पृष्ठ २१-२२ पर उल्लिखित।
६ भा० पा० रग, पृष्ठ ५२६-२७

स्पष्ट है कि चतुर्वेदी जी ने सीतावेगा का नाम लेकर डा0 रायगोविन्द चन्द्र की ओर सकेत किया है किन्तु जिस रुप मे डा0 राय ने प्राचीन भग्नावशेषो मे भारतीय रगशाला का आकार ढूढा है वह नितान्त वैज्ञानिक है। 46 फीट लम्बी 24 फुट चौडी सीतावेगा गुफा के अन्दर 7 फीट 6 इच चौडे तीन मच जो एक दूसरे से 2॥ फीट ऊॅचे है, इस प्रकार ढलुआ आकार के है जैसा कि भरत ने रगपीठ और रगशीर्ष का आकार निर्दिष्ट किया है। इस गुफा के आगे भी थियेटर की भॉति सीढियो का होना डा0 राय के कथन को सत्य सिद्ध करता है।[१]

श्री वाचस्पति गैरोला ने भी प्रकारान्तर से इस मत की पुष्टि की है। इनका कथन है कि 'दरीगृह या शिलावेश्म मे वस्तुत नाट्यशालाओ के ही रूप थे' कुछ असम्भव नही कि इन शिलावेश्मो मे कलानिपुण सुन्दरियो को वेतन देकर रखा जाता हो।[२] इन शिलावेश्मो का विवरण मेघदूत[३] एव कुमारसभव[४] मे भी प्राप्त होता है। स्वय भरत ने 'कार्य 'शलगुहाकार'[५] लिखकर गुफाओ मे नाट्यमण्डपो की ओर सकेत किया है।

यद्यपि यह भी सत्य है कि सस्कृत नाट्यमच का विकास देवोत्सवो और राजप्रासादो मे ही मुख्यत हुआ। श्री गैरोला ने स्पष्ट लिखा है कि 'सस्कृत के प्राचीन एव मध्यकालीन ग्रन्थो मे इस प्रकार के प्रचुर उल्लेख देखने को मिलते है कि राजाओ, रईसो, सामन्तो और इसी प्रकार के श्रेष्ठी श्रीमन्त लोगो के यहॉ मनोविनोद तथा कला के सरक्षण के लिये, सगीतशाला, नाट्यशाला और चित्रशाला का विशेष प्रबन्ध होता था।'[६]

बाल्मीकि रामायण मे रावण के राजमहल मे नाट्यशाला और सगीतशाला का स्पष्टोल्लेख है।[७] बौद्ध धर्म के विनयपिटक के चुल्लवग्ग मे कीटागिरि मे रगशाला का उल्लेख है जहॉ अश्वजित और पुनर्वसु नामक दो भिक्षुओ को अभिनय देखने और नर्तकी से प्रेमालाप करने के कारण बिहार से तत्काल निष्कासित कर दिया गया था, ऐसा उल्लेख है।[८]

इन प्राचीन उल्लेख एव प्रमाणो तथा भरत के नाट्यशास्त्रीय विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सस्कृत नाट्य मच जिसका प्रारम्भिक

---

१ भ० ना० शा० ना० शाला रूप, पृष्ठ ३-६।
२ भा० ना० पर० अभि० द०, पृष्ठ ६८।
३ मेघ० १/२५.
४ कुमार० १/१०, १४.
५ हिं० ना० शा० २/८५.
६ भा० ना० पर० अभि० द०, पृष्ठ ६६।
७ रामायण ६/२४/४२-४३
८ भा० ना० पर० अभि० द०, पृष्ठ १३५।

रूप वैदिक कालीन यज्ञशालाओ मे था, उत्तरोत्तर विकसित होकर प्रथम शती ईशापूर्व तक सुव्यवस्थित और कलात्मक स्थिति को प्राप्त हो गया था। गुप्तकाल मे भी इस कला का उसी प्रकार विकास होता रहा। किन्तु 12वी शती के आसपास मुसलमानो के आक्रमणो एव उनकी बादशाही मे भारतीय ललित कलाएँ और रगमच समाप्त हो गये और सस्कृत नाट्य साहित्य पन्नो मे ही दब गये।[१] परिणामत आज कुछ व्यक्तियो को यह कहने का साहस हो गया कि भरत ने जैसे नाट्यमण्डप की बात कही है वैसे कभी कही बने थे या नही यह सन्देहास्पद है।[२] विकृष्ट एव त्र्यस्र नाट्य मण्डपो के चित्र आगे दिए गए है।

(स) अभिनेयता

किसी की क्रियात्मक, भावात्मक, शारीरिक एव वेशभूषात्मक अवस्थाओं का अनुकरण अभिनय कहलाता है।[३] आचार्य भरत ने सर्वप्रथम अभिनय शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा—

'अभिनय इति कस्मात् उच्यते—अभी त्युपसर्ग। णीञ् प्रापणार्थो धातु। अस्याच्प्रत्ययान्तस्याभिनय इति रूप सिद्धम्। एतच्च धात्वनुवचनेनावधार्यं भवति'।[४] उन्होने आगे भी लिखा—

'विभावयति यस्माच्च नानार्थान्हि प्रयोगत।
शाखांगोपागसंयुक्तस्तस्मादभिनय. स्मृत ॥'[५]

अत अभिनय वह कला है जो दृष्टा को भावाविष्ट कर सके अर्थात् रसास्वाद की स्थिति तक पहुँचा सके।

भरत की इस परिभाषा के परिप्रेक्ष्य मे यह कहना अत्युक्ति न होगी कि किसी भी रूपक या उपररूपक का प्राणतत्व अभिनय है।[६] नट (अभिनेता) यदि अभिनेय अवस्था की सम्यक् अनुकृति नही करता तो वह अपने प्रयोग से सामाजिको को रसास्वाद नही करा सकता। रसास्वाद के अभाव मे दर्शक या सामाजिक नाट्य को देखने का कष्ट ही क्यो करेगा। फलत काव्य की अपेक्षा नाटक लिखने का प्रयोजन ही समाप्त हो जायेगा।

भरत ने 4 प्रकार का अभिनय निर्दिष्ट किया है—आगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक।[७]

---

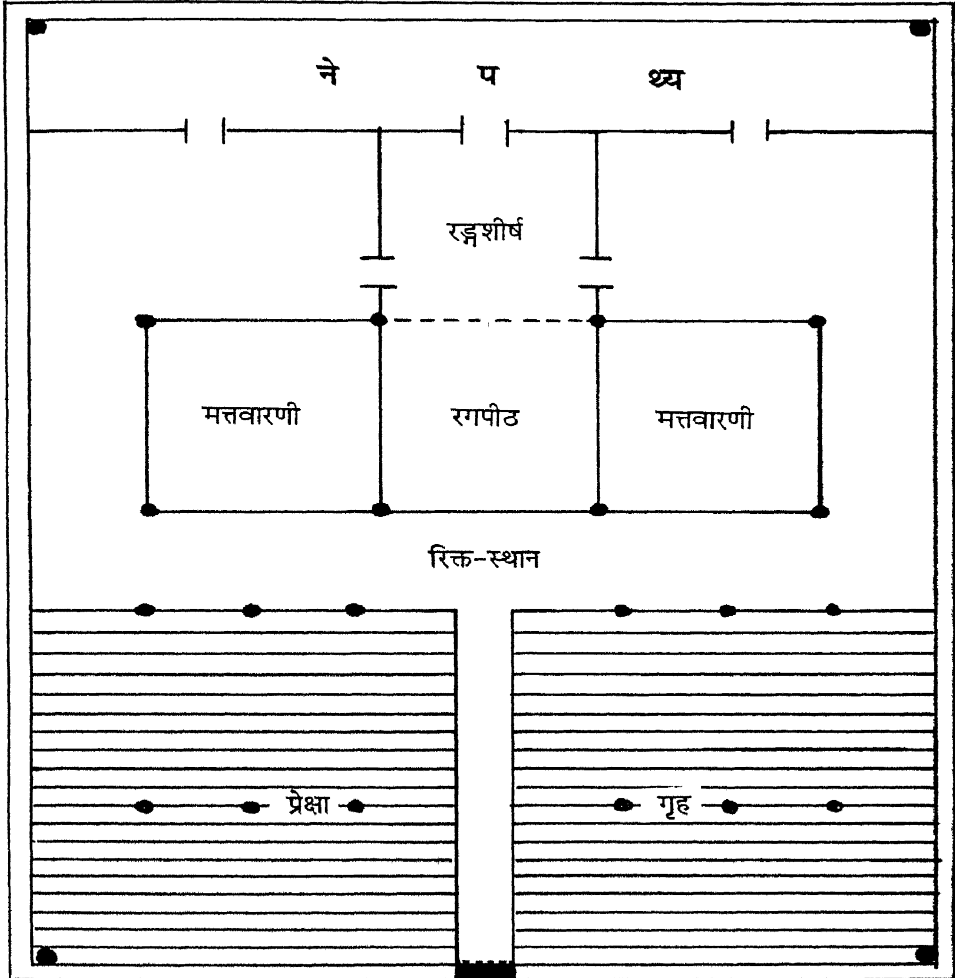
१ रगमंच, पृष्ठ ४९।
२ भा० पा० रग०, पृष्ठ ४६५।
३ भवेदभिनयोऽवस्थानुकार. स चतुर्विध। —सा० द० ६/२
४ ना० शा० पृष्ठ १३५।
५ ना० शा०, ६/२४, ८/७.
६ तन्त्र त्वभिनयस्यैव प्राधान्यमिति कथ्यते। —अभि० द० श्लो० ३८.
७ ना० शा० ८/९

चतुरस्त्र कनिष्ठ नाट्य मण्डप

प सीताराम चतुर्वेदी के अनुसार (३२ × ३२ हाथ)

(भारतीय तथा पाश्चात्य रगमच पृ ४५८)

क्षत्रिय स्तम्भ | वैश्य स्तम्भ

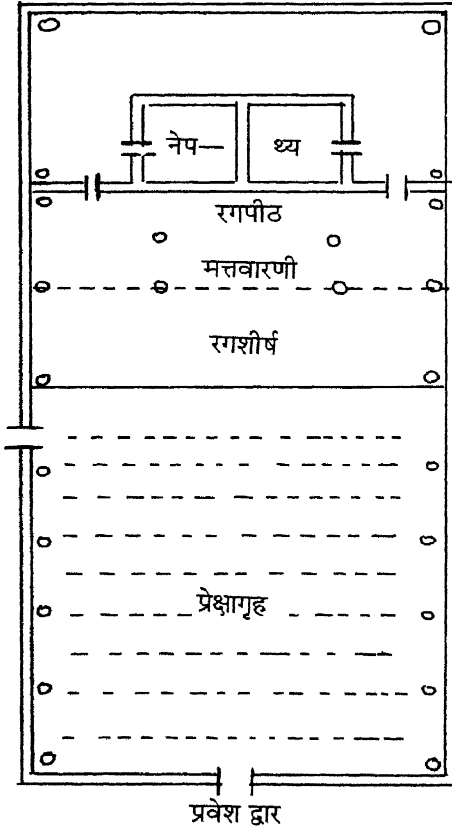


ब्राह्मण स्तम्भ | प्रवेश द्वार | शूद्र स्तम्भ

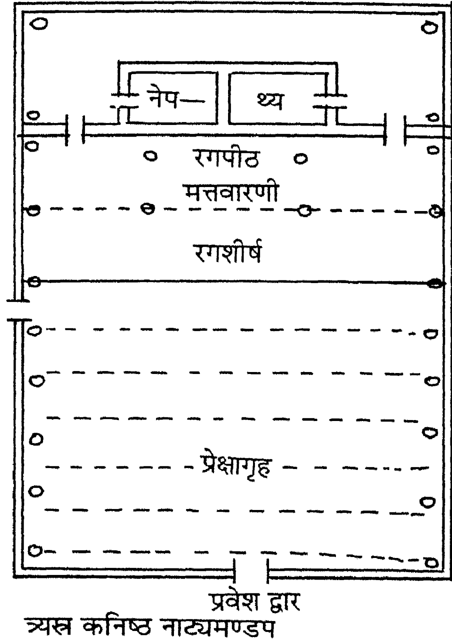
दिशाएँ	मापक	माप	संकेत
पश्चिम दक्षिण उत्तर पूर्व	८ हाथ = १५ सेमी १५ ३० ४५ ६०	नेपथ्य ४ × ३२ हाथ रगशीर्ष ८ × ८ हाथ रगपीठ ८ × ८ हाथ मत्तवारणी–२ ८ × ८ हाथ रिक्तस्थान ४ × ३२ हाथ प्रेक्षकोपवेश ८ × ३२ हाथ स्तम्भ— • द्वार— ⊐⊏	यवनिका - - - - - - -

डा. रायगोविन्द चन्द्र के अनुसार

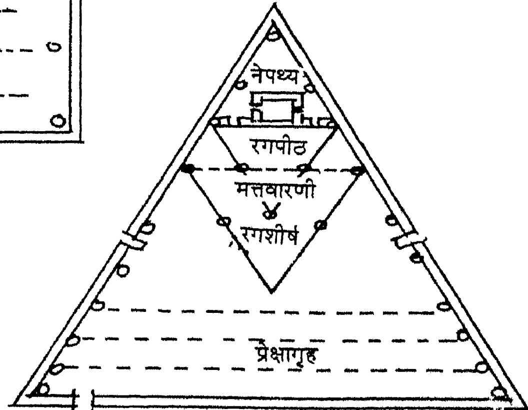
विकृष्ट मध्यम नाट्यमण्डप



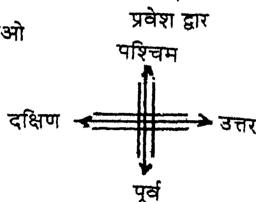
चतुरस्र कनिष्ठ नाट्यमण्डप



त्र्यस्र कनिष्ठ नाट्यमण्डप



भरत नाट्य शास्त्र मे नाट्यशालाओ के रूप, फलक—१)



विकृष्ट मध्यम नाट्यगृह

(६४ × ३२ हाथ)

नेपथ्य

रङ्गशीर्ष

मत्तवारणी

रङ्गपीठ

मत्तवारणी

रिक्त-स्थान

प्रेक्षा

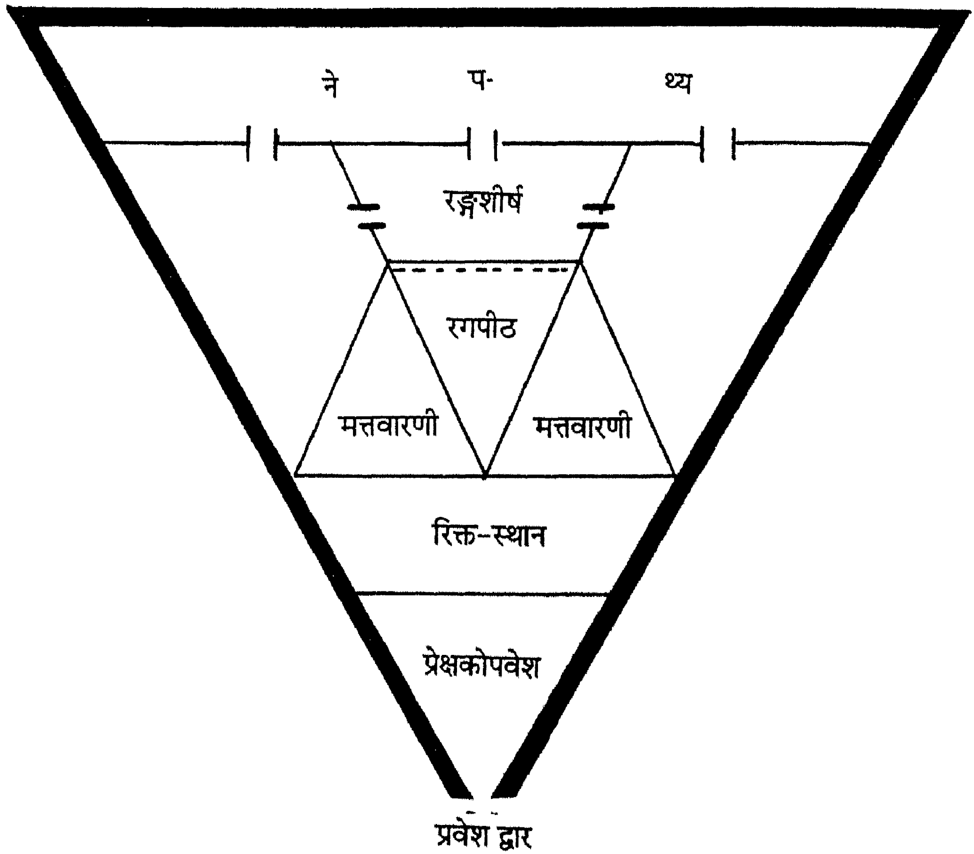
गृह

प्रवेश द्वार

पश्चिम दक्षिण उत्तर पूर्व	१६ हाथ = १५ सेमी १५ ३० ४५ ६०	नेपथ्य १६ × ३२ हाथ रगशीर्ष ८ × ८ हाथ रगपीठ ८ × १६ हाथ मत्तवारणी-२, ८ × ८ हाथ रिक्त स्थान ४ × ३२ हाथ प्रेक्षा गृह २८× ३२ हाथ	द्वार— ▯ स्तम्भ— ● यवनिका - - - - - - - -

त्र्यस्र कनिष्ठ नाट्यमण्डप

प्रत्येक भुजा ३२ हाथ



परवर्ती शास्त्रकारो ने भी इन्ही 4 प्रकार के अभिनयो को स्वीकार किया है।[१] इन अभिनय प्रकारो का विस्तृत विवेचन नाट्यशास्त्र और अभिनय दर्पण मे किया गया। अभिनयदर्पण का तो मूल उद्देश्य ही अभिनय विधि को बतलाना है क्योकि ग्रन्थकार ने प्रथम पद्य मे ही भगवान् शिव की स्तुति करते हुए चारो प्रकार के अभिनयो का उल्लेख किया है।[२] इन चारो प्रकार के अभिनयो मे प्रथम—आगिक अभिनय शारीरिक अवयवो जैसे हस्त, पाद, ग्रीवा आदि के द्वारा विविध भावचेष्टाओ के अनुकरण मे होता है।[३]

रति, हास आदि भाव, आयु, प्रकृति और अवस्थादि के अनुकूल बोलने एव भाषा के प्रयोग का अनुकरण करने के लिये वाणी का प्रयोग वाचिक अभिनय कहलाता है।[४]

आचार्य भरत ने 14 से 17 अध्यायो तक वाचिक अभिनय का अत्यन्त विस्तार से वर्णन किया है जिसमे शब्द, विभक्ति, रस, छन्द, नाट्यालकार, गुण आदिको का विश्लेषण किया है। सस्कृत और प्राकृत का कब, किस पात्र के द्वारा प्रयोग करना चाहिए इत्यादि नियमो एव सम्बोधन, विराम चिह्नो आदि के पात्रानुकूल प्रयोग का उचित निर्देश उन्होने अत्यन्त विस्तार से किया है।

अवसरानुकूल भावो की अनुभूति के लिये विविध सात्विक भावो का अभिनय सात्विक अभिनय कहलाता है।[५]

वेष, भूषा, वर्ण आदि के द्वारा किसी का अनुकरण कर तद्रूपानुभूति कराने मे समर्थ अभिनय आहार्य कहलाता है।[६]

आचार्य भरत ने इन सबसे पृथक् एक प्रकार चित्राभिनय के नाम से भी स्वीकार किया है।[७] किन्तु नाट्यदर्पणकार ने इसका निषेध कर इसे पूर्वोक्त ४ प्रकार के अभिनयो मे ही अन्तर्भूत माना है।[८]

---

१ अभि० द० श्लोक ३८, सा० द० ६/२, ना० द० सू० २२६-२२

२ आगिक भुवन यस्य वाचिक सर्व वाङ्मयम्।
आहार्य चन्द्रतारादि त नुम सात्विक शिवम्॥
—अभि० द० श्लोक१

३ तमागिकोऽङ्गैर्निदर्शित। अभि० द० ३९, कर्मणोऽङ्गैरुपाङ्गैश्च साक्षाद् भावनमागिक.।—ना० द० (सू०) २२७.

४ ना० द० सू० २२६।

५ सात्विक स्वरभेदादेरनुभावस्य दर्शनम्। —ना० द० (सू०) १२८.

६ वर्णाद्यनुक्रियाऽऽहार्यो बाह्यवस्तुनिमित्तक।
—ना० द० (सू०) १२९

७ अगाद्यभिनयस्यैव यो विशेषः क्वचित् क्वचित्।
अनुक्त उच्यते चित्र स चित्राभिनयस्मृतः॥ —ना० शा० २५/१

८ यस्तु पचमश्चित्राभिनय प्रोक्त सोऽप्यगोपागकर्मविशेषरूपत्वादागिक एवान्तर्भवति।
— ना० द०, पृष्ठ ३६०

अभिनयदर्पणकार नन्दिकेश्वर ने आगिक अभिनय के ही विविध प्रकारो का विवेचन किया है तदर्थ उसका तीन भागो मे विभाजन किया—अग, प्रत्यग और उपाग।[१] पुन अग के 6 भेद—शिर, हस्तयुगल, वक्षस्थल, दोनो पार्श्व, दोनो कटि प्रदेश और दोनो पैर।[२] कुछ लोग ग्रीवा की गणना भी अग के अन्तर्गत मानते है।[३]

प्रत्यगो के अन्तर्गत—दोनो स्कन्ध, दोनो बाहु, पीठ, उदर, दोनो उरु और दोनो जघाएँ आती है।[४] इसी प्रकार उपाग के 13 भेद है—नेत्र भौह, पुत्तलियाँ कपोल, नासिका, कुहनी, अधर, दन्त, जिह्वा, ठोढी, मुख और शिर के अग।[५]

कुछ विद्वान् केवल स्कन्ध भाग को ही उपाग मानते है।[६] अभिनयदर्पणकार ने प्रत्येक अगोपागादि के विविधविध अभिनयो की विवेचना कर आगिक अभिनय का ही विस्तार से व्याख्यान किया है।

नाट्यशास्त्र प्रणेता आचार्यभरत ने भी आगिक अभिनय का अत्यन्त विस्तृत विवेचन किया है जिससे यह स्पष्ट है कि चारो प्रकार के अभिनयो मे आगिक अभिनय ही प्रधान है। जिसके उन्होने 3 भेद किये है— शरीर, मुखज और चेष्टाकृतिज।[७]

इनमे शरीर अभिनय के साधन है—शिर, हस्त, कटि, वक्ष, पार्श्व और पाद।[८] उन्होने इनको 2 वर्गो मे विभक्त किया—अग व प्रत्यग। अग के अन्तर्गत—शिर, हस्त, उरस, कटि, पार्श्व व पाद तथा नेत्र, भ्रू , नासा, अधर, कपोल, चिबुक उपाग सज्ञक है।[९]

इन अगोपागो के तीन अभिनय प्रकार है—शाखा, नृत्त और अकुर।[१०] इनमे अगो का अभिनय शाखा, सूचनात्मक अभिनय अकुर और अगहारो से सम्पादित होने वाले करणाश्रित अभिनय नृत्त कहलाते है।[११]

मुखज अभिनय के अन्तर्गत शिर का १३ प्रकार का अभिनय,[१२] दृष्टि का ३६ प्रकार का अभिनय[१३] तथा तारक एव भौ का विविधविध अभिनय।[१४]

---

१ अभि० द० 42।
२ वही 42।
३ वही 43।
४ वही 43-44।
५ वही ४५-४६।
६ उपागन्तु स्कन्ध एव जगुर्बुधा। —अभि० द० ४५
७ ना० शा० ८/११.
८ वही ८/१२
९ वही ८/१३
१० वही ८/१४
११ वही ८/१५
१२ वही ८/१६-३७
१३ ना० शा० ८/३८-९४.
१४ वही ८/९५-१२५

नासिका के मुख्यत ६ भेद फिर उनके उपयोगानुसार विविध भेद, कपोल, ओष्ठ, चिबुक, दन्तोष्ठ, मुखराग, जिह्वा एव ग्रीवा आदि के विविध अभिनयो तथा तदनुसार उनकी सज्ञाओ का अतिविस्तृत विवेचन[१] भरत ने किया है। आगिक अभिनय के सम्बन्ध मे तो भरत ने यहाँ तक कहा है कि अगाभिनय से रहित नाट्य हो ही नही सकता।[२]

डा० कीथ ने भरत के आगिक और सात्विक अभिनयो के सम्बन्ध मे दिये गये निर्देशो को उचित न मानते हुए उन्हे अवैज्ञानिक एव असन्तोषजनक कहा है।[३]

किन्तु यह उनका अतिवादी दृष्टिकोण है। भरत ने अत्यन्त सूक्ष्मता से सभी विषयो का अत्यन्त स्वाभाविक विवेचन किया है, जो भारतीय प्रज्ञा एव समाज के सर्वथा अभिनय और अनुभवयोग्य थे।

वस्तुत अभिनय सम्बन्धी विविध शास्त्रीय नियमो की परिभाषा प्रस्तुत प्रबन्ध मे वर्णनीय नही अपितु उसके परिप्रेक्ष्य मे सस्कृत नाटिकाओ की अभिनेयता की मीमासा ही मुख्य प्रतिपाद्य होने के कारण इन शास्त्रीय परिभाषाओ एव विविध मतो की विस्तृत विवेचना न कर उनका परिचय मात्र ही दिया गया है।

अभिनय सम्बन्धी जो भी शास्त्रीय विवेचन उपलब्ध होता है उसका वास्तविक उपयोग नाट्य के प्रयोगकाल मे ही सभव होने के कारण यदि यह कहा जाय कि अभिनय अभिनेता के ही आश्रित होता है चाहे वह 'आगिक, वाचिक, आहार्य एव सात्विक मे से कोई क्यो न हो। किन्तु रूपको, उपरूपको आदि के अध्ययन से रसास्वाद के आधार पर पाठक को भी उसकी अभिनेयता का परिज्ञान होता ही है तभी तो वह यह कहता है कि यह नाटक सफल अभिनयात्मक है या नही।

यह सत्य है कि दर्शक की अपेक्षा पाठक को उतना ही अधिक भावुक, विद्वान् और कलाप्रिय होना आवश्यक है जितना कि नाटककार को, तभी वह किसी रूपक की अभिनेयता, या अनभिनेयता का मूल्याकन कर सकता है। क्योंकि दर्शक तो प्रत्यक्ष अभिनय को देख, सुनकर सरलतया आनन्द विभोर हो जाता

१ वही ८/१२६-१७४.

२ नह्यगाभिनयात्किचिद्धते नाट्य प्रवर्तते। —ना० शा० १३/७६.

३ 'वास्तविक सम्बन्ध यह है कि सात्विक अभिनय के अन्तर्गत भावो तथा अनुभूतियो के अनुरूप शारीरिक अवस्थाओ का निररूपण किया गया है, और आगिक अभिनय के अन्तर्गत उन सुनिर्दिष्ट अगविक्षेपो का वर्णन है जो रगमच पर सुविधापूर्वक प्रस्तुत न की जाने योग्य मानसिक अवस्थाओ एव शारीरिक चेष्टाओ इन दोनो की अत्यन्त प्रभावशाली ढग से व्यजना करते है। अतएव यह विभाजन अवैज्ञानिक है और नाट्यशास्त्र मे उसकी जो छानबीन की गई है वह कुल मिलाकर सन्तोषजनक नही है।
—स० ना० (हि० अनु०)', पृष्ठ ३९६

है पर पाठक के लिये तो कल्पना जगत मे रगमच और उस पर अभिनय की योजना तथा उसकी परीक्षा करने पर ही आस्वाद प्राप्ति हो सकती है जो सामान्य दर्शक के वश की बात नही है। अत यदि यह कहा जाय कि अभिनय की उचित समीक्षा नाटक के अभिनीत होते समय ही की जा सकती है तो अत्युक्ति न होगी क्योकि अभिनय अभिनेताश्रित ही होता है।

नाट्य मे अत्यन्त अभिनेयता होते हुए भी यदि अभिनेता कुशल प्रशिक्षित नही है तो वह उसका सुन्दर अभिनय नही कर सकता। किन्तु इस आधार पर उस नाट्य को हीन नही कहा जा सकता।

किसी भी नाट्य को पढ कर उसकी अभिनेयता को सामान्यत निम्न आधारो पर मूल्याकित किया जा सकता है—

१ कवि के द्वारा दिये गये रग निर्देशो से।

२ पात्रो के परस्पर सम्वाद से।

३ वेशभूषा व प्राकृतिक वर्णनो से तथा

४ भाषा प्रयोग से।

इन चार रुपो मे प्रथम रगनिर्देश सबसे मुख्य एव महत्वपूर्ण है। कवि जिस प्रकार का अभिनय पात्र से चाहता है तदनुकूल वह निर्देश देता है। इससे आगिक, वाचिक, आहार्य एव सात्विक चारो प्रकार के अभिनयो का ज्ञान हो जाता है। उदाहरणार्थ जब कवि कहता है—'आकर्ण्य, नेपथ्याभिमुखमवलोक्य' तो वह पात्र से आगिक अभिनय कराना चाहता है और कर्ण, नेत्र, मुख आदि अगोपागो का अभिनय वहॉ अपेक्षित हो जाता है। इसी प्रकार परिक्रम्य, समन्तादवलोक्य, हस्ते गृहीत्वा, उपसृत्य, श्रुत्वा, सभ्रूभगम आदि निर्देशो से भी आगिक अभिनय व्यक्त होता है।

सानन्दम्, सभयम्, सविस्मयम्, सादरम् आदि निर्देशो से वाचिक अभिनय का अनुमान होता है क्योकि इन निर्देशो के अनुकूल ही पात्र को वाणी का प्रयोग करना पड़ता है। जिससे वह सामाजिक के हृदय मे आनन्द, विस्मय आदि भावनाओ का तादात्म्य करा सके।

गृहीत वसन्तवेश, कृतावगुण्ठनः, वेत्रहस्ता, आदि निर्देशो से पात्रो की वेशभूषा आदि बाह्य वस्तुओ के माध्यम से आहार्य अभिनय की प्रतीति होती है।

इसी प्रकार ससाध्वसम्, सलज्जम्, सोद्वेगम्, साहकारम्, सोन्मादम्, सखेदम्, मदनाकूतमभिनीय, सन्तापमभिनीय, सक्रोधम्, सरोमाचम्, सानन्दम्, जृम्भयन् मोहमभिनीय इत्यादि निर्देशो से सात्विक अभिनय की प्रतीति होती है।

रगनिर्देश के सम्बन्ध मे डा० कीथ ने वर्नाड शा की कविता के सन्दर्भ मे कुछ विचार इस प्रकार व्यक्त किये है—'यह बात स्पष्ट है कि नाटका के वास्तविक अभिनय के सम्बन्ध मे अभिनेताओ का निर्देशन करना ही इन रगनिर्देशो

का एकमात्र उद्देश्य नही था, अपितु उनकी सहायता से नाटक का पाठक भी उसके अभिनय के रुप की कल्पना करके अधीत नाटक के नाटकीय गुणो और तदनुरूप रस की अनुभूति कर सकता था।'[१]

पात्रो के परस्पर सम्वाद से भी अभिनय की श्रेणी का ज्ञान होता है जैसे रत्नावली मे विदूषक मदनोत्सव मे स्व प्रेयसी मदनिका को देखकर राजा से कहता है—'भो वअस्स, पेक्ख पेक्ख। एसा क्खु मअणिआ मआवसविसण्ठुल वसन्ताभिणअ णच्चन्ती चूदलदिआए सह इदो ज्जेव्व आअच्छदि।'[२]

यहाँ मदनिका के विसष्ठुल भाव से वह कम्प या वेपथु नामक सात्विक अभिनय का तथा वसन्ताभिनय से आगिक अभिनय का कुशलतापूर्वक निर्वाह कर रही है, यह ज्ञात होता है क्योकि उससे विदूषक का चित्त रागाकुल हो रहा है।

इसी प्रकार विदूषक के वेश से आहार्य अभिनय की प्रतीति हो रही है। वह कहता है—'भोदि, सच्च सच्च। सबामि बम्हसुत्तेण जइ कदा वि अम्हेहि ईदिसी दिट्ठपुव्वा।'[३]

यहाँ विदूषक के द्वारा ब्रह्मसूत्र की शपथ लेने से यह स्पष्ट है कि वह किसी ब्राह्मण का अभिनय कर रहा है क्योकि ब्रह्मसूत्र का धारण मुख्यत ब्राह्मण ही करते थे।

आचार्य भरत ने आहार्य अभिनय को नेपथ्यज विधि कहा है।[४] उन्होने नेपथ्य को ४ भागो मे विभक्त किया है—पुस्त, अलकार, अग रचना एव सजीव।[५] इनमे शैल, यान, विमान, कवच आदि का निर्माण पुस्त,[६] विविध प्रकार की मालाएँ व आभूषण अलकार[७] वेशभूषा, केश, श्मश्रु एव वर्ण आदि का विन्यास अगरचना[८] तथा सत्वानुकूल चतुष्पाद, द्विपद, तथा अपद विधान सजीव या सजीव कहलाता है।[९]

इन सभी नेपथ्य विधियो में भरत ने स्पष्ट निर्देश किया है कि कोई भी वस्तु लोह निर्मित नही होनी चाहिए क्योकि भारी होने से वे कष्टकर तथा पात्रो

---

१ कीथ (सं० ड्रामा०) स० ना० (हि० अनु०), पृष्ठ ३९६-९७।
२ रत्ना०, पृष्ठ १८।
३ वही, पृष्ठ ८४।
४ आहार्याभिनयो नाम ज्ञेयो नेपथ्यजो विधिः।
तत्र कार्य. प्रयलस्तु नाट्यस्य शुभमिच्छता॥ —ना० शा० २१/२
५ ना० शा० २१/५.
६ वही २१/९.
७ वही २१/१०-७६.
८ वही २१/७७-१६०
९ वही २१/१६१-१६३

को थकाने वाली होती है।[१] अत लकडी चमड़े लाख आदि से ही इनका निर्माण करना चाहिए। इसी प्रकार आयुधो का भी।[२] किस वस्तु का किस-किस द्रव्य से विधान करना चाहिए इत्यादि का भी निर्देश भरत ने बहुत ही विस्तार के साथ किया है।[३]

आहार्य अभिनय का भरत सम्बन्धी विवेचन अत्यन्त मनोवैज्ञानिक और व्यावहारिक है।

प्राकृतिक वर्णनो से भी अभिनय का ज्ञान होता है यह लिखा जा चुका है। जैसे उषारागोदया नाटिका मे एकत्र विदूषक मेघ का वर्णन करते हुए उसे सूकर से रूपित करता हुआ कहता है—

खणप्पहाखरदहणो गज्जारफ्फुरिअ घोर घोसरओ।
हिडइ कामि जणाण वहाअ घण सूअरो णहो विविणे॥[४]

यहाँ मेघ का उद्दीपक वर्णन नायक मे कम्प आदि सात्विक अभिनय को व्यक्त करता है।

भाषा के प्रयोग से भी पात्र को निम्न, मध्यम या उत्तम श्रेणी के पात्र का अभिनय ज्ञात हो जाता है अत भाषा, सम्वाद आदि उपयोगी साधन है।

वस्त्र आभूषण आदि के प्रयोग सम्बन्धी भरत के नियमो का परिचय प्राप्त कर लेना यहाँ अपेक्षित है। जिससे कि नाटिकाओ के अभिनय सम्बन्धी विशेषताओ का अन्वीक्षण किया जा सके।

आचार्य भरत ने वस्त्रो के सम्बन्ध मे निर्दिष्ट किया कि—'तापस लोग चीर व बत्कल, परिब्राजक, मुनि व शाक्त काषाय वस्त्र, अन्त.पुर मे नियुक्त कचुकी काषाय कचुक, राजा चित्रवेष धारण करे किन्तु नक्षत्रोत्पातादि अपशकुनात्मक अवसरो पर शुद्ध वेष ही धारण करे। राजा मुकुट तथा सेनापति व अन्य युवराज अर्द्धमुकुट, अमात्य, कचुकी, श्रेष्ठी व पुरोहित पगड़ी धारण करे।[५]

आभीर युवतियाँ नीले तथा अन्य सामान्य स्त्रियाँ सादे एव मलिन वस्त्र धारण करे। शोक, वियोग, उन्माद आदि स्थितियो मे देवी को भी मलिन वेश धारण करना चाहिए। किन्तु पूजा, धर्म श्रवण आदि धार्मिक व पवित्र अवसरो पर शुभ्र वेश ही होना चाहिए।

स्त्रियो के शिर की शोभा केशो से होती है, तदनुसार अवन्ती स्त्रियो के केश घुघराले एव गौड़ी स्त्रियो के घुघराले तथा वेणी युक्त होने चाहिए। आभीर

---

१ वही २१/२०४.
२ वही २१/२०५-२११
३ ना० शा० २१/२१२-२१३.
४ **क्षण प्रभाखरदहनो गर्जन स्फुरित घोर घोषरव।**
हिण्डते कामि जनाना वधाय घन सूकरो नभो विपिने। —उषा० १/१३.
५ ना० शा० २१/१३१-१४९.

युवती के केश दो वेणियो वाले, पूर्वोत्तर देश की स्त्रियो के केश ऊपर उठे हुए जूडे के रूप मे होने चाहिए।[१]

देश व स्थान आदि के द्योतननार्थ अभिनेताओ के वर्ण की भी व्यवस्था भरत ने दी, तदनुसार राजाओ का वर्ण गौर या श्याम हो, इसी प्रकार सुखी लोगो का गौर वर्ण तथा कुकर्मी, व्याधियुक्त या तपस्वी जनो का वर्ण असित (काला) होना चाहिए। इसी प्रकार किरात, बर्बर, आन्ध्र, द्रविड, काशी व कोशलवासियो का वर्ण असित व शक, यवन, बाह्लीक व पह्लवो का गौर, पाचाल, शूरसेन, माहिष, उड्र, मागध, अग, बग और कलिगो का श्याम एव वैश्य तथा शूद्र वर्णो का भी श्याम वर्ण होना चाहिए। इसी प्रकार राजाओ, राजकुमारो, यावनोन्मादियो की दाढी विचित्रवर्ण की, दु खी, तपस्वी व व्यसनी की श्याम तथा ऋषि, तापस, दीर्घव्रती की दाढी रोमश वर्ण की होनी चाहिए।[२]

सस्कृत नाटिकाओ के कलेवर पर विचार किया जा चुका है। राजोद्यान की चहारदीवारी मे एक उत्तम श्रेणी के पात्र नायक के द्वारा मध्यम एव अधम श्रेणी के पात्रो के साथ प्रणय, विषादमय और कृत्रिम उत्साह पूर्ण क्रियाओ का अभिनय किया जाता है। प्रत्येक पात्र (अभिनेता), चाहे वह नायक की भूमिका मे हो या सेवक की, देश, काल और वहॉ की वेशभूषा व भाषा से परिचित होता है। तभी वह अभिनय के द्वारा दर्शक को रसानुभूति करा सकता है, जो रुपको का चरमोद्देश्य है। भरत ने अभिनेताओ के लिये इसकी जानकारी करने पर बल दिया है—

देश भाषा क्रिया वेश लक्षणा स्यु· प्रवृत्तय।
लोकादेवावगम्येता यथौचित्य प्रयोजयेत्॥

वस्तुत नाटिका साहित्य एक रुढिमूलक प्रवृत्ति पर आधारित नाट्य है इसकी रचना की दो मुख्य धाराएँ है—(१) सम्वाद प्रधान, (२) पद्य प्रधान या भाव प्रधान।

प्रथम धारा के अन्तर्गत रत्नावली, प्रियदर्शिका, विद्धशालभजिका, उषारागोदया, पारिजातमजरी, चन्द्रकला, मृगाकलेखा, वृषभानुजा एव चन्द्रप्रभा है। द्वितीय धारा के अन्तर्गत कर्णसुन्दरी, मलयजाकल्याणम्, कमलिनी कलहस आदि है।

अभिनय की दृष्टि से सम्वादात्मक नाटिकाएँ अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण होती है क्योकि उनमे परस्पर वार्ता मे मुख्यत आगिक व वाचिक अभिनय स्वत ही अभिव्यक्त हो जाता है तदर्थ अभिनेता को अधिक प्रयत्न नही करना पडता जबकि पद्यात्मक अभिनय मे अभिनेता को मानसिक भावो के अनुकूल बाह्य प्रदर्शन करने मे अधिक प्रयत्नशील होना पडता है।

---

१ वही २१/६७-६९
२ ना० शा० २१/१०५-१२३.

आगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक अभिनयो मे आगिक तथा आहार्य अभिनय स्थूल एव वाचिक व सात्विक सूक्ष्म है। स्थूल अभिनय अभिनेता व दर्शक दोनो के लिये सरल होते है। क्योकि इन अभिनयो मे बाह्य उपकरणो और स्थूल शरीर के द्वारा विविध क्रियाओ व भावो का अनुकरण किया जाता है।

पद्य बहुल नाट्यो मे वाचिक व सात्विक अभिनय का प्राधान्य होने से सूक्ष्म भावनाओ का प्रदर्शन करना पडता है जो विदग्ध पुरुषो के ही ग्रहण योग्य होते है इसी प्रकार अत्यन्त कुशल अभिनेता ही उन्हे अभिनीत कर सकता है। इसीलिये सात्विक अभिनय को श्रेष्ठ अभिनय की सज्ञा दी गई।[१]

किसी भी नाट्य की अभिनेयता के लिये यह भी अपेक्षित है कि उसमे अभौतिक दृश्यो, विशाल वाहनो, जल व नभयानो तथा देवी युद्धो का वर्णन बहुत कम हो। क्योकि इनके अभिनयार्थ कृत्रिम उपकरणो का प्रयोग करने से नाटय मे कृत्रिमत्व आ जायेगा।

सस्कृत नाटिकाओ मे अभौतिक कुछ होता ही नही अत इस प्रकार की समस्या यद्यपि इनमे उत्पन्न नही होती किन्तु कुछ गीतात्मक नाटिकाओ मे अभिनय की समस्या अवश्य ही आ जाती है, जैसे—कर्णसुन्दरी मे राजा (नायक) अत्यन्त उत्कण्ठित होकर मदन, इन्दु, सुन्दरी आदि का वर्णन करते हुए एक स्थान पर लगातार सात पद्यो का पाठ करता है। कवि ने अपिच, सागभगम्, स्मरणमभिनीय, सनिश्वासम् आदि रगनिर्देशो से अभिनय पद्धति का सकेत किया है,[२] किन्तु अभिनेता इन निर्देशो का पालन करता हुआ भी अभिनय से सामाजिक के हृदय को अनुरंजित नही कर सकता क्योकि उसमे वाक्य प्रयोग अधिक और अभिनय की न्यूनता होने के कारण दृश्यकाव्य की अपेक्षा पाठ्यकाव्य की श्रेणी मे आ जाता है। किन्तु इस प्रकार की नाटिकाओ व स्थलो की सख्या अत्यन्त न्यून है।

अभिनय की दृष्टि से सस्कृत नाटिकाएँ अत्यन्त सफल कृतियाँ है क्योकि इनमे कथानक लघु होने के कारण रगमच को पुन· पुन. परिवर्तित करने की आवश्यकता नही पडती। दूसरा कारण यह भी है कि इनमें परस्पर अनुराग, प्रणय और हास-परिहास पूर्ण कथानक प्रायश: सम्वादात्मक ही रहता है। नाटिकाकार प्रायश सर्वत्र रगनिर्देश कर देते है। आयुध, वन्य प्राणी, पशु, नदी, पर्वत और यानो का वर्णन न होने के कारण रग आयोजन एव अभिनय मे विशेष प्रयत्न न करने से भी अभिनय की कुशलता मे कोई व्याघात नही आता। इससे एक

---

१ सत्वातिरिक्तोऽभिनयो ज्येष्ठ इत्यभिधीयते।
समसत्वो भवेन्मध्यः सत्वहीनोऽधम· स्मृत·॥ —ना० शा० २२/२

२ कर्ण० ३/१-७.

तथ्य प्रकाश मे अवश्य आता है कि नाटिकाओ मे आगिक, वाचिक और सात्विक अभिनयो का ही प्राबल्य रहता है, आहार्य अभिनय स्वल्प होते है।

यद्यपि सभी नाटिकाओ मे राजा की विजय दिखलाते समय युद्ध का उल्लेख होता है किन्तु वह सेनापति आदि पात्रो के द्वारा सूचना देने के कारण अनभिनेय होता है जिससे ललित वेशात्मक नायक को वेशपरिवर्तन आदि की क्रिया भी नही करनी पडती।

जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है कि आगिक अभिनय रूपक का प्राणतत्व है, तदनुकूल सस्कृत नाटिकाओ की समीक्षा करने पर रत्नावली को प्रथम स्थान दिया जा सकता है। फिर भी अभिनेय दृश्यो की अनेकता के कारण कई स्थलो पर कुछ विघ्न भी उपस्थित हो जाता है। उदाहरणार्थ प्रथम अक मे मदन पूजा के अवसर पर देवी के द्वारा की जाने वाली पूजा को स्वीकार करने के लिये राजा मकरन्द उद्यान मे अपने मित्र विदूषक के साथ जाकर वही उद्यान की सुन्दरता का एक ओर वर्णन करता है।[१] तभी दूसरी ओर महारानी अपनी परिचारिकाओ के साथ आती है और अशोक मूल मे कामदेव को स्थापित करने का आदेश देती है, किन्तु अभी उन्होने राजा को नही देखा है।[२] इधर देवी के आदेश से सारिका की रक्षा के लिये सागरिका वहाँ से हटा दी जाती है किन्तु वह थोड़ी दूर पर मदनपूजा के कुतूहलवश छुप कर पूजा का अवलोकन करती रहती है।[३] वह न तो राजा को अभी तक देख सकी है और न ही राजा और महारानी अपने अपने स्थानो से उसे देख सके है।

यहाँ एक ही मच पर मकरन्द उद्यान के तीन स्थल है एक पर राजा व विदूषक, द्वितीय पर देवी व उनकी दासियाँ और तीसरे पर सागरिका। मध्यम व त्र्यस्र नाट्यगृह के ८ हाथ के रगपीठ पर इन सभी दृश्यो को अभिनीत कर पाना अत्यन्त कठिन है, इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि रगपीठ के दोनो ओर की मत्तवारणियो का भी उपयोग इन दृश्यो के लिये किया जाता होगा जिसके अनुसार मध्य मे अर्थात् रगपीठ पर महारानी एक पार्श्व मे राजा व दूसरे पार्श्व मे सागरिका स्थित होगी।

यदि मत्तवारणी की यह स्थिति न मानी जाय तो राजा, देवी और सागरिका के स्वगत कथनो मे अस्वाभाविकता प्रतीत होने लगेगी। क्योकि देवी, सागरिका के विषय मे जिस बात को प्रकट करने के लिये स्वगत कथन करती है[४] कि

१ रत्ना०, १/१७-१८.
२ वही, पृष्ठ ३२।
३ वही, पृष्ठ ३०।
४ **अहो पमादो परिअणस्स। जस्स ज्जेव्व दसणपथादो पअत्तेण रक्खीअदि तस्स ज्जेव्व दिट्ठिगोअरे पडिदा भवे। भोदु, एव दाव भणिस्स।** —रत्ना०, पृष्ठ ३०

जिसस वह उसे सुन न सके, वह सागरिका के अत्यन्त समीप होने के कारण अस्वाभाविक प्रतीत होगा और दर्शक उससे रसानुभूति नही कर सकेगे। इसी प्रकार सागरिका का अलक्षित होकर सब कुछ देखना भी।

कवि हर्ष की कला का उत्कर्ष उनकी रत्नावली नाटिका है फिर भी प्रियदर्शिका अभिनय की दृष्टि से किसी भी रूप मे हीन नही है। तृतीय अक मे गर्भाक की योजना कर कवि ने राजा व वासवदत्ता के द्वारा सात्विक अभिनय मे पर्याप्त सफलता प्राप्त की।

उक्ति वेचित्र्य और सूक्तिमयी भाषा का बाहुल्येन प्रयोग कर कवि राजशेखर ने विद्धशालभजिका को वाचिक अभिनय के योग्य बनाने मे जहॉ सफलता प्राप्त की वही सम्वादो, रगनिर्देशो एव प्रकृतिचित्रणो से आगिक, सात्विक एव यत्र तत्र आहार्य अभिनय की भी सुष्ठु व्यवस्था की है। उन्होने अनेक दृश्यो को एक साथ उपस्थित करने की भूल नही की। यो तो छिप कर किसी दृश्य को देखना या वार्ता श्रवण करने का अभिनय तो नाटिकाओ मे पदे पदे होता ही है। तदर्थ एक साथ दो दृश्यो का या दो पात्रो का पृथक् पृथक् वाचिक आगिक आदि अभिनय होना सामान्य स्थिति है किन्तु तीन या और अधिक का आयोजन निश्चय ही अभिनय मे बाधक सिद्ध होगा।

पाठ्य नाटिका की दृष्टि से वाचिक अभिनय प्रधान नाटिकाओ मे बिल्हण की कर्णसुन्दरी का सर्वप्रथम स्थान है। चूँकि वाचिक अभिनय को समझ कर रसास्वाद करने वाले सहृदय विपश्चितो की सख्या स्वल्प होती है अतएव इस प्रकार की पद्यबहुला नाटिकाओ को अभिनय की दृष्टि से महत्वपूर्ण नही माना जा सकता। आचार्य भरत ने इसका सकेत 'गूढ शब्दार्थहीन जनपद सुखबोध्यम्'[१] पद के द्वारा किया है। उनका अभिप्राय है कि नाट्य मे गूढ़ता नही होनी चाहिए। वाचिक अभिनय मे भरत ने जिस प्रकार की भाषा आदि का उल्लेख किया है[२] तदनुसार गूढता भी आ जाती है।

कर्णसुन्दरी का तृतीय अक इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है जहॉ आरम्भ से ही राजा अपनी मदनावस्था का विस्तरेण अभिनय करता है,[३] पश्चात् विदूषक के द्वारा कर्ण मे कुछ कहते ही वह पुन ४,५ श्लोको मे आह्लाद व्यक्त करता है।[४] तभी विदूषक के द्वारा प्रेयसी का विरहलेख दिये जाने पर राजा उसको बाचता है और ७ श्लोको तक विराम नही लेता।[५]

---

१ मृदुललित पदाढ्य गूढ शब्दार्थ हीन जनपद सुख बोध्य युक्तिमन्नृत्ययोज्यम्।
बहुकृत रसमार्ग सन्धिसन्धानयुक्तं भवति जगति योग्य नाटकं प्रेक्षकाणाम्।
—ना० शा० १७/१२४

२ ना० शा० १४-१७.

३ कर्ण०, ३/१-७

४ वही, ३/८-११.

५ वही, ३/१२-१८

इस प्रकरण मे आगिक अभिनय को कोई अवसर नही है। पाठक या दर्शक उस काव्य पाठ से चाहे उस पाठ मे नट ने कितनी ही भावभगिमाएँ क्यो न प्रदर्शित की हो, नाट्य का आनन्द प्राप्त नही कर सकता।

कवि ने यहाँ कुछ अपेक्षित रगनिर्देश भी नही किये जैसे विदूषक के द्वारा नायिका का विरह लेख कहाँ, कैसे प्राप्त हुआ ? उल्लेख न होने से[१] ऐसा लगता है जैसे उसकी जेब मे वह रखा था जिसे उसने निकाल कर राजा को दे दिया, निश्चय ही इससे अस्वाभाविकता की अनुभूति होती है।

अभी विरहलेख पढ ही रहा था कि सन्ध्या समय की रमणीयता का सकेत पाकर ६ पद्यो की पुनर्योजना[२] और फिर कर्णसुन्दरी के वेश मे आई हुई देवी की रूप प्रशसा मे अनेको श्लोको की योजना से नाट्य के मूल तत्व अभिनय का प्राय लोप ही हो गया। इस प्रकार सम्पूर्ण तृतीय अक काव्यात्मक होने के कारण नाट्यरूप मे रसास्वादक नही है।

१२वी शती के दाक्षिणात्य कवि रुद्रचन्द्रदेव की उषारागोदया नाटिका अभिनेयता की दृष्टि से किसी भी रूप मे रत्नावली से घटकर नही है। घटनाओ, सम्वादो और भावनात्मक वर्णनो का कवि ने हृदयग्राही सम्मेलन किया है। सर्वत्र अपेक्षित रग निर्देशो से अभिनय मे सरलता का सृजन हुआ है। आगिक वाचिक, सात्विक और आहार्य अभिनयो के लिये पर्याप्त अवसर उपलब्ध होते है।

मदनबाल सरस्वती की पारिजात मजरी नाटिका के उपलब्ध २ अको मे रगनिर्देश एव सम्वादयोजना से नाटिका की अभिनेयता पर पर्याप्त प्रकाश पडता है।

कवि ने पदो मे विच्छेद कर दो अर्थो की स्थापना कर विविध अलकारो के माध्यम से वाचिक अभिनय की उत्कृष्टता भी उपनिबद्ध की है।

देवी कुतूहलवश एक लता के पुष्प दूसरी लता पर दूसरी के पुष्प तीसरी पर आयोजित कर मनोविनोद करती है। विदूषक इस विरूद्ध पुष्पस्थिति को देखकर आश्चर्य व्यक्त करता है।[३] इस पर विदूषक की हसी उडाने के लिये कनक लेखा परिचारिका राजा से कहती है—'भर्त न खल्वेष विचक्षणत्वेन विदग्ध किन्तु विशेषेण दग्ध इति।'[४]

यहाँ विदग्ध शब्द का पदच्छेद कर देने से विदूषक के प्रति हास्य का अभिनय स्वत अभिव्यक्त हो जाता है। इसी प्रकार के अनेक अन्य सम्वाद, घटनाएँ अभिनयात्मक होने के कारण नाटिका का अभिनय योग्य नाटिकाओ मे एक स्थान निर्धारित हो जाता है।

१ विदूषक—भो पिअवअस्स, अअ अ तीए अवत्थाणिवेदओ विरहलेहो वाचीअदु।
—कर्ण०, पृष्ठ ४०।

२ कर्ण०, ३/२०-२५.

३ पारि०, २/४३.

४ वही, पृष्ठ १५।

कविराज विश्वनाथ ने चन्द्रकला नाटिका मे तरक्षु की घटना का इस प्रकार सयोजन किया है जो अभिनेय नही है। क्योकि राजा प्रत्यक्ष विद्यमान व्याघ्र का वर्णन करता हुआ कहता है कि यह दुष्ट व्याघ्र एक पैर उठाकर वृक्षो से स्कन्ध को पुन पुन रगडता हुआ, मृगसमुदाय को चारो ओर भगा कर पक्षिओ मे कोलाहल उत्पन्न करता हुआ जिह्वा निकाल कर आकाश को फाड डालना चाहता है।[१]

इस वर्णन के अनुसार रगपीठ पर मृग समुदाय, पक्षियो का कोलाहल और व्याघ्र की क्रियाओ का प्रदर्शन सभव नही अत अभिनय मे कृत्रिमत्व का आरोपण करना पडेगा।

प्राय समस्त सस्कृत नाटिकाओ मे इस प्रकार का कोई न कोई विघ्न दिखाया गया है, कही वानर का,[२] कही मेषद्वन्द्व का,[३] कही गो-समूह का[४] किन्तु प्राय सर्वत्र इस घटना की नेपथ्य से सूचना ही दी गई है। किन्तु इस नाटिका मे राजा का मित्र रसालक (विदूषक) ही व्याघ्र की भूमिका मे आता है जिससे यह तथ्य प्रकाश मे आता है कि आहार्य अभिनय के लिये उस समय मुखौटो का प्रयोग होता था, जिसे लगाकर ही विदूषक ने व्याघ्र का अभिनय किया होगा। क्योकि भरत ने इस प्रकार की वस्तुओ के लिये 'पुस्ते' शब्द का प्रयोग किया है।[५] पुस्त के ३ रुप बतलाये गये—

(१) सधिम-बास से निर्मित व चर्म तथा वस्त्र से आच्छादित (सभवत विविध प्रकार के मुखौटे, विविध पशु-पक्षियो पर्वतो व यानादिको के आकार)

(२) व्याजिम-यन्त्रो की सहायता से निष्पन्न।

(३) वेष्टित-वस्त्रो से ढके हुए।[६]

इनमे सन्धिम भेद के अन्तर्गत बॉस या खाल आदि से निष्पन्न व्याघ्र की आकृति का प्रयोग विदूषक ने किया होगा।

कीथ ने सस्कृत नाटको की मीमासा करते हुए स्पष्ट किया है कि सस्कृत नाटको मे प्रकृति के जो भी दृश्य होते है वे मच पर विद्यमान नही रहते थे। अभिनेता केवल अभिनय के द्वारा दर्शक को प्रतीति कराता था जैसे 'शकुन्तला नाटक मे दुष्यन्त जिस मृग का पीछा कर रहा है वह वास्तविक मृग नही है किन्तु राजा की भूमिका ग्रहण करने वाला अभिनेता अपनी बधी हुई दृष्टि तथा

१ चन्द्र० २/६
२ रत्ना० अक २।
३ उषा० अक ३।
४ वृष० अक २।
५ ना० शा० २१/५
६ वही २१/६-९.

अगहार (मुद्रा) से ऐसा अभिनय करता है मानो वह मृग पर प्रहार कर रहा हो।'[१]

उनके इस कथन के आधार पर चन्द्रकला नाटिका के व्याघ्र वृत्तान्त को यद्यपि अनुचित नही माना जा सकता किन्तु आचार्य भरत ने स्पष्टत वाहनादिको की वेणु आदि से निर्मित प्रतिकृति को नाट्यमण्डप पर प्रयोग करने का कथन किया है।[२] अत कीथ के इस विचार को बहुत मान्यता नही दी जा सकती। क्योकि अभिनय मे अपेक्षित आहार्य व नेपथ्यज विधि से रसानुभूति मे सौविध्य रहेगा।

आधुनिक युग के विद्वान् मथुरादास ने वृषभानुजा नाटिका की रचना मे जहाँ कथावस्तु योजना आदि मे शाकुन्तल, रत्नावली आदि को आदर्श माना वही अभिनय के लिये अपेक्षित रग निर्देश आदि की योजना भी उन्ही के तदनुसार की, किन्तु यत्र तत्र उनके निर्देश उतने उचित नही है। उदाहरणार्थ प्रथम अक मे राधा अपनी सखी चम्पकलता से स्वप्न की बात सुनती हुई अपने मन मे कहती है कि क्या यह वही नाम बतलायेगी जो वृन्दा ने मेरे पिताजी से प्रसगवश कहा था। 'इसके बाद ही कवि वामाक्षिस्पन्दन से शुभ निमित्त की सभावना से आशापूर्ण अभिनय करने का निर्देश किया है।[३]' यह निर्देश ऐसा है जिसका अभिनय अत्यन्त कठिन है क्योकि अक्षिस्पन्दन का अभिनय दर्शक को दिखाई नही पड सकता। अच्छा होता कवि ने आगे राधा के ही मुख से यह स्वगत कथन कराया होता—'कि यह मेरी बाई ऑख क्यो फडक रही है, यह तो किसी शुभनिमित्त की सूचक है आदि आदि। किन्तु कवि ने ऐसा न करके केवल 'अच्छा तो पूँछती हूँ'[४] कहला कर उस वामाक्षि स्पन्दन को व्यर्थ कर दिया।

द्वितीय अक मे 'गोपालो के गो-समुदाय का आना एव उनकी दुग्ध धाराओ का प्रवाह प्रदर्शित करना, तथा उनका हर्षाश्रुविगलित करने का निर्देश भी अनभिनेय है।[५]

---

१ कीथ (स० ड्रामा) स० ना० (हिं० अनु०), पृष्ठ ३९३।

२ चर्म वर्मध्वजा शैला प्रासादा देवतागृहा।
हय वारण मानानि विमानानि गृहाणि च॥
पूर्वं वेणुदलै कृत्वा कृतीभवि समाश्रया।
तत सुरगैराच्छाद्य वस्त्रै सारूप्य मानयेत्॥ —ना० शा० २१/२०६-२०७.

३ राधा—(आत्मगतम्) अविणाम वदेदि इअ तजेव्व दुल्लहजण म अहिकरिअ जो भअवदीए वुन्दाए तदो तादस्स समीवे पसगेण अभिहिदो आसि।
(दक्षिणेतराक्षिस्पन्दोपदर्शितेन शुभनिमित्तेन सप्रत्याशमिव।) —वृष०, पृष्ट १५.

४ होदु। पुच्छेमि दाव। (प्रकाशम्।) कथ विअ।
—वृष०, पृष्ठ १५.

५ वृष०, पृष्ठ २८।

इन कतिपय रगनिर्देशो से यद्यपि नाटिका की अभिनेयता पर कुछ टिप्पणी का अवसर मिला है किन्तु सम्पूर्ण सम्वाद एव रूप सज्जा तथा अन्य रगनिर्देशो से अभिनय की दृष्टि से नाटिका पर्याप्त प्रशसनीय है। राधा और कृष्ण की वियोगात्मक उक्तियो मे जहाँ वाचिक अभिनय प्रधान है वही उनसे सात्विक अभिनय की भी प्रतीति होती है।

इस प्रकार नाटिका साहित्य में अन्य रूपको की अपेक्षा अभिनेयता अधिक रहती है। इन नाटिकाओ के अतिरिक्त भी जो नाटिकाएँ उपलब्ध हे उनमे कुछ नवीनता नही।

राजचूडामणि दीक्षित की कर्मलिनी कलहस नाटिका का आदर्श जहाँ कर्णसुन्दरी है, वही उसमे रगनिर्देशो की भी कमी है। फलत नाटिका क्लिष्ट कल्पनात्मक हो जाने के कारण सामान्य दृष्टा के लिये सम्यक् रसानुभूति कराने मे सक्षम नही हे। यद्यपि नाटिका की अभिनेयता मे कोई त्रुटि नही हे। कवि ने तो कमल से प्रादूर्भूत होने वाली नायिका का दृश्य मच पर प्रस्तुत न कर एक पात्र से सूचना दिलाकर औचित्य की रक्षा की है।

विश्वेश्वर पण्डित की नवमालिका नाटिका और विश्वनाथ दव की मृगाकलेखा लगभग ममान रूप से अभिनेतव्य है। नवमालिका मे जहाँ नवमालिका लता के साथ अनेक बिम्ब आते है वही मृगाकलेखा मे चन्द्रकला के नाम से नायक को अनेकश नायिका की भ्रान्ति की कल्पना स्तुत्य हे ओर उससे निश्चयेन दर्शको को अधिक आनन्दानुभूति होती हे।

किन्तु ये सभी नाटिकाएँ एक रूढिबद्ध इतिवृत्त पर आधारित निश्चित सरणि की सामान्य नाटिकाएँ है।

कवि गोपालकृष्ण द्वारा रचित चन्द्रप्रभा (हस्तलिखित) नाटिका की लिपि देवनागरी होते हुए भी अत्यन्त अस्पष्ट व अशुद्ध हे।

(द) आधुनिक नाट्यशास्त्रियो द्वारा निर्धारित मानदण्डो के अनुसार नाटिकाओं की समीक्षा

भारतीय साहित्य विशेषत सस्कृत साहित्य मे नाटक (रूपक) के विविध भेदोपभेदो का जितना विस्तृत विवेचन किया गया है, शायद ही किसी अन्य भारतीय साहित्य मे हो। आचार्य भरत से लेकर कविराज विश्वनाथ तक सभी नाट्यशास्त्रियो ने एक ही मूलभूत पद्धति की विवेचना की। रूपको के विविध अग प्रत्यगो का यत्किंचिद् परिवर्तन, परिवर्द्धन अवश्य किया गया जिनमे मौलिकता की दृष्टि से रामचन्द्र गुणचन्द्र का स्थान सर्वाग्रणी है, किन्तु कथावस्तु, नेता रस, व योजना पद्धति मे कोई अन्तर उन्होने भी स्वीकार नही किया।

वर्तमान शताब्दी मे जो भी नाट्यशास्त्रीय विवेचन हुआ है उसका मूल आधार भरतादि प्राचीन आचार्यो की व्याख्या रूप ही है, अपने द्वारा किसी नवीन सिद्धान्त की स्थापना नही।

डा० आद्य रगाचार्य, डा० वी० राघवन, डा० एस० एन० शास्त्री, श्री बाबूलाल शुक्ल, डा० रमाकान्त त्रिपाठी, डा० दशरथ ओझा एव अभिनव भरत आचार्य सीताराम चतुर्वेदी के नाम आधुनिक नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्त विवेचक के रूप मे स्वीकार किये जा सकते है। किन्तु इन सभी मे यदि कुछ मौलिकता उपलब्ध है तो वह है अभिनव भरत आचार्य चतुर्वेदी। तदतिरिक्त सभी आचार्य पूर्ववर्णित क्रमानुसार भरतादि नाट्याचार्यो के सिद्धान्तो को हिन्दी अग्रेजी आदि माध्यमो से व्यक्त करने वाले ही है। आचार्य भरत तो भूतभविष्य और वर्तमान तीनो युगो के दृष्टा और अलौकिक प्रतिभा सम्पन्न पुरुष थे, इसीलिये आज तक भी उनके सिद्धान्तो का खण्डन नही किया जा सका। अभिनव भरत उपाधि धारी प० चतुर्वेदी जी ने इस दिशा मे कुछ नवीन प्रयास अवश्य किये है किन्तु नाटिकाओ के सम्बन्ध मे उनका कोई विशेष विवेचन नही है। उनकी जो कुछ भी नवीन विवेचना है, वह मुख्यत इतिवृत्त, घटनाक्रम और पात्रादिको के सम्बन्ध मे ही है। जो विशेषत नाटक श्रेणी के रूपको की कथावस्तु आदि के लिये है। नाटिका की विशिष्ट रूढि व परम्परा पर उसका कोई प्रभाव नही है। फिर भी प्रकरण और नाटक के मिश्रण से उद्भूत होने के कारण नाटिका के इतिवृत्तादि पर भी इनका विवेचन प्रेक्षणीय है।

अभिनव भरत ने अभिनव नाट्यशास्त्र मे इतिवृत्त भेद, अक विभाजन, रचनातत्त्व, सवाद, और नाटक के परिमाण आदि पर अपना नवीन मत दिया है। जिसका विवेचन निम्नलिखित रूप मे किया जा सकता है।

आचार्य भरत आदि प्राचीन आचार्यो ने इतिवृत्त के मुख्यत दो भेद आधिकारिक और प्रासगिक माने थे। किन्तु प० चतुर्वेदी जी उसके दो भेद स्वीकार नही करते। उनका स्पष्ट कथन है कि 'नाट्यशास्त्र के सभी आचार्यो ने कथानक या कथावस्तु को आधिकारिक या प्रासगिक दो प्रकार का बतलाकर मौलिक भूल की है। वास्तव मे कथावस्तु एक ही होती है। पताका और प्रकरी अग है प्रकार नही।'[१] चतुर्वेदी जी के इस कथन से यह स्पष्ट हुआ कि वे कथाविकास मे पताका और प्रकरी को अग रूप मे मानकर सहायक तत्व के रूप मे स्वीकार करते है न कि पृथक् इतिवृत्त भेद।

उनका यह विवेचन मात्र एक नवीन व्याख्या है नवीन सिद्धान्त नही। क्योकि तात्विक दृष्टि से भरत ने भी उसे उपकारक ही माना है। मुख्य इतिवृत्त से असम्बद्ध प्रकरी या पताका का समायोजन तो किया ही नही जा सकता अन्यथा नाट्ययोजना की मूल उपादेयता ही विनष्ट हो जायेगी। इसीलिये भरतादि आचार्यो ने पताका और प्रकरी के लक्षणो मे स्पष्ट उल्लेख किया है कि ये दोनो प्रासगिक

१ अभि० ना० आ०, पृष्ठ १४२।

इतिवृत्त स्वल्प या कुछ अधिक दूर तक चलने वाले तथा बीजभूत मुख्य कथा के उपकारक है।[१]

प० चतुर्वेदी जी ने पताका और प्रकरी को कथावस्तु के अन्तर्गत परिगणित किया है क्योकि वे इतिवृत्त और कथावस्तु मे अन्तर मानते है। उनका कहना है कि इतिवृत्त और कथावस्तु दोनो एक नही है। इतिवृत्त या कथा उस घटना क्रम को कहते है जिसमे किसी नायक के जीवन का एक चरित्र पूर्णत आ जाय। किन्तु अको और दृश्यो के अनुसार घटनाओ की ऐसी सजावट को कथावस्तु कहते है जिसमे नाटकीय कुतूहल आदि से अन्त तक बना रहे। साथ ही घटनाओ को आकर्षक, कुतूहल जनक तथा रसमय बनाने के लिये कल्पित घटनाओ और पात्रो का समावेश किया जा सके।[२]

वस्तुत प० चतुर्वेदी जी ने नाट्य को अधिकाधिक अभिनेय बनाने के उद्देश्य से ही कथावस्तु को इतिवृत्त माना है और इतिवृत्त को कथावस्तु के रूप मे परिणत करने के लिये ही पताका और प्रकरी को उसका अग अर्थात् उपकारक माना है जिससे कि इतिवृत्त अभिनेय हो सके। क्योकि घटनाचक्र को ध्यान मे रखने से ही नाट्य अभिनेय होता है। इसीलिये अभिनव भरत ने वस्तु रचना की ५ रीतियो—(१) नायक केन्द्र रीति, (२) घटनाचक्र, (३) मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति रीति, (४) कुतूहलनिर्वाह रीति, और (५) दृश्यानुकूल रीति मे घटनाचक्र रीति को ही सर्वश्रेष्ठ होने से ग्राह्य माना है।[३]

नाटिकाओ मे पताका और प्रकरी के लिये प्राय अवसर नही मिलता। फिर भी उनका लघु कथानक भी नायक नायिकाओ मे इस प्रकार गुम्फित रहता है कि कही भी अभिनेयता पर आघात नही होता। कुछ नाटिकाओ मे श्रव्यता अधिक होने के कारण किंचिद् उद्वेजकता हो सकती है,[४] जो निश्चय ही कवि के प्रौढ कवित्व भाव की परिचायिका है, नाट्य प्रतिभा की नही। अभिनव भरत ने दृश्यविधान मे इस प्रकार की प्रवृत्ति का स्पष्टत निषेध किया है। उनका कथन है—'एक दृश्य १२ मिनट से अधिक का न हो, और उसमे भी दो पात्रो का वाचिक अभिनय न हो। यदि वाचिक अभिनय हो भी तो उसके साथ आगिक अभिनय अवश्य हो।'[५]

---

१ प्रासगिक परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसंगत:
—दश० १/१३, ना० शा० १९/२६.

२ अभि० ना० शा०, पृष्ठ १५४-१५६।

३ 'ऐसे नाटक नाटकीय दृष्टि से सबसे अच्छे समझे जाते है।'
—अभि० ना० शा०, पृष्ठ १५८.

४ कर्णसुन्दरी, कमलिनी० मलयजा कल्याणम् आदि।

५ अभि० ना० शा०, पृष्ठ १५३।

कथावस्तु के द्वितीय तत्व सम्वाद के सम्बन्ध मे अभिनव भरत आजकल की नाट्य प्रवृत्ति को ध्यान मे रखकर अपवारित, जनान्तिक, स्वगत और आकाशभाषित को अस्वाभाविक बतलाते है।[१] इस सम्बन्ध मे उन्होने यह तर्क दिया कि रगमच पर एक ही स्थल पर आसीन पात्रो मे यह सम्भव नही कि एक के द्वारा कही हुई बात का श्रवण दूसरा पात्र न करे। इसलिये यह अस्वाभाविक एव अनुपयोगी है। उसे उन्होने नाट्यशास्त्रियो की एक भूल कहा है।[२]

अभिनव भरत के इस मत को निश्चय ही समीचीन नही कहा जा सकता। एक पात्र की हृद्गत भावना का अभिनय करने के लिये उसमे त्रिपताकाऽकृति आदि हस्त चेष्टाओ से स्वाभाविकता उत्पन्न की जा सकती है। फिर अभिनय को देखकर दर्शक ही तो रसास्वाद करता है, दूसरा पात्र नही। इसलिये अनुभूति की दृष्टि से जनान्तिक, अपवारित या नियत श्राव्य आदि मे तनिक भी अस्वाभाविकता का प्रश्न नही उठता।

यदि अभिनव भरत के इस मत को जो उन्होने आधुनिक नाटको के परिप्रेक्ष्य मे व्यक्त किया है, मान लिया जाय तो फिर चलचित्रो के उन दृश्यो को क्या माना जायेगा जहाँ किसी पात्र की स्मृति को भी साक्षात् अभिनीत किया जाता है और दर्शक उससे भी रसास्वाद प्राप्त करते है।

अत नाटको की मनोवैज्ञानिकता और रसानुभूति को ध्यान मे रखकर निष्पक्ष रूप से विचार किया जाय तो वह अत्यन्त स्वाभाविक प्रतीत होता है कि सवाद नियत श्राव्य, अपवारित और जनान्तिक भी होते है।

आकाशभाषित का सर्वथा स्वतन्त्र स्थान है। भाण व प्राचीन प्रहसनो मे आकाश भाषित का तो मुख्य स्थान रहा है। सम्पूर्ण नाट्य मे आकाशभाषित अग रूप मे रहता है। स्वय अभिनवभरत ने इन नाट्य-प्रकारो मे इस बात को स्वीकार किया है।

नाटक के परिमाण के सम्बन्ध मे भी अभिनव भरत ने कुछ सिद्धान्त स्थिर किये है, जो इस प्रकार है—

(१) नाटक सामान्यत ढाई घण्टे का हो अधिकाधिक ४ घण्टे का।
(२) पात्र कम हो।
(३) दृश्य कम हो तथा वे खर्चीले न हो।[३]

---

१ वही, पृष्ठ ९८।

२ इसी प्रकार की भूल वहाँ की गई है जहाँ संवाद के भेदो को अर्थात् श्राव्य, अश्राव्य और नियतश्राव्य को भी नाटकीय वस्तु का भेद मान लिया गया है।
—अभि० ना० शा०, पृष्ठ १४२.

३ अभि० ना० शा०, पृष्ठ ९९-१००।

नाटक परिमाण के विषय मे प० चतुर्वेदी का मत सर्वथा समीचीन माना जा सकता है। १० या उससे अधिक अको के महान् नाटको को निश्चय ही दर्शक एक बैठक मे या एक ही दिन नही देख सकता। न तो वह इतना अधिक समय ही दे सकता है और न ही मस्तिष्क को इतनी देर तक केन्द्रित रख कर रसानुभूति ही कर सकता है।

पूर्वत यह स्पष्ट किया जा चुका है कि नाटिकाओ की रचना का मूल उद्देश्य ही यह है कि इसमे समय की बचत व जनमनोवृत्ति की अनुकूलता रहे।

सस्कृत नाटिकाओ की कथावस्तु एक ही बैठक मे देखी जा सकती है, ४ अको मे उपनिबद्ध कथा मे मुख्य पात्र ३, ४ ही होते है शेष पात्र तो सहायक मात्र होते है जो बिना किसी सवाद के यत्र तत्र रगमच पर नायक नायिका के कार्यो मे मूल सहायता करते है। इनमे, प्रतीहारी, उद्यानपालिका कचुकी, दौवारिक, ताम्बूल वाहिका आदि है।

नाटिकाओ का कथानक राजोद्यान की चहारदीवारी मे ही घूमता है अत वही के प्रमदोद्यान, दीर्घवापिका, माधवीमण्डप, और अशोक वृक्षमूल आदि परिमित दृश्यो मे केन्द्रित रहता है। किसी किसी नाटिका मे राजमहल और श्मशान आदि के भी दृश्य आते है किन्तु ये कठिन या खर्चीले नही होते।

अत आधुनिक नाट्यसिद्धान्तो के सर्वथा अनुकूल है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हर्ष की रत्नावली नाटिका को आधार मानकर ही रत्नावली नाटिका की रचना की और उन्होने किसी भी नवीन सिद्धान्त की स्थापना नही की।

अभिनव भरत ने प्राचीन आचार्यो के अक विभाजन को भी अव्यावहारिक करार दिया।[१] अक सख्या के सम्बन्ध मे भी उन्होने कहा कि—'अको की सख्या निश्चित नही की जा सकती। सम्पूर्ण कथा को प्राय तीन अको मे तथा ढाई से ४ घण्टे मे ही खेलने योग्य बनाना चाहिए।'[२] इस मत को इसलिये स्वीकार नही किया जा सकता, क्योकि इतिवृत्त की दीर्घता आदि के आधार पर ही अको की सख्या होती है।

अर्थोपक्षेपको[३] और पताकास्थानको[४] को भी श्री चतुर्वेदी जी ने अनुपयोगी कहा है। किन्तु यह कथन सर्वथा सगत नही है।

सस्कृत नाटक एक ही देश या एक ही प्रकार के लोगो की प्रवृत्तियो के अकन नही होते, साथ ही उनमे दूराह्वान, बध, भोजन, शयन आदि का रगमच

---

१ अभि० ना० शा० पृष्ठ १५०-१५२।

२ वही, पृष्ठ १५३।

३ अर्थोपक्षेपको की कोई आवश्यकता नही, आजकल सभी नाटककार सभी सूच्य बातें अपने पात्रो द्वारा दृश्य भाग में ही प्रसगानुसार कहला देते है अतः विष्कम्भक आदि की कोई आवश्यकता नही। —अभि० ना० शा०, पृष्ठ १६६

४ पताका स्थानक की कोई आवश्यकता नही, वह सदा इसमें बाधक है, साधक नही। [illegible]भि० ना० शा० पृष्ठ १६६.

पर प्रदर्शन सर्वथा असभ्य एव अनुपयोगी होने से निषिद्ध माना गया है।[१] इस लिये इन अर्थो की सूचना अक के आदि मे विष्कम्भक, प्रवेशक आदि के द्वारा दिया जाना सर्वथा तर्कसगत है।

आजकल के भी अनेकानेक नाट्यो मे इस प्रकार की व्यवस्था देखने को मिलती है। वह चाहे चलचित्रो मे हो या हिन्दी नाटको मे। हॉ पताका स्थानको को आज किसी हद तक नकारा जा सकता है किन्तु तो भी नाट्यदर्पण के अनुसार अन्योक्तिमूलक और समासोक्ति मूलक पताकास्थानको को स्वीकार करने मे कोई आपत्ति नही होनी चाहिए।

अभिनव भरत ने नायक के उत्तम, मध्यम और अधम श्रेणियो मे विभक्त होने के कारण नाट्य की कथावस्तु की तीन प्रकार की गति स्वीकार की है-ऊर्ध्वगति, समगति और अधोगति।[२] यह सभी नाट्य प्रकारो मे एकरूप से क्रियान्वित हो सकती है।

इतिवृत्त के मूलोद्गम की दृष्टि से उन्होने ५ भेद किये है—१ पुराण, २ इतिहास, ३ अनुश्रुति, ४ कविकल्पना, ४ प्रतीकात्मक, और ५ वास्तविक।[३]

इस विभाजन के अनुसार नाटिकाओ को कवि-कल्पना प्रधान मानकर भी पौराणिक, ऐतिहासिक, अनुश्रुतिमूलक और कविकल्पित रूप ४ प्रकार का माना जा सकता है। नाट्यशास्त्रीय सन्धि सध्यगो आदि को स्वीकार करते हुए नाटक रचना के प्रमुख ३ तत्व स्वीकार किये—१ कथा, २ रगनिर्देश, ३ सम्वाद।[४]

इस प्रकार सम्पूर्ण प्राचीन नाट्यशास्त्रीय विवेचन ही तात्विक दृष्टि से परवर्ती एव आधुनिक नाट्यशास्त्रियो का स्वकीय विवेचन है। आज के यान्त्रिक युग मे उनके अभिनय, रगमच सज्जा और रगमच निर्माण आदि मे परिवर्तन हुआ है। वैज्ञानिक प्रभाव के कारण नाटको की प्रवृत्ति यथार्थवाद की ओर अधिक बढी है, किन्तु सस्कृत के नाटक फिर भी अपनी प्राचीन परम्परा को अक्षुण्ण रखे हुए है।

---

१ सा० द० ६/१६-१८.
२ अभि० ना० शा०, पृष्ठ १६३।
३ वही, पृष्ठ १५४।
४ वही, पृष्ठ १३९।

षष्ठ अध्याय

भौगोलिक ज्ञानराशि

(अ) भौगोलिक ज्ञानराशि

(ब) पशु-पक्षी एव वनस्पति

(स) कला की दृष्टि से सर्वोत्तम नाटिका

(द) समसामयिक साहित्य एव प्रभाव

(य) क्रमिक विकास

ललित इतिवृत प्रधान नाटिकाओ का मूल-प्रतिपाद्य जनमनोरजन है यह तृतीय अध्याय मे सुस्पष्ट किया जा चुका है फिर भी जिस प्रकार उनसे तत् कालीन सामाजिक व धार्मिक स्थिति का परिचय प्राप्त होता है उसी प्रकार कवियो के भौगोलिक ज्ञान पर भी प्रकाश पडना स्वाभाविक है। यद्यपि समस्त नाटिकाओ मे एक ही प्रकार के उद्यान, वनस्पति और पशु-पक्षियो आदि का चित्रण होने से देश विशेष का कोई प्रभाव प्रतीत नही होता किन्तु कवि के द्वारा अपने आश्रयदाता का स्थान, नाटिका का अभिनय स्थल एव वर्णनो मे प्रयुक्त देशो के नाम आदि से उनकी भौगोलिक ज्ञानराशि पर भी प्रकाश पड़ता है।

भौगोलिक ज्ञान मे स्थान मात्र ही नही ऋतु, समय और तदनुकूल वनस्पति आदि का ज्ञान भी सम्मिलित है। नैसर्गिक शक्ति सम्पन्न होने पर भी कवि इतिहास, शास्त्र, पुराण, व प्राचीन काव्यो के अध्ययन से निपुणता प्राप्त करता है[१], अन्यथा शक्ति मात्र से किया गया प्रयास निर्दोष एव ललित नही हो सकता। अत भौगोलिक ज्ञान प्राप्त करना कवि के लिए अत्यावश्यक कर्म है।

समस्त नाटिकाकारो के इस ज्ञान का विवरण विस्तारभय से प्रस्तुत कर पाना सम्भव नही अत· स्थाली पुलाकन्यायेन मुख्य कवियो का विवेचन ही यहा प्रस्तुत है।

---

१ शक्तिर्निपुणता लोक शास्त्र काव्याद्यवेक्षणात्
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥

का. प्र १/३

(क) **प्रियदर्शिका व रत्नावलीकार राजा श्री हर्ष** ने "नायक वत्सराज की राजधानी कौशाम्बी जो वर्तमान प्रयाग से पश्चिम मे यमुनातट पर थी, तथा नायिका को सिहल द्वीप पुत्री लिखा है।"[१] इससे स्पष्टत कौशाम्बी और सिहलद्वीप का परस्पर सम्बन्ध था, यह ज्ञात होता है। भौगोलिक दृष्टि से ये दोनो स्थान बहुत दूर अन्तर से स्थापित है फिर भी उनमे सास्कृतिक व सामाजिक सम्बन्ध थे ऐसा प्रतीत होता है। कोशल जो अयोध्या के आसपास कौशाम्बी का समीपवर्ती राज्य था, से वत्स की शत्रुता थी अतएव उनका सेनापति रूमण्वान उनको जीतने गया था।[२] जिसकी विजय सूचना नाटिका के अन्तिम भाग मे प्राप्त होती है।[३] कौशलराज का दुर्ग विन्ध्याचल पर था जहा वत्स के सैनिको द्वारा घेरा डालने पर वह भयकर युद्ध करता है।[४]

नायिका सागरिका को बन्धन मे डालकर उज्जयिनी भेजने का समाचार विदूषक नायक को देता है।[५] इससे वत्सराज का उज्जयिनी से सम्बन्ध या उज्जयिनी तक राज्य विस्तार था यह भी ज्ञात होता है।

प्रियदर्शिका मे हर्ष ने अगराज दृढ वर्मा और विन्ध्यराज का उल्लेख कर अग जो बगाल बिहार और आसाम का सीमावर्ती राज्य था से भी वत्सराज का सम्बन्ध स्थापित किया है।[६]

इस विवेचन से जहा हर्षकालीन राजनीतिक अस्थिरता पर प्रकाश पडता है वही हर्ष द्वारा निर्दिष्ट भौगोलिक सीमाओ का भी परिज्ञान होता है। हर्ष स्वय सम्राट थे, पूर्वोत्तर भारत पर उनका आधिपत्य था, अत उन्होने उसी क्षेत्र का विवरण दिया है।

प्राकृतिक वर्णनो मे भी किसी प्रकार का पशु-पक्षी या लतावृक्ष सम्बन्धी वर्णन अनुचित नही है। कौशाम्बी से सिहलद्वीप का व्यापार चलता था, लोगो का परस्पर आना जाना भी था, यह रत्नावली से ही ज्ञात होता है।[७]

(ख) **कन्नौज के राजा महेन्द्रपाल की राजसभा के कवि राजशेखर**[८] अत्यन्त प्रतिभावान् कवि के साथ-साथ भ्रमण आदि के माध्यम से विशिष्ट भोगोलिक ज्ञान प्राप्त कर सके थे, यह विद्धशालभजिका नाटिका के वर्णनो से स्पष्ट है। उज्जयिनी जो विधाधरमल्ल की राजधानी थी, का लाट प्रदेश से सम्बन्ध था।[९]

---

१ रत्ना., पृष्ठ १०
२ वही, पृष्ठ १०
३ वही, पृष्ठ १४०
४ वही, पृष्ठ १४१
५ रत्ना, पृष्ठ १३६, १३८
६ प्रिय, पृष्ठ ५-६
७ रत्ना., पृष्ठ १०
८ विद्ध., १/६
९ "जय जयोज्जयिनी भुजग। सुप्रभात भवत" विद्ध., पृष्ठ ६.

दोनो स्थानो की सीमाएँ मिली थी, स्वय नायक का लाटाधिपति चन्द्रवर्मा की पुत्री से विवाह वर्णित किया है कवि ने।

प्रदेश विशेष की स्त्रियो मे निजी विशेषताओ का उल्लेख करते हुए राजशेखर ने केरल[१], द्रविड, लका, कर्णाट, लाट और महाराष्ट्र[२] तथा कुन्तल प्रदेशो से अपना परिचय दिया है।[३] इन प्रदेशो की स्त्रियो के विशिष्टागो का वर्णन भौगोलिक ज्ञान और अवलोकन के बिना कथमपि सम्भव नही।

नाटिका के अन्त मे विधाधरमल्ल के साम्राज्य की सीमा का निर्धारण करते हुए कवि ने लिखा कि गगोद्गम (गगोत्री) से तामपर्णी (वर्तमान कर्णाटक राज्य मे) तक तथा पश्चिमी समुद्र से पूर्व मे गगा के क्षीरसागर मे मिलने के स्थल अर्थात् बगाल की खाडी तक कलचुरि (खलचुरि) तिलक का साम्राज्य था।[४]

इस वर्णन के अनुसार सीमावलोकन से स्पष्टत ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण भारतवर्ष विधाधरमल्ल के आधीन था।[५] यद्यपि यह सत्य है कि राजशेखर की भौगोलिक ज्ञानराशि पर इससे प्रकाश पड़ता है, किन्तु ऐतिहासिक तथ्यो से पुष्टि न होने के कारण इसे उनका अतिशयोक्तिपूर्ण कथन ही कहा जा सकता है।

गुर्जरदेशीय अण्हिलपत्तन के 11वी शती के राजा कर्ण की राजसभा के कवि[६] बिल्हण जो स्वय कश्मीरी थे, ने भी भौगोलिक सीमाओ का सम्यक् अध्ययन किया था। कर्णराज का सेनापति सिन्धु तटवर्ती शत्रु से युद्ध कर परास्त करता है।[७] गुजरात की पश्चिमोत्तर सीमा पर सिन्धु नदी है।

(ग) राजशेखर की भाति बिल्हण ने भी स्त्रियो की देशज विशेषताओ का उल्लेख करते हुए द्रविड, महाराष्ट्र, कर्णाट[८] तथा लाट[९] आदि देशो एव नर्मदा, काची, मुरला, गोदावरी, शिप्रा आदि नदियो के भी नाम दिये है।[१०] जो मध्य भारत की है। इससे उनको उस प्रदेश की भौगोलिक सीमाओ का सम्यक् ज्ञान था यह ज्ञात होता है।

---

१ विद्ध., १/१७
२ वही, १/२९
३ वही, ४/१४
४ आ गगापात पूतप्लुतनलिन तलात् पूर्वतस्ताम्रपर्ण्या
पूतादा दाक्षिणात्यात् तुहिनकर सुता बल्लभादा प्रतीच्य।
नृत्यच्चण्डीशशुण्डाच्युतविबुधनदीनन्दितादा च देवः
क्षीराम्भोधेरुदीचः खलचुरितिलको वर्तते चक्रवर्ती॥ विद्ध., ४२५
५ (जयचन्द्र विद्यालकार) भारतीय इतिहास की मीमासा भारत मान-चित्र सं १, पृष्ठ ४०.
६ कर्ण., १/१०
७ वही, पृष्ठ ५४
८ वही, १/४२
९ वही, १/४९
१० वही, १/४४

(घ) दक्षिण भारत के कवि रुद्रचन्द्रदेव ने उषारागोदयानाटिका पौराणिक पात्रो पर आधारित लिखी जिसमे द्वारका[१] शोणितपुर[२] और विदर्भ[३] इन तीन स्थानो का उल्लेख है। द्वारका काठियावाड (गुजरात) मे थी, विदर्भ महाराष्ट्र से पूर्व का प्रदेश तथा शोणितपुर यदि आज का सोनपुर (बिहार) ही है तो कवि ने भौगोलिक भूल की क्योकि ये स्थान एक दूसरे से बहुत अन्तर पर है, किन्तु इसे अनुचित नही माना जा सकता पौराणिक पात्रो के स्थान पर परिवर्तन कर पाना कवि के वश की बात नही।

कवि रुद्रचन्द्रदेव ने इसीलिए अनिरुद्ध से उषा को मिलाने के लिये बर्हियान से आगमन दिखलाया है।[४] यहा कवि का भौगोलिक ज्ञान ही औचित्य की रक्षा कर सका। अन्यथा यदि किसी अन्य साधन शिविका, तुरग आदि से उले लाता तो अनौचित्य दोष की सृष्टि हो जाती।

(ड) **पारिजात मंजरी** मे मध्य प्रदेश के 'धार' नामक स्थल को केन्द्र मानकर उससे सम्बन्धित चौल[५], कुन्तल[६] और गुर्जर[७] है। गुर्जर से नायक अर्जुनवर्मदेव का युद्ध हुआ है।

(च) विश्वाथ कविराज जो स्वय उडीसा के निवासी थे, ने अपने आश्रयदाता को ही सम्भवत नाटिका का नायकत्व प्रदान किया क्योकि उन्होंने चित्ररथदेव नामक नाटिका के नायक का जिस प्रकार उत्कृष्ट वर्णन किया है वैसा ही अपने आश्रयदाता निशकभानुदेव का भी। इन वर्णनो मे विश्वनाथ ने अनेक विजित देशो जैसेचौल, कौशल, बग, हावग, कौच, काची, गौड, डाहाल, मत्स्य, म्लेच्छ, लाट, कर्णाट और आन्ध्र आदि है।[८] ये सभी राज्य दक्षिण भारत व पूर्वोत्तर भारत के है। यद्यपि इनके नामोल्लेख से कवि के किसी विशिष्ट भौगोलिक ज्ञान पर प्रकाश नही पडता फिर भी कवि के अनेक प्रान्तो से परिचय का परिज्ञान तो होता ही है।

(छ) चन्द्रकला नाटिका के अनुकरण पर ही **विश्वनाथ शर्मा नामक कवि** ने मृगाकलेखा नाटिका मे अनेक राज्यो का उल्लेख किया है जिसमे मोट, सौवीर लाटव, तैलग और भूलिग आदि अनेक राज्यो का और विस्तार दिया।[९] स्त्रियो की देशज विशेषताओ के लिए इन्होने भी अनेक अन्य राज्यो का उल्लेख किया।[१०]

---

१ उषा पृष्ठ १०
२ वही, पृष्ठ ११
३ वही, १/६, पृष्ठ ५२ ।
४ "पर्वतप्रयाससुलभबर्हियानादवतरति प्रमदोद्याने चित्रलेखाद्वितीया बाणदुहिता।"
उषा., पृष्ठ २९
५ पारि. १/७
६ वही १/२
७ वही, पृष्ठ ३
८ चन्द्र., पृष्ठ २
९ मृगा. १/४
१० वही, १/२९

(ज) मथुरादास की वृषभानुजा नाटिका मे कवि ने स्वय अपने स्थान मध्य देशीय सुवर्णशेखर का उल्लेख किया[१] किन्तु भौगोलिक दृष्टि से उसकी निश्चित स्थिति का परिज्ञान नही हो सका है। कुछ विद्वानो ने यह स्थान गगा-तट पर[२] और कुछ ने गगा यमुना तट पर लिख कर विषय को सर्वथा अस्पष्ट कर दिया है।[३]

जैसा कि पूर्वत लिखा जा चुका है कि सस्कृत नाटिकाएँ एक विशिष्ट उद्देश्य को लेकर सर्वथा नवीन शैली मे रचित हुई है तदनुसार उनका सीमित कथानक अनेक सामाजिक रूढियो का द्योतक तो है किन्तु राजनीतिक या भौगोलिक परिस्थितियो पर कोई स्पष्ट प्रभाव नही डाल पाती। यहा जिन प्रमुख नाटिकाओ का भौगोलिक रूप प्रस्तुत किया गया है उसका मूल, नाटिका मे आए तत्तत्स्थानो एव स्थानीय स्त्री पुरुषो के नाम है।

इतिवृत्त कल्पित होने के कारण उन स्थानो की प्रामाणिकता और राज्यो की सीमाओ पर कोई स्पष्ट टिप्पणी नही की जा सकती और न ही उनकी प्रकृत मे कोई उपयोगिता ही है। फिर भी प्रसिद्ध स्थानो की देश स्थिति का प्रकरणानुसार किंचिदुन्मेष किया गया है।

(ब) पशु-पक्षी एव वनस्पति

प्राकृतिक उपादान के रूप मे विविध पशु-पक्षियो और लतावृक्षादिको का बहुश प्रयोग सस्कृत मे उपलब्ध होता है, किन्तु नाट्य साहित्य मे ये ही उपादान नाटकीय पात्र की क्रियाओ का भी सम्पादन करते है। कालिदास ने भ्रमर का प्रेमी के रूप मे[४], हरिणशावक का पुत्र रूप मे[५] व लताओ का सखियो के रूप मे[६] सफल सम्पादन किया है। उत्तर रामचरित नाटक मे तो नदिया भी सीता की सखी का आचरण करती है।[७]

आचार्य अभिनव भरत ने समस्त नाटकीय पात्रो को सबुद्धि, अबुद्धि और जडरूप तीन भागो मे विभक्त कर[८] अबुद्धियो को पशुपक्षी तथा जड़ पात्रो को

---

१ वृष., पृष्ठ २

२ (बलदेव) स सा इति., पृष्ठ ६२६

३ कीथ (स. ड्रामा) स ना (हिन्दी अनु.) , पृष्ठ २६१

४ चलापागा दृष्टि स्पृशसि बहुशोवेपथुमती
रहस्याख्यायीव स्वनसिमृदु कर्णान्तिक चर.।
करौ व्याधुन्वत्या. पिबसि रति सर्वस्वमधर
वय तत्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्व खलु कृती। अभि शा. १/२०

५ "को न खल्वेष निवसने मे सज्जते" अभि. शा., पृष्ठ १४४

६ "उद्गलित दर्भकवलामृग्यः परित्यक्त नर्तना मयूरा।"
अपसृतपाण्डु पत्रा मुचन्त्यश्रूणीव लता ॥ अभि. शा. ४/१२

७ उत्तररामच तमसा व मुरला नदियां मानुषी रूप मे, पृष्ठ १२४

८ अभि. ना शा सूत्र ७७

लतावृक्षादि के रूप मे परिगणित किया है[१], किन्तु रसभग या रगमचीय व्यवस्था मे बाधक समझ कर उन्होने पशु-पक्षियो का रगमच पर उपस्थित करना अनुपयुक्त माना है।[२] आवश्यकतानुसार छोटे-छोटे, पालित पशुपक्षी अल्पकाल के लिये अपवाद रूप मे उपस्थित किए जा सकते है।[३] आचार्य अभिनव भरत के अनुसार नाट्य मे स्वाभाविकता और औचित्य की रक्षार्थ पशु-पक्षियो का पात्र के रूप मे मच पर प्रवेश नही करना चाहिए, यह निश्चयेन उचित है, फिर भी भारतीय मनीषियो की वर्णनपद्धति और प्रकृति पुरुष की अभिन्नता के प्रतिपादनार्थ इन प्रकृति पात्रो को पृथक् नही किया जा सकता।

पशु-पक्षी

सस्कृत रूपको की भाति नाटिका मे भी पशु-पक्षियो का प्रभूत प्रयोग हुआ है। किन्तु राजोद्यान की सीमित परिधि मे ही घटित होने वाले इतिवृत्त की अनुकूलता को ध्यान मे रख कर कवियो ने मुख्यत पालतू या घरेलू पशु-पक्षियो का ही बाहुल्येन नाटिकाओ मे उपयोग किया है। उनको कही प्रकृति के उपादान रूप मे तो कही किसी भाव के उद्दीपक रूप मे, कही चेतनाशील अभिनेता के रूप मे तो कही हार्दिक भावो की अभिव्यक्ति के साधन-रूप मे चित्रण किया गया है।

श्रीहर्ष की रत्नावली परवर्ती नाटिकाओ की प्रेरणास्रोत है। हर्ष ने इस नाटिका मे पशु-पक्षियो की योजना कालिदास, भास आदि कवियो के काव्य नाट्य आदि से प्रेरणा प्राप्त कर की अतएव किसी ऐसे पशु या पक्षी का उल्लेख नही किया जो अनुचित हो, देश-सीमा से पृथक् का हो।

रत्नावली मे बानर, वनबराह, महिष[४], करि और तुरग[५] पशुओ का उल्लेख है। इनमे वानर, महिष, करि और तुरग पालतू पशु है। बनबराह जगली हिसक पशु है, किन्तु राजाओ के विशाल राजोद्यानो मे वे रह सकते थे। प्रियदर्शिका मे इनसे पृथक् सिह[६], मृग[७] और मछलियो[८] का प्रयोग है। इनमे भी मृग और मछलिया पालतू किन्तु सिह हिसक वन्य पशु है।

इन सभी पशुओ मे बानर महिलाओ को भय उत्पन्न कराने तथा घटना सयोजन के लिये प्रयुक्त हुआ है। रत्नावली मे सागरिका और उसकी सखी चित्र-रचना के पश्चात् बानर के आगमन की सूचना से भयभीत होकर चित्र वही

---

१ वही सूत्र ७८, ८०
२ 'प्रायेण पशुपक्षि प्रयोग. रगेऽनुपयुक्त' अभि. ना.शा सू. ८१
३ अभि. ना शा., पृष्ठ २३८-३९
४ वही, पृष्ठ १००
५ वही, पृष्ठ १४०
६ प्रिय., पृष्ठ ११
७ वही, १/९
८ वही, १/१२

छोड चली जाती है। चचल प्रकृति बानर वहा सारिका पिजर की खिडकी खोल देता है जिससे सारिका उड कर राजा के समक्ष सागरिका की हृद्व्यथा का कथन कर देती है।[१] बनवराह और महिष प्राकृतिक वर्णन मे अन्धकार की कृष्णता के उपमान बनते है और करि तुरग युद्धभूमि मे वीरो के बाहन का कार्य करते है।

पक्षियो मे सारिका[२] शुक[३] पालतू है और मधुकर कोकिला, राजहस आदि प्रकृति के उपादान है। सारिका और शुक शिक्षित पुरुषो की भाति ही वाणी का प्रयोग करते है। हर्ष ने इन सभी पशु-पक्षियो को प्रत्यक्षत मच पर उपस्थित न करके केवल उनकी सूचना दी है, इससे अभिनय मे किसी प्रकार के अनौचित्य या क्लिष्टता का आक्षेप नही लगाया जा सकता। सारिका के कथन व बानर के द्वारा पजर की खिडकी खोलने के दृश्य को यदि मच पर दिखाया भी जाय तो भी कोई कठिनाई न होगी क्योकि ये दोनो अत्यन्त चतुर भी होते है और थोडी-सी शिक्षा से इन कार्यो को कर सकते है।

प्रियदर्शिका मे भी करि तुरग पशुओ का सैनिको के वाहन रूप में तथा सिह, शक्ति के उपमान रूप मे वर्णित है। पक्षियो मे चक्रवाक और कुक्कुट का प्रसगत प्रयोग रत्नावली की अपेक्षा अधिक है। विदूषक रानी के समक्ष अपने निरर्थक दबे हुए स्वर युक्त कथन के लिय कुक्कुटवाद की सज्ञा देता है।[४] इन्द्रगोपक एक रक्तवर्ण का लघु कीट होता है जो वर्षारम्भ मे भूमितल से प्रकट होता है। हर्ष ने प्रियदर्शिका मे बन्धूक पुष्पो की उपमा इन इन्द्रगोपबधूटियो से दी है।[५] मछलिया आदि भी इसी प्रकार प्राकृतिक वर्णन का विषय बन गई है।

राजशेखर की विद्धशालभजिका मे सूक्तियो, वक्रोक्तियो और उपमान बहुल प्रयोगो मे अपेक्षाकृत अधिक पशु-पक्षियो का विवरण प्राप्त होता है। पशुपति भगवान् की आराधना मे जहा उनका वाहन नन्दी गो वर्णनीय था वही शिव का आभूषण सर्प भी कवि के लिये उपेक्षणीय नही है अत सर्प को गो नासा मे योजित किया गया है।[६] अन्य पशुओ मे करि, शूकर[७], महिष, शश[८], बानर और मार्जारी[९] का कही प्रकृति के निमित्त से तो कही उपमान दृष्टि से उल्लेख है।

---

१ रत्ना., पृष्ठ ५२, ५४
२ रत्ना., पृष्ठ ४८
३ वही, २/८
४ प्रिय., पृष्ठ १६
५ वही, २/३
६ विद्ध., १/३
७ वही, १/४३
८ प्रिय., पृष्ठ ३८

पक्षियो मे रत्नावली आदि की अपेक्षा तित्तिर[१], क्रौची[२], खजरीट[३] और पारावत[४] का अधिक प्रयोग है। अन्य कोकिल, चचरीक, चकोर, मयूरादि प्रकृति के उद्दीपक उपादान रूप मे समानरूपेण चित्रित है। तित्तिर का लोकोक्ति के रूप मे सुन्दर प्रयोग राजशेखर के अभिनव भावविन्यास और पाण्डित्य का परिचायक है।[५] क्रौची पक्षी का क्रेकार शब्द बाल्मीकि के समय से ही मधुरता के लिए प्रसिद्ध है। यहा कवि ने नायिका की रशना के मधुर ध्वनन के परिचयार्थ उसका प्रयोग किया है।[६]

कर्णसुन्दरी नाटिका जो विद्धशालभजिका के ही अनुकरण पर प्राय लिखी गई है, मे राजोद्यान की परिधि मे घिरे रहने वाले सामान्य पालतू पशु-पक्षियो को ही प्रस्तुत किया गया है। पारावत, चकोर, कलहस, कीर, मधुकर और मयूर आदि पक्षी स्वतन्त्र रूप मे पात्र की भूमिका प्राप्त नही कर पाते। प्रकृति के विविध रूप चित्रण मे ही उनका कही उपमानरूप मे कही उद्दीपक रूप मे और कही उपालम्भ के आलम्बन रूप मे उपयोग किय गया हे। इसी प्रकार तुरग, कुरग और वारण का भी उपमान के रूप मे प्रस्तुतीकरण मात्र परम्परा का निर्वाह है, इससे किसी विशेष चमत्कार की सृष्टि नही हुई है।

उषारागोदया नाटिका जिसका आदर्श रत्नावली है, मे इन पशु-पक्षियो के साथ वायस, चक्रवाक और चातक पक्षियो तथा सर्प, मेष, सूकर और सारग आदि पशुओ का उल्लेख वर्णनीय स्थलो मे सौन्दर्याधायक है। कुमार वर्षा ऋतु मे देवी के हृदय मे दोलारोहण के प्रति अरुचि उत्पन्न करने के लिये पारावत और वायसो की क्रियाओ का वर्णन करते हुए कहता है कि चैत्य वृक्षो को व्याकुल वायस अपने नीडो से आकुल करते है। पारावत चत्वर केलि का परित्याग कर बलभी को व्याप्त कर रहे है और काले मेघो से व्याप्त दिशाओ को देखकर ऊपर को ग्रीवा किये हुए हस जलाशयो का परित्याग कर उत्तर की ओर उडे जा रहे है।[७]

यहाँ यद्यपि प्रकृति का वर्णन किया गया है, किन्तु उसमे वायसो की व्याकुलता, पारावतो का केलि क्रीड़ा से विरत होना तथा हसो का जलाशयो को छोड कर जाना आदि क्रियाओ से वर्षाऋतु के प्रति अनास्था का भाव जागृत हुआ है, अतएव रानी को भी दोलारोहण के प्रति अरुचि उत्पन्न हो जाती है। जो कुमार के लिये मुख्यत अभिप्रेत थी।

---

१२ वही, पृष्ठ ९४
१ वही, पृष्ठ १४
२ वही, पृष्ठ १९
३ वही, पृष्ठ ५७
४ वही, १/१२
५ "वैर तत्कालोपनतस्तित्तिर., न पुनर्दिवसान्तरितो मयूरः। विद्ध., पृष्ठ १४
६ विद्ध., पृष्ठ १९।"
७ उषा., १/२३

मेघ का सूकर के रूप मे तादात्म्य स्थापित करने से यद्यपि हीनोपमान दोष प्रतीत होता है किन्तु कामी लोगो के बध रूप प्रयोजन की सिद्धि के लिये वह सर्वथा पात्रवद् आचरण करता प्रतीत होता है साथ ही विदूषक के द्वरा पठित होने के कारण दोषाधायक न होकर गुणाधायक ही सिद्ध हुआ है।[१]

इस नाटिका मे मेषद्वन्द्व की विचित्र कल्पना है, वह न केवल अन्तपुर की स्त्रियो एव वामन किरातादिको को ही भय उत्पन्न करता है अपितु द्वारपालो तक को भी गिरा देता है।[२] इस वर्णन मे अतिरजन होने के कारण कदाचित् समीक्षको को औचित्यावह प्रतीत न होता हो किन्तु नाटिका की प्रकृति के अनुरूप तथा सर्वथा अभिनव कल्पना होने के कारण अत्यन्त मनोरजक भी है। कवि रुद्रचन्द्रदेव ने इन पशु पक्षियो के माध्यम से लालित्य की सृष्टि की है। मुख्य पशु जिनका प्रयोग नाटिका मे किया गया है, वे है करि, सारग, सूकर, पन्नग, मेष और अश्व इसी प्रकार पक्षियो मे मुख्यत नीलकण्ठ, मधुकर मयूर, हस, वायस, पारावत, चातक, परभृत, और चक्रवाक।

पारिजात मजरी नाटिका मे किसी नवीन पशु-पक्षी का कोई विवरण नही है और न ही उनके प्रयोग मे ही कोई अभिनवता ही है।

चन्द्रकला नाटिका मे तरक्षु का आयोजन हास्यास्पद है। नायक का मित्र विदूषक ही बघेरे की भूमिका मे है और उसके द्वारा घूत्कार का घोष उत्पन्न करना[३] सर्वथा अस्वाभाविक है। इस पशु को मारने के बहाने नायक को नायिका से मिलने का एक अवसर प्राप्त कराने के लिये कवि का यह प्रयत्न श्लाघनीय नही कहा जा सकता।

कुररी पक्षी का रुदन भारतीय साहित्य मे अति प्रसिद्ध है। कविराज विश्वनाथ ने यहा नायिका की पूर्वस्थिति का विवरण देते समय विन्ध्यवासिनी के समक्ष बलि देने के लिये लाई गई, रोदनशीला चन्द्रकला की उपमा कुररी पक्षी से दी है।[४] जो अत्यन्त स्वाभाविक है। अन्य नाटिकाओ की अपेक्षा इसमे पशु-पक्षियो का कम अश मे प्रयोग किया गया है।

राज चूडामणि दीक्षित ने प्राकृतिक पशु-पक्षियो के अतिरिक्त चमरी गाय का भी उल्लेख किया है।[५]

प्राकृतिक वर्णनो से भरपूर मृगाकलेखा नाटिका मे पुन· अनेक पशु-पक्षियो का प्रयोग किया गया। पालतू पशुओ के साथ जगली पशु भी वर्णित किए

१ वही, १/१३
२ उषा., ३/१०
३ चन्द्र., २/४
४ चन्द्र., पृष्ठ ७३
५ कम. कल. २/११

गये। मासभोजी श्रृगाल अपने शिशु शावको के साथ श्मशान भूमि पर नरस्नायुवो का कर्षण करते हुए नृत्य करते है।[1]

महिष जो पूर्णत पालतू पशु है, देवी को प्रसन्न करने के लिये उनकी बलि दी जाती थी।[2]

उलूक पक्षी अशुभ पक्षियो मे परिगणित किया जाता है अतएव उसका श्मशान पर वर्णन किया गया है जहा वह मासभक्षी पशुओ के उत्साहवर्धन मे उन्मुक्त भ्रमण और मुक्तहास ध्वनि करता है।[3]

सस्कृत नाटिकाओ मे यह पहली और अन्तिम नाटिका है जिसमे बीभत्स रस और उसके उपादान व उद्दीपक पशु-पक्षियो को इस प्रकार चित्रित किया गया है। इनके अतिरिक्त शेष सभी पशु-पक्षी वे ही है जिनको प्राय. प्राकृतिक उपादान के रूप में अन्य कवियो ने प्रयुक्त किया है।

यमुना तट और वृन्दाटवी के क्षेत्र को आधार बनाकर लिखी गई वृषभानुजा नाटिका मे भी भ्रमर, पिक, हस, मृग, सारिका, शुक, मयूर, गो, उलूक आदि पशु-पक्षियो का ही भूयसा प्रयोग है। गो और गोवत्सो को वशीरव का प्रेमी चित्रित किया गया, वे मानव के समान समझदार और विवेकी है। कृष्ण की अनुपस्थिति मे वे उच्चस्वर मे शब्द करती हुई इधर उधर भागकर कृष्ण का अन्वेषण करती है।[4]

गोपाल कृष्ण की चन्द्रप्रभा नाटिका मे एक पक्षी 'बाज' के पालने का वृत्तान्त है,[5] जो सर्वथा अभिनव है, यो तो शिवाजी आदि कुछ व्यक्ति बाज को पाल कर अपनी शक्ति का प्रतीक स्थापित करते थे किन्तु बाज को पालतू पक्षी के रूप मे नाटिकाओ मे सम्भवत यह प्रथम और अन्तिम प्रयोग है। यहां उसका मुख्य उपयोग मृगया के लिये प्रदर्शित किया गया है।

इसी प्रकार अन्य नाटिकाओ मे भी पशु व पक्षियो का भूयसा प्रयोग है, किन्तु सर्वत्र इस बात का ध्यान रखा गया है कि वर्णानानुकूल पशु-पक्षी ही वर्णित किये जाएँ और प्राय इनकी सूचना ही दी जाय। अत्यावश्यकता व औचित्य के आधार पर उनको मच पर प्रस्तुत भी यदि किया गया तो भी कोई हानि नही हुई है।

वनस्पति—

प्रकृति मानव जीवन की सहयोगिनी है। उसके अग वृक्ष, लताएँ, पर्वत, नदिया और पशु-पक्षी मनुष्य के पग-पग पर उपकारक है। कालिदास, भास आदि कवियो की लेखनी मे निर्जीव लता वृक्ष भी चेतन मनुष्यो जैसा आचरण करते

---

१ मृगा., ३/१७, २१
२ वही, ३/२४.
३ वही, १७
४ वृष., पृष्ठ ४१
५ चन्द्रप्रभा, पृष्ठ १०

है। कण्वाश्रम से विदा होती हुई शकुन्तला को देखकर लताएँ पीले पत्ते रूपी अश्रु गिरा कर रुदन करती है,[१] कण्व के द्वारा अनुमति मागने पर वृक्ष परभृत विरुत से अनुमति प्रदान करते है[२] और शकुन्तला को आभूषित करने के लिये क्षौम लाक्षादि समर्पित करते है।[३]

सस्कृत नाटिकाओ मे भी प्रकृति का भूयसा वर्णन है, अनेक वृक्ष और लताएँ उसकी आलम्बन है किन्तु राजोद्यान के सीमित क्षेत्र मे नाटिका का इति वृत्त घूमते रहने के कारण लतावृक्षादिको के रूप भी परिमित ही हो गये है। राजा रानियो की मदन-पीडा और कामुक-विलासिता के उद्दीपक लतावृक्षो और कुजो की कल्पना ही कवियो के काव्यविलास का क्षेत्र रही। भ्रमर, कोयल और चातक आदि से युक्त माधवी, नवमल्लिका, केसर, पाटल एव नागवल्ली आदि लताएँ तथा आम्र, अशोक, तमाल आदि विटप ही मुख्यत नाटिकाओ मे वर्णना के विषय रहे है।

यहा वनस्पति शब्द से केवल क्षीरी वृक्षो को ही ग्रहण नही किया गया है अपितु समस्त लता, वृक्ष, पुष्प और घास आदि को समाहृत किया गया। प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष, पुष्प, फल आदि के माध्यम से भी यदि कही किसी वृक्ष, लता का सकेत हुआ है तो उसे भी वनस्पति के नाम से परिगणित कर लिया गया है।

श्रीहर्ष की रत्नावली को आदर्श मानकर परवर्ती कवियो ने पदे-पदे उसका अनुकरण करने का प्रयत्न किया। घटनाचक्र और वर्णन चातुरी मे अपना स्थान निर्धारित करने की दृष्टि से विश्वनाथ, मथुरादास और वीरराघव ने कुछ पृथक चेष्टाएँ भी की, प्रकृति को सीमित परिधि से निकालने का उपक्रम किया किन्तु वे भी प्राकृतिक उपादानो के उपस्थापन मे नवीनता नही ला सके। वीरराघव मृगया मे राजा की भावनाओ को अनुरागमय बना देते है और मलयजा से मिलने के लिये हरित भरित नवमल्लिका माधवीलता आदि से युक्त उद्यान मे तुरन्त पहुँचाने मे सकोच नही करते[४], यही कारण है कि नाटिकाकार लतावृक्षादि वनस्पतियो के मुक्त वर्णन मे सफल नही हो सके, अपितु परम्परा के निर्वाहक मात्र ही रह गये।

श्री हर्ष की रत्नावली और प्रियदर्शिका दोनो नाटिकाओ मे वसन्त ऋतु के लतावृक्षादिको का जो कामोद्दीपकत्व है, प्रभूत प्रयोग है। तदनुसार इनमे आम्र,

---

१ "अपसृत पाण्डु पत्रा मुचन्त्यश्रूणीव लता ॥" अभि. शा. ४/१२

२ "अनुमत गमना शकुन्तला तरुभिरिय ववास बन्धुभिः। परभृतविरुत कल यथा प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम् ॥" अभि. शा. ४/१०

३ "क्षौम केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणामाङ् गल्यमाविष्कृतम्" इत्यादि अभि शा. ४/५

४ मल. क., प्रथम व द्वितीय अक।

अशोक, सप्तपर्ण, सिन्धुवार और मदनादि वृक्षो तथा वकुल, माधवी, मालती, शिरीष, शेफालिका, पाटल, शाद्वल, प्रवाल आदि लता पुष्पो तथा कदली निकुज और कमल, नीलोत्पलादि जलीय पुष्पो का ही बाहुल्येन प्रयोग है। सारिका को मारकर भूमि पर गिराने के लिये विदूषक उसकी कपित्थ फल की उपमा देता है, अत यहाँ कपित्थ वृक्ष का भी प्रकारान्तर से उपक्षेप है।[१] जो विदूषकोक्ति मे होने के कारण अत्यन्त स्वाभाविक भी है।

कालिदास के समान कवि यहाँ चेतन पुरुषवद् आरोप उन वृक्षादिको मे नही कर सका। अशोक तमाल आदि वृक्ष और माधवी नवमालिका आदि लताएँ तथा कदली कुज राजा वत्स के विलासी जीवन के साधक है। कामोन्माद मे वह आम्रमजरी की कामदेव के बाणरूप मे निन्दा करता है। कमलनाल और नीलकमलो की शय्या बनाकर कवि नायिका की पीडा शान्ति का प्रयत्न करता है।[२]

श्लेष के माध्यम से कवि ने नवमालिका का स्त्री के रूप मे चित्रण कर क्षणिक पात्रत्व की स्थापना की है किन्तु कवि के द्वारा ही 'नारीमिवान्याम्' कहकर उद्भेद कर देने से उस लता की स्त्री रूपाभिव्यक्ति स्फुट हो जाने से अतिशय आह्लादकारी नही रही।[३] फिर भी हर्ष अन्य नाटिकाकारो की अपेक्षा अधिक सफलता से वनस्पतियो के विभिन्न रूपो का उपस्थापन कर सके है।

राजशेखर जो स्वय लाक्षणिक भी है, वनस्पतियो के विविध रूपो का सकलन करते हुए श्री हर्ष से सख्यात्मक दृष्टि से कही आगे निकल गये। इन्होने रग, आकार और गुणात्मक दृष्टियो को ध्यान मे रखकर अनेक अभिनव लतावृक्षादिको का वर्णन किया।

शीत ऋतु की कुन्दलता की उपेक्षा कर भ्रमर बसन्त मे आम्रमजरी को अधिक चाहता है। कवि ने इस वर्णन मे कुन्दलता से देवी और आम्रमजरी से कन्यानायिका के प्रति अनुराग का जिस प्रकार कथन किया है उससे ये दोनो कुन्द और आम्र वनस्पति पात्रो के प्रतीक बन जाते है।[४]

कवि नेत्रादिको के उपमान रूप मे आकृतिगत साम्य की दृष्टि से कुवलय[५] का प्रयोग करता है तो वर्ण की दृष्टि से विचकिल, अशोक, किशुक और माजिष्ठ[६] तथा मसूर, माधवी और नवमालिका लताओ का उल्लेख करना नही भूलता।[७] विदूषक को श्वेत सिन्दुवार के पुष्प भात (चावल) के ढेर से प्रतीत हो रहे है।[८]

---

१ रत्ना., पृष्ठ ५८।
२ रत्ना., २/१३-१४
३ रत्ना., २/४
४ विद्ध., १/४-५
५ वही, १/१४
६ वही, १/२५.
७ विद्ध., पृष्ठ १७
८ वही, पृष्ठ १६

शारीरिक रोमाच प्रदर्शन के लिये कवि कदम्ब पुष्प को उपमान बनाता है[१] तो मुख से सीधी सरलतया निकलने वाली श्वास को सरल वृक्ष की उपमा देता है।[२] इस प्रकार कविवर राजशेखर ने लतावृक्षादि वनस्पतियो का विविध उपमानादिको के रूप मे प्रभूत प्रयोग किया है। उनकी इस नाटिका मे मुख्यत कुन्दलता, कुवलय, विचकिल, अशोक, किशुक, माजिष्ठ, कलम, सिन्दुवार, मसूर, माधवी, नवमल्लिका, ताम्बूल, कदली, पनस, शेफालिका, चन्दन, केसर, मदन केदारिका (धतूरा), हरिद्राबकुल, मरुवक, केरण्ड, नारिकेल, पाटल, कारवल्ली (करेला) और अरिष्ट (नीम) आदि लगभग २६ प्रकार के लता-वृक्षादिको का प्रयोग है, जो उनकी विदग्धता का परिचायक है।

कर्णसुन्दरी मे दाडिम[३], मधूक[४], दूर्वा[५] और तालवृक्षो[६] व लतादिको का पूर्ववर्ती नाटिकाकारो की अपेक्षा अधिक प्रयोग है। प्रकृति चित्रण प्रकरण मे इनके प्रयोग सम्बन्धी चमत्कार और सौन्दर्य की मीमासा की जा चुकी है, अत यहॉ उनका पिष्टपेषण अभीप्सित नही।

उषारागोदया मे भी राजशेखर द्वारा वर्णित वनस्पति पृथक् कोई नवीन उपन्यास नही है। बन्धूक[७], चैत्य[८] और तमाल[९] वृक्षो के वर्णनो मे वर्ण के साथ-साथ पात्र प्रतीकात्मकता भी है। नाटिका के लालित्य और कोमल भावो की सृष्टि के निमित्त कठोर वनस्पतियो का प्रयोग नही किया गया।

मदनबाल सरस्वती ने पारिजात मजरी नाटिका का प्रणयन करते समय रत्नावली को आदर्श बनाया, फलत उसी के अनुसार प्रकृति दृश्य और वनस्पतियो का भी सन्निवेश किया किन्तु नायिका की अद्भुत सृष्टि के निमित्त अद्भुत, अभौतिक वृक्ष पारिजात (कल्पवृक्ष) की मजरी का प्रयोग करते है।[१०]

नवफलिका नामक लता[११] सम्भवत· नवमालिका का ही दूसरा नाम है। अन्य पाटल, माधवी, शिरीष, सहकार आदि पूर्ववत ही वर्णित है।

विश्वनाथ कविराज की चन्द्रकला नाटिका मे प्रकृति एक बार पुन मानव जीवन से तादात्म्य स्थापित करने मे समर्थ हो सकी। नायिका के शरीर का पैरो से मुख तक वर्णन करते समय कवि उत्तरोत्तर अभौतिक एवं ऊर्ध्वगामी हो गया

१ वही, २/१
२ वही, २/३
३ कर्ण., १/६
४ वही, २/३
५ वही, २/२५
६ वही, ३/५
७ उषा, १/८
८ वही, १/२३
९ वही, २/७
१० पारि, १/७
११ वही, १/१२

है। चरण रक्तकमल, उर युगल कदली स्तम्भ, नितम्ब द्वीपवत्, उरोज गजकुम्भ और मुख चन्द्रमण्डल जैसा सुशोभित हो रहा है।[१]

यद्यपि यहाँ चरणो की कमल व ऊरुयुगल की स्तम्भ से उपमा कोई नवीन प्रयोग नही है फिर भी वर्णनशैली मे वनस्पतियो की प्रयोग शैली स्तुत्य है। कालिदास के समान प्रकृति का स्वाभाविक चित्रण करने के कारण इसमे अप्रसिद्ध लता-वृक्षादिको का प्रयोग नही किया गया है। रम्भा, कदम्ब, केसर, कुमुद, कमल, शिरीष, सहकार, अशोक, कुवलय, बकुल और माधवी आदि लताओ का प्रयोग है।

कमलिनी कलहस मे राजचूडामणि दीक्षित ने अपने पाण्डित्य को प्रकट करने के लिए 'चिल्लीवल्ली' जैसी अप्रसिद्ध लता का प्रयोग किया।[२] मृद्वीक जैसी कोमल लता और कमल, केसर, शिरीष आदि सुगन्धिमय पुष्पो का उपादान करते हुए उन्होने अपनी अप्रसिद्ध वस्तूपन्यास प्रवृत्ति को ढक दिया। मध्याह्न, वर्षा, प्रभात, चन्द्र और ज्योत्स्ना के वर्णनो मे उन्होने प्राय उद्दीपक वनस्पतियो का ही अवलम्बन किया है।

मृगाकलेखा ने पूर्व कवियो की अपेक्षा प्रियाल[३], लवली[४], मन्दार[५] और लवगलता[६] का विशेष प्रयोग है। प्रकृति के उपादान और काम के उद्दीपक रूपो के अतिरिक्त कोमलता, कठोरता आदि भावो के प्रदर्शनार्थ भी इन वनस्पतियो का प्रयोग कवि ने प्रायश किया है। वसन्त, सन्ध्या आदि वर्णनो मे कोमल लताओ का और मध्याह्न वर्णन मे उन्ही की क्लाम्यता का सुन्दर चित्रण है।

मथुरादास सुवर्णयूथिका[७] और सितकेतक[८] दो नवीन लता पुष्पो का उल्लेख करते है। शेष सभी पूर्व कवियो द्वारा वर्णित लतापुष्प ही उनकी भी लेखनी के आश्रय बने है।

इस प्रकार सम्पूर्ण नाटिका साहित्य मे उद्यानो मे सुलभ सामान्यत सुगन्धि पूर्ण विविध वर्ण के पुष्पो को प्रसूत करने वाली लताओ और आम्र, अशोक, दाडिम, सिन्दुवार, तमाल आदि वृक्षो का ही उल्लेख किया गया है। कपित्थ, द्राक्षा, पनस आदि वृक्षो का उनके फलो के नाम से ज्ञान होता है। नाटिका के रागात्मक श्लिष्ट कोमल भावो के परिप्रेक्ष्य मे लतावृक्षादि वनस्पतियो का प्रभूत किन्तु उचित प्रयोग उन्हे न केवल महत्त्वपूर्ण अपितु रोचक बना देते है। अनेक

---

१ चन्द्र, १/१३
२ कम कल २/८
३ मृगाक १/७
४ वही २/२५
५ वही २/२६
६ वही १/३२
७ वृष., पृष्ठ १४
८ वही, पृष्ठ 37

सहयोगी पात्रो के नाम अनेकानेक लता वृक्षो पर है, जैसे—मालतिका[१], बसन्तलेखा[२], माधविका[३], रसालक[४] आदि। इस प्रकार के नामकरण से तत्तकालीन समाज मे वनस्पति के प्रति लोगो की कितनी अभिरुचि थी, इस पर भी प्रकाश पडता है।

(स) कला की दृष्टि से सर्वोत्तम नाटिका

सस्कृत नाटिका लिखने की प्रेरणा कवियो को हर्ष से प्राप्त हुई। हर्ष को यह प्रेरणा कालिदास के मालविकाग्नि मित्र नाटक और भरत निर्दिष्ट नाटी लक्षण से मिली। हर्ष से पूर्व नाटिका नाम से किसी नाट्यविधा का परिचय प्राप्त नही होता और न ही भरत के नाटी का उदाहरण ही। अत यह सिद्ध होता है कि हर्ष प्रथम नाटिकाकार है और उनकी रत्नावली और प्रियदर्शिका ही प्रथम सस्कृत नाटिकाएँ है।

कला की दृष्टि से उपलब्ध, अनुपलब्ध नाटिकाओ की मीमासा करने पर हर्ष कृत रत्नावली नाटिका ही सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होती है क्योकि इसी मे नाट्यशास्त्रीय नियमो एव व्यावहारिक प्रवृत्तियो का समुचित सामजस्य हुआ है अन्य परवर्ती नाटिकाएँ अनेक दृष्टियो मे इससे पीछे है।

नाट्य, जीवन के उस व्यापक तत्त्व का प्रस्तुतीकरण है जो प्रत्यक्ष कल्पना एव अध्यवसाय का विषय बन सत्य एव असत्य से समन्वित विलक्षण रूप धारण करके सर्वसाधारण को आनन्दोपलब्धि कराता है।[५] अत आचार्यो ने इसकी पूर्ति के लिए नाट्य मे तीन प्रमुख तत्त्व निर्दिष्ट किए-वस्तु नेता और रस।

वस्तु तत्त्व नाट्य की आधार भित्ति है। नेता (पात्र) उस वस्तु का अभिनय कर दर्शको तक उसे पहुँचाता है।[६] और उसी वस्तु तत्त्व का दर्शक के द्वारा आस्वाद करने के कारण रस रूपता को प्राप्त करती है।

भरतादि नाट्य शास्त्रियो ने इन तीनो तत्त्वो की विस्तृत विवेचना की। दशरूपककार ने वस्तु, नेता और रस की भिन्नता के आधार पर ही रूपको के विविध भेद स्वीकार किए।[७] साहित्यदर्पणकार ने रूपक, और उपरूपक दो भेद कर रूपक के १० तथा उपरूपक के १८ भेदो का विवेचन किया।[८]

---

१ उषारागोदया, (अन्त पुर परिचारिका)

२ चन्द्रकला (प्रधान महिषी)

३ वही (देवी परिचारिका)

४ वही (विदूषक)

५ (क) "प्रत्यक्ष कल्पनानुव्यवसाय विषयो लोकप्रसिद्धः सत्यासत्य विलक्षणत्वात् यच्छब्दवाच्यो लोकस्य सर्वस्य साधारणतया सत्वेन भाव्यमानश्चर्व्यमाणोऽर्थो नाट्यम्।"
नाο शाο १/२१- की अभिनव गुप्त की व्याख्या

(ख) "अवस्थानुकृतिनार्ट्यम्" —दश १/७

(ग) "लोकवृत्तानुकरण नाट्यमेतन्मयाकृतम्।" —हि.ना.शा. १/११२

६ "अभिपूर्वस्तु णीञ् धातुराभिमुख्यार्थ निर्णये।
यस्मात् प्रयोग नयति तस्मादभिनयः स्मृतः ॥"

७ "वस्तु नेता रसस्तेषा भेदकः" —दश. १/७

८ सा द. ६/३-६

हर्ष ने रत्नावली की रचना करते समय शास्त्रीय नियमो की दृष्टि से भरत का सहारा लिया। उनके नाटी लक्षण के परिप्रेक्ष्य मे उन्होने रत्नावली और प्रियदर्शिका की रचना कर उन्हे नाटिका की सज्ञा दी क्योकि इस समय तक धनजय का जन्म ही नही था, धनजय जो १०म शती मे हुए, ने ही सर्वप्रथम शास्त्रीय दृष्टि से नाटिका शब्द का प्रयोग किया उसकी व्याख्या की।

आचार्य भरत से भिन्न जिन नवीन नाटिका सिद्धान्तो की विवेचना धनजय विश्वनाथ आदि ने की उन्होने रत्नावली आदि नाटिकाओ को ही आधार बनाया होगा। इस दृष्टि से सस्कृत नाटिका के क्षेत्र मे हर्ष का यह साहसिक प्रयोग था।

नाट्य के तीनो तत्त्वो वस्तु, नेता ओर रस पर नाट्यशास्त्रियो ने विस्तृत विवेचन कर बाल मे खाल निकालने का प्रयत्न किया है। नाट्यशास्त्रीय समीक्षा प्रकरण मे एतद्विषयक विवेचन किया जा चुका है। नाटिका के लिए निर्धारित विशिष्ट रूढियो का सम्यक् परिपालन जहॉ रत्नावली मे किया गया वही उसमे इतिवृत्त, पात्र, रस, रीति, वृत्ति आदि का भी तत्परता से पालन किया गया है।

यद्यपि परवर्ती सभी नाटिकाओ मे नाटिका रूढियो के पालन की सफल चेष्टा है किन्तु सम्यक् परिपालन नही हुआ है, कुछ नाटिकाओ मे घटना मे अस्वाभाविकता, पात्रो के चरित्र मे शैथिल्य, पद्यो का बाहुल्य आदि दोष देखने को मिलते है। उदाहरणार्थ विद्धशालभजिका मे प्रथम अक मे स्वप्न दृष्टा प्रेयसी के वियोग मे दीर्घकाल तक मदनाकुलता का वर्णन, सन्ध्या, बसन्त आदि का भूयसा काव्यात्मक वर्णन एव देवी के द्वारा राजा का मृगाकावली के साथ-साथ बकुला-वलिका का निष्प्रयोजन विवाहयोजन आदि घटनाएँ अस्वाभाविक है।

कर्णसुन्दरी मे पद्य बाहुल्य व सवाद की कमी, द्वितीय अक के अन्त मे रानी का आकर बिना किसी वार्तालाप के चुपचाप चला जाना, कामलेख का ७ श्लोको तक अतिदीर्घ वाचन[१], देवी की दूती की सूचना से ही नायक का विवाह के लिये चल देना जब कि उसे यह भी ज्ञात नही है कि यह विवाह किसके साथ होगा[२], आदि घटनाएँ अरुचिकर है।

उषारागोदया मे देवी नायिका मे ईर्ष्याभाव की कमी, दो अको तक नायिका का मच पर न आना, विदूषक के स्वप्नगत उषा का नागपाश निगडित कथन से नायक का शोकाकुल होना[३], सर्वथा अस्वाभाविक है। मेष युगल से सम्पूर्ण अन्त पुर मे भय उत्पन्न हो जाना विश्वासोत्पादक नही।

पारिजातमजरी अपूर्ण ही उपलब्ध है। चन्द्रकला नाटिका मे कृत्रिम तरक्षु प्रसग रसपरिपाक की दृष्टि से हीन है।

१ कर्ण., ३/१२-१८
२ वही, पृष्ठ ४९
३ उषा, ४/२

मृगाक लेखा मे नायिका के समीप अनवसर मे निरुद्देश्य नायक का प्रवेश, अप्रसिद्ध शब्दो का प्रयोग[१] साधारण दर्शक के लिए अरुचिकर है। कमलिनी कलहस मे भी अप्रसिद्ध चिल्लीवल्ली[२], शालूर[३] आदि शब्द प्रयोग तथा वृषभानुजा नाटिका मे देवी नायिका का अभाव एव अन्त मे नायक नायिका का विवाह न होने आदि की बात खटकती है।

इस प्रकार सक्षिप्तत सभी नाटिकाओ मे इतिवृत्त, पात्र और योजना तथा रस सम्बन्धी दोष है जबकि रत्नावली मे इस प्रकार की कोई त्रुटि नही। इन नाटिकाओ मे इतिवृत्त सम्बन्धी बहुत से नियमो का भी परिपालन नही किया गया है जबकि रत्नावली में उनका प्रायश प्रयोग है।

यद्यपि सफल नाट्य का उद्देश्य दर्शक को रसानुभूति कराना है[४] किन्तु नाट्यशास्त्रीय नियमो का परिपालन भी यथासम्भव अपेक्षित है किन्तु यह कभी भी स्वीकार नही किया जा सकता कि एक ही नाट्य कृति में पदे-पदे वे सभी लक्षण व्याप्त हो क्योकि उससे नाट्य मे क्लिष्टता के साथ अस्वाभाविकता भी उत्पन्न हो जाएगी। सभवत इसीलिए आथरगाचार्य महोदय ने रत्नावली की आलोचना की।[५]

अन्य अनेक भारतीय व पाश्चात्य समालोचको की दृष्टि मे भी रत्नावली मे नाट्यशास्त्रीय नियमो की अधिक सस्थिति किकिणीवत् खटकने लगी[६], किन्तु भेडचालवत् इसे ऑख बन्द कर स्वीकार नही किया जा सकता।

रत्नावली नाटिका वस्तु, नेता, व रस के औचित्यपूर्ण निर्वाह की दृष्टि से या शास्त्रीय नियमो के प्रयोग से, व्यावहारिक व भौतिक समृद्धि की दृष्टि से अथवा लालित्य एव अभिनय के सफल प्रयोग के कारण श्रेष्ठ है, प्रेय है। इसने सस्कृत नाटक की आदर्शवादिता को चुनौती दी, राजाओ के भोगविलास की अतिरजित परम्पराओ का नग्न सत्य प्रस्तुत किया, तत्कालीन अस्थिर राजनीति से श्रान्त मनुष्यो को रसास्वाद करा कर मनोरजन किया। "लोकोपदेश जनन"[७] के साथ-साथ "विश्रान्ति जनन काले नाट्यमेतत् भविष्यति"[८] के भरतीय उद्देश्य को भी पूर्ण किया। भरत ने नाट्य का प्रयोजन पहले दुखी श्रमी के दुःख को दूर करना और बाद मे धर्म्म, यशस्य एव लोकोपदेश जनक कहा है।[९]

---

१ मृगा मिहिका, पृष्ठ २५, मुरला २/२३
२ कम क. १/३५
३ वही १/३९
४ "न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते" —ना. शा., पृष्ठ ९२
५ "ड्रामा विद हिम वाज़ ए प्रोडक्ट नाट आव् लाइफ बट आव लर्निंगि दि रूल्स आव ड्रामाटर्जी।" —ड्रामा इन सं लिट., पृष्ठ, १६३.
६ (डा कीथ) स. ड्रामा, (उस. एन दासगुप्ता) हिं. सं. लिट., पृष्ठ ४४६।
७ हि० ना० शा०, १।११६
८ वही, १।११५
९ वही, १।११२-११६

नाट्यशास्त्रीय नियमो की परिपालना से रसास्वाद और अभिनय मे कोई बाधा कवि ने उपस्थित नही की[१], क्लिष्ट भाषा, समास या अप्रसिद्ध पदो के प्रयोग से उसे केवल विद्वानो की सुखानुभूति का विषय ही नही बनाया। राजाओ मे प्रस्तरमूर्तिवत् देवत्व की स्थापना नही की। यह तो एक सहज अभिव्यक्ति और युगीन चेतना का प्रवाह बन कर क्रान्त दृष्टा कवि के हृदय सागर मे तूफान उठाकर उत्पन्न हुई, अत रत्नावली के प्रति लगाए गए आक्षेप उचित नही कहे जा सकते।

परवर्ती साहित्य पर इस रत्नावली का व्यापक प्रभाव इसकी कलात्मक उन्नति का परिचय प्रस्तुत करता है। राजशेखर जैसा लाक्षणिक और बिल्हण सदृश महाकाव्यकार अपनी चित्तवृत्ति का निरोध न कर सके और उन्होंने रत्नावली के अनुकरण पर क्रमश विद्धशालभंजिका और कर्णसुन्दरी नाटिकाओ की रचना की।

हर्ष की पश्चात्कालीन शताब्दियो पर दृष्टिपात करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि शायद ही कोई ऐसी शताब्दी हो जिसमे नाटिकाओ की रचना न की गई हो, अन्यथा प्राय सभी मे इस साहित्य का निरन्तर सृजन हुआ है[२] और प्राय सभी नाटिकाओ पर रत्नावली का प्रभाव है।

रत्नावली के सन्दर्भ मे यदि यह कहा जाय कि राजमहल के भीतर की गुप्त प्रणय-लीलाओ का चित्र अकित करने मे हर्ष की तूलिका कालिदास की कूची से कही अधिक गहरे रगभर सकी तो अतिशयोक्ति न होगी।[३] क्योकि हर्ष कालिदास के ललित कथा के पथिक है। अवसरानुकूल वर्णनो मे उन्होंने कालिदास का अनुकरण भी किया है। रत्नावली मे युद्ध की भीषणता का वर्णन करते समय[४] उन्होने मालविकाग्निमित्र के तेजोमय वर्णनो का सहारा लिया।[५] इसी प्रकार अग्नि के कारण अन्तपुर मे आतक छा जाने का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक है।[६] फिर भी रत्नावली की शैली स्फीत, सरल तथा कोमल है। प्रणय और प्रकृति के कोमल चित्रो को सजाने मे हर्ष ने अपेक्षाकृत अधिक

---

१ "शास्त्रीय प्रभाव के होने पर भी हर्षवर्द्धन की कला भट्टनारायण की भॉति नाटकीय हास की ओर नही गई, यह हर्ष की सबसे बड़ी सफलता है।"
(व्यास, भोलाशकर) स० कवि० द०, पृष्ठ ३०६

२ परिशिष्ट (नाटिका सूची)

३ (व्यास) स. कवि. द., पृष्ठ ३१६

४ अस्त व्यस्त शिरस्त्र शस्त्र कषणोत्कृत्तोत्तमागे क्षण
व्यूढास्त्रक् सरितिस्वनत्प्रहरणे वर्मोद्बलद्वह्निननि।। आदि —रत्ना. ४/६.

५ माल ५/१-२

६ "हर्म्याणा हेमशृगश्रियमिवनिचयैरर्चिषामादधान,
सान्द्रोद्यान द्रुमाग्रग्लपन पिशुनतात्यन्त तीव्राभितापः।
कुर्वन् क्रीड़ा महीध सजल जलधर श्यामल धूमपात"
रेषप्लोषार्तयोषिज्जन इह सहसैवोत्थितोऽन्त.पुरेऽग्नि.।। —रत्ना ४/१४

चित्रकारी की है।[1] उनकी कोमल अगुलियाँ प्रणयकथा के ताने बाने बुनकर सात्विक भावो के बेलबूटे सजाना खूब जानती है तभी तो प्रकृति वर्णन सूक्ष्म होते हुए रगध्वनि से समलकृत है।[2] फलत उनका अन्त पुर, विलास और प्रमोद से रजित प्रतीत होता है। सम्पूर्ण कथानक गतिशील और चुस्त है। ऐन्द्रजालिक चित्र यदि हर्ष की सूझबुझ का उदाहरण है तो सारिका अनूठी कल्पना है।

वस्तुत नाट्य सफलता घटना की गतिशीलता पर, व्यापार की स्वाभाविकता पर और वस्तु की चुस्ती पर निर्भर होती है, शास्त्रीय सिद्धान्तों की नकल पर नही।

इस दृष्टि से परवर्ती समस्त नाटिकाओ की अपेक्षा रत्नावली श्रेष्ठ नाटिका है। पात्र, रस, अभिनय एव शास्त्रीय नियमोपनियमो की पुनर्व्याख्या को आधार न बनाकर यहा मूलभूत सिद्धान्तो की विवेचना रूपी कसौटी पर ही रत्नावली एव उसके माध्यम से हर्ष की कला का परीक्षण किया गया है तथा व्यावहारिकता और औचित्य के परिप्रेक्ष्य मे रत्नावली को परवर्ती काल की समस्त नाटिकाओ की अपेक्षा सर्वोत्तम नाटिका का स्थान दिया गया है।

(द) समसामयिक साहित्य एवं प्रभाव

सस्कृत नाटिकाओ की रचना का हर्ष से पूर्व कोई उल्लेख प्राप्त नही होता। नाटी नाम से भरत ने जिसका लक्षण किया था[3] उसका उदाहरण हर्ष की रत्नावली व प्रियदर्शिका से पूर्व उपलब्ध न होने के कारण सर्वप्रथम नाटिका के रूप मे इन्ही हर्षकृत नाटिकाओ को स्थान दिया जाता है। फलत नाटिका साहित्य का आरम्भ हर्ष के समय अर्थात् ७वी शती से होता है।

हर्ष के पूर्ववर्ती नाटककारो मे सबसे समीपवर्ती विशाखदत्त (४०० ई) है किन्तु हर्ष की प्रणयमूलक नाटिकाओ पर उनके मुद्राराक्षस जैसे ऐतिहासिक और राजनीति प्रधान नाटक का कोई प्रभाव नही किन्तु विशाखदत्त द्वारा लिखित देवीचन्द्र गुप्तम् नाटक का प्रभाव हर्ष पर अवश्य पड़ा है, सम्भवतः दो नायिकाओ एव वेष परिवर्तन की प्रेरणा कवि को यहीं से प्राप्त हुई। कुमार चन्द्रगुप्त ध्रुवदेवी की रक्षार्थ स्वय स्त्रीवेश धारण कर उसका स्थान ले लेता है।[4] वस्तुत हर्ष ने अपने नाटको को लिखने की मुख्य प्रेरणा महाकवि कालिदास के मालविकाग्निमित्र और अभिज्ञान शाकुन्तल से प्राप्त की। क्योकि उनकी प्रथम कृति प्रियदर्शिका मे भ्रमर वृत्तान्त[5] शाकुन्तल[6] से और प्रणय पद्धति तथा विषपान[7] आदि प्रसग

---

१ रत्ना १/२५
२ वही ३/७
३ ना.शा १८/११०-११२ (निर्णयसागर १९४३)
४ (कृष्णमाचारी) हि क्लासि. स लिट., पृष्ठ ६०९-६१०।
५ अभि. शा १/२०
६ प्रिय., पृष्ठ ८८
७ प्रि., पृष्ठ २८

मालत्रिकाग्निमित्र[१] से प्रभावित है। इसी प्रकार रत्नावली मे अश्वशाला से भागे हुए बानर वृत्तान्त[२] मालविकाग्निमित्र की उस घटना से प्रभावित है जहाँ वानर राजकुमारी को डरा रहा है।[३] इन निर्देशो से हर्ष का कालिदास से प्रभावित होना अत्यन्त स्पष्ट है।

हर्ष के समकालीन अर्थात् ७वी शती के आरम्भिक कवियो मे भारवि का नाम लिया जा सकता है, भारवि महाराष्ट्र के राजा विष्णुवर्धन की राजसभा मे थे,[४] किन्तु भारवि पर न तो हर्ष का प्रभाव पडा और न हर्ष पर भारवि का। इसके दो कारण हो सकते है। एक तो यह कि हर्ष मुख्यत नाटककार है जबकि भारवि महाकाव्यकार। हर्ष श्रृगार प्रधान नाट्य के रचयिता है पर भारवि वीर रस प्रधान काव्य के प्रणेता है। दूसरा कारण दोनो के स्थानो का अत्यन्त दूर-दूर होना है।

राजशेखर जो १०वी शती पूर्वार्द्ध के प्रसिद्ध नाटक एव लक्षणकार है, नाटिका लेखक के रूप मे हर्ष से अत्यन्त प्रभावित है। नायिका को अन्त पुर मे पहुचाना[५], नायिका से विवाह करने वाले को चक्रवर्तित्व प्राप्ति का कथन[६] एव प्रणय व्यापार आदि पर रत्नावली का व्यापक प्रभाव है। नायक, नायिका, मन्त्री और विदूषक आदि पात्रो पर हर्ष का प्रभाव स्पष्ट है। कालिदास और भवभूति से भी राजशेखर प्रभावित है, यह निसन्देह है। भाषा को मुहावरो और सूक्तियो से समलकृत करने के कारण ये भवभूति के अधिक निकट है तो पात्रो की सजीवता मे कालिदास के अधिक समीप है।

राजशेखर के समकालीन कन्नौज नरेश महीपाल के सभापण्डित कवि क्षेमीश्वर है।[७] क्षेमीश्वर के दो नाटक चण्डकौशिक और नेषधानन्द का इनके नाट्यो पर कोई प्रभाव नही पडा। सम्भवत विषयभेद ही इसका प्रमुख कारण है। सट्टक जो नाटिका से सर्वथा साम्य रखता है केवल भाषात्मक भेद ही उसके पार्थक्य का कारण है, की रचना सर्वप्रथम राजशेखर की कर्पूरमजरी है। विद्धशालभजिका की भॉति श्लिष्टानुरागात्मक प्रणयभावनाओ के चित्रण व पात्रो के चरित्रो पर कालिदास, हर्ष आदि का प्रभूत प्रभाव है। भाषा, भाव एव रसविश्लेषण मे कोमलता, सरसता और सरलता है।

---

१ मालविकाग्नि, पृष्ठ 149-152 (विदूषक विषपायी का अभिनय करता है।)
२ रत्ना. 2/2-3.
३ मालविकाग्नि.।
४ (बलदेव) सं. सा इति., पृष्ठ २३२
५ विद्ध. १/९
६ वही, पृष्ठ ५९
७ कीथ (स ड्रामा) स ना (हि. अनु), पृष्ठ २५५

कीथ ने राजशेखर के बाद सस्कृत नाटको का अवनति काल माना है।[१] इस अवनति काल की ११वी शती मे क्षेमेन्द्र और बिल्हण दो नाटिकाकार हुए। क्षेमेन्द्र की नाटिका उपलब्ध नही है, ललितरत्नमाला नाम से उसकी नाटिका के अनुकूल कोमलता का ध्वनन हो रहा है। वत्सराज उदयन सम्बन्धी कथानक होने के कारण क्लिष्टता की कल्पना ही नही की जा सकती।

बिल्हण की कर्णसुन्दरी रत्नावली और विद्धशालभजिका के अनुकरण पर लिखी गई। "नायिका को स्वप्न मे देखकर उस पर अनुरक्त होना[२], वेषपरिवर्तन[३], पुरुष के साथ पुरुष के अलीक विवाह की बालिश आयोजना"[४] आदि घटनाएँ जहाँ विद्धशालभजिका की स्पष्ट अनुकृति है वही चित्ररचना, मदनलेख, गुप्तमिलन योजना और प्रकृति दृश्यो पर हर्ष की रत्नावली की अमिट छाप है। इससे स्पष्ट है कि बिल्हण अपने पूर्ववर्ती नाटिकाकार हर्ष और राजशेखर तथा कालिदास आदि नाटककारो से पूर्णत प्रभावित है।

१२वी शती मे रुद्रचन्द्रदेव ने उषारागोदया नामक नाटिका की रचना की जिस पर मुख्य प्रभाव रत्नावली का है। यू तो सभी सस्कृत नाट्यकार कालिदास से प्रभावित है क्योकि कालिदास ने जिन आदर्शपूर्ण किन्तु ललित नाटको की रचना की वैसे सर्वांगीण सुन्दर नाट्य की रचना परवर्ती कवि नही कर सके, यह निर्विवाद है अत सभी परवर्ती कवियो ने उनकी युक्तियो को अपनाने का प्रयत्न अवश्य किया।

श्रीहर्ष की रत्नावली से नाटिका की कुछ रूढ़ियाँ स्थिर हो गई थी, जिनमे—देवी नायिका का कन्या नायिका के प्रति स्वभावत सन्दिग्ध होना और ईर्ष्या करना, नायक नायिका के प्रणय व्यापार मे विघ्नोत्पन्न करना, विदूषक का देवी की परिचारिकाओ से अशोभनीय वार्तालाप या वाग्युद्ध करना, वसन्त, वर्षा आदि ऋतुओ का वर्णन करना, अन्त मे विजय की सूचना मिलना तथा देवी के द्वारा नायक नायिका का विवाह कराना आदि प्रमुख है।

रत्नावली की इन्ही रूढ़ियो का अनुसरण करते हुए रुद्रचन्द्रदेव ने पौराणिक पात्र उषा व अनिरुद्ध की प्रेमलीला का वर्णन किया। यद्यपि वे हर्ष की भाँति सफलता तो प्राप्त नही कर सके पर राजशेखर की भाँति नाटिका को शब्द चित्र का कोष बनाने का भी प्रयत्न नही किया। १२वी शती के उत्तरार्द्ध मे यद्यपि बृहत्त्रयी के महान् पाण्डित्यपूर्ण महाकाव्य नैषधीय चरित के लेखक हर्ष भी हुए है पर उनका रुद्रचन्द्रदेव पर कोई प्रभाव नही है, इसका कारण एक कवि का उत्तर भारतीय एव दूसरे का दक्षिण भारतीय होना भी हो सकता है। वैषयिक भेद तो मूलत है ही।

---

१ कीथ (स. ड्रामा) स ना (हि. अनु.), पृष्ठ २५५

२ कर्ण. १/३५, विद्ध. १/१५

३ वही, पृष्ठ ३७

४ वही, पृष्ठ ५२, विद्ध. पृष्ठ १०९-११२

१३वी शती के पूर्वार्द्ध व उत्तरार्द्ध मे क्रमश मदनबाल सरस्वती और हस्तिमल्ल दो कवि हुए है जिन्होने नाटिकाओ की रचना की। कुछ विद्वानो ने रुद्रचन्द्रदेव को भी इसी शताब्दी के अन्तर्गत परिगणित किया है।[१]

मदनबाल सरस्वती ने नाटिका को ऐतिहासिक भूमि पर ले जाने का प्रयत्न किया। यद्यपि केवल दो अक ही उपलब्ध है अत अधिक कुछ कह पाना तो सम्भव नही है किन्तु इन दो अको मे हर्ष की रत्नावली का भूयसा अनुकरण हे किन्तु मात्र घटना योजना मे न कि घटनाओ के रूप व विषय मे। पूर्वत यह स्पष्ट किया जा चुका है कि मदन ने नाटिका मे शालीनता व औचित्य के विन्यास का सफल प्रयत्न किया। नायिका की उत्पत्ति,[२] हिन्दोलक चतुर्थी व्रत और हिन्दोलक वाद्य,[३] देवी के ताडक मे नायिका का प्रतिविम्ब देखना[४] आदि कल्पनाएँ सर्वथा अभिनव है। किन्तु विदूषक का चेटियो से हासपरिहास, असमय मे पुष्पोत्पत्ति, गुप्तमिलन योजना, वसन्तोत्सव का उल्लास एव शत्रु पराजय की सूचना आदि घटनाएँ रत्नावली के समान परम्परा प्रथित है।

इस शताब्दी के अन्तिम भाग मे कर्नाटक प्रदेश के शासक पाण्ड्यराज के आश्रित कवि हस्तिमल्ल ने अनेक नाटको के साथ सुभद्रा नामक नाटिका की भी रचना की थी। यह नाटिका पौराणिक इतिवृत्त पर आधारित है और बहुत अशो मे उषारागोदया का अनुकरण करती है। जैन धर्मानुयायी होते हुए भी इसने अनेक पौराणिक पुरुषो पर आश्रित नाटक लिखे है। डा वाचस्पति गेरोला ने हस्तिमल्ल को १३वी शती का सर्वश्रेष्ठ नाटककार लिखा।[५] हस्तिमल्ल के सभी ग्रन्थ मानिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला बम्बई से प्रकाशित हो चुके है, लेकिन खेद है कि अनेक इतिहासकारो ने इनका नामोल्लेख तक भी नही किया हे।

इस शती मे पौराणिक पात्रो पर आधारित अन्य अनेक नाटक लिखे गये। जिनमे प्रहलादन कवि का पार्थ पराक्रम, मोक्षादित्य का भीमविक्रम, रवि वर्मा का प्रद्युम्नाभ्युदय, और रामभद्र का प्रबुद्ध रौहिणेय है।[६] यशपाल का रूपकात्मक नाटक मोहपराजय भी इसी शती का माना जता है।

इन सभी नाटको मे पूर्वापर दृष्टि से एक दूसरे पर प्रभाव प्रतीत होता है क्योकि प्राय सभी कवियो ने पौराणिक इतिवृत्त को ही आधार बनाया। स्वय हस्तिमल्ल ने सुभद्रा के अतिरिक्त जिन सात ग्रन्थो की रचना की उनमे विक्रान्त कौरव, मैथिली कल्याण, अजनापवनजय, भरतराज, और अर्जुनराज नाम से ही

---

१ (गैरोला) स. सा. इति., पृष्ठ ८१३
२ पारि. १/७
३ वही, पृष्ठ ७
४ वही, पृष्ठ १६
५ (गैरोला) स सा. इति., पृष्ठ ८१३
६ (कपिलदेव) स सा. समी. इति., पृष्ठ ४४५

पोराणिक प्रतीत होते है[१] तथा उदयनराज आख्यान प्रसिद्ध होने के कारण सर्वथा पुराणावद् ही है।

इससे यह भी प्रतीत होता है कि ये सभी कवि प्राय समसामयिक और लगभग एक जैसी विचारधारा या गुरु-शिष्य परम्परा के थे।

उडीसा के विद्वान् कवि विश्वनाथ कविराज जहाँ अपने पूर्वजो से पैतृक विरासत के रूप मे शक्ति, ज्ञान, एव वैदुष्य प्राप्त कर चुके थे, वही उन्होने स्वय चन्द्रकला और प्रभावती दो नाटिकाओ की रचना कर हर्ष कालिदास के प्रति श्रद्धाजलि भी अर्पित की थी। हर्ष की रत्नावली के पश्चात् नाटिका लक्षण पर सम्पूर्णत घटित होने वाली नाटिकाओ के क्षेत्र मे सभवत चन्द्रकला को ही द्वितीय स्थान मिल सकता है, क्योकि इसमे हर्ष के काल से निर्धारित समस्त रूढियो का तत्परता से न केवल पालन किया गया है, अपितु उनका औचित्यपूर्ण निर्वाह भी है। अत हर्ष का प्रभाव तो नाटिका पर है ही यत्र तत्र भास के स्वप्नवासवदत्ता तथा कालिदास के मालविकाग्निमित्रम् की घटनाएँ भी है, समालम्बित है।

नायक कृत विरह वर्णन,[२] विक्रमोर्वशीय के पुरुरवा विलाप के समान है[३] रत्नावली के वानर की घटना का अनुकरण इसमे तरक्षु का प्रसग है यद्यपि वह उतना सौन्दर्याधायक नही बन सका।

नाटिका साहित्य की रचना का अपना एक प्रयोजन है, पद्धति है और पात्र सृष्टि है जिससे अन्य नाटको या नाटककारो से प्रभावित होने का प्रश्न कम ही उठता है। यही कारण है कि १५वी शती के अन्य अनेक नाटककार बामनभट्ट बाण, रामदेव व्यास, रूपगोस्वामी और गोकुलनाथ आदि का विश्वनाथ पर कोई प्रभाव न पडा। विश्वनाथ ने स्वय नाटिका का लक्षण लिखा अपने मनोऽनुकूल उदाहरण देने के लिए कल्पित व पौराणिक इतिवृत्त पर आधारित दो नाटिकाओ का प्रणयन भी किया। दुर्भाग्य से इनकी द्वितीय नाटिका प्रभावती परिणय आज उपलब्ध नही है।

स्वतन्त्र विचारक, समालोचक और लाक्षणिक होने के कारण विश्वनाथ से नवीनता की आशा की जा सकती थी, पर ऐसा नही हुआ तो फिर ह्रास युग के अन्य नाटिकाकारो जिन्होने केवल परम्परा का निर्वाह मात्र करने के लिये साहित्य सर्जको की कड़ी मे अपना नाम जोड़ने के उद्देश्य से जिन नाटिकाओ की रचना की हो उनका स्वतन्त्र कोई महत्व नही है। फिर भी सत्रहवी शती के एक प्रतिभावान् कवि राजचूड़ामणि दीक्षित को भुलाया नही जा सकता। इन्होने कमलिनी कलहस नामक नाटिका लिखी थी। इस नाटिका की घटनाएँ, पात्र एव विन्यास पर राजशेखर की विद्धशालभंजिका का व्यापक प्रभाव पड़ा है।

---

१ (गैरोला) स. सा इति., पृष्ठ ८१३
२ चन्द्र., ३ अक।
३ विक्रमो ८२

इतिहासकार दासगुप्ता ने इसे विद्धशालमजिका की अनुकृति ही बताया,[१] जो यथार्थत सत्य है। इसी शती मे प्रभूत नाट्यसाहित्य का सृजन जिसमे यज्ञनारायण दीक्षित का रघुनाथ विलास व गुरुराम का सुभद्राधनजय नाटक, नीलकण्ठ दीक्षित का नल चरित नाटक, रुद्रदास का चन्द्रलेख सट्टक, रामभद्र दीक्षित का जानकी परिणय, नल्लकवि के सुभद्रापरिणय व श्रृगार सर्वस्व भाण, सामराज दीक्षित का श्रीराम चरित व धूर्तनर्तक प्रहसन, सठकोप का बसन्तिका परिणय तथा कुमार ताताचार्य का पारिजात नाटक अत्यन्त प्रसिद्ध है। डा कपिलदेव द्विवेदी ने इस १७वी शती के लगभग १५ नाट्याचार्यो एव उनकी २६ नाट्यकृतियो की सूची प्रस्तुत की है।[२] किन्तु नाटिका की रूढिमूलकता के कारण राजचूडामणि दीक्षित पर पूर्ववर्ती नाटिकाकारो का ही प्रभाव है, अन्यो का नही।

१८वी शती की तीन नाटिकाएँ वीरराघव कृत मलयजा कल्याण, विश्वनाथ शर्मा कृत मृगाकलेखा और विश्वेश्वर पाण्डेय कृत नवमालिका उपलब्ध है। मलयजा कल्याणम् पर अभिज्ञान शाकुन्तल, कर्णसुन्दरी व कमलिनी कलहस का प्रभाव है। मलयजा का प्रभाव मृगाकलेखा पर पडा। दोनो मे मृगया प्रसग मे ही नायिकाओ से प्रेम जागृत होता है जो बाद मे अन्त पुर के उद्यान मे वृद्धिगत होकर अन्त मे विवाह रूप मे परिणत हो जाता है।

विश्वेश्वर पाण्डेय मुख्यत हर्ष से प्रभावित है, उनकी घटनाओ के सयोजन, प्रकृति वर्णन और पात्रो के व्यापार रत्नावली के अनुकरण पर है। हर्ष प्रतिनिधि कवि है, नवीन परम्परा के जन्मदाता है, अत उनका परवर्ती नाटिकाकारो पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है, इसलिए वीरराघव और विश्वनाथ शर्मा को भी इस श्रेणी से पृथक् नही किया जा सकता।

भवभूति के मालतीमाघव के अनुकरण पर विश्वनाथ शर्मा ने मृगाकलेखा मे दानवराज शखपाल के भाई को जगली हाथी के रूप मे प्रस्तुत किया है।[३] राजशेखर की विद्धशालभजिका के अनुकरण पर कवि ने मृगाकलेखा मे विविध स्थानीय स्त्रियो की पृथक् पृथक् विशेषताओ का उल्लेख किया है।[४] १८वी शती के या सम्पूर्ण अवनति काल के नाटिका लेखको मे विश्वनाथ का महत्त्वपूर्ण स्थान है, उन्होने कालिदास, हर्ष आदि के साथ-साथ प्राय सभी प्रमुख नाटिकाकारो एव नाटककारो के गुणो को अपनाया है इसीलिए मृगाकलेखा नाटिका की रूढियो का पालन करती हुई भी नाटकवद् स्पृहणीय है।

---

१ "बट दि प्ले इज़ ए क्लोज़ इमिटेशन, इन फोर एक्ट्स, आव विद्धशालभजिका, एण्ड इण्ट्रोड्यूसेज़ दि वेल वोर्न मोटिफ्स आव ड्रीमविज़न, लव इन ए पिक्चर, स्टेचू आव दि हीरोइन, दि ग्नीलस क्वीन्स अटेम्ट टु मेरी दि किंग इन रिवेन्ज टु ए डिसगाइज्ड व्वाय देयर इज़ सम स्टाइलिस्टिक डिस्प्ले बट लिटिल ओरिजिनैलिटी आर वेराइटी" —हि. स लिट., पृष्ठ ४७२

२ स सा समी इति., पृष्ठ ४४७-४४८

३ मृगा., पृष्ठ ५६-५७

४ मृगाङ्क, १/२७, १/३३

इसी शती के एक विद्वान् पण्डित विश्वेश्वर ने नवमालिका या नवनाटिका की रचना करते हुए सर्वथा नाटिका रूढि का ही पालन किया है।

डा कपिलदेव द्विवेदी ने यद्यपि मथुरादास का काल अनिर्णीत लिखा किन्तु उन्होने १८वी शती के कवियो मे उल्लेख कर उनका काल अप्रत्यक्षत १८वी शती ही माना है।[१] जबकि दासगुप्ता महोदय ने इनका काल १५वी शती माना है।[२] मथुरादास की वृषभानुजा नाटिका यद्यपि शैली और पात्र-सृष्टि तथा घटना योजना मे नाटिका रूढियो का अनुसरण करने के कारण हर्ष आदि से प्रभावित प्रतीत होती है किन्तु उसमे अनेक रूढियो का अभाव होने से मौलिकता भी है। इन रूढियो के पालन न करने का कारण सम्भवत इतिवृत्त की पौराणिकता है। इसका विस्तृत वर्णन किया जा चुका है।

इस शती मे भी नाट्य साहित्य का उदारतापूर्वक सृजन हुआ, किन्तु उसका प्रभाव नाटिकाओ पर अधिक न पड़ सका कारण स्पष्ट किया जा चुका है कि सस्कृत नाटिकाओ का एक सीमित लक्ष्य, वर्णन पद्धति और पात्रसृष्टि रूढिमूलक हो गई थी।

इस प्रकार सस्कृत नाटिकालेखको और उनकी कृतियो पर विचार के पश्चात् निष्कर्ष रूप मे यह कहना अत्युक्ति न होगा कि भारतीय ज्ञानधारा मे कवियो ने अपनी-अपनी पृथक् ज्ञाननौकाओ का प्रयोग तो किया किन्तु स्वतत्र आकार प्रकार देने मे वे समर्थ न हो सके। जिसने जिस धारा का आश्रय लिया, वह उसी मे ऑख बन्द कर चलता रहा। किसी भूल से या बड़े साहस से यदि किसी ने कुछ भिन्न राह खोजने का प्रयत्न भी किया तो उसे उस मार्ग के काफिले से पृथक् कर देने के प्रयत्न भी लोगो ने किये।

वीर और श्रृगार के अतिरिक्त भवभूति ने यदि करुण को अगीरस बनाने का उपक्रम किया तो उन्हे निरादर मिला, अपमान मिला और विवश होकर कवि को लिखना पडा—

ये नाम केचिदिह न प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्तु ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यते हि मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥[३]

किन्तु ऐसे कितने व्यक्ति हुए। संस्कृत नाटिकाओ के विषय मे भी यही सत्य है। हर्ष, राजशेखर, बिल्हण आदि के अतिरिक्त किसी भी कवि ने नाटिका के कलेवर मे कोई परिवर्तन नही किया। वे नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तो के सकीर्ण मार्ग से गुजरते रहे, और निरन्तर उच्छिष्ट भोग ही प्रसादवत् ग्रहण करते रहे

---

१ स. सा समी इति, पृष्ठ ४४९
२ हि. स लिट., पृष्ठ ४६८ (टिप्पणी)।
३ मालतीमाधव।

यही कारण है कि सस्कृत नाटिका साहित्य के कुछ प्रतिभावान् कवियो को छोडकर अन्यो से लोग यहाँ तक कि अनेक इतिहासकार भी अपरिचित है। इसका अर्थ यह नही कि नाटिकाओ का इतिवृत्त किसी उपयोग का नही, वह तो समय और परिस्थिति के अनुकूल आगे बढा। मानवीय यथार्थ को प्रतिबिम्बित किया, किन्तु स्वतन्त्र विचार को जन्म न दे सका। इसीलिए नाटिकाओ के सर्वांगीण अध्ययन के पश्चाद् भी सामयिक साहित्य और परिस्थितियो का कोई परिचय प्राप्त नही होता। प्रत्येक नाटिका चाहे वह किसी भी शती की रचना हो, पढने या अभिनय मे देखने पर सहसा हर्ष की रत्नावली की ओर खीच ले जाती है और भावक शताब्दियो पीछे लौट जाता है।

निश्चय ही यह नाटिकाकारो का दोष है जिसे छिपाया नही जा सकता और यदि प द्विजेन्द्रनाथ मिश्र ने यह कहा कि—"ताम् (वृषभानुजा) विहाय सर्वमेव पिष्टपेषण मात्र सहृदय हृदय विरसकारक, स एव वस्तु विन्यास, सैव एकरसता, सैव एकरूपता।"[१] तो वह मिथ्या नही है।

(य) क्रमिक विकास

सस्कृत नाटिका साहित्य के आरम्भ से अन्त तक अन्वीक्षण करने पर जो तत्त्व प्रकाश मे आते है उनके अनुसार आपातत प्रतीत होता है कि उनका उत्तरोत्तर ह्रास हुआ है विकास नही। क्योकि व्यावहारिक पक्ष व अभिनेयता की उपेक्षा तथा नाट्यशास्त्रीय नियमो के प्रति लगाव इस प्रवृत्ति का परिचायक है, फिर भी आँख बन्दकर इसे स्वीकार नही किया जा सकता। यह सत्य है कि रत्नावली जैसा शास्त्रीय सिद्धान्तो व व्यावहारिक मूल्यो का अद्भुत समन्वय परवर्ती नाटिकाओ मे नही है किन्तु समय-समय पर अनेक नाटिकाएँ इस महत्वपूर्ण दृष्टि को ध्यान मे रख कर लिखी गई। वे पूर्वापर नाटिकाओ की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण भी है।

सस्कृत नाट्य के इतिहास लेखको ने नाटिका साहित्य का विस्तृत विवरण तो दूर परिचयात्मक विवरण भी पूर्णत नही दिया है। अष्टम शती पूर्वार्द्ध के नाटककार भवभूति तक ही इन इतिहासलेखको ने नाट्य का उत्थान काल माना तथा उसके बाद अवनति काल की घोषणा कर अनेक महत्वपूर्ण नाट्यकार और कृतियो की उपेक्षा की है।[२]

नाटिकाओ के विकास या ह्रास का निश्चय करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण तत्वो पर इन नाटिकाओ की समीक्षा अपेक्षित है—ये मुख्य तत्त्व है—नाट्यशास्त्रीय नियमो का पालन, युगीन चेतना व सामाजिक स्थिति का चित्रण, पूर्ववर्ती नाटिकाओ का प्रभाव एव उद्देश्य की पूर्ति।

---

१ सरस्वती सुषमा, पृष्ठ १३५

२ (कीथ) स ड्रामा, (गैरोला) स सा इति, (बलदेव) स सा इति.; (दासगुप्ता एवं डे) हि. स लिट.।

महाराजा हर्षवर्द्धन की नाटिकाओ मे इन सभी तत्त्वो का पूर्णत पालन है और नाटिका के मूल उद्देश्य रस चर्वणा तथा मनोरजन की परिपूर्ति भी है। सभी समालोचको, इतिहासकारो एव विद्वानो ने इसकी मुक्त कण्ठ से प्रशसा की है।

राजशेखर ने हर्ष के ही प्रभाव से प्रभावित होकर विद्धशालभजिका नाटिका और तदनुकूल कर्पूरमजरी सट्टक की रचना की। इसमे नाट्यशास्त्रीय नियमो का भूरिश पालन तो हुआ किन्तु उतना नही जितना कि रत्नावली मे। कथावस्तु मे हास्य के उद्देश्य से अनेक दृश्यो का यद्यपि आयोजन है किन्तु उनमे घटना सयोजन शिथिल है। रानी के द्वारा तीन बार अलीक विवाह की योजना सर्वथा शोचनीय है। अत यह नाटिका ह्रास की ओर है।

बिल्हणकृत कर्णसुन्दरी मे काव्य तत्त्व की अधिकता के कारण सर्वजनाह्लादक न होने से विद्धशालभजिका की अपेक्षा निम्नस्तरीय ही रही। ११वी शती मे यद्यपि कुर्णसुन्दरी, ग्रामेयी, क्षेमेन्द्रकृत ललित रत्नामाला नामक ३ नाटिकाओ का उल्लेख मिलता है, किन्तु केवल कर्णसुन्दरी ही उपलब्ध है। ग्रामेयी का सागर नन्दिन ने[१] और ललित रत्नामाला का दासगुप्ता[२] व स्वय क्षेमेन्द्र ने उल्लेख किया है ।

१२वी शती मे यद्यपि अनेक नाटिकाओं रामचन्द्रकृत वनमाला,[३] अज्ञात कवि की बासन्तिका[४], विश्वनाथ भट्ट की श्रृगारवापिका[५], भट्ट भवनुत चूड़ामणि की कौशलिका[६] तथा अज्ञात कवि की इन्दुलेखा[७], अनगवती[८] एव रुद्रचन्द्रदेव की उषारागोदया का विवरण प्राप्त होता है जिनमे केवल उषारागोदया ही उपलब्ध हैं।

उषारागोदया हर्ष की रत्नावली के आधार पर लिखी गई। इसमे शास्त्रीय नियमो का अधिक प्रयोग यद्यपि नही है किन्तु लालित्य, औचित्य एव रससृष्टि का उचित विन्यास है। अत नाट्यशास्त्रीय नियम के अभाव मे भी यह नाटिका राजशेखर व बिल्हण की नाटिकाओ की अपेक्षा अधिक सफल है। फलत यह ह्रासोन्मुखी न होकर विकासोन्मुखी ही है। अन्य नाटिकाओ मे कुछ के एक, दो पद्य ही उदाहरणरूप मे प्राप्त होते है। वासन्तिका व श्रृगारवापिका का कोई उदाहरण भी उपलब्ध नही है, दासगुप्ता महोदय ने टिप्पणी (फुटनोट) मे इनकी

---

१ ना. ल. र. को, पृष्ठ २६१
२ (दासगुप्ता व डे) हि स लिट., पृष्ठ ४७१
३ ना. द., पृष्ठ ३१९, (बलदेव) सं. सा इति., पृष्ठ ६१९
४ (दासगुप्ता, डे) हि. सं. लिट., पृष्ठ ४७३ (टिप्पणी)
५ वही, पृष्ठ १९४
६ ना. द., पृष्ठ ३०
७ वही, पृष्ठ १९४
८ वही, पृष्ठ २८०

सूचना दी है। १३वी शती मे कुल तीन नाटिकाओ की रचना हुई। मदनबाल सरस्वती की विजयश्री नाटिका के दो अक मध्यप्रदेश के धारा नगर मे उत्कीर्ण प्राप्त हुए है। इसमे घटनाओ मे पूर्ण स्वाभाविकता व औचित्य का निर्वाह हुआ है। पात्रो का विन्यास हर्ष के अनुकरण पर है, परन्तु घटनाओ की सघटना कवि की निजी उद्भावना है जिसका वर्णन किया जा चुका है। अत यह नाटिका भी विकासोन्मुखी ही है।

इसी शती के प्रसिद्ध विद्वान् हस्तिमल्ल ने कल्पित इतिवृत्त मे परिवर्तन किया और रत्नावली की अपेक्षा पौराणिक इतिवृत्त का उषारागोदया के समान समवलम्बन कर नाटिकाकार के रूप मे भी अपना पृथक् स्थान निर्धारित कर लिया। इनकी सुभद्रा नाटिका मे पात्रो के व्यक्तित्व भी प्रकार रूपी पात्रो के घेरे से बाहर निकले।

श्री कृष्णमाचारी जी ने जिस रामाक नाटिका का रचयिता धर्मगुप्त को बताया,[१] वह भी नाम से पौराणिक प्रतीत होती है किन्तु उपलब्ध न होने से एतद्विषय मे कुछ नही कहा जा सकता।

१४वी शती के विश्वनाथ कविराज की एक अनुपलब्ध नाटिका प्रभावती के अनेक पद्यो का प्रयोग साहित्यदर्पण ग्रन्थ मे हुआ है,[२] जिसके अनुसार यह भी पौराणिक इतिवृत्त प्रधान है। इस प्रकार १२, १३ और १४वी शती मे निरन्तर पौराणिक वृत्त पर नाटिकाओ की रचना की गई।

विश्वनाथ की दूसरी नाटिका नाट्यशास्त्रीय दृष्टि, युगीन चेतना व रस की दृष्टि से पूर्णत विकसित है। हर्ष के अनुकरण पर आधारित होने पर भी उसका अपना महत्त्व है।

विश्वनाथ ने अपने पिता चन्द्रशेखर की पुष्पमाला नाटिका के भी कुछ उदाहरण दिए है[३] जिनको लक्ष्य मानकर नाटिका की कोई विवेचना नही की जा सकती। श्री कृष्णमाचारी ने नारायण पण्डित की भी एक नाटिका का उल्लेख करते हुए चन्द्रकला नाम दिया है।[४]

१५वी शती मे मथुरादास ने अभी तक की सभी नाटिकाओ से भिन्न पौराणिक पुरुषो राधा व कृष्ण को आधार बनाकर सर्वथा कल्पित इतिवृत्तात्मिका नाटिका की रचना की। इसमे अनेक रूढ़ियो का पालन नही किया गया। जैसे देवी नायिका की स्थिति, अन्तःपुर का दृश्य, अन्त मे विवाह की योजना आदि।

१ **(एम. कृष्णमाचारी) हि क्लासि सं. लिट., पृष्ठ ७४८**

२ **सा. द., पृष्ठ ७२**

३ **सा द., पृष्ठ १७३**

४ **(कृष्णमाचारी) हि. क्लासि सं लिट., पृष्ठ ७४८**

इसे भी ह्रासात्मक नही कहा जा सकता। क्योकि इसने एक नई दिशा, व चिन्तन पद्धति को जन्म दिया है।

वामनभट्ट बाण ने इसी शती मे "कनकलेखा कल्याण" नामक नाटिका की रचना की थी ऐसा डा कपिलदेव द्विवेदी का मत है,[१] किन्तु नाटिका उपलब्ध न होने के कारण कुछ भी विवेचन नही किया जा सकता, किन्तु अबाध गति से नाटिका साहित्य का प्रणयन होता रहा, यह तथ्य प्रकाश मे आता है।

१७वी शती मे पुन नाटिका का जागरण हुआ। राजचूडामणि दीक्षित ने कमलिनी कलहस नाम से जिस नाटिका की रचना की उसमे न केवल नवीन कल्पना का अपितु शास्त्रीय नियमो व सघटना प्रयोगो के औचित्य का भी निर्वाह किया गया। रसास्वाद मे किसी भी प्रकार वह घट कर नही है। विश्वनाथ, व रुद्रदेव के समान उसकी भी अपनी पृथक् विशिष्टता है। दासगुप्ता महोदय ने इसी शती मे मेघ विजय कृत चन्द्रप्रभा नामक एक अन्य नाटिका का भी उल्लेख किया है।[२]

१८वी शती पुन नाटिकाओ की समृद्धि का काल माना जा सकता है जिसमे विधर्मी अग्रेजो का शासनकाल होते हुए भी प्रभूत सस्कृत नाटिका साहित्य का सृजन हुआ।

इस शती की तीनो नाटिकाएँ उपलब्ध है। वीरराघव की मलयजा कल्याणम इसी शती की रचना है जिसमे नायिका से नायक का प्रथम अनुराग मृगया मे दक्षिण भारत के जगलो मे होता है, विश्वनाथ शर्मा की मृगाक लेखा मे भी इसी प्रकार नायक कामरूप तनया को मृगया प्रसग मे देखकर आसक्त होता है।[३]

विश्वेश्वर पाण्डेय की नवमालिका मे इन दोनो से पृथक् रत्नावली के अनुकरण पर कथानक की सृष्टि की गई, किन्तु आकाश मार्ग से कन्याओ के नीचे गिरने की कथा सर्वथा मौलिक है।

मलयजा और नवमालिका की अपेक्षा विश्वनाथ शर्मा की मृगाकलेखा नाटिका अधिक ललित, मधुर और शास्त्रीय अनुकरण पर है। इसमे यद्यपि रत्नावली का प्रभाव प्रतीत होता है किन्तु भाषा व भाव की दृष्टि से तथा बीभत्स व भयानक रस के विन्यास[४] के कारण यह उससे सर्वथा भिन्न है।

वस्तुत रस, पात्र, अभिनय और कथावस्तु की सम्यक योजना की दृष्टि से यह नाटिका १८वी शती की ही नही अपितु सम्पूर्ण परवर्ती काल की श्रेष्ठतम रचना है। इसमे तत्कालीन सामाजिक व धार्मिक स्थिति का भी अच्छा चित्रण

---

१ (कपिल) स सा. समी. इति., पृष्ठ ४४५
२ (दासगुप्ता) हि. स लिट., पृष्ठ ३७५
३ मृगा. १/१४-१५
४ वही ३/१८-२०

है। विवाहादिको मे गली कूचे से लेकर भवनो तक की सजावट आदि के सफल चित्रो का प्रयोग है।[१] निश्चयेन यह नाटिका का उत्कर्ष है, ह्रास नही।

१९वी शती की उपलब्ध हस्तलिखित नाटिका गोपाल कृष्ण की चन्द्रप्रभा मे भी तत्कालीन सामाजिक प्रभाव विद्यमान है। नायक बाज पक्षी को पालता है। उसके द्वारा मृगया मे पक्षियो का शिकार करने मे सहायता प्राप्त कराता है। इतिवृत्त के पात्र पौराणिक होते हुए भी सर्वथा मौलिक है। ज्योतिष के अनेको तथ्यो को स्पष्ट किया गया है।[२]

प्रधान महिषी के द्वारा नायक के द्वितीय विवाह का औचित्य पुत्र प्राप्ति है। भारतीय सस्कृति मे यह व्यवस्था है कि यदि स्त्री बन्ध्या हो तो वह दूसरी स्त्री से विवाह करने की अनुमति पति को दे सकती है। फलत तत्कालीन परिस्थितियो के अनुकूल एव धार्मिक दृष्टि से भी सर्वथा उपयोगी होने के कारण इसे भी ह्रासोन्मुखी नही मान सकते।

डा हीरालाल ने १९वी शती के प्रसिद्ध गद्यकवि प अम्बिकादत्त व्यास की एक नाटिका 'ललिता' का उल्लेख किया है[३] किन्तु अन्य किसी ने भी इसका कोई विवरण नही दिया। डा कृष्णकुमार अग्रवाल ने 'पण्डित अम्बिकादत्त व्यास एक अध्ययन' नामक अपने शोध-प्रबन्ध मे भी इसका उल्लेख नही किया है।

कुछ इस प्रकार की भी नाटिकाऍ है जिनके लेखक का कोई पता नही। जैसे—इन्दुमती[४], चित्रलेखा[५], पद्मावती[६], गृहवृक्षवाटिका।[७] कृष्णमाचारी महोदय ने यही कृष्ण कविशेखर की कुवलयवती नाटिका का भी उल्लेख किया है।[८] इनके आकार प्रकार का परिचायक कोई उदाहरण उपलब्ध नही है।

इस प्रकार समग्र नाटिका साहित्य के पर्यवेक्षण से यह स्पष्ट हो गया कि सस्कृत नाटिकाओ का विकास 20वी शती तक भी होता रहा है। मध्य की कुछ नाटिकाऍ निश्चय ही ह्रासोन्मुखी है किन्तु उषारागोदया, चन्द्रकला, वृषभानुजा, कमलिनी कलहस, मृगाकलेखा, नवमालिका और चन्द्रप्रभा नाटिकाऍ सर्वथा विकासोन्मुखी है व भविष्य मे नाट्यकारो का मार्ग प्रशस्त करती रहेगी। अत केवल नाट्यशास्त्रीय नियमो के अनुकरण की दृष्टि से ही परवर्ती नाटिकाओ को ह्रासात्मक मानकर नाटिका साहित्य के ह्रास की कल्पना सर्वथा निराधार है।

---

१ मृगा ४/५-६

२ भवेद्वाम करे यस्या ऊर्ध्वरेखा स लाच्छना
सपत्नादर्शनादेव सन्तान लभतेऽङ्गना॥ —चन्द्रप्रभा, अक २.

३ (हीरालाल) आ. स सा., पृष्ठ १२३

४ हि. क्लासि स. लिट., पृष्ठ 748

५ वही , पृष्ठ 748

६ वही , पृष्ठ 748

७ सा द., पृष्ठ 209

८ हि क्लासि स लिट., पृष्ठ 748

उपसंहार

सस्कृत दृश्य काव्य का विभाजन रूपक और उपरूपक दो वर्गो मे किया गया है किन्तु दोनो मे तात्विक भेद किसी भी शास्त्रकार ने स्पष्ट नही किया। स्वत विचार करने पर ज्ञात होता है कि रूपक मे लोकस्वभाव की सुख दु खात्मक अवस्थाओ की पूर्ण अनुकृति होती है।[1] उसमे घटनाओ और वस्तुविन्यास के साथ-साथ रूप के आरोप पर भी अधिक ध्यान दिया जाता है,[2] जिससे मनोरजन के माध्यम से आदर्श की स्थापना हो सके। उपरूपक मे मनोरजन मात्र की दृष्टि से क्षणिक आस्वाद उत्पन्न करने के प्रयत्न मे कवि नृत्य, गीत का बाहुल्येन प्रयोग करता है, तथा आहार्य अभिनय को प्राधान्य देता है।

शास्त्रकारो ने नाटिका की गणना उपरूपको के अन्तर्गत की है।[3] प्रथम अध्याय मे नाटिकाओ की विशेषता का प्रतिपादन करते समय नाटिका के स्वरूप, सरचना, और सघटनाशिल्प पर प्रकाश डाला जा चुका है। वही इस तथ्य का भी सकेत किया गया है कि नाटिका दशरूपक भेदो मे से कई एक से अपेक्षाकृत अधिक श्रेष्ठ होने के कारण रूपक श्रेणी का ही नाट्य है क्योकि उसमे नृत्य, गीत की अपेक्षा घटना शिल्प और रस सृष्टि पर विशेष ध्यान दिया गया, फलत· इसकी गणना नाटक एव प्रकरण के बाद ही तृतीय रूपक भेद के रूप मे करनी चाहिए। भाण, व्यायोग, समवकार आदि दशरूपको के अन्तर्गत परिगणित नाट्यभेद स्वल्प सविधानात्मक एव क्षणिक आस्वाद्य होने के कारण निश्चयेन नाटिका से हीन है।

आचार्य भरत ने उपरूपको का कोई उल्लेख नही किया और न उपरूपक जैसी नाट्यविधा की स्थापना ही की है उन्होने नाटी नाम से जिस सकीर्ण रूपक

---

१ योऽय स्वभावो लोकस्य सुख दुःख समन्वितः।
सोऽ ङ्गाद्यभिनयोपेतं नाट्यमित्यभिधीयते ॥ —ना. शा. १/११९.

२ "रूप दृश्यतयोच्यते। रूपक तत्समारोपात्" —दश. १/७

३ सा. द. 6/4

की सूचना दी है[१] उसे नाटक प्रकरण के पश्चात् तृतीय रूपक के रूप मे स्थापित किया जा सकता है यह स्पष्ट किया जा चुका है।

भरतमुनि से लेकर विश्वनाथ तक सभी शास्त्रकारो ने नाटिका का लक्षण करते हुए उसमे निम्नलिखित तत्वो को स्वीकार किया है—

"नाटिका का इतिवृत्त प्रकरणनुसारी कवि कल्पित, नायक, नाटकवत् प्रख्यात किन्तु धीरर्ललित होता है। दो नायिकाएँ, जिनमे प्रधान नायिका नवानुरागा, मुग्धा, युवा, रूपवती कन्या एव द्वितीय सहनायिका राजा की विवाहिता पत्नी ईर्ष्यालु, मानिनी एव महारानी पदासीन होती है जिसके आधीन रहकर नायक डरता हुआ कन्या नायिका से अनुराग करता है। कैशिकी वृत्ति के चारो अगो की परिपूर्णता के लिए अगी रस श्रृगार एव स्त्री पात्रो का बहुल विन्यास होता है। चार अको की सुस्थिति मे इतिवृत्त सम्बन्धी समस्त नियमोपनियमो का परिपालन किया जाता है।"[२]

इन लक्षणो के परिप्रेक्ष्य मे नाटिका साहित्य की मीमासा करने पर ऐसा कोई तत्त्व प्रकाश मे नही आया जिसके आधार पर नाटिका को रूपक श्रेणी से हटा कर उपरूपको की श्रेणी मे ले जाया जा सके। सकीर्ण रूपक नाम देने मात्र से उपरूपको मे गणना का कोई औचित्य नही है।

नाट्य शास्त्रीय दृष्टि से नाटिकाओ का महत्वपूर्ण योगदान है क्योकि उनमे इतिवृत्त सम्बन्धी उन समस्त नियमो का लगभग पालन है जो किसी भी नाट्य के लिए सामान्यत निर्धारित किए गये है। कथानक की स्वल्पता के कारण यद्यपि पताका और प्रकरी अर्थ प्रकृतियाँ नाटिका मे नही होती किन्तु उनसे किसी प्रकार कथावस्तु मे शिथिलता प्रतीत नही होती। कार्यावस्थाओ का सम्यक् प्रयोग तो नितरामभीप्सित होता है क्योकि वे ही तो नायक आदि के व्यापार है जिनसे वह अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचता है। घटनाओ की सुश्लिष्टता के लिए कथावस्तु मे पॉच सन्धियो की सस्थिति आवश्यक मानी गई है किन्तु साहित्य दर्पणकार ने "स्वल्प विमर्श·"[३] लिखकर नाटिका मे विमर्श सन्धि की स्वल्पता का कथन किया है।

नाट्य शास्त्रीय समीक्षा प्रकरण मे इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डालते हुए यह स्पष्ट कर दिया गया है कि नाटिकाओ मे विमर्श करने की स्थिति आती है, अत उनमे इस सन्धि का सर्वथा अभाव तो स्वीकार नही कर सकते हा किन्ही अशो मे किसी-किसी नाटिका मे इसकी स्वल्पता स्वीकार की जा सकती है।

---

१ **अनयोश्च बन्धयोगादेको भेद. प्रयोक्तृभिर्ज्ञेयः।**
प्रख्यातस्त्वितरो वा नाटी सज्ञाश्रिते काव्ये।। —ना. शा १८/१०९.

२ **ना. शा ; दश. ३/४३-४८; सा. द ६/२६९-७२**

३ **सा द. ६/२६९-२९२**

सन्ध्यगो, सन्ध्यन्तरो एव नाट्य-लक्षणो आदि के विषय मे नाटिकाएँ पर्याप्त पूर्ण है। अनेकश यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि एक ही नाट्यकृति मे इन समस्त लक्षणो का विन्यास नही किया जा सकता। फिर भी इनमे अपेक्षाकृत अधिकाधिक लक्षणो का प्रयोग अनेक आलोचको को उगली उठाने का अवसर प्रदान करता है।

अभिनय चार प्रकार का होता है—आगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक। नाटिकाओ मे इनके लिए यथास्थान रगनिर्देश किए गए है। इसी प्रकार के अभिनयो के लिए नाटिकाओ मे उचित अवसर प्राप्त होता है। अभिनय किसी भी नाट्य का प्राण है। शास्त्रकारो ने प्रत्येक अभिनय विधि के अनेकानेक भेदोपभेद किए है। नन्दिकेश्वर का अभिनय दर्पण मात्र अभिनयभेद प्रदर्शक ग्रन्थ है किन्तु इन सभी का सम्यक् प्रयोग रसौचित्य और इतिवृत्त की अनुकूलता को ध्यान मे रखकर ही किया जाता है। सभी विधियो का एक ही नाट्य कृति मे प्रयोग कर पाना असभव है। अभिनय तत्व मुख्यत अभिनेता की कुशलता पर निर्भर करता है वह उत्तम नाट्य का अशोभनीय अभिनय कर दर्शको के मन मे विरसता का अनुभव करा सकता है, वही सामान्य नाट्य को कुशल, उत्तम अभिनय के द्वारा भरपूर रसास्वाद भी करा सकता है, अत अभिनय मूलत अभिनेता पर आश्रित है।

नाटिकाओ मे नाटकादि के समान ही कवियो ने रगनिर्देशो का भूयसा प्रयोग किया है। जिससे अभिनेता को भावानुकूल आगिक, वाचिक, आहार्य या सात्विक अभिनय की सम्यक् प्रेरणा प्राप्त होती है।

अभिनय और रगमच का अभिन्न सम्बन्ध है, रगमच के सम्बन्ध मे भी भरतादि ने विस्तृत विवेचन कर आयताकार, वर्गाकार और त्रिकोणात्मक तीन प्रकार की नाट्यशालाओ की रचना, व्यवस्था और अलकरण का पूर्ण निर्देश किया है।[१]

सस्कृत नाटिकाओ का इतिवृत्त राजमहल और राजोद्यान की परिधि मे ही सीमित रहने के कारण उसमे स्थान की अन्विति (Unity of Place) भी रहती है, जिसके कारण दृश्यो के परिवर्तन मे क्लिष्टता नही होती। आहार्य अभिनय के लिए भरत ने विविध चर्म, छाल एव लकड़ी की वस्तुओ के प्रयोग का निर्देश किया है। तदनुसार पशु, पक्षियो एव वनस्पतियो की आयोजना मे भी किसी प्रकार का व्याघात नही होता।

नाटिका की कल्पित इतिवृत्त सम्बन्धी रूढ़ि पर जब विचार करते है तो ज्ञात होता है कि विद्धशालभजिका, कमलिनी कलहस और मृगाक लेखा आदि कतिपय नाटिकाएँ ही इस रूढि का अनुसरण करती है शेष का इतिवृत्त या तो पौराणिक है या ऐतिहासिक सस्पर्श करता हुआ है। रत्नावली प्रियदर्शिका मे भी प्रसिद्ध वत्सराज उदयन की कथा है जिसका पहले ही कथासरित्सागर, वासवदत्तम

१ ना शा., द्वितीय अध्याय।

आदि मे प्रयोग हो चुका है अत इसे पूर्ण काल्पनिक नही कहा जा सकता। वीरराघवकृत मलयजा कल्याणम् नाटिका का इतिवृत्त तेलगाना की लोककथा का सस्पर्श करता हुआ है किन्तु वह कविकल्पित है।

इतिवृत्त सम्बन्धी रूढ़ि मे किए गए इस परिवर्तन से यह तथ्य प्रस्फुटित होता है कि नाटिकाकारो की प्रवृत्ति अधिकाधिक नाटिका को नाटक श्रेणी मे ले जाने की ओर है। घटनाओ की योजना मे कवियो ने पूर्णत स्वतन्त्र कल्पना का आधार लिया है किन्तु परवर्ती नाटिकाओ मे वे भी परम्परा प्रथित रूप मे सघटित की जाने लगी, फिर भी सस्कृत नाटिकाओ मे नाट्य शास्त्रीय उन समस्त नियमोपनियमो का बाहुल्येन पालन किया गया है जो इतिवृत्त के सम्बन्ध मे शास्त्रकारो ने श्रेष्ठ रूपक के लिए सन्धि, सन्ध्यग आदि के रूप मे निर्धारित किए थे। इन नियमो के पालन से इतिवृत्त मे घटनाओ और सम्वादो मे रूढिमूलकता तो प्रतीत हुई किन्तु उससे सघटना मे शैथिल्याभाव और कथानक मे श्लिष्टता भी आई। उनमे स्वाभाविकता तथा औचित्य का विधात नही हुआ, लोकात्मक तत्त्व और व्यावहारिक मान्यताओ मे कोई उपेक्षा नही की गई। उनमे राजवर्ग के अमर्यादित जीवन का यथार्थ चित्रण किया गया। उनकी विलासी प्रवृत्तियो को मनोरजन के माध्यम से जनसामान्य के समक्ष प्रस्तुत किया गया।

इस प्रकार श्रृगारबहुल कथात्मक सस्कृत नाटिकाओ की सरचना, सामाजिक स्थिति और लोकाचार की दृष्टि से अपना विशिष्ट महत्व रखती है, तथा श्रेय एव प्रेय होकर भरत के इस उद्देश्य की सर्वथा पूर्ति करती है कि—

दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्
विश्रान्तिजनन लोके नाट्यमेतन्मया कृतम्॥[१]

सस्कृत नाटिकाओ की रचना का आरम्भ कब हुआ यह निश्चय नही किया जा सकता किन्तु आचार्य भरत के द्वारा नाटी नाम से उसकी परिभाषा करने के कारण नाटिका की रचना भरत से भी पूर्व होने लगी थी यह स्वत सिद्ध हो जाता है क्योकि लक्ष्य देखकर ही लक्षण की स्थापना की जाती है।

धनजय, शारदातनय, रामचन्द्र गुणचन्द्र, सागरनन्दी, अभिनवगुप्त और विश्वनाथ आदि सभी प्रमुख साहित्यशास्त्रियो ने नाटिका का लक्षण किया है किन्तु नाटिका नाम से इसकी परिभाषा सर्वप्रथम धनजय ने की। यद्यपि नाटिका का सर्वप्रथम उपलब्ध रूप हर्षवर्धन की रत्नावली और प्रियदर्शिका नाटिकाएँ है जिनकी रचना 7वी शती मे ही हो चुकी थी।

दशरूपककार आदि के समक्ष नाटिका का लक्षण लिखने एव नाट्यशास्त्रीय नियमो के उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए हर्ष की नाटिकाएँ उपलब्ध ही थी। अत रत्नावली के सम्बन्ध में यह आक्षेप उचित नही कि रत्नावली लक्षणानुसरणार्थ

---

१ ना. शा. १/११८

लिखी गई। वास्तविकता तो यह है कि रत्नावली को देखकर ही घनजय आदि ने लक्षणो का निर्धारण किया।

हर्ष के समय अर्थात् ७वी शती से २०वी शती तक नाटिकाओ की अविच्छिन्न परम्परा विद्यमान है किन्तु इतिहासकारो ने मुख्यत केवल हर्ष का तथा सकेतरूप मे राजशेखर, बिल्हण, मदनबाल सरस्वती और मथुरादास का उल्लेख किया है, जबकि नाटिकाकारो की एक दीर्घ परम्परा प्रकाश मे है। नाटिकाओ की सख्या उससे भी अधिक।[१] फिर इतिहासकारो की इस उपेक्षा का कारण क्या था ? यह यद्यपि स्पष्ट नही है किन्तु अनुमानत परम्परात्मक घटनाचक्र और एक रूपता के कारण ही इतिहासकारो ने नाटिका को रूपक की अपेक्षा हीन मानकर नाटिका व नाटिकाकारो की उपेक्षा की होगी। अनेक समालोचको के नाटिका साहित्य पर इसी प्रकार के आक्षेप है।[२]

कवि अपने समय की परिस्थितियो, सामाजिक मान्यताओ और परम्पराओ से अछूता नही रह सकता वह अपनी कृति को केवल पुस्तकालयो मे रखने के लिए नही रचता अपितु जनसाधारण तक अपनी प्रतिभा का प्रकाश पहुँचाने, द्रव्यार्जन करने, शिक्षा देने या सद्य रसानुभूति कराने के निमित्त से ही उनकी सृष्टि करता है।[३]

समालोचको और इतिहासकारो द्वारा उपेक्षित इन नाटिकाकारो ने भी इनमे से किसी न किसी प्रयोजन की पूर्णता के लिए ही नाटिकाओ की रचना की होगी अत इन नाटिकाओ को सर्वथा अहृद्य या निरुद्देश्य नही माना जा सकता और इस दृष्टि से उनकी उपेक्षा भी नही की जा सकती। फलत यहाँ उन उपेक्षित कवियो का जीवन, कृतित्व एव नाट्य सौन्दर्य आदि का परिचय देना आवश्यक समझा गया।

सस्कृत नाटको मे पात्रो को अधिकाधिक आदर्शवादी प्रस्तुत करने की परम्परा भास, कालिदास आदि ने आरम्भ की थी। एतदर्थ उन्होने बाल्मीकि व्यास आदि के काव्यो का आधार लिया, जिससे नाटक का नायक धीरोदात्त प्रकृतिक दिव्य, अदिव्य या दिव्यादिव्य रूप मे वर्णित किया गया। नाटिकाओ मे इस रूढि का अन्धानुसरण नही किया गया। नायक की प्रख्यातात्मिका रूढ़ि का पालन करते हुए भी उसके ललित रूप की स्थापना की गई जिसके कारण नाटिका का नायक दिव्य या दिव्यादिव्य की आदर्शवादी भूमिका से बाहर अदिव्य

---

१ परिशिष्ट—नाटिका सूची।

२ (आध रगाचार्य) ड्रामा इन स. लि., पृष्ठ १६३, (दासगुप्त) हि. सं. लिट., पृष्ठ ४६७-६८, (प द्विजेन्द्रनाथ मिश्र) सरस्वती सुषमा, पृष्ठ १३५-१४०।

३ काव्य यश सेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये
सद्य. परनिर्वृतये कान्तसम्मिततयोपदेशयुजे ।।

—का. प्र 1/2

प्रकृतिक अर्थात् मानवमात्र रह गया। वह पूर्ण भौतिक हो गया और यथार्थ मे मानवीय प्रकृति का प्रतिनिधि बन गया। नायक की प्रकृति मे परिवर्तन से यद्यपि उसके उदात्त स्वरूप का ह्रास परिलक्षित होता है किन्तु मानवीय दुर्बलता, स्वाभाविकता और औचित्य के प्रदर्शन मे अधिक मनोवैज्ञानिक होने के कारण उसे ह्रास नही विकास कहना ही अधिक उचित है। क्योकि वह यथार्थ की दृढ भित्ति पर आधृत है। कल्पना की डगमग नौका पर नही।

सस्कृत नाटिकाओ मे रसराज श्रृगार को अगीरस बनाकर उसके सम्भोग व विप्रलम्भ दोनो अगो की मधुर सृष्टि की गई है साथ मे हास्य के सम्यक परिपाक से नाटिकाओ को पूर्णत आनन्दयमय बनाकर लोकानुरजन रूप उद्देश्य को सिद्ध किया गया। ललित भाषा मे निबद्ध होने के कारण नाटिका का कलेवर आद्योपान्त रसवृष्टिकारक ही रहा। केवल चार अको मे ही इतिवृत्त की पूर्णता के फलस्वरूप दर्शक को अल्प समय मे पूर्ण रसास्वद और सम्यक् आनन्द की अनुभूति का अवसर भी प्राप्त होता है।

नाटिकाओ मे प्रकृति का प्राय· कोमलरूप चित्रित है जिसमे बसन्त, मलयानिल, उद्यान, सन्ध्या, सूर्योदय, आदि के वर्णन नायक नायिका के हृद्गत भावो के उद्दीपन होने से इतिवृत्त मे नितान्त स्वाभाविकता की सृष्टि करते है। अवसरानुकूल मध्याह्न, ग्रीष्म आदि के चित्रण मे कठोर भावो का उपन्यास "जले पर नमक छिडकने" के समान विप्रलम्भ की उत्कट असह्य स्थिति का प्रकाश करने से अत्यन्त हृदयग्राही है। दैनन्दिन आमोद प्रमोद की क्रीड़ाओ के साथ कौमुदी महोत्सव, मदनपूजा, वसन्तोत्सव आदि के आयोजनो मे राजकीय सरक्षण और जनसामान्य की समृद्धि का परिचय प्राप्त होता है। वस्त्राभूषणो की साजसज्जा से उनकी समुन्नत नागरिकता पर भी प्रकाश पडता है।

राजमहलो की सीमित परिधि और अन्तरग के अभ्यासी स्त्री-पुरुष प्रकृति के उपादान पशु-पक्षियो से प्रेम करते चित्रित किए गए हैं। फलत· ये नाटिकाएँ युगीन चेतना व आदर्श के अनुकूल लोगो को भले ही न लगे पर जन सामान्य की स्वाभाविक, प्रणयी व ललित अनुभूतियों और राजकीय अन्तपुर की श्रृगारमयी लीलाओ के सत्य चित्रण मे महत्वपूर्ण योगदान कर सकी हैं।

इस पुस्तक मे उपरिनिर्दिष्ट समस्त तथ्यो का समालोचनात्मक अध्ययन कर आक्षेपो की मीमासा की गई लै और सस्कृत साहित्य की नाटिका विधा के जिज्ञासुओ के समक्ष चली आ रली सकुचित धारणाओ का निराकरण कर तथ्य को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया गया है। सस्कृत साहित्य के इतिहास सम्बन्धी विविध ग्रन्थो के आधार पर नाटिकाकारो के काल एव कृतित्व की ऐतिहासिक स्थिति का भी निर्धारण किया गया है।

कान्ता सम्मित उपदेशवद् अवगुण प्रदर्शनात्मक पद्धति से गुणात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न करने के निमित्त ललित पद्धति से समाज को सचेत किया जाय कि वे राजकीय विलासिता के इस घिनौने आचरण से दूर रहें, यही नाटिकाकारो का

मूल उद्देश्य रहा है, यह मानकर इन्हे विधिकाव्य की ही सज्ञा देना चाहिए निषेध काव्य नही, यह स्पष्ट करना एव नाटक प्रकरण के अत्यन्त समीप होने के कारण दशरूपको मे तृतीय रूपक के रूप मे नाटिका की गणना करना आदि सिद्धान्त पुस्तक के मुख्य प्रतिपाद्य है।

अन्तत —

सरस्वती स्वादु तदर्थवस्तु निःष्यन्दमाना महतां कवीनाम्
अलोक सामान्यमभिव्यनक्ति परिस्फुरन्त प्रतिभाविशेषम्।।[१]

के प्रति श्रद्धस्थ रहते हुए विश्वास है कि विज्ञविद्वज्जन प्राचीन और नवीन की मान्यताओ और परिस्थितियो के सम्यक् विश्लेषण मे स्वत समर्थ है। लेखक की दृष्टि तो कालिदास के इस उपदेश को ही आधार बनाकर विवेचना मे प्रवृत्त हुई है कि—

पुराणमित्येव न साधुसर्व न चापि काव्य नवमित्यवद्यम्
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः पर प्रत्ययनेय बुद्धिः।।

इति शम्

---

१ 1. ध्वन्यालौक, पृष्ठ 33

परिशिष्ट १-सूक्तिवाक्य

१	अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रोषधीना प्रभाव ।	रत्ना , पृष्ठ ५६
२	अति दुर्जन खलु लोक ।	प्रिय , पृष्ठ ८८
३	अनतिक्रमणीय गुरोर्वचनम्।	मृगा , पृष्ठ ४
४	अनुगुण हि दैव सर्वस्मै स्वस्ति करोति।	विद्ध , पृष्ठ ११५
५	आकृतिमनुगृह्णन्ति गुणा ।	विद्ध , पृष्ठ २५
६	आत्मा किल दु खमालिख्यते।	रत्ना , पृष्ठ ८४
७	आनीय झटितिघटयतिविधिरभिमतमभिमुखीभूत ।	रत्ना , पृष्ठ ८
८	आरम्भ रमणीयानि कल्याणानि भवन्ति।	विद्ध , पृष्ठ १०९
९	ईदृशमत्यन्तमाननीयेष्वपि निरनुरोध वृत्ति स्वामिभक्तिवृत्तम्।	रत्ना , पृष्ठ १६८
१०	कथमिवसहकारयष्ट्या कलकण्ठी कुण्ठितप्रणया भवति।	विद्ध , पृष्ठ ३४
११	कथमिव जीवत कृकलासाच्छिरः सुवर्ण प्राप्यते।	विद्ध., पृष्ठ ३४
१२	कमलिनी बद्धानुरागोऽपि मधुकरो मालती प्रेक्ष्याभिनवरसास्वादलम्पट कुतस्तामनासाद्य स्थिति करोति।	प्रिय , पृष्ठ ४०
१३	कष्टोऽय खलु भृत्यभाव ।	रत्ना , पृष्ठ १३
१४	कातर्य हिनाम स्वाभाविकोधर्म स्त्रीणाम्।	चन्द्र , पृष्ठ ३०
१५	कि गते सलिले सेतुबन्धेन ? कि वा वृत्ते विवाहे नक्षत्र परीक्षया।	विद्ध , पृष्ठ ११५
१६	कि चन्द्रिका क्वचिदशीतरुचि. प्रसूते।	विद्ध , पृष्ठ ४३
१७	कि दु·सह विरहपावकतोऽपि वा स्यात्।	कर्ण , पृष्ठ ३२
१८	कि न चरन्ति नार्य· ।	उषा , पृष्ठ ४३
१९	किं पुनः साहसिकाना पुरुषाणा न सम्भाव्यते।	रत्ना , पृष्ठ ११०
२०	किमिव मर्कटो वरिष्ठाना करणीय पृच्छति।	विद्ध , पृष्ठ ७५
२१	गुणैकपक्षपातिनां रिपोरपि गुणा· प्रीतिं जनयन्ति।	प्रिय , पृष्ठ १२
२२	घुणाक्षरमपि कदापि सभवत्येव।	रत्ना , पृष्ठ ८४
२३.	चिरादधिगतं वस्तु रम्यमप्यवधारयत्। पुरः प्रतिनवं वीक्ष्य मनस्तदनुधावति॥	चन्द्र , पृष्ठ ४
२४	तपति प्रावृषि नितरामभ्यर्णजलागमो दिवस।	रत्ना , पृष्ठ १०८

२५ दु ख याति मनोरथेषु तनुता सचिन्त्य मानेष्वपि। प्रिय , पृष्ठ ५३

२६ दुरवगाहा गतिर्देवस्य। रत्ना , पृष्ठ १५६

२७ दुर्भेद्या प्रेम दुर्दोली। विद्ध , पृष्ठ ८१

२८ न कमलाकर वर्जयित्वा राजहस्यन्यत्राभिरमते। रत्ना , पृष्ठ ४६

२९ न खलु कुसुमित सहकार वर्जयित्वा चन्द्रिकाया अन्यत प्रसार । चन्द्र , पृष्ठ ३४

३० न खलु सखीजने युक्त एव कोपानुबन्ध । रत्ना , पृष्ठ ८०

३१ न खलु सोपान पक्तिमन्तरेण बलभीसमारोह । विद्ध , पृष्ठ ५९

३२ न खलु व्यापारमन्तरेण करकलितापि शुक्तिर्विमुचतिमौक्तिकानि। विद्ध पृष्ठ ३०

३३ न खलु मृगलाछनमुज्झित्वाऽन्येन शशिकान्त पुत्रिका
बद्धनिर्झरा प्रहष्यति। विद्ध , पृष्ठ ५१

३४ न च तरुणपर्णग्रन्थि लुब्धो गन्धहरिणो मदन केदारिकायामभिरमते। विद्ध , पृष्ठ ६७

३५ नटे दृष्टे मुण्डितते उपविष्ट पतिर्मुण्डित । विद्ध , पृष्ठ १३

३६ न प्रेम नव्य सहतेऽन्तरायम्। विद्ध , पृष्ठ ६६

३७ न विना चन्द्र शेफालिकाया विकसन्ति कुसुमानि। विद्ध , पृष्ठ ५२

३८ न श्रद्दधे चन्द्रमसोऽग्निपात । उषा , पृष्ठ ४३

३९ न हि स्नेहो युक्तायुक्तमनुरुणद्धि। विद्ध , पृष्ठ ३४

४० नात्मन. श्रीरन्य हस्ते सक्रामयितव्याभवति। विद्ध , पृष्ठ ९४

४१ नि शेष यान्तु शान्ति पिशुनजनगिरोदुर्जया बज्रलेपा.। रत्ना., पृष्ठ १७४

४२ नोदेति कैरवानन्ददायिनी चन्द्रिका रवे.। मृगा., पृष्ठ ५१

४३ पाणिग्रहात्प्रभृति तु प्रमदा जनस्य नीवी निवेश विद्ध , पृष्ठ २४
सुभग परिधानमार्ग ।

४४ पुराणपत्रमविदार्य न पल्लव समुल्लसति। विद्ध , पृष्ठ ६७

४५ प्रकृष्टस्यप्रेम्ण स्खलितमविषह्य हि भवति। रत्ना , पृष्ठ ११६

४६ प्रभूणा नावमन्तव्य क्ष्वेडादेशोऽपि सेवकैः।
विशेषतो निर्युक्तैश्च श्रियमिच्छद्भिरुत्तमाम्॥ उषा , पृष्ठ ११

४७ प्रसन्नेन्दो न कालुष्य भजते जातु शर्वरी। उषा , पृष्ठ २६

४८ प्रायशः स्त्रीणामाग्रहो नाम दुरपनोदः। चन्द्र., पृष्ठ २७

४० प्रायो यत्किचिदपि प्राप्नोत्युत्कर्षमाश्रयान्महत ।

	मत्तेभकुम्भतटगतमेति हि शृङ्गारता भस्म॥	प्रिय , पृष्ठ ४६
५०	प्रेम्णो हि कुटिला गति ।	पारि , पृष्ठ १२
५१	बिना मृगाकलेखा कुतो ज्योत्स्नाया विसर	वर्ण०, पृष्ठ १६
५२	भयमपि रमणीना प्रायशो भूषणाय	वृष०, पृष्ठ ३४
५३	भारोद्वहक्षमतरागुण सयुतापि। नौ पारमेति न बिना खलु कर्णधारै ॥	चन्द्रप्रभा०, पृष्ठ ९
५४	मनश्चल प्रकृत्यैव।	रत्ना० , पृष्ठ ९२
५५	मलिनहृदय भाजामेष नून स्वभाव ।	मृगा०, पृष्ठ० ३२
५६	महाकुल प्रसूति बिना कथ भवेत्येतादृश सौन्दर्यम्।	कम०, पृष्ठ ८२
५७	मालती मधुरास्तीति मधुप केन शिक्ष्यते	वृष०, पृष्ठ ४
५८	मूढाना वितथ प्रयास परता।	चन्द्र० पृष्ठ ५०
५९	यदरिष्टमधिरूढा कारवल्ली वल्लरी किमुच्यतेकटुकत्व प्रति।	विद्ध०, पृष्ठ १००
६०	यदि चन्द्रमणिर्हुतवह निन्दिष्यते कोऽत्र प्रतीकार ।	विद्ध०, पृष्ठ ८०
६१	यद्भर्तु प्रियम् तत् कुलबधूना प्रियम्।	कम०कल० पृ० ७१
६२	रमयतितरा सकेतस्था तथापि हि कामिनी	रत्ना० पृष्ठ १०४
६३	लघूभवत सुहृत्सचारितरहस्य हि चेत सविभक्ताचिन्ताभारमिव भविष्यति।	विद्ध० पृष्ठ ९
६४	लेखमुखा एव लेखवाहा भवन्ति।	विद्ध०, पृष्ठ ११९
६५	वर तत्कालोपनतस्तित्तिर न पुनर्दिवसान्तरितोमयूर	विद्ध० पृष्ठ १४
६६	वामे विधौ नहि फलन्त्यभिवांछितानि	प्रिय०, पृष्ठ ९०
६७	विधत्ते नि.सेक सहजरमणीयस्तरुणिमा।	कर्ण०, पृष्ठ ७
६८	विधत्ते सोल्लेख कतरदिह नॉग तरुणिमा।	विद्ध०, पृष्ठ २९
६९	विनय सत्यपि क्रोधे सत्यपि प्रेम्णि धीरता। चरित सर्वथा धन्यं मन्ये कुलनतभ्रुवाम्॥	उषा० पृष्ठ ४८
७०	शुद्धा हि बुद्धि किल कामधेनु ।	विद्ध० पृष्ठ ४
७१	शुद्धेऽन्तरात्मनि पुन कियती तीर्थादिना शुद्धि ।	उषा० पृष्ठ ४५
७२	श्यालभार्या अर्द्धभार्येति भणिता।	विद्ध०, पृष्ठ १०४

७३. श्रुतमन्त्र संरक्षणं खलु कार्म सिद्धे कारणम्।	विद्ध० पृष्ठ ३४
७४. श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवन्ति	कम० कल० पृ० ७२
७५. सततविहित सक्तिः सत्फलायां द्विरेफः।	
कलयति कलिकां किं कर्णिकारद्रुमस्य।।	कम० कल०, पृष्ठ ५९
७६. सदृशाः सदृशे रज्यन्ते।	प्रियः०, पृष्ठ ५१
७७. सन्निहितेऽपि दुरापे वस्तुनि मनसोऽनवाप्त विषयस्य।	
भवति न संशयनाशो बहुशोऽप्याश्वास्यमानस्य।।	वृष०,पृष्ठ २२
७८. स्त्रीणां म्लायति शैशवे प्रतिकलं काऽप्येष केलिक्रमः।	विद्ध०, पृष्ठ ४४
७९. स्थातुं सुशक्यमनलेपतितुंकृपाण धारासु वा न तु जनं	
दयितं विमोक्तुम्।	कर्ण०, पृष्ठ २४
८०. स्वारस्यतः पद निबन्धन बन्धुराणि।	
काव्यानि भव्यधिय एव विभावयन्ति।	नवमालिका, पृ० ३/९
८१. हंस एव जलेभ्यो दुग्धमुद्धरति।	विद्ध०, पृष्ठ ६६

परिशिष्ट–२

संस्कृत नाटिका सूची

उपलब्ध नाटिकाएँ

नाटिका नाम	रचयिता	सम्पादक-प्रकाशन
१ रत्नावली	हर्षवर्धन	शिवराजशास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ
२ प्रियदर्शिका	हर्षवर्धन	आर० वी० कृष्णमाचरियार, श्री वाणी विलास सं० सी०–३ श्री रगम् १९२७
३ विद्धशालभजिका	राजशेखर	विद्याभवन ग्रन्थमाला सं० १२५ चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी १९६५
४ कर्णसुन्दरी	बिल्हण	काव्यमाला सीरिज–७ सस्कृत निर्णय सागर प्रेस बम्बई
५ उषारागोदय	रुद्रचन्द्रदेव	सम्पा० बाबूलाल शुक्ल भाषा तथा शोध सस्थान, जबलपुर।
६ पारिजातमजरी (विजय श्री)	मदनलाल सरस्वती	ई० हुल्टज, प्रथम, सस्करण धारा (म० प्र०) मे अक० शिलालिखित विद्यमान है।
७ सुभद्रा	हस्तिमल्ल	मानिकचन्द्र जैन दिगम्बर ग्रन्थमाला।
८ चन्द्रकला	विश्वनाथ	चौखम्बा सस्कृत सीरिज० वाराणसी।

९ वृषभानुजा	मथुरादास	काव्यमाला सी० ४६ निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।
१० कमलिनीकलहस	राजचूडामणिदिक्षित	वाणी विलास प्रेस। श्रीरगम् १९१७।
११ मलयजा	कत्याण वीरराग	सौ जाम्बवतीदेवी शुक्ला नैपियर टाउन, जबलपुर।
१२ मृगाङ्करेखा	विश्वनाथ शर्मा	प० नारायण शास्त्री खिस्ते सरस्वती भवन पुस्तकालय। बनारस, १९२९।
१३ नवमल्लिका	विश्वेश्वर पाण्डेय	सम्पा० रुद्रदेव त्रिपाठी मालव मयूर नन्दसौर सम्वत् २०२० अक १,२ व ३ मे प्रकाशित।
१४ चन्द्रप्रभा	गोपालकृष्ण	हस्तलिकित ग्रथ स० सरस्वती भवन पुस्तकालय बनारस।
अनुपलब्ध ग्रन्थ		उल्लेख स्थल
१५ ग्रामेयी	— —	नाटक लक्षण रत्नकोश पृ० ६१
१६ ललित रत्नप्रभा	क्षेमेन्द्र	हि० स० लिट, पृ० ४७१
१७ वनमाला	रामचन्द्र	ना० द०० पृ०३१९ (बलदेव) स० सा० इति पृ० ६१९
१८ वासन्तिका	रामचन्द्र	(दासगुप्ता) हि स० लिट् पृ० ४७३
१९ शृंगारवाटिका	विश्वनाथ भट्ट	(कृष्णमाचारी) हि० क्लासि स० लिट्० पृ० ७८४ (दासगुप्ता) हि स० लिट् पृ०४७

२०. कौशलिका	भट्टभवनुत चूडामणि	नाट्यदर्पण, पृष्ठ ३०।
२१ इन्दुलेखा	भट्टभवनुत चूडामणि	नाट्यदर्पण, पृष्ठ १९४।
२२ अनगवती	,,	नाट्यदर्पण पृष्ठ २८०।
२३ रामाकनाटिका	धर्मगुप्त	(कृष्णमाचारी) हि० क्लासि० स० लिट् पृष्ठ ७४८।२३
२० कौशलिका	भट्टभवनुत चूडामणि	नाट्यदर्पण पृ० ३०
२१ इन्दुलेखा	,,	नाट्यदर्पण पृ० १९४
२२ अनंगवती	,,	नाट्यदर्पण पृ० २८०
२३ रामाकनाटिका	धर्मगुप्त	(कृष्णमाचारी) हि० आव क्लासि० स० लिट् पृ० ७४८
२४ चन्द्रकला	नारायण	कृष्णमाचारी पृ० ७४८
२५ पुष्पमाला	चन्द्रशेखर	सा० द० (शालग्राम टीका) पृ० १७३
२६ प्रभावती	कविराज विश्वनाथ	सा० द० (शालग्राम टीका) पृ० ७२
२७ गृहवृक्षवाटिका		सा० द० पृ० २०९
२८ कनकलेखा	कल्याणवामनभट्ट	(कपिलदेव) स० सा० का समी० इतिहास पृ० ४४५
२९ चन्द्रप्रभा	मेधविजय	(दासगुप्ता) हि० आ० सं० लिट पृ० ३७५, ७०३
३० ललिता	अम्बिकादत्त व्यास	(हीरालाल) आधु० स० सा०
३१ मुक्तावली	सोठी भद्रविराम शास्त्री	(हीरालाल) पृ० १२३
३२ इन्दुमती	,,	(कृष्णमाचारी) हि० आव क्लासि० स० लिट पृ० ७४८
३३ चित्रलेखा	,,	,, ,,
३४. पद्मावती	,,	,, ,,
३५ कुवलयवती	,,	,, ,,





परिमल पब्लिकेशन्स

27/28, शक्ति नगर

दिल्ली - 110007

फोन - 27445456

ई-मेल - parimal@ndf.vsnl.net.in